# विकास

[ मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास ]

लेखक
प्रतापनारायण श्रीवास्तव

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय
लखनऊ

# विकास

## लेखक की अन्य रचनाएँ

| | | |
|---|---|---|
| बिदा | (उपन्यास) | १) |
| विजय | ( ,, ) | १) |
| पाप की ओर | ( ,, ) | ३) |
| आशीर्वाद | (कहानी-संग्रह) | ३) |
| विधाता का विधान | ( ,, ) | ३॥) |
| विवाह विभ्राट | ( नाटक ) | २॥) |

# भूमिका

कथा शिल्पी प्रतापनारायण श्रीवास्तव से हिंदी-जगत् भली भाँति परिचित है। आपके सर्वप्रथम उपन्यास 'बिदा' का हिंदी-संसार ने यथेष्ट आदर किया तथा आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर हिंदी के विशिष्ट विद्वानों एवं आलोचकों ने सर्व-सम्मति से आपको हिंदी का जेन ऑस्टिन घोषित किया।

'विकास' आपका समस्यामूलक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रतापनारायणजी ने भारतीय समाज के उस वर्ग से अपने पात्रों का चयन किया है, जो अब तक हिंदी के अन्य उपन्यासकारों द्वारा अछूते रह गए। यह वर्ग है—अपने को सभ्यता का एकमात्र ठेकेदार समझनेवाले संपन्न परिवार—जो जन्म से तो भारतीय है, किंतु उनकी बोल-चाल, हाव-भाव, वेष-भूषा तथा आचार-विचार विदेशी रंग में रँगे हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आपने विदेशी प्रभाव से अनुरंजित वातावरण का चित्रण अवश्य किया है, परन्तु भारतीय परंपरा एवं संस्कृति की कहीं भी अवहेलना नहीं की। उनके पात्रों का संस्कार-जन्य अवचेतन मन निरंतर भारतीय संस्कृति से प्रेरित होता हुआ, अंत में, अपनी भूल स्वीकार करता है। उन पर अंतिम प्रभाव भारतीयता का होता है, विदेशीपन का नहीं।

उपन्यास की कथा-वस्तु सोद्देश्य, भाषा सरस एवं प्रभावोत्पादक तथा कथोपकथन, विदग्धता और हास्य का पुट लिए हुए, अत्यंत ही सजीव और स्वाभाविक बन पड़े हैं।

हमारा विश्वास है कि आपके अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास का भी हिंदी-संसार में यथेष्ट आदर होगा।

—शिवनंदन कपूर

# प्रथम खंड

१

.। की श्यामल छाया घनीभूत होकर संसार को आच्छादित करने का उपक्रम करने लगी, और इधर जहाज़ बंगाल की खाड़ी के नील आकाश के नीचे, नीले रत्नाकर के प्रशस्त वक्ष पर संतरण करता हुआ ऊँघने का प्रयत्न करने लगा। माधवी की चेतना जगी, वह सिहिरकर, चारो ओर देखकर अपनी स्थिति समझने की चेष्टा में निरत हुई। जहाज़ के स्पंदन ने मौन भाषा में कहा—"तुम अपने देश से दूर चली जा रही हो। तुम्हारा देश तुम्हारे ही लिये विदेश हो रहा है।"

माधवी व्याकुल दृष्टि से उस निविड़ अंधकार की ओर देखने लगी। वह एक आह के साथ अपना अतीत सोचने लगी। मनुष्य अतीत का पुजारी है। उसे अपना अतीत जीवन बहुत प्यारा होता है, और दुःख के अवसर पर अक्सर याद आया करता है। माधवी की स्मृति पुराने चित्र खींचने लगी—

जाह्नवी के तट पर कुंडलपुर नाम का एक गाँव ज़िला कानपुर में है। उस गाँव में मधुसूदन मिश्र की स्थिति किसी ज़माने में अच्छी थी, परंतु माधवी के जन्म-काल में वैसी अच्छी न रही थी। मधुसूदन मिश्र उन दिनों क़र्ज़ में डूबे हुए थे, और किसी तरह लस्टम-पस्टम अपनी ज़िंदगी बसर करते थे। उनके कई लड़के मर चुके थे, इससे उन्हें संतान की ओर से उदासीनता हो गई थी। परंतु जब उनकी स्त्री गिरिजा ने माधवी को प्रसव किया, तो उन्हें अपार आनंद हुआ, और विश्वास हुआ कि यह संतान जीवित रहेगी।

वह माधवी को बहुत प्यार
थे, हालाँकि उनकी स्त्री उन्हें ऐसा
तिरस्कार करती थी, क्योंकि माधवी अपने
साथ उनकी ग़रीबी में आटा गीला करने के।
की डिग्री साथ लाई थी। वह थी उसके विवाह का।
मधुसूदन मिश्र इस ओर से निश्चिंत थे। वह हँसकर कहते—
"माधू की परवा तुम मत करो। समय पर अपने आप सब हो जायगा। जिन्होंने द्रौपदी की लाज रक्खी थी, वह माधवी की भी रक्खेंगे।" उस समय माधवी कुछ समझती न थी, परंतु इस वक़्त उसे सब ज्ञान था। गिरिजा उस भोले ब्राह्मण के विश्वास पर मुस्किराकर अपने काम-काज में लग जाती। मधुसूदन माधवी को लेकर खेतों पर चले जाते।

माधवी गाँव की पाठशाला में पढ़ने जाने लगी। उसकी कुशाग्र-बुद्धि ने समस्त गाँववालों को चकित कर दिया था। उसकी प्रशंसा के गीत चारो ओर गाए जाने लगे, और उन्हें बढ़ाकर कहनेवालों में पंडित मधुसूदन का स्थान सबसे प्रथम था। माधवी को स्कूल तक ले जाने और वापस लिवा लाने का भार स्वयं मधुसूदन ने अपने ऊपर लिया था, और वह उसका बड़ी सतर्कता से पालन करते थे। रास्ते में माधवी के संबंध में कोई बात पूछने से वह उसकी तारीफ़ के पुल बाँधने लगते, यहाँ तक कि सुननेवाला ऊब-कर भागने का प्रयत्न करता।

माधवी हिंदी-मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण हो गई। कुंडलपुर में इतना ही पढ़ने का साधन था। माधवी की मा गिरिजा सदा अनेक बाधाएँ उपस्थित करती रहती, परंतु पंडित मधुसूदन भी अपनी ज़िद के पक्के थे। उन्होंने गिरिजा की बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। माधवी भी पिता का आश्रय पाकर मा की बिलकुल परवा

## कुछ रोचक उपन्यास

रंगभूमि—ले०, मुंशी प्रेमचंद; प्रेमचंदजी का सर्व-श्रेष्ठ उपन्यास। प्रेम, कर्तव्य, त्याग और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत सुंदर कथानक; मूल्य ११)

विचित्र-योगी—ले०, द्वारकाप्रसाद मौर्य; हिंदू-गार्हस्थ्य-जीवन की जटिल समस्याओं का मार्मिक चित्रण; मूल्य २॥)

भीष्म-प्रतिज्ञा—ले०, आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री; महावीर, ब्रह्मचारी भीष्म के अपूर्व त्याग, कर्तव्य-निष्ठा और शौर्य की गौरव-गाथा; मूल्य २॥)

केन—ले०, कृष्णानंद गुप्त; बुंदेलखंड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित साहस, पराक्रम और संघर्ष से पूर्ण रोचक प्रणय-कथा; मूल्य २)

नंगे-पाँव—ले०, इंतिसार न्योतनवी; राजसी-वैभव व आडंबर-युक्त जीवन से ऊबे हुए एक भारतीय राजकुमार की मनोवैज्ञानिक कथा; मूल्य २॥)

बहता हुआ फूल—रूपनारायण पांडेय द्वारा अनूदित। चारुचंद्र-बंद्योपाध्याय के लोक-प्रिय उपन्यास 'स्रोतेर फूल' का हिंदी रूपांतर; मूल्य ७)

कर्म-मार्ग—ले०, मौ० नज़ीर अहमद; उर्दू के प्रसिद्ध एवं शिक्षा-प्रद उपन्यास 'तोबतुन्नसूह' का हिंदी अनुवाद; मूल्य ४॥)

भाग्य—ले०, ऋषभचरण जैन; विधाता के विधान का मर्मस्पर्श चित्रण; मूल्य २)

क़ैदी—अनुवादक, ऋषभचरण जैन; एलेक्ज़ेंडर ड्यूमा के 'Black tulip' का हिंदी-रूपांतर; मूल्य २॥)

विगत और वर्तमान—ले०, शंभुनाथ सक्सेना; नारी की प्रेरणा-शक्ति का ज्वलंत चित्रण; मूल्य १॥)

ख़वास का ब्याह—ले०, आचार्य चतुरसेन शास्त्री; प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराज-रासो' के आधार पर रचित पृथ्वीराज-संयोगिता की सात्त्विक प्रणय-कथा; मूल्य ३)

हृदय की प्यास—ले०, आचार्य चतुरसेन शास्त्री; वासना और बाह्य-सौंदर्य का क्रीतदास, एक युवक की हृदय-विदारक, मनोवैज्ञानिक कथा; मूल्य ४॥)

हृदय की परख—ले०, आचार्य चतुरसेन शास्त्री; नारी के अदम्य त्याग, प्रेम और कर्तव्य-निष्ठा का हृदय-स्पर्शी चित्रण; मूल्य ३)

प्रश्न—ले०, सर्वदानंद वर्मा; धर्म और समाज के भ्रामक नियम बंधनों के दुष्परिणामों का सजीव चित्रण; मूल्य ३॥)

सौ अजान और एक सुजान—ले०, बालकृष्ण भट्ट; आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में—"सौ अजान और एक सुजान" लिखकर भट्टजी ने हिंदी उपन्यास-कला को आधुनिक रूप प्रदान किया है; मूल्य १॥)

न करती थी। परंतु हिंदी-मिडिल पास करने के बाद गिरिजा ने अपना संपूर्ण बल लगाकर उसके घर के बाहर निकलने का मार्ग बंद कर दिया। पंडित मधुसूदन भी उसके विवाह का आयोजन करने लगे।

पंडित मधुसूदन की आर्थिक दशा कुछ सुधरी थी, मगर ऐसी न थी कि चार-पाँच हज़ार रुपए लगाकर उसका विवाह करते। उनकी एकांत कामना थी कि वह अपनी प्यार की माधवी का विवाह किसी संपन्न घर में करें, जहाँ उसके जीवन का विकास पूर्ण रूप से हो। इन्होंने आस-पास के सब शहरों की धूल छान डाली, लेकिन मन के लायक पात्र कहीं नहीं मिला।

एक दिन वह बरेली से लौट रहे थे कि अचानक उनकी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से लड़ गई, और वह माधवी के विवाह का अर-मान लेकर इस संसार से प्रस्थान कर गए! माधवी की मा गिरिजा की आँखों के सामने अंधकार छा गया, और विधाता का क्रूर परि-हास वृश्चिक-दंशन से भी अधिक त्रास-जनक हो गया।

विधवा गिरिजा की मुसीबतों में कोई हाथ बँटाने के लिये तैयार नहीं हुआ। गाँव की बूढ़ी औरतों ने इस विपद् का कारण माधवी और उसकी शिक्षा को बताकर उस दुखी परिवार के साथ सहानु-भूति प्रदर्शित की। गिरिजा उसे सुनकर और रोने लगती। धीरे-धीरे वह माधवी की ओर से विरक्त होने लगी। परंतु उसके कौमार्य ने उसे निश्चित होकर बैठने नहीं दिया। वह यथाशीघ्र माधवी का हाथ पीला करने का आयोजन करने लगी। परंतु अभागिनी माधवी को कोई भी अपने घर लाने के लिये तैयार न होता था, क्योंकि गाँववालों ने उसे अमंगल का रूप पहले ही घोषित कर रक्खा था, और वे ज़रा-सा अवसर मिलने पर उसकी भावी ससुरालवालों पर विपद् पड़ने की भविष्य-वाणी करने से न चूकते थे। ज्यों-ज्यों माधवी के विवाह में देर होती, त्यों-त्यों गिरिजा माधवी की

ओर से विरक्त होती जाती। कुंडलपुर से दस कोस पर रूसोहा गाँव कानपुर-शहर के बिलकुल पास ही आबाद है। वहाँ के पंडित मन्नूलाल शुक्ल अपना पाँचवाँ विवाह करने के लिये उत्सुक थे। उनकी आयु लगभग सत्तर साल के थी, परंतु वह अब भी अपने को नवयुवक समझते थे। पैसा भी पास था, जिससे ख़ुशामदियों की कमी न थी। संतान भी कोई न थी। तीन पुश्त के भाई-भतीजे थे, मगर उनसे इतना वैमनस्य था कि वे एक दूसरे के ख़ून के प्यासे थे। ख़ुशामदियों ने पंडित मन्नूलाल को विवाह करने की सलाह दी, और उनमें से एक ने माधवी के साथ उनका संबंध स्थिर भी कर दिया। गिरिजा को आश्वासन मिला, और उसने वह संबंध आँखें बंद कर स्वीकार कर लिया। माधवी ने अपने भावी पति का हाल जानकर वेदना-भरी आँखों से नीरव आकाश की ओर देखा, और गिरिजा ने जी खोलकर उस परोपकारी बंधु को, जिसने वह विवाह स्थिर कराया था, आशीर्वाद दिया।

गिरिजा ने यथाशीघ्र माधवी का विवाह पंडित मन्नूलाल से कर दिया। गाँववालों की भविष्य-वाणी सत्य हुई। जैसे ही माधवी अपनी ससुराल पहुँची, उसके दो दिन बाद वह विधवा हो गई। पंडित मन्नूलाल दमे से बीमार थे ही। विवाह में बदपरहेज़ी बहुत हुई, और घर पहुँचते-पहुँचते वह भयानक रूप से बीमार हो गए, यहाँ तक कि उन्होंने माधवी को अच्छी तरह देखा भी नहीं, और काल-कवलित हो गए। उस दिन माधवी को सचमुच विश्वास हुआ कि वह अभागिनी है।

पंडित मन्नूलाल अपनी संपत्ति की कोई व्यवस्था न कर गए थे। उनकी जायदाद के वारिस उनकी तीन पुश्त के भाई-भतीजे, जो उनके घातक शत्रु थे, हुए, और उन्होंने माधवी को घर से बाहर निकाल दिया। माधवी अपनी मा के पास लौट आई। सुहाग

लेकर वह कुंडलपुर से गई थी, और उसे हमेशा के लिये खोकर वापस आई। गिरिजा को भी विश्वास हो गया कि वह अमंगल-रूप है, परंतु उसे माधवी को स्थान देना ही पड़ा।

माधवी के दिन ज्यों-त्यों व्यतीत होने लगे। उसका घाव धीरे-धीरे भरने लगा, और यौवन का वेग उतावलेपन के साथ उमड़कर उसे व्यथित करने लगा। उसकी आँखों के सामने संसार नवीन-नवीन रूप लेकर उसे आकर्षित करने लगा, परंतु गिरिजा की कठोर चौकसी ने उसके पतन का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। वह लालसा से युद्ध करना सीखने लगी, और आत्मदमन का पाठ पढ़ने लगी।

माधवी उस दिन पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गई, जिस दिन उसकी मा भी पति और पुत्री के शोक में पागल होकर मर गई। पंडित मधुसूदन की ज़मीन पर उनके महाजनों का क़ब्ज़ा पहले ही हो चुका था, और अब गिरिजा के मर जाने से उसका घर भी छिन गया। एक अँधेरी रात को माधवी गाँव के गुंडों से अपनी रक्षा करने के लिये अपनी जन्म-भूमि छोड़कर भाग निकली। उसकी आयु इस समय उन्नीस वर्ष की थी, परंतु कुटिल, कुचक्री संसार से वह पूर्ण अनभिज्ञ थी।

वह जब अपने गाँव से कई कोस दूर के स्टेशन पर खड़ी होकर कानपुर का टिकट ले रही थी, तब एक प्रौढ़ पुरुष ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। उसका सौंदर्य देखकर वह अप्रतिभ रह गया। उसने ममता-पूर्ण स्वर में उसका परिचय पूछा, और सब हाल सुन-कर उसे आश्रय और काम-काज दिला देने का पूर्ण आश्वासन दिया। माधवी ने उसका कथन सत्य समझा, और उसके साथ चलने को राज़ी हो गई। उस प्रौढ़ व्यक्ति के साथ दो स्त्रियाँ और थीं, जो उससे वयस में अधिक थीं, और किसी हद तक सुंदर भी। थोड़ी ही देर में उन स्त्रियों से उसका ख़ासा मेल हो गया। वह अनजान

सारिका की भाँति उनसे बातें करने लगी, और विधाता की क्रूर मुस्किराहट हँसी में परिणत होने लगी।

माधवी कानपुर में आकर एक अच्छे, दोमंज़िले मकान में, उन्हीं स्त्रियों के साथ, ठहराई गई। यहाँ कई और स्त्रियाँ थीं, जो सब-की-सब एक दूसरे से अधिक चपल थीं। उनके हास-परिहास में अश्लीलता की मात्रा अधिक थी, और वे एक दूसरे को अकथ्य कहने में ज़रा भी संकुचित न होती थीं। माधवी उस वायुमंडल में आकर एक अजीब क़िस्म की घबराहट से दुखी रहने लगी। परंतु उनमें से एक स्त्री ने, जिसका नाम राधा था, एकांत में ले जाकर उसे सांत्वना दी, और उस मकान का भेद बतलाया। उसने कहा—"यह मकान 'डीपोवालों' का है, जो मज़दूरी के लिये काले पानी भेजे जाते हैं। यहाँ सतीत्व का नाम है पाप, और व्यभिचार का नाम है पुण्य! यहाँ से निकलना कठिन ही नहीं, बिलकुल असंभव है। डीपोवाले रात को शराब पीकर ख़ूब व्यभिचार करते हैं, और जो स्त्री उन्हें अधिक प्रसन्न कर सकती है, उसके लिये काले पानी में अच्छी मज़दूरी की सिफ़ारिश करते हैं।" माधवी सुनकर रोने लगी। राधा ने उसे सांत्वना दी, और उसकी यथा-साध्य रक्षा करने की प्रतिज्ञा की।

माधवी की सहायता भाग्य ने भी की। उसी दिन दोपहर को कलकत्ते से तार आया, जिसमें सब स्त्रियों को तुरंत भेज देने की आज्ञा थी। डीपोवाले उस हुक्म की अवहेलना नहीं कर सकते थे। दोपहर की मेल से उन्हें रवाना होना पड़ा। उन लोगों ने माधवी को ले जाने से इनकार किया, परंतु [illegible] अँगरेज़ ने उसे रोकना उचित नहीं समझा, क्योंकि उसके दाम ज़्यादा मिलते, इसलिये कि वह अतीव सुंदरी थी। जिस समय माधवी स्टेशन पर आकर गाड़ी में सवार हुई, उसे कुछ शांति मिली, और वह

चिपककर राधा के पास बैठ गई। राधा कुछ ममता और कुछ दया से उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। डीपोवालों की लुब्ध आँखें उसे देखकर लुब्ध होने लगीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल वे लोग कलकत्ते पहुँचे। माधवी ने राधा का साथ न छोड़ा, हालाँकि डीपोवालों ने किसी हद तक कोशिश भी की। मकान पर पहुँचते ही उन्हें एक अँगरेज़ के सामने बारी-बारी से जाना पड़ा, और एक काग़ज़ पर अँगूठे का निशान देकर वे बाहर आने लगीं। वह काग़ज़ था उनकी ग़ुलामी का दस्तावेज़, जिस पर उन्होंने अपनी ग़ुलामी की क़ुबूलियत को अपने अँगूठे का निशान देकर बिलकुल मज़बूत कर दिया था। माधवी ने भी उस ग़ुलामी के दस्तावेज़ पर अपने अँगूठे का निशान कर दिया।

उसी दिन शाम को वह जहाज़ पर बैठा दी गई। राधा ने उसका साथ अब भी नहीं छोड़ा था, और वह भी उसके साथ किसी अनजान प्रदेश को, जिसे लोग 'कालापानी' के नाम से पुकारते हैं, चल दी।

उस दिन शाम को जहाज़ पर बैठी हुई माधवी यही सब सोच रही थी। आदि जीवन से लेकर अब तक की कुल घटनाएँ, एक के बाद एक, उसके मानस-पटल पर आकर, अपना-अपना छटा दिखाकर अंतर्हित हो गईं।

इसी समय राधा ने आकर कहा—"क्यों, क्या यों ही बैठी रहोगी, उठोगी नहीं?"

माधवी ने चौंककर कहा—"नहीं बहन, उठूँगी क्यों नहीं।"

माधवी के स्वर में वेदना का तीव्र आभास था।

राधा ने उसके पास बैठकर कहा—"अरी पगली, अब भी रोती है। मैंने तुझे समझा दिया है कि तू यहाँ निरापद है। जहाज़ में कोई डर नहीं, और आगे भी चलकर कुछ नहीं। डर तो सिर्फ़

कलकत्ते तक था, जब तक वे पिशाच 'डीपोवाले' साथ थे। फ़िज़ूल रो-रोकर क्यों अपना जी ख़राब करती हो। जो कुछ भाग्य में है, वह देखना और सहना ही पड़ेगा। धीरज से काम लो।"

राधा स्नेह के साथ माधवी की पीठ पर हाथ फेरने लगी।

राधा के उस स्नेह-स्पर्श ने माधवी की आँखों का प्रवाह खोल दिया। वह आवेश के साथ उसके हृदय से लिपट गई, और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। राधा ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसकी भी आँखों से आँसू निकलने लगे। एक की वेदना दूसरे के लिये भी रोने का मार्ग खोल देती है। आँसू सहानुभूति के सहचर हैं।

और, इधर जहाज़ उस निविड़ कालिमा के गर्भ में प्रवेश करने लगा, उसी तरह, जैसे कोई नशे से बेहोश आदमी शहर की अँधेरी गली में लड़खड़ाता हुआ चलता है। समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरें जहाज़ को अपनी उँगलियों पर नचाती हुई सुदूर चंद्रमा का परिहास करने लगीं।

---

# २

डीपोवाला जहाज़ बहुत बड़ा न था, औसत दर्जे का मामूली जहाज़ था। वह मंथर गति से दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था। माधवी कुछ थोड़ा-सा भोजन कर उठ रही थी कि एक घबराई हुई स्त्री, जो गुलाब के नाम से प्रसिद्ध थी, दौड़ती हुई आई, और राधा से कहा—"राधा, कप्तान कहता है, तूफ़ान आ रहा है, इसलिये सब लोग अपने-अपने कमरों में बैठ जाओ, नहीं तो समुद्र में गिर पड़ोगी। क्यों राधा, अब तो हम लोग नहीं बचेंगे ?"

गुलाब के स्वर में भय का आभास था।

राधा ने डेक पर आकर आकाश की ओर देखते हुए कहा—"मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है। दूर दक्षिण में बिजली चमक रही है।"

माधवी ने मुग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"आह ! अगर यह तूफ़ान हम लोगों का अंत कर दे, तो कैसा अच्छा हो ! जीवन की आपदाएँ एक ही क्षण में डूब जायँ।"

राधा ने सप्रेम एक हलकी चपत लगाते हुए कहा—"चुप, पगली। अभी हुआ ही क्या है, जो इतना घबरा गई। क्या यह फूल का-सा रूप भगवान् ने इस प्रकार नष्ट होने के लिये बनाया है ?"

गुलाब एक आँख बंद कर, माधवी की ओर देखकर मुस्किराई। उसने धीमे स्वर में कहा—"अभी अल्हड़पन है। पहलेपहल ऐसा ही होता है बहन !"

राधा ने गुलाब के पैर को अपने पैर से दबाते हुए कहा—"कभी हम लोगों में भी अल्हड़पन रहा होगा।"

गुलाब संकेत पाकर चुप हो गई। वह माधवी की ओर हास्य-मयी दृष्टि से देखने लगी। तूफ़ान का ज़ोर धीरे-धीरे बढ़ रहा था। प्रकृति, जो अभी तक नीरव और निष्पंद थी, अब धीरे-धीरे उद्वेलित हो रही थी। लहरें जो अभी तक चंद्रमा की रश्मियों से क्रीड़ा कर रही थीं, उसके बादलों की ओट में छिप जाने से विरह में सुध-बुध खोकर उन्मत्त की भाँति उसके पास तक पहुँचने का पूर्ण प्रयत्न कर रही थीं। उनकी इस कोशिश में अभागा डीपोवाला जहाज़ इस तरह डगमग कर अपनी जान बचा रहा था, जैसे दो मतवाले हाथियों की लड़ाई में कोई हथवान बचाता है। काले-काले बादल, जो अभी तक दक्षिण दिशा के अंतरिक्ष में थे, स्याह लबादा-पोश सैनिकों की पलटन की तरह मुश्की घोड़ों पर सवार वायु-वेग से उत्तर दिशा के प्रकाश को परास्त करने और उस पर अपना आधि-पत्य क़ायम करने के लिये बढ़ते चले आ रहे थे। उनके आगमन की सूचना आँधी के झोंके कानों के समीप अपनी सनसनाहट से देते हुए सुदूर पृथ्वी के वृक्षों को जड़ से उन्मूल करने के लिये सवेग जा रहे थे। शरीर पर की रोमावलि पहले एक अजीब आनंद अनुभव करने के लिये उठ खड़ी हुई थी, परंतु थोड़ी ही देर में तृप्त हो गई, और फिर बदन में कँपकँपी पैदा करने लगी। बिजली एक तीव्र, लपलपाती हुई तलवार की तरह चमक-चमककर संसार को त्रस्त करने लगी।

जहाज़ काँप रहा था, और उसके आरोही भी काँप रहे थे। रत्नाकर, जो अभी तक शांत था, वायु के विद्रोह से प्रभावित होकर स्वयं युद्ध के लिये तैयार हो गया। वह गरज-गरजकर [illegible] और दिशाओं को विकंपित करने लगा। उसकी भयंकर हुंकार ने इतना भय उत्पन्न किया कि उसके जीव त्रस्त होकर पाताल-मार्ग के गह्वरों में प्रवेश करने लगे, और दामिनी कौंध-कौंधकर

'सर्चलाइट' ( युद्ध-काल में शत्रुओं की गति निरखने के लिये तेज़ विद्युत्-प्रकाश ) की भाँति उन भयाकुल जीवों का पलायन दिखाने लगी। वे जलचर लहरों की खाइयों की ओट में भागने का निष्फल प्रयत्न करने लगे, और क्षुब्ध, मंडलीकृत भँवरों के कुचक्र में फँसकर तांडव-नृत्य करते हुए सागर के अंतस्तल में छिपी हुई चट्टानों से टकरा-टकराकर अपने प्राण विसर्जन करने लगे। प्रकृति रौद्र रूप होकर सबको भक्षण करने में लीन हो गई। वह क्षुद्र जलयान भी निरुद्देश होकर इधर-उधर शराबियों की भाँति लड़खड़ाने लगा। आरोहियों का हृदय सिहर उठा। वे बदहवास होकर आकाश की ओर देखने लगे। आकाश घोर कृष्ण वर्ण का था। अब पानी की बूँदें भी पड़ने लगी थीं, जैसे युद्ध-काल में वायुयानों से मशीनगन द्वारा गोलियों की वर्षा होती है। वे जल की बूँदें जब आरोहियों के मुँह और हाथों पर पड़तीं, तो एक क्षुद्र कंपन पैदा करतीं—फिर भय का आदेश कुछ और तीव्र हो जाता। वे भागने का प्रयत्न करते, परंतु डगमगाता हुआ जहाज़ उनको पग-पग पर झकझोरकर भागने में असमर्थ कर देता। वे मूक तथा हतचेत होकर एक दूसरे का मुख देखने लगते। भयंकर निराशा की काली ज्योति उनके नेत्रों से निकलकर दूसरों के हृदय में डर पैदा कर रही थी।

उस द्वीपोंवाले जहाज़ का एक कप्तान था। वही उसका मालिक भी था। उसका नाम था एडमंड हिक्स। वह अधगोरा ईसाई था, जिसका पिता भारतीय था, और माता अँगरेज़। एडमंड हिक्स कई वर्षों से इस गुलामी के व्यापार में एक उत्साही हिस्सेदार था। उसने हज़ारों रुपए कमाए थे, और फिर भी उसके पास एक पैसा न था। वह संसार का एक रँगीला जीव था। हज़ारों गुलाम स्त्रियों का मान भंग किया था, इसलिये निरंकुश भी था, व्यभिचारी भी था, और बुज़दिल भी था। वह छ फ़ीट लंबा, गठीले

बदन का जवान था, जिसे समुद्री जल-वायु ने कुछ कठोर, कुछ शुष्क, कुछ नीरस, कुछ संग-दिल, कुछ ममत्व-हीन और कुछ अमानुषिक बना दिया था। उसने विवाह नहीं किया था, और न उसकी इच्छा कभी जागरित ही हुई थी। उसके केश लाल भूरे रंग के थे, जैसे पान की पीक से रँगे हुए हों, और जिनसे लखनवी काले ज़र्दे की श्यामली आभा निखरी पड़ती हो। वे घुँघराले थे। उसका मस्तक कुछ चौड़ा था, और आँखें बड़ी-बड़ी थीं, जो चारो ओर मोटी भौंहों से घिरी हुई थीं, और मोटी-मोटी पलकों से सुरक्षित थीं। उसकी आँख की पुतली कुछ काली और कुछ नील-वर्ण की थी। उसका सिर छोटा और गोल था। उसके मस्तक पर दाहने कान के पास एक लंबा दाग़ था, जो किसी फोड़े के चीरे जाने से हुआ मालूम होता था, और आँखों के नीचे, दाहने गाल पर एक छोटा-सा काला मसा था। उसके हाथ-पैर बलिष्ठ और गठीले थे। वह सदैव कर्ज़न-फ़ैशन में रहता था, जिससे आयु का ठीक-ठीक पता चलना मुश्किल था। उसका कंठ-शब्द गंभीर और कुछ तीव्र था, जिससे रोबीला होने का आभास मिलता था। जन्म से तो वह ईसाई था, मगर उसका कोई धर्म नहीं था। खाना, पीना और ऐश करना, यही उसके जीवन का मूल-मंत्र था।

जहाज़ अपनी विपरीत परिस्थितियों से भयानक युद्ध कर रहा था। एडमंड हिक्स का हृदय काँप रहा था। उसने आज से पहले ऐसे तूफ़ान का न तो मुक़ाबला किया था, और न कभी उसे देखने का ही मौक़ा मिला था। उसका रोम रोम विह्वलता से खड़ा होकर गरजते हुए आकाश की ओर भय से देख रहा था। पवन का वेग उसके कमरे को भी हिला रहा था, उसके अंदर भी उसकी क्रुद्ध फुफकार सुनाई पड़ती थी। चारो ओर कालिमा-ही-कालिमा छाई थी। दिशा का ज्ञान वह भूल-सा गया था। वायु

के बवंडर जहाज़ को समुद्र-तल पर टेनिस के मैदान में खिलाड़ियों से प्रताडित गेंद की तरह इधर-उधर नचा रहे थे । एंजिन के पुर्ज़ें कभी के टूट चुके थे, और उन्होंने अपना काम छोड़कर विश्राम लेना आरंभ किया था । वायरलेस-यंत्र बेकार-सा हो गया था । वायु की तरंगें उस तूफ़ान के सीमित क्षेत्र में ही टकराकर रह जाती थीं, आगे बढ़ती ही न थीं । कहीं से भी कोई उत्तर न आता था, और ऑपरेटर भी झुँझलाकर सारा उद्योग समाप्त कर चुका था ।

एडमंड हिक्स अपने कमरे में खड़ा था । उसका पैर सीधा पड़ता ही न था । उसने किसी तरह अपनी अलमारी खोली, और तेज़ ह्विस्की की बोतल निकालकर मुग्ध नेत्रों से उसकी ओर देखने लगा । बोतल अभी तक खुली न थी । उसने धीरे-धीरे उसकी मुहर तोड़ी, और उसे अपने मुँह से लगा लिया । थोड़ी देर में ख़ाली कर दूसरी निकाली, और उसे भी उदरस्थ कर लिया । यह तूफ़ान से लड़ने की तैयारी थी । थोडी देर में स्फूर्ति उसकी नसों में दौड़ने लगी । उसका चेहरा लाल होने लगा, और सिर भी गर्म हो उठा । उसके हृदय का भय निकल गया, वह सचमुच एक नौजवान—जोशीले जवान की भाँति रण-स्थल में लड़ने के लिये निकल पड़ा । उन्मत्त तूफ़ान अब उसके लिये केवल साधारण आँधी थी, समुद्र का गर्जन केवल दैनिक व्यापार-जैसा था, मूसलधार वर्षा कुछ थोड़ो-सी बूँदों की बौछार थी, बिजली की चकाचौंध चमक सिर्फ़ बादलों के विनोद के मैगनी-शियम के तार के प्रकाश की भाँति कौतूहल की वस्तु थी, और घन-घोर घटाओं की कड़कड़ाहट तो उसके विद्रूप हास्य की प्रतिध्वनि-मात्र थी । मदिरा के आवेश ने उसे इस समय एक वीर सैनिक बना दिया था । वह तूफ़ान से लड़ने के लिये आकुल हो उठा । उसने एक बड़ा-सा लबादा अपने बदन पर डाला, और अपने कमरे से बाहर निकलने के लिये दरवाज़ा खोला । दरवाज़ा खोलते ही बिजली

चमकी, और वायु के साथ-साथ बूँदें भी उसके कमरे में घुस पड़ीं। और कमरे के अंदर गिर पड़ी एक बेहोश स्त्री, जो अभी तक उसी के सहारे खड़ी थी। कप्तान एडमंड हिक्स चौंका, और दो क़दम भय से पीछे हट गया। वायु के झोंके भीतर आकर उस पर अपना प्रभाव जमाने लगे। उसने दूसरे ही क्षण उस बेहोश स्त्री को कमरे के अंदर खींचकर दरवाज़ा बंद कर दिया। बाहर तूफ़ान गरजता ही रह गया।

---

# ३

एडमंड हिक्स ने उस स्त्री की ओर देखा, और पहचाना। यह तो वही नवयौवना है, जिसे वह आज दिन में देखकर अपना शिकार निश्चित कर चुका था। इसे भारत में रखने के लिये आज सुबह डीपोवाला वसंतलाल दो हज़ार रुपया उसे देने को तैयार था, और न-मालूम उसने कितनी अनुनय-विनय की थी। परंतु उसने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था। क्योंकि उसने उसे अपनी अंकशायिनी बनाने का पूर्ण संकल्प कर लिया था। वह अभागिनी माधवी थी।

मनुष्य रूप का पुजारी है—सृष्टि के आदि से रहा है, और अंत तक रहेगा। स्त्री और पुरुष, दोनो रूप की कामना करते हैं; परंतु इस सृष्टि में यही रूप मनुष्य का शत्रु हो जाता है। माधवी इस धरातल पर सौंदर्य लेकर अवतीर्ण हुई थी। कभी वह अपना रूप निरखकर स्वयं गद्‌गद हो उठती, परंतु आज कई दिनों से संसार की सबसे भयानक कुरूपता पाने के लिये लालायित थी, क्योंकि वही रूप इसका सबसे निष्ठुर शत्रु और घातक सिद्ध हुआ था।

बेहोश माधवी का रूप मदोन्मत्त एडमंड हिक्स के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करने लगा। उसका सिर मदिरा के आवेश से घूमने लगा।

एडमंड हिक्स ने उस रूप-राशि को उठाकर अपने पलँग पर लिटा दिया, और उसे गर्म कपड़ों से ढक दिया। अलमारी खोलकर उसने ब्रांडी की बोतल निकाली, और उसकी कुछ बूँदें उसके मुँह में डाल दीं। ब्रांडी कंठ से नीचे उतरकर ऊष्मा पैदा करने लगी। थोड़ी देर के बाद माधवी ने अपने नेत्र खोल दिए। एडमंड हिक्स

की आँखें आवेश से चमक उठीं। उसका शैतान, जो अभी तक मौन था, खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने पूछा—"अब कैसी तबियत है ?"

माधवी अभी पूर्ण रूप से होश में नहीं आई थी। उसने कोई उत्तर न दिया।

एडमंड हिक्स ने शराब का गिलास उसके मुँह से लगाते हुए कहा—"इसे पी जाओ। इसके पीने से तुम्हारा डर और सरदी, दोनो दूर हो जायँगे।"

ब्रांडी की तेज़ गंध ने माधवी को सचेत कर दिया। वह सोचने लगी, वह कहाँ है। उसे याद आया कि तूफ़ान आने के पेश्तर वह राधा और गुलाब से बातें कर रही थी। राधा किसी कार्य-वश अपने कमरे में चली गई। गुलाब ने उससे अपने कमरे में चलने को कहा। वह उस ओर उसके साथ चली। गुलाब उसे घुमाती हुई ऊपर के खंड में ले गई, और उससे कहा—"मैं तुम्हें कप्तान के पास लिए जाती हूँ, जो तुम पर मुग्ध है।" यह सुनकर वह घबराई, और उसे छोड़कर भागने लगी। गुलाब उसकी घबराहट देखकर भयंकर रूप से हँस पड़ी, और दूसरे ही क्षण उसे पकड़ लिया। वह छूटने का उपाय करने लगी, और दोनो में झगड़ा होने लगा। गुलाब ने उसे कप्तान के कमरे की ओर ढकेलते हुए कहा—"ये नख़रे मुझे अच्छे नहीं लगते। कप्तान के पास जाओगी, तो बड़े चैन से दिन बीतेंगे।" उसका सिर कप्तान के कमरे की दीवार से लगा, और दूसरे ही क्षण वह बेहोश हो गई। माधवी ने अनुमान किया कि यही पुरुष शायद कप्तान है। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से कप्तान की ओर देखकर पूछा—"क्या कप्तान आप ही हैं ?"

एडमंड हिक्स ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, इस जहाज़ का मैं ही कप्तान हूँ। यह दवा पी लो, फिर हम लोग बातें करेंगे।"

कप्तान एडमंड हिक्स का शैतान अस्थिर होकर माधवी की ओर देखने लगा।

माधवी ने गिलास दूर फेककर उठते हुए कहा—"मैं ब्राह्मण हूँ, शराब नहीं पीती। मेरा धर्म नष्ट न करो।"

एडमंड हिक्स धर्म का नाम सुनकर हँस पड़ा। उसकी हँसी की प्रतिध्वनि ने माधवी को चौंका दिया।

एडमंड हिक्स ने कहा—"तुम्हारा ब्राह्मणी धर्म अब नहीं चलने का। तुम अब ग़ुलाम हो, और मेरे क़ब्ज़े में हो। इस वक़्त मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। तुम्हें मेरा हुक्म मानना पड़ेगा।"

माधवी भीत दृष्टि से कप्तान की ओर देखने लगी।

कप्तान ने दुबारा शराब का गिलास देते हुए कहा—"तुम्हें यह पीना पड़ेगा, और अगर तुम सीधी तरह न पियोगी, तो मुझे ज़बरदस्ती पिलाना पड़ेगा। इस जहाज़ में तुम्हारी सहायता करनेवाला मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं।"

माधवी का हृदय काँपने लगा। सत्य ही इस तूफ़ान की रात्रि में उसकी सहायता करनेवाला कोई दूसरा नहीं।

एडमंड ने वह शराब का गिलास उसके पास बढ़ा दिया। माधवी ने साहस करके उसे अपने से दूर करते हुए कहा—"मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मेरा धर्म मत लो। तुम मेरे बाप के बराबर हो, मेरी रक्षा करो।"

नशे में चूर एडमंड बड़े वेग से हँस पड़ा। उसके कंठ की कर्कशता बाहर के तूफ़ान का मुक़ाबला करने लगी। माधवी पलँग से उतरकर नीचे खड़ी हो गई, लेकिन काँपता हुआ जहाज़ उसे खड़ा नहीं रख सका। वह नीचे गिर पड़ी। कप्तान उसे उठाने के लिये आगे बढ़ा। माधवी अपने को उसके पाश से छुड़ाने के लिये छटपटाने लगी। एडमंड मतवाले की भाँति उसे अपने हृदय से लगाने का

प्रयत्न करने लगा। उसका शैतान उन्मत्त पहलवान की तरह उस कमज़ोर माधवी से युद्ध करने लगा।

इसी समय वायु में उड़ता हुआ जहाज़ बड़े ज़ोर से किसी चट्टान से टकराया। यह धक्का भयंकर भूकंप से भी अधिक बलशाली था। माधवी कप्तान के हाथों से छूटकर दूर गिर पड़ी। उसका सिर फट गया, और रक्त की धार बह चली। कप्तान भी दूर गिरा, और उसका सिर दीवार से टकराया। जहाज़ के सब आरोही चिल्ला उठे, जिनके स्वर ने तूफ़ान के रव को भी किंचित् काल के लिये डुबा दिया। जहाज़ का पेंदा फट गया था, और पानी बड़े वेग से उसमें भर रहा था। सबको अपनी-अपनी जान बचाने की पड़ गई। मल्लाह तो 'लाइफ़-बेल्ट' पहने पहले से तैयार थे। वे नावें खोलने लगे।

एडमंड हिक्स माधवी को उसी अवस्था में छोड़कर कमरे के बाहर आया। तूफ़ान का वेग घटने के बजाय और बढ़ गया था। उसने चिल्लाकर कुछ हुक्म दिया, परंतु हँसती हुई वायु ने उसे अपने उदर में रख लिया। वह एंजिन घर की ओर भागा। मैगाफ़ोन से उसने तीव्र कंठ में आदेश दिया। दो-एक मल्लाह उसके पास आए। उनसे मालूम हुआ कि जहाज़ चंद मिनटों में डूबने वाला है। उसने नावें खोलने का हुक्म दिया। बात-की-बात में डरे हुए आदमियों से नावें भर गईं, और उनमें तिल-मात्र जगह न रही। जहाज़ क़रीब-क़रीब ख़ाली हो गया। अब केवल पाँच मनुष्य शेष रहे। एक कप्तान, दूसरी माधवी, दो मल्लाह और माधवी को चारो ओर ढूँढ़ती हुई राधा।

जहाज़ में एक छोटी-सी नाव और थी। कप्तान ने उसे लाने का आदेश दिया, और स्वयं माधवी को लेने के लिये अपने कमरे में गया। राधा उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई गई। माधवी को रक्त-

रंजित देखकर वह सिहर उठी। वह दौड़कर उसके पास गई, लेकिन कप्तान ने बर्बरता से उसे ठेलते हुए कहा—"जल्दी भाग, जहाज़ डूब रहा है। मैं इसे उठाकर चलता हूँ। चलो, अपनी जान बचाओ।"

यह कहकर, वह माधवी को उठाकर दूने साहस से नीचे भागा। जहाज़ के दो खंड जल-मग्न हो चुके थे, और दो अभी बाक़ी थे, परंतु वे भी बड़ी शीघ्रता से डूब रहे थे। दामिनी की दमक, जो अब तक डर पैदा कर रही थी, इस समय पथ-प्रदर्शक का काम कर रही थी। एडमंड हिक्स किसी तरह उस छोटी नाव पर पहुँचा, उसके पीछे राधा और फिर दोनो मल्लाह। नाव जहाज़ से छूटते ही वायु के साथ भागी। थोड़ी दूर जाते-जाते वह डीपोवाला जहाज़ भी, जो ग़ुलामों की आहों से भर गया था, डूब गया।

# ४

पाँच आरोहियों को लेकर वह नौका वायु-वेग से किसी अनजान प्रदेश की ओर भागी, जिस प्रकार कोई बुज़दिल जवान लड़ाई के मैदान से भागता है। वायु के झोंके उसे इधर-उधर फिरा रहे थे। रत्नाकर और भीषण वेग से उतावला हो रहा था। पानी भी मूसल-धार बरसने लगा था। बिजली भी दूने उत्साह से चमक-चमक बारंबार अपने मित्रों की रणकुशलता का चमत्कार दिखाकर नाच रही थी। थोड़ी ही दूर पर वह डीपोवाला जहाज़ समुद्र के गर्भ में प्रवेश कर रहा था। लहरें अपना आहार पाकर फिर किसी अन्य वस्तु को उदरस्थ करने के लिये उतावली के साथ ऊँची उठ रही थीं, और किसी को न पाकर, क्षुब्ध होकर बड़े वेग से गर्जन करती हुई गिर पड़ती थीं। एडमंड हिक्स का हृदय काँप रहा था, और वह स्वयं भी भयाकुल दृष्टि से उस तूफ़ान-रूपी काल-दंड को देखकर अपने होश-हवाश खो रहा था। राधा माधवी का सिर अपनी गोद में लिए थी, और उसे यथासाध्य अपने वस्त्र से ढके थी। दोनो मल्लाह, जो ईसाई थे, अपनी आँखें बंद किए हुए बैठे थे। दूसरी नाव का, जिसमें मल्लाह और गुलामों का दल था, बिलकुल पता न था, कप्तान बराबर बिजली की चमक होने पर उस नाव को देखने का यत्न करता, परंतु उसका कोई चिह्न भी दिखाई न पड़ता था।

एक मल्लाह, जिसका नाम सैमुएल जॉनसन था, बोला—"ये हमारी अंतिम घड़ियाँ हैं। इस तूफ़ान से बच निकलना बिलकुल असंभव है।"

दूसरे मल्लाह जॉन डेविड ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"यह हमारे पापों का परिणाम है। हमने ईश्वर की संतान को भेड़ और बकरी की तरह बेचा है, उन पर अगणित अत्याचार किए हैं, यह सब उसी का फल है।"

सैमुएल जॉनसन ने विषाद-पूर्ण स्वर में कहा—"बिलकुल सत्य है जॉन! हमने बहुत पाप किए हैं। जिनकी क्षमा नहीं। प्रभु ईसा-मसीह क्या हमारे लिये वकालत करेंगे, भरोसा तो नहीं होता।"

जॉन डेविड ने व्यंग्य से हँसते हुए कहा—"हमारे गुनाह हमारी वकालत करेंगे। जिस वक़्त गुलामों को बेचकर, रुपया लेकर अपनी जेबें भरते थे, तब क्या तुमने या मैंने इस दिन की याद की थी? नहीं। उस वक़्त तो शराब और ऐयाशी, दो ही बातें हमारे सामने थीं, फिर अब माफ़ी की दरख़्वास्त किस मुँह से करते हो।"

सैमुएल ने रोते हुए कंठ से कहा—"हाँ भाई, उस समय हमें यह ज्ञान न था, मगर मुझे विश्वास है कि ईश्वर अब भी हमें माफ़ी बख़्शेगा, और......"

जॉन डेविड ने हँसते हुए कहा—"ईश्वर करे, तुम्हारा विचार सत्य हो। यह विश्वास भी इस समय शांति देनेवाला है। आओ, इस दारुण समय में हम लोग प्रतिज्ञा करें कि अगर आज बच गए, तो फिर कभी इस पाप-व्यापार में शामिल न होंगे। आज से कुलियों को अपना भाई और कुली-स्त्रियों को अपनी बहनें मानेंगे, और उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करेंगे। हम यहाँ पाँच व्यक्ति हैं, जिनमें दो तो हमारी बहनें हैं, और तीन हम लोग। हम तीनो को शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करनी चाहिए।"

सैमुएल ने प्रसन्न कंठ से कहा—"हाँ, ठीक है। मैं तैयार हूँ। कप्तान से पूछो।"

कप्तान एडमंड हिक्स चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। उसका

नशा हिरन हो गया था, और वह भी अपनी भीषण परिस्थिति से पूर्णतया अवगत था।

जॉन डेविड ने उससे पूछा—"एडमंड, क्या तुम शपथ लेने को तैयार हो?"

एडमंड हिक्स ने सरोष कहा—"तुम मुझे हुक्म देनेवाले कौन हो? यह याद रखना चाहिए कि मैं तुम्हारा कप्तान हूँ।"

जॉन डेविड ने ज़ोर से हँसकर कहा—"अब तुम मेरे कप्तान नहीं हो, बल्कि तुम्हारी आत्मा का कप्तान मैं हूँ। अगर तुम मेरा आदेश पालन न करोगे, तो तुमको आज इसी रात में, इसी समुद्र में, इसी तूफ़ान में डूबकर मरना होगा।"

जॉन डेविड के स्वर से भयंकरता झाँक रही थी, जिससे वह केवल धमकी न मालूम होती थी, बल्कि कथन को कार्य में परिणत करने का पूर्ण निश्चय झलकता था।

एडमंड हिक्स, जो सदा से निरंकुश और ज़िद्दी था, इस धमकी को सुनकर उबल उठा। उसने सरोष एक तमाचा उसके गाल पर मारा। ठंडी वायु ने उसे और असह्य बना दिया। जॉन डेविड का भी ख़ून उबलने लगा।

सैमुएल अपना क्रोध न रोक सका। उसने एक घूँसा कप्तान हिक्स के मुँह पर मारकर कहा—"पापी, अपने साथ तूने हम लोगों को भी बरबाद किया। पाप में घसीटकर हमें कहीं का न रक्खा, और ऐसे वक़्त में भी पाप की ओर बढ़ना चाहता है। दोज़ख़ी कुत्ते, तेरा तो मरना ही उत्तम है। आँधी और प्रलय-काल की जल-समाधि ही तेरे लिये उपयुक्त है।" कहते-कहते उसने दो-तीन घूँसे और जमाए। कप्तान एडमंड हिक्स गिर पड़ा।

इसी समय बादल तुमुल घोष से गरज उठे, और दामिनी व्याकुल होकर वारंवार कौंधने लगी। जॉन डेविड ने कहा—"सैमुएल, सब-

मुच इसी दुष्ट के कारण आज यह दिन देखना पड़ा, और जब तक यह हमारे साथ रहेगा, हमारी ख़ैर नहीं। इस पापी को इस तूफ़ान की भेंट चढ़ाना होगा!"

सैमुएल ने कप्तान के पैर पकड़कर उसे समुद्र की उठती हुई लहरों के अर्पण कर दिया। लहरें बेहोश कप्तान को लेकर नाचती हुई पाताल में प्रवेश कर गईं।

राधा सब व्यापार देख रही थी। उसने डरकर अपनी आँखें बंद कर लीं। नाव तीव्र वेग से भागती हुई चली जा रही थी। सहसा वह किसी अनजान चट्टान से टकराई। राधा उस वेग को सहन न कर सकी, और माधवी के समीप ही गिर पड़ी। लेकिन समुएल और जॉन डेविड दोनो समुद्र में गिर पड़े, जिन्हें लहरों ने अपनी गोद में उठा लिया, और उन्हें क़ैद करने के लिये किसी अनजान प्रदेश की ओर ले चलीं। राधा अचेत होकर उसी नाव में पड़ी रही।

तूफ़ान की तेज़ी कम हो चली थी। आकाश के बादल न-मालूम कहाँ, किस ओर अदृश्य हो गए थे। वेग से उठती हुई लहरें थक-कर विश्राम लेने लगीं। चंद्रदेव अपने सभासदों के साथ आकाश में प्रकाशित होकर सागर को अमृत-पान कराने लगे। रत्नाकर का गर्जन-तर्जन शांत हो गया था। आँधी का वेग सुखद समीरण में परिवर्तित हो गया था। आकाश के मध्य से बृहस्पति की प्रकाश-रेखाएँ राधा और माधवी को जीवन प्रदान करने लगीं।

प्रकृति इस समय शांत थी, नीरव थी। कोई भी उस शांति को देखकर यह न कह सकता था कि कुछ ही देर पहले वह इतनी भयं-कर थी, इतनी विकराल थी। आज मनुष्य अहंकार के साथ कहता है कि मैंने प्रकृति को अपने वश में कर लिया है—प्राकृतिक शक्तियों को अपना दास बना लिया है। परंतु गर्व का पुतला मनुष्य कितना

क्षुद्र है, यह वह नहीं जानता। प्रकृति का एक क्षुद्र सहचर असंयत हो जाने से मानुषिक शक्तियों को बिखेरकर छिन्न-भिन्न कर सकता है, उस समय मनुष्य की वैज्ञानिक शक्तियाँ पंगु तथा हतबुद्धि होकर उसकी ओर असहाय दृष्टि से केवल देखा ही करती हैं।

वह वायु, जो अभी तक डीपोवाले जहाज़ का अंत करने के लिये प्रलय का रूप धारण किए थीं, अब शांत होकर राधा को होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। अब ठंड का नाम न था। राधा के वस्त्र कुछ-कुछ सूख चले थे, और उसके सिर की पीड़ा भी कम हो चली थी। उसकी चेतना जाग रही थी।

राधा ने उठकर देखा, तूफ़ान ख़त्म हो चुका है, और दोनो मल्लाहों का कहीं पता नहीं। नाव लहरों के साथ खेलती हुई संतरण कर रही है। आकाश और नील समुद्र ज्योत्स्ना से धवल हो रहा है। राधा को विश्वास न हुआ कि वह जीवित है। उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए।

राधा नेत्र बंद किए हुए प्रकृति की मंद मुस्किराहट का शब्द सुन रही थी। उसने पुनः अपने नेत्र खोले, और उठकर बैठ गई। उसे विश्वास हुआ कि वह सत्य ही जीवित है। उसने पास पड़ी हुई माधवी की ओर देखा, उसकी स्मृति सजग होने लगी, और विगत घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं। उस शून्य में अपने को अकेले देखकर भय से विह्वल हो उठी। फिर धीरे-धीरे माधवी के सिर पर हाथ फेरने लगी। यही उसका एकमात्र अवलंब था। उसकी अधीरता देखकर प्रकृति मुस्किराने लगी, और चंद्रमा हँसने लगा।

---

५

लखनऊ के क़ैसरबाग़ में प्रवासी व्यापारी मनमोहननाथ के स्वागतोपलक्ष्य में शहर के प्रतिष्ठित व्यापारियों और नागरिकों ने भोज का विराट् आयोजन किया था। उसमें अधिकारी और जनता के विशेष चुने हुए व्यक्ति आमंत्रित थे। कार्लटन होटल की ओर से भोज का प्रबंध किया गया था। बारहदरी के सामने का उद्यान नूतन साज से अलंकृत था, जो नवाब-कालीन लखनऊ के ऐश्वर्य की थोड़ी-सी झलक दिखाता था। चारो ओर रंग-बिरंगे बिजली के बल्ब लगे हुए थे, जिनसे इंद्र-धनुष के रंगों का प्रकाश निकल-कर दर्शकों के नेत्रों को मुग्ध कर रहा था। भीतर एक तरफ़ मधुर स्वरों से बैंड बज रहा था, जिसकी स्वर-लहरी झूमती हुई आकाश में विलीन हो रही थी। चारो ओर हर्ष और उत्साह का समा-रोह था।

प्रसिद्ध व्यापारी पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराकर कहा—"आप लोगों ने जिस प्रकार मेरा आदर किया है, उससे हृदय में एक अद्भुत प्रकार का आनंद होता है। मुझे सब प्रकार से आपका कृतज्ञ होना चाहिए, और वास्तव में मैं हूँ भी। मैं नहीं जानता कि किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूँ?"

लखनऊ-विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर डॉक्टर पीतांबरदत्त ने उत्तर में कहा—"अगर मैं विश्वविद्यालय की ओर से आपको धन्यवाद दूँ, तो यह बहुत थोड़ा कृतज्ञता-प्रदर्शन होगा। आपने दस लाख रुपयों का विश्वविद्यालय को दान कर इस देश और विश्व-विद्यालय का जो उपकार किया है, वह शब्दों द्वारा वर्णन नहीं

किया जा सकता। आप-जैसे दान-वीर महापुरुषों की अभ्यर्थना में जो कुछ त्रुटि रह गई हो, उसे, आशा है, आप क्षमा करेंगे।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"डॉक्टर साहब, मैं अक्सर लखनऊ के तकल्लुफ़ात के क़िस्से तो ज़रूर सुना करता था, परंतु उसे देखने का आज ही सौभाग्य प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालय को दान करके मैंने कोई देश या विश्वविद्यालय पर एहसान नहीं, बल्कि अपना एक कर्तव्य पालन किया है। आशा है, आप धन्यवाद के बोझ से मुझे संकुचित करने की कृपा न करेंगे। आप लोगों ने मेरे पुत्र भारतेंदु को जिस प्रकार शिक्षित बनाया है, उसका उपकार मैं आजन्म नहीं भूल सकता।"

डॉक्टर नीलकंठ एम्० ए०, डी० लिट्०, डीन ऑफ़् दी फ़ैकल्टी ऑफ़् आर्ट्स ने उत्तर में कहा—"भारतेंदु को मैंने वर्षों पढ़ाया है, इसका मुझे गर्व है। उसका-जैसा छात्र मैंने आज तक नहीं देखा। उसने अपनी बुद्धि की प्रखरता; अध्ययन और मनोयोग से हम लोगों को चकित कर रक्खा है। लक्ष्मी और सरस्वती का इतना अद्भुत सम्मिश्रण मुझे अन्यत्र देखने को नहीं मिला। भारतेंदु-जैसा सुशील और गुणवान् पुत्र बड़े भाग्य से मिलता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पुत्र की प्रशंसा से गद्गद होकर कहा—"यह सब आप लोगों की कृपा का फल है। सुदूर फ़िज़ी से मैंने उसे अपनी जन्म-भूमि में पढ़ने के लिये इसीलिये भेजा था, जिससे उसे अपने देश का ज्ञान हो जाय। यहाँ की संस्कृति, आचार-विचार, इतिहास, कला-कौशल का ज्ञान आप लोगों की कृपा से उसे प्राप्त हुआ है। अब इनके प्रति उसका प्रेम, भक्ति-आसक्ति होना ज़रूरी है, जो इतने दिनों के सहवास ने किसी अंश तक अवश्य ही उत्पन्न कर दी होगी। वह प्रतिभावान् व्यक्ति है, यह जानकर मुझे बहुत संतोष हुआ।"

डॉक्टर पीतांबरदत्त ने सोल्लास कहा—"उसकी प्रतिभा से गर्व केवल आपको नहीं, बल्कि विश्वविद्यालय को है, और शायद एक दिन भारतवर्ष को भी होगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न कंठ से कहा—"ईश्वर की कृपा से आपका आशीर्वाद पूर्ण हो। किस पिता को अपने पुत्र की कीर्ति से, उसकी प्रतिभा के विकास से गर्व नहीं होता? डॉक्टर साहब, मैं आप लोगों को पुनः हृदय से धन्यवाद देता हूँ!"

मुंशी कालीसहाय ने, जो पूरे लखनवी ठाट में थे, लखनवी अंदाज़ से हँसते हुए कहा—"जनाब पंडितजी, आप लखनवी तकल्लुफ़ की तो शिकायत करते हैं, लेकिन हज़रत भी उससे बिलकुल बईद नहीं।"

यह कहकर वह मीठी मुस्कान-सहित दाद मिलने की कामना से दूसरे व्यक्तियों की ओर देखने लगे। उनकी हँसी में दूसरे लोगों ने भी साथ दिया।

अजीमाबाद के राजा अनवरअलीख़ाँ ने सहास्य कहा—"मुंशीजी बहुत ही बजा फ़रमाते हैं। इसमें मुतलक़ शक नहीं कि लखनऊ की आब-हवा अपना असर उन पर भी बहुत जल्द डाल देती है, जो मादरे-हिंद से हज़ारों मील दूर जाकर आबाद और यहाँ की तह-ज़ीब से एकदम बेगाना हो गए हैं।"

राजा अनवरअलीख़ाँ की हँसी में सभी प्रमुख व्यक्तियों ने सहयोग किया।

पंडित मनमोहननाथ ने सहास्य कहा—"मैं आप लोगों का मतलब बिलकुल नहीं समझा। लखनवी तकल्लुफ़ तो लखनवी ख़रबूज़े की तरह बहुत जल्द अपना रंग दूसरे ख़रबूज़े पर डालकर उसकी असलियत बदल देता है। अगर लखनवी तहज़ीब की तारीफ़ में दो-एक लफ़्ज़ न कहे जाकर बिलकुल ख़मोश ही रहा जाय, तो बेशक एक तकल्लुफ़ाना बात होगी।"

डॉक्टर पीतांबरदत्त और नीलकंठ भी हँस पड़े, और दूसरे लोगों की हँसी से बैंड का मधुर स्वर फीका पड़ गया।

प्रसिद्ध व्यापारी जमसेदजी-हुरमसजी ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से कहा—"पंडितजी, आपके अध्यवसाय, व्यापारिक प्रतिभा और योग्यता के विषय में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा है। आपने केवल अपने परिश्रम और धैर्य से इतना धन पैदा किया है।"

पंडित मनमोहननाथ ने एक हलकी मुस्कान-सहित कहा—"आपको तो आश्चर्य न करना चाहिए, जब कि पारसी क़ौम आज-दिन भारत की अग्रगण्य व्यापारिक जातियों में है।"

जमसेदजी ने उत्तर दिया—"यह तो ठीक है, परंतु साधन की ओर भी तो हमें ध्यान देना चाहिए। आप यहाँ से एक मज़दूर की हैसियत में गए थे, और दस वर्ष तक मुआहिदे के मुताबिक़ आपको एक तरह की ग़ुलामी में ज़िंदगी बसर करनी पड़ी। बाद में आपने छोटी-सी दूकान खोली। उसी दूकान से आपने इतनी तरक़्क़ी की। बिलकुल साधन-हीन होकर आपने इस प्रकार उन्नति की, इससे आपकी व्यापारिक निपुणता और कुशलता का परिचय अच्छी तरह से मिलता है। इस विषय में जो कुछ आपकी तारीफ़ में कहा जाय, थोड़ा है।"

राजा अनवरअलीख़ाँ ने नेत्र विस्फारित करते हुए कहा—"बेशक, यह एक कमाल है।"

सेठ फूलचंद ने कहा—"अवश्य ही पंडितजी की व्यापारिक योग्यता अतुलनीय है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"लेकिन मारवाड़ी व्यापारियों की गणना तो संसार की व्यापारिक जातियों में है। व्यापारिक रहस्य का ज्ञान जितना उन्हें है, उतना भारतवर्ष में शायद ही किसी को होगा। मुझे ऐसे कई व्यक्ति मालूम हैं, जिन्होंने दो

रुपए की पूँजी से व्यापार शुरू किया, और आज दिन वे करोड़पति हैं।"

मुंशी कालीसहाय ने सिर हिलाते हुए कहा—"बेशक, आपका फ़रमाना बहुत ही दुरुस्त है। मारवाड़ी बनिए भी पैसा कमाना ख़ूब जानते हैं।"

इसी समय होटल के बटलर ने आकर सूचना दी कि भोजन तैयार है।

डॉक्टर पीतांबरदत्त ने भोजन करने की प्रार्थना की।

पंडित मनमोहननाथ ने उठते हुए कहा—"बेशक, पैसा कमाना मारवाड़ी जानते हैं। हम लोगों को वाजिब है कि उनसे यह शिक्षा ग्रहण करें। शायद आपको सुनकर कुछ आश्चर्य होगा कि इस विषय में मेरा गुरु एक मारवाड़ी है, जो मेरे ही साथ डीपोवालों के फेर में पड़कर, गुलाम होकर फ़िजी गया था। वह आजकल दक्षिणी अमेरिका में है, और 'रायो डी जेनोरियो' का मुख्य व्यापारी है। मेरी तरह वह भी कई खानों का मालिक है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"लक्ष्मी और सरस्वती किसी जाति और कुल से संबंध नहीं रखती। केवल भाग्य और उद्योग चाहिए।"

राजा अनवरअली ने कहा—"बिलकुल दुरुस्त है। क़िस्मत एक अजीबोग़रीब चीज़ है, जिसके साथ इंसान इस तरह बँधा हुआ है, जैसे चोली के साथ दामन।"

इसके बाद आमन्त्रित व्यक्तियों के साथ पं० मनमोहननाथ भोजन करने लगे। हँसी का फ़ौवारा बात-बात पर छूटने लगा।

---

६

पंडित मनमोहननाथ ने गंभीर स्वर में कहा—"हिंदू-समाज की वर्तमान अवस्था में अवश्य ही कुछ परिवर्तन करना होगा। बिना परिवर्तन के इसका भविष्य अंधकारमय है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर में कहा—"परिवर्तन तो जीवन का सत्य है। समय मनुष्य का सबसे बड़ा शिक्षक है। अब समय ऐसा आ गया है, जिससे हिंदू-समाज को संस्कृत करना अनिवार्य हो गया है। मैं आपसे इस विषय में बिलकुल सहमत हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जाति का बंधन हिंदू-समाज के लिये फाँसी का फंदा है, जब तक हम जाति-पाँति के झगड़े दूर कर हिंदू-समाज को एकवर्गी समाज नहीं बनावेंगे, तब तक हमारी उन्नति होना या संसार के राष्ट्रों के साथ बराबर चलना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। डॉक्टर साहब, मैंने विश्व-भ्रमण किया है; संसार का कोई ऐसा देश नहीं, जहाँ मैं न गया होऊँ। संसार की समस्त जातियों के साथ मैंने कुछ दिन बिताए हैं, और उनकी वास्तविक स्थिति समझने का प्रयत्न किया है, परंतु हिंदू-समाज की भाँति भाई-भाई के प्रति घृणा और तिरस्कार कहीं नहीं देखा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"बेशक, ऐसा भेद-भाव सिवा हिंदू-समाज में और कहीं भी देखने को न मिलेगा। वर्ण-व्यवस्था जिस समय स्थापित की गई थी, वह समय कुछ और था, और इसके कुछ और ही अर्थ थे, इसका कार्य भी कुछ दूसरा ही था, परंतु वह तो आज एक दूसरे रूप में यहाँ अपना अधिकार जमाए हुए है, जिसका नाश होना परमावश्यक है।"

डॉक्टर नीलकंठ के स्वर में आवेश था, और कुछ तीव्रता थी।

स्वामी गिरिजानंद, जो डॉक्टर नीलकंठ के धर्मगुरु थे, चुपचाप सुन रहे थे। डॉक्टर नीलकंठ ने उनकी ओर देखकर उनका अभिमत जानना चाहा।

वह धीमे, किंतु दृढ़ स्वर में बोले—"हिंदू-समाज में परिवर्तन होना आवश्यक है, यह मैं भी मानता हूँ, और यही समय भी माँगता है, परंतु वह परिवर्तन, जिसकी हम कामना करते हैं, कैसा होना चाहिए, यह एक जटिल प्रश्न है।"

पंडित मनमोहननाथ ने चमकते हुए नेत्रों से कहा—"मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि स्वामीजी भी परिवर्तनवादी हैं, और संतोष हुआ कि समय तक़ाज़ा आप लोग भी अनुभव करने लगे हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"स्वामीजी ने भी संसार-भ्रमण किया है, और विशेषकर अमेरिका में हिंदू-धर्मशास्त्र और वेदांत पर हज़ारों सभाओं में भाषण दिया है। इस विषय में आपको भी बड़ा अनुभव है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ क्षुब्ध होकर, जैसे कोई वीर किसी प्रतिद्वंद्वी को देखकर होता है, कुछ मलिन स्वर में कहा—"यह जानकर मुझे और आनंद हुआ कि स्वामीजी पुरानी रूढ़ि के स्वामियों या कुल-गुरुओं में नहीं, बल्कि एक संस्कृत विचार के धर्मोपदेशक हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने सहास्य कहा—"धन्यवाद! किंतु पंडितजी, मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मैं प्राचीनतम रूढ़ियों का भक्त हूँ। मैं प्राचीनता का उपासक और नवीनता का घोर शत्रु हूँ। मैंने अपनी स्थिति बिलकुल साफ़ कर दी, जिसमें आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहें।"

पंडित मनमोहननाथ ने चकित होकर कहा—"किंतु अभी-

अभी आपने स्वीकार किया है कि हिंदू-समाज में परिवर्तन होना आवश्यक है।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"बेशक, मैं अब भी यही कहता और स्वीकार करता हूँ। परिवर्तन तो जीवन का आधार है, सृष्टि का नियम है, ईश्वर की शक्ति है, और उस शक्ति का विकास है।"

पंडित मनमोहन विस्मित नेत्रों से स्वामीजी की ओर देखने लगे, और डॉक्टर नीलकंठ बड़े ही संतोष तथा प्रसन्नता के साथ मुस्किराने लगे, उस तरह, जैसे कोई दो पहलवानों की कुश्ती में अपने पहलवान के विजयी वीरों पर होता है।

पंडित मनमोहननाथ ने किंचित् क्षुब्ध कंठ से कहा—"स्वामीजी, यह तो कुछ विचित्र-सा देख पड़ता है। क्या विरोधाभास का नाम ही ऐक्य है?"

उनका स्वर व्यंग्य की झंकार से आवृत था।

स्वामीजी ने सहज मुस्कान-सहित कहा—"पंडितजी, रूढ़ि का उपासक संसार है। रूढ़ि का नाम है मनुष्यता। प्राचीन परिपाटी अथवा वैदिक काल की हिंदू-सभ्यता आर्यों के ऐश्वर्य-काल के अगणित अनुभवों का सार है। ब्रह्म की अनुभूति का सरलतम और सन्निकट मार्ग है। ब्राह्मण-काल की निरंकुशता का नाम प्राचीनता नहीं। वह युग भी समय के प्रभाव से कुछ परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित हो गया था, जैसा आप आजकल अपने वर्तमान हिंदू-समाज को बदलना चाहते हैं। परंतु मेरा कथन यह है कि अब जो परिवर्तन होना चाहिए, वह 'बैक टु दी क्लासिक्स' अथवा प्राचीन संस्कृति का पुनर्जीवित करने की ओर होना चाहिए। योरपियन राष्ट्रों का विकास 'रिनायसांस' या 'पुनर्जन्म' के पश्चात् ही हुआ है, इतिहास इसका साक्षी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"किंतु स्वामीजी, आजकल संसार की प्रगति समाजवाद या दूसरे शब्दों में रूस के बॉलशेविज़्म की ओर विशेषकर है, और समय की इस आवश्यकता को 'हिंदू-समाज का पुनजन्म' पूरा नहीं कर सकता। क्योंकि हिंदू-समाज राजाओं को ईश्वर का प्रतिनिधि करके मानता रहा है, और समाजवाद में राजा अथवा किसी व्यक्ति-विशेष के लिये कोई स्थान नहीं।"

स्वामीजी ने गंभीर स्वर में कहा—"पंडितजी, यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि 'समाजवाद' के नियमों का पूर्ण विकास हमारे हिंदू-समाज में हुआ है, और इसे जन्म देने का श्रेय इसी हिंदू-समाज या हिंदू-सभ्यता को है। ज़रा ग़ौर से देखिए, तो आपको मालूम होगा कि वैदिक काल की सभ्यता कोरे समाजवाद का उदाहरण है। राजा का स्थान तो बहुत पीछे निर्दिष्ट हुआ है, वह भी समय की आवश्यकतानुसार। जिस प्रकार समाजवाद में आप थोड़े-से मनुष्यों को चुनकर शासन की बागडोर उनके हाथों में सौंप देते हैं, उसी प्रकार हिंदू-समाज किसी एक मनुष्य को अपना नेता नियत करके शासन अधिकार उसके हाथ में सौंपता था। और, जैसे लोहार का लड़का लोहारी के काम की ओर विशेषतया आकृष्ट होता है, और सहज ही उसकी मानसिक प्रवृत्तियों का झुकाव उस ओर होता है, क्योंकि वह उस काम को अपने बाल्य-काल से देखता चला आता है, उसी प्रकार उसी व्यक्ति-विशेष का लड़का शासन के लिये विशेष उपयुक्त समझा जाता रहा, इसी-लिये राजाओं का उत्तराधिकारी उनका पुत्र ही समझा जाने लगा, और राजा होने का अधिकार प्रचलित हो गया, परंतु फिर भी प्रजा के इस अधिकार की अवहेलना कभी नहीं की गई। पुराणों और स्मृतियों में आपको सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे, जिनसे यह साफ़ हो जायगा कि राजा की सत्ता की नींव में प्रजा का ही मत होता

था। यह वर्ण-व्यवस्था भी उसी समाजवाद का उदाहरण है, जो समय के प्रभाव से ज़ंग लगकर खराब गया है, इस ज़ंग को साफ़ करना हमारा परम कर्तव्य है, और यही समय की माँग है, जिसे पूर्ण करना आवश्यक है।"

पंडित मनमोहननाथ ने सिर हिलाकर अपनी असम्मति प्रकट करते हुए कहा—"स्वामीजी, क्षमा कीजिएगा, मैं यह मानने के लिये बिलकुल तैयार नहीं। मैं तो यह समझता हूँ कि हिंदू-सभ्यता और हिंदू-धर्म तो शायद गुलामी सिखाने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। हिंदू-धर्म सिखाता है देवताओं की गुलामी, और हिंदू-सभ्यता सिखलाती है राजाओं की गुलामी। यदि हिंदू-सभ्यता को दासत्व सिखलाने की मशीन कहा जाय, तो शायद अतिशयोक्ति न होगी।"

स्वामीजी ने मुस्किराते हुए कहा—"किसी अंश में आधुनिक हिंदू-सभ्यता का यही रूप है, परंतु आदिम हिंदू-सभ्यता का यह रूप न था। उस समय हिंदू-समाज में राष्ट्रीयता का विकास ज्वलंत रूप में था। वेद-मंत्रों का ज़रा ध्यान पूर्वक देखिए, उनमें आपको सामूहिकता का रूप मिलेगा, वैयक्तिक रूप कभी न मिलेगा। वहाँ तो समाजवाद है। जो कुछ है, वह राष्ट्र का है, किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं, यही सोशलिज़्म है। राजा को राष्ट्रीयता का एक प्रतिनिधि-भर माना था, और कुछ नहीं। और, जो भक्ति उसकी ओर प्रदर्शित की गई थी, वह सिर्फ़ उसके राष्ट्रीय रूप की ओर—उसके वैयक्तिक रूप की ओर नहीं। अब रह गया गुलामी का प्रश्न, वह तो मानव-जाति की एक आदत-विशेष है। मनुष्य को कोई गुलामी नहीं सिखाता, वह तो गुलाम पैदा हुआ है, और अंत तक गुलाम ही रहेगा। हाँ, पोलिटिकल गुलामी बात दूसरी है, और चूँकि हमारा देश इस वक़्त गुलाम देश है, शायद आपका मतलब उसी से है।"

पंडित मनमोहननाथ ने सिर खुजलाते हुए कहा—"जी नहीं, गुलामी से मेरा मतलब है उस भाव से, जो हिंदू-सभ्यता सिखलाती है। मिसाल के लिये यही तफ़सील काफ़ी होगी कि राजा के कर्मों की आलोचना नहीं करना। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, इसलिये वह हमारी आलोचना से परे है, यह भाव तो हमारी हिंदू-सभ्यता सिखलाती है। गीता-जैसे ग्रंथ में भी, जिस पर हिंदू-समाज को नाज़ है, भगवान् कृष्ण ने अपनी विभूतियों में गिनाया है—'मनुष्यों में राजा मैं हूँ।' इससे साफ़ ज़ाहिर है कि ईश्वर का प्रतिरूप समझकर, हम आँख बंद कर उसका आदेश पालन करें, और अपने शरीर और ख़ून से उसका रंगमहल तैयार करें, जिसमें वह हमारी छाती पर अपने विलास की क्रीड़ा करे।" उनके स्वर में व्यंग्य का तिरस्कार था।

स्वामीजी ने सहज स्वर में उत्तर दिया—"राजाओं को ईश्वर का प्रतिनिधि इसलिये कहा है, जिसमें राष्ट्र का काम सुचारू रूप से हो। अगर सदैव तू-तू, मैं-मैं का झगड़ा लगा रहेगा, तो कोई भी काम सुचारू रूप से न होगा। बॉलशेविक गवर्नमेंट में भी शासन-सूत्र की अंतिम बागडोर या यों कहिए, अंतिम कार्यकारिणी शक्ति (Highest Executive Power) वहाँ के प्रेसिडेंट में निहित होती है, जिसे कभी-कभी निरंकुश होना पड़ता है। शासन करने में निरंकुशता और कभी-कभी पाशविक बल-प्रयोग करना ही पड़ता है, जो अन्याय ही समझा जायगा, परंतु फिर भी वैध होगा। यह क्यों? इसलिये कि उसमें जनता की सहानुभूति होती है। जनवाद में भी एक मनुष्य के प्रति गुलामी दिखलाना पड़ता है, और उसका हुक्म आँख बंद कर मानना पड़ता है।"

इसी समय डॉक्टर नीलकंठ की एकमात्र संतान आभा ने प्रवेश किया, और कहा—"पापा, चाय तैयार है, क्या यहीं ले आऊँ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, यहीं ले आओ।"

फिर पंडित मनमोहननाथ की ओर देखकर कहा—"यह मेरी एकमात्र संतान आभा है।" फिर आभा से कहा—"तुम्हारे सहपाठी भारतेंदु के पिता पंडित मनमोहननाथजी हैं।"

आभा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। आभा कमरे के बाहर हो गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने मृदु स्वर में कहा—"अब इस विषय में कभी फिर बात करेंगे, अब चाय पी ली जाय।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, फिर कभी बात होगी। मैं देखता हूँ, स्वामीजी के विचारों से मैं कभी सहमत नहीं हो सकता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराकर कहा—"आप धीरे-धीरे सहमत होंगे।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"बहुत दिनों में, अभी नहीं। हिंदू-समाज का वर्तमान रूप इतना विकृत है कि उसके प्रति हम लोगों की कोई सहानुभूति नहीं रह गई। पश्चिमीय प्रकाश की चकाचौंध हमें उसका असली रूप दिखलाने में असमर्थ है। हमें अपने समाज का निर्माण इसी प्रकार करना चाहिए, जिसमें हम उन गर्तों में न गिरें, जिनमें पश्चिमीय राष्ट्र गिर रहे हैं। हमें अपने देश-काल की परिस्थिति के अनुसार उतना ही बदलना चाहिए, जितना आवश्यक हो। नियमों के बिना कोई भी समाज या उसके शासन का सूत्र टिकाऊ नहीं हो सकता, और न उसके प्रति के विश्वास को हम गुलामी कह सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि हम कभी यह न भूलें कि हम भारतीय हैं, और हमारा समाज जो भी बनेगा, वह शुद्ध भारतीय होगा, जहाँ किसी के स्वत्वों की अवहेलना न की जाय। दूसरे शब्दों में हमारे लिये पश्चिमीय आचार-विचार

ज्यों-के-त्यों अनुकूल या हितकर न होंगे, वरन् हमारे मूल सिद्धांत ही उपयुक्त हैं।"

नौकर चाय का 'ट्रे' लेकर आया, और उसके साथ-साथ आभा भी उसी कमरे में आई। डॉक्टर नीलकंठ ने उसे चाय बनाने का आदेश दिया। आभा सहास्य अपने काम में निरत हो गई। पंडित मनमोहननाथ चुपचाप चाय पीने लगे।

---

७

पंडित मनमोहननाथ की घनिष्टता डॉक्टर नीलकंठ के परिवार के साथ बढ़ती गई। उनके साथ भारतेंदु का भी विशेषकर आना-जाना शुरू हो गया। यद्यपि आभा और भारतेंदु दोनो सहपाठी थे, परंतु दोनो में कोई विशेष घनिष्ठता न थी। आभा एम्० ए० उत्तीर्ण होने के बाद कॉलेज से अपना संबंध विच्छेद कर चुकी थी, परंतु भारतेंदु 'डॉक्टरेट' के लिये कोशिश कर रहे थे। डॉक्टर नीलकंठ की उन पर विशेष कृपा थी, इसलिये कभी-कभी तीन-चार महीने में एक-आध बार उनके यहाँ हो आते थे। उस समय कभी आभा अपने घर पर होती, और कभी न होती। अगर वह घर पर होती, तो सिवा नमस्कार के कुछ विशेष बातचीत न होती थी। आभा मन-ही-मन उनकी ओर देखकर कहती—विचित्र युवक है। और, भारतेंदु के हृदय में क्या भाव पैदा होता था, वही जानें।

एक दिन डॉक्टर नीलकंठ ने आभा से कहा—"देखो, भारतेंदु जब आया करे, तो उसका उचित रूप से आदर किया करो। हालाँकि तुम दोनो सहपाठी रहे, किंतु फिर भी तुम लोगों में कोई घनिष्ठता नहीं।"

आभा ने कुछ उत्तर न दिया। वह सुनकर दूसरे कमरे में चली गई। डॉक्टर नीलकंठ भी दूसरे काम में लग गए।

उसी दिन दोपहर को भारतेंदु डॉक्टर साहब से मिलने के लिये आए। एक खद्दर का कुर्ता बदन पर था, और धोती भी मोटे खद्दर की थी। पैरों में साधारण चप्पलें थीं। सिर बिलकुल नंगा था।

डॉक्टर नीलकंठ ने उनकी ओर आश्चर्य के साथ देखकर कहा—"आज असमय कैसे भारतेंदु? कुशल तो है?"

भारतेंदु ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"जी हाँ, सब कुशल है। पिताजी का इरादा कल ही फ़िज़ी वापस जाने का है, इसलिये आपको बुलाया है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने साश्चर्य कहा—"कल ही वापस जायँगे? इस विषय में अभी तक तो कोई बातचीत नहीं की। ऐसी जल्दी जाने का क्या कारण है?"

भारतेंदु ने सिर झुकाए हुए कहा—"आज सुबह फ़िज़ी से तार आया है, जिसमें उनको शीघ्र चले आने को लिखा है। शायद वहाँ से दक्षिणी अमेरिका जायँगे, क्योंकि वहाँ सोने की खानों में कुछ गड़बड़ी हो गई है। अतएव वह कल ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे। आपको तुरंत ही बुलाया है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"यह तो बड़ी खेद-जनक बात है। युनिवर्सिटी की विशेष बैठक में यह निश्चित हुआ है कि पंडित मनमोहननाथजी को ऑनरेरी डॉक्टर की उपाधि दी जाय, और अब वह जा रहे हैं। हमारा सब प्रोग्राम बिगड़ जायगा।"

इसी समय आभा ने उस कमरे में आकर पूछा—"कौन जा रहा है पापा?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कपड़े पहनते हुए कहा—"भारतेंदु के पिताजी फ़िज़ी वापस जा रहे हैं। आज कोई तार आया है, इस सबब से उन्हें शीघ्र ही जाना पड़ रहा है।"

आभा ने दूसरी ओर देखते हुए कहा—"मेरी इच्छा है, मैं भी उनके साथ चली जाऊँ, और, थोड़ा-सा भ्रमण कर आऊँ। बेकार बैठे-बैठे मन नहीं लगता।"

डॉक्टर नीलकंठ का हाथ कोट की आस्तीन में वैसा ही अटका

हुआ रह गया। उन्होंने साश्चर्य कहा—पगली, तू कहाँ जायगी? वह अपने काम से जा रहे हैं। तुझे लेकर कहाँ जायँगे?"

भारतेंदु ने मुस्किराते हुए कहा—"हर्ज क्या है, जहाज़ तो अपना है, कोई क़िराया पड़ेगा नहीं, और पिताजी के साथ जाने में विशेष सुविधा रहेगी।"

डॉक्टर नीलकंठ मुस्किराने लगे। उन्होंने भारतेंदु से कहा—"तुम यहीं बैठो, मैं अभी तुम्हारे पिताजी को लेकर वापस आता हूँ, तब तक तुम और आभा मेरी किताब का प्रूफ़ देख डालो।" यह कहकर वह कमरे के बाहर हो गए।

भारतेंदु ने आभा की ओर देखा, और आभा ने उनकी ओर। दोनो के नेत्र नत हो गए। न-जाने क्यों दोनो का हृदय धड़कने और मुख लाल होने लगा। उन दोनो के जीवन में यह पहला अवसर था, जब वे दोनो इस तरह एकांत में मिले थे।

भारतेंदु ने उठते हुए कहा—"मैं अब जाऊँगा।"

आभा ने कोई उत्तर नहीं दिया। भारतेंदु उठकर जाने लगे। धीरे-धीरे वह कमरे के बाहर हो गए।

दूसरे ही क्षण आभा ने कमरे के दरवाज़े के पास आकर कहा—"पान तो खा लीजिए, विना पान खाए क्या चले जायँगे?"

भारतेंदु ने ठहरकर, पीछे फिरकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"यह तो आपको मालूम है कि मैं पान नहीं खाता।"

आभा तुरंत सकुचा गई। उसे याद आया कि वास्तव में उसने कभी भारतेंदु को पान खाते नहीं देखा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

भारतेंदु कुछ देर ठहरकर फिर जाने लगे। बँगले के बाहर उद्यान में सुर्ख़ी की रविश में धीमी-धीमी चाल से जाने लगे।

आभा ने कुछ क्षण तक उनकी ओर देखा, फिर अभिमान से सिर घुमाकर कमरे में वापस चली आई। वह एक चित्र की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में आहत अभिमान की बूँदें भरी हुई थीं। इस तरह उनका अपमान आज तक किसी ने नहीं किया था। वह उसी कुरसी पर आकर बैठ गई, जिस पर कुछ मिनट पहले भारतेंदु बैठे हुए थे। उसने देखा, उस पर एक रूमाल पड़ा हुआ है। उसने उसे उठा लिया। देखा, एक कोने पर हरे और बैंगनी रेशमी डोरे से कढ़ा हुआ है—'मालती'।

उस नाम के पढ़ते ही वह सिहर उठी। उसने दूसरे ही क्षण उस रूमाल को छोड़ दिया, जैसे किसी बिच्छू ने डंक मारा हो। वह तिल-मिला उठी। उसके हृदय ने तुरंत प्रश्न किया—यह मालती कौन है?

मन ने कहा—मालती तो उसकी एक सहपाठिनी का नाम है, जो उसकी अभिन्न हृदया सखी है। सर रामकृष्ण की पुत्री है, जिसका अभी हाल ही में विवाह हुआ है। क्या यह वही मालती है, या यह मालती कोई दूसरी है?

उसने वह रूमाल पुनः उठा लिया, और इस बार ग़ौर से उन अक्षरों की ओर देखने लगी—इतनी तीक्ष्णता से, मानो वह उनके साथ-साथ 'मालती' की आकृति भी देख लेगी। परंतु सिवा इन तीन अक्षरों के और अधिक कुछ न था।

रूमाल देख लेने के बाद उसने उसे अपने पास रख लिया। वह क्षुब्ध होकर फिर एक चित्र की ओर देखने लगी। उसमें भी उसका मन नहीं लगा। दूसरे ही क्षण वह अपने कमरे में चली गई। चारो ओर के दरवाज़े बंद करने लगी।

इसी समय उसकी धाय, जिसने उसका पालन-पोषण किया था, दरवाज़ों की भड़भड़ाहट सुनकर भागी हुई आई, और पूछा—क्यों, क्या बात है रानी?'

आभा की मा उसके बाल्यकाल में मर चुकी थी। उस समय यही नौकरानी, जिसका नाम गंगा था, उसको बड़ी प्रिय पात्र थी। आभा की मा उसे उसी के हाथ में सौंप गई थी, और गंगा ने उसी विश्वास के साथ उसका पालन-पोषण किया था। डॉक्टर नीलकंठ ने दूसरा विवाह नहीं किया। हाँ, यह ज़रूर हुआ कि आभा की मा के मरने के बाद वह अपनी पुस्तकों में विशेष लीन हो गए, और गंगा को आभा को सँभालते देख उस ओर से बिलकुल निश्चिंत हो गए। गंगा के हाथ में उस परिवार की देख-रेख का भार आ गया, जिसे वह ईमानदारी के साथ वहन करने लगी। वह आभा को 'रानी' कहकर पुकारती थी, हालाँकि डॉक्टर नीलकंठ उसे आभा ही कहते थे।

आभा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उसी वेग से दरवाज़े बंद कर रही थी।

गंगा ने पुनः पूछा—"क्यों रानी, आज क्या हुआ, जो ... ..."

आभा ने बड़े तीव्र स्वर में कहा—"तुम्हें यहाँ किसने पंचायत के लिये बुलाया था। जाओ, अपना काम करो।"

गंगा ने देखा, आज रंग बेढब है। उसने कनखियों से अपने प्यार की रानी की ओर देखा, उसके नेत्र घुचघुचाए हुए हैं, और चेहरा लाल है। उसे कुछ अधिक बोलने का साहस नहीं हुआ। वह कमरे के बाहर हो गई। आभा ने उसके बाहर निकलते ही वह दरवाज़ा भी बंद कर दिया, और पलँग पर लेट गई। आहत अभिमान के आँसू, जो अभी तक किसी भाँति छिपे हुए थे, बंधन तोड़कर, बाहर निकलकर तकिए को भिगोने लगे।

---

## ८

आभा सोचने लगी—"वह मेरे कौन हैं। कोई नहीं। फिर उनके लिये इतनी उतावली क्यों होती हूँ, मैं स्वयं नहीं जानती। मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं, फिर मेरा अपमान कैसे हुआ। अजनबी से शिष्टाचार की आशा करना केवल मूर्खता है। मेरे प्रति उन्होंने क्या अन्याय किया—कुछ भी तो नहीं। वह मेरे साथ दो साल तक पढ़े हैं, लेकिन दो वर्षों में एक दिन भी किसी तरह की बातचीत नहीं हुई। नमस्कार भी कभी-कभी, वह भी ज़बरदस्ती ही, हुआ है। यदि कभी वह पापा के पास आए, तो नमस्कार के अतिरिक्त हम दोनो में कोई आलाप नहीं हुआ। उन्होंने कभी यह भी नहीं पूछा कि पढ़ाई कैसी होती है। फिर उनसे क्या प्रत्याशा की जाय।

"वह देखने में कितने सुंदर, कितने सीधे और कितने उच्च हैं। उनकी प्रतिभा के सब क़ायल हैं। युनिवर्सिटी का रिकार्ड बीट किया है। पापा तो उन पर मुग्ध ही हैं, फिर भी कितने निरभिमान हैं। सबके प्रति वही सम्मान है, वही आदर है, और वही शिष्टता है। वह सर्वदा प्रसन्न-चित्त रहते हैं, और हँसी तो उनके मुख पर सदैव नृत्य किया करती है। वह कितने महान् हैं, कितने उच्च हैं, फिर भी मैं कहती हूँ कि उन्होंने मेरा अपमान किया है, और उसी के कारण आज मैं इतनी व्याकुल हूँ।

"उनके पिता करोड़पति हैं। कौन जाने, उनके पास कितना धन है। उन्होंने इस देश में आने के बाद अब तक पचास लाख रुपयों का दान किया है, अनेक संस्थाओं को जीवन प्रदान किया है।

दो-तीन सोने की खानों के मालिक हैं, कोयले और [illegible] की खानों पर भी अधिकार है । वह भी कितने सादे हैं, कितने सरल हैं, अभिमान छू तक नहीं गया। उन्होंने यह वैभव केवल अपने बुद्धि-बल और परिश्रम से उपार्जन किया है। वह इस देश से [illegible] होकर गए थे, और लौटे हैं करोड़पति या अरबपति होकर। कितने भाग्यशाली पुरुष हैं। वैसा ही इनका पुत्र भी तो है। वही सरलता, वही महत्ता, वही प्रतिभा, वही सहनशीलता और वही रसता है। फिर भी उन्होंने मेरा अपमान किया है। मैं उन्हें बुलाती रही, उन्हें बुलाने के लिये दौड़ी गई, लेकिन वह वापस नहीं आए, और चले गए।

"मैं मानती हूँ, वह शर्मीले स्वभाव के हैं। आज तक मैंने उन्हें किसी लड़की से बात करते या उसकी ओर ताकते नहीं देखा। मैंने उन्हें सदैव अपने काम में निरत देखा। समय का एक क्षण भी नष्ट न करना, यह तो एक आश्चर्य की बात है। वह सदैव कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते हैं। पापा उनकी बहुज्ञता की कई बार मुक्त कंठ से प्रशंसा कर चुके हैं। उन्हें प्रत्येक विषय में चामत्कारिक ज्ञान है। ऐसा प्रतिभाशाली युवक देखने में नहीं आया। मैं उनके विषय में क्या कहूँ, और कितना कहूँ, मैं स्वयं नहीं जानती।

"अच्छा, यह मालती कौन है, मालती से उनका क्या संबंध है। उनका कब से परिचय है? मालती क्या मुझसे भी अधिक रूप-वान् है। इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे? वह दे सकते हैं, लेकिन उनसे पूछे कौन। और, क्या पूछने पर बता भी देंगे। मैं उनसे क्यों पूछूँ। वह मेरे कौन हैं, कोई नहीं। मुझे क्या अधिकार है कि मैं उनके 'प्राइवेट' जीवन के संबंध में कोई बात पूछूँ। अच्छा, मैं इतनी उद्विग्न क्यों होती हूँ। यह मेरी मूर्खता है। इससे बढ़कर शेख-चिल्लीपना और क्या होगा। अगर मैं किसी से कहूँ कि वह मेरी

अवहेलना, नहीं, तिरस्कार करके चले गए, और मैं उस ग़म से रोती रही, तो मेरी कितनी हँसाई होगी। मैं मूर्ख ही नहीं, वरन् महामूर्ख क़रार दी जाऊँगी।

"आय-मा ने सब व्यापार देखा है, उसने मेरी आँखों में आँसू भी देखे हैं, मेरा बौखलाना भी देखा है। उसने अपने मन में क्या ख़याल किया होगा। वह मेरे पास आई ही क्यों थी। उसे किसने बुलाया था। वह सत्तर बरस की बुढ़िया हो गई है, फिर क्यों मेरे पीछे-पीछे घूमती है। एकांत में बैठकर राम-राम क्यों नहीं करती। मेरे लिये क्यों इतना परेशान रहती है। वह मेरी कौन है। मेरी नौकर है। मेरी मा की दासी है, जो उनके साथ-साथ आई थी, और उनके मर जाने के बाद मेरी देख-रेख की। वह कहती है, उसने अपना दूध पिलाकर बड़ा किया है, मुझे मरते-मरते बचाया है। बचाया होगा। वह छाया की तरह मेरे पीछे-पीछे क्यों लगी रहती है। उसने मुझे रोते हुए क्यों देखा। मैं उसे काशी भेज दूँगी। अपने पास नहीं रक्खूँगी। मैं अपना पहरेदार नहीं रखना चाहती। अब मैं बड़ी हो गई हूँ, एम्० ए० पास हो गई हूँ, क्या अपनी देख-रेख स्वयं नहीं कर सकती। मुझे उसकी सहायता की आवश्यकता नहीं। मैं कल ही उसे बिदा कर दूँगी। उसने मुझे रोते देखा है, उसे मेरी कमज़ोरी मालूम हो गई। मैं अब कैसे उसे मुँह दिखाऊँगी। जब वह मेरे पास बैठकर स्नेह से मेरी पीठ पर हाथ फेरेगी, और मेरे रोने का कारण पूछेगी, तो मैं क्या उत्तर दूँगी। मैं उसके मुँह पर तमाचा रसीद करूँगी। वह पूछना भूल जायगी।

"वह बुढ़िया पूछेगी ज़रूर, और मैं उससे कुछ भी छिपा नहीं सकती। न-मालूम उसमें कौन-सा जादू है, जो मुझे उसका ऐसा ग़ुलाम बनाए हुए है। मुझे सब हाल कहना पड़ेगा। मुझे अपने ऊपर ज़रा भी विश्वास नहीं। उसकी मीठी-मीठी बातों के सामने

बिलकुल लाचार हो जाती हूँ, उसके स्नेह के आगे मेरा सिर अपने आप झुक जाता है। वह भी कितनी सरल है, कितनी स्नेहमय है। मेरे विना वह एक पल भी जीवित नहीं रह सकती। मेरे प्रति उसका अगाध स्नेह है। शायद मेरी मा भी मुझे उतना नहीं चाहती थी, जितना वह चाहती है। किंतु मैं उससे आज के अपमान के बारे में कुछ नहीं कहूँगी। अगर वह पूछेगी भी, तो चुप रहूँगी।

"तो क्या सचमुच उन्होंने मेरा अपमान किया है। क्या यह जान-बूझकर किया है। या अनजाने। उन्होंने जान-बूझकर मेरा तिरस्कार किया है। पापा जब उनसे किताब का प्रूफ देखने को कह गए थे, तब उन्हें बैठना तो उचित था। प्रूफ न देखते, लेकिन बैठते तो। मगर उनका मिज़ाज तो देखो, ज़रा देर भी न बैठे। उधर पापा गए और इधर वह भी चल दिए। मैं दौड़कर उन्हें बुलाने गई, लेकिन फिर भी लौटकर न आए। क्यों आएँ, वह तो मालती के यहाँ गए होंगे। मालती उनकी प्रतीक्षा में बैठी होगी, फिर मेरे पास बैठकर अपना अमूल्य समय क्यों नष्ट करें। मैं उनकी कौन हूँ, जो मेरा अनुरोध मानें।

"मैं अब उनके बारे में न सोचूँगी, और न कभी उनसे कोई बात ही करूँगी। अब तक कौन बातें करती थी, जो अब करूँगी। बस, इतना ही काफ़ी है। मैं उन्हें नहीं जानती, और वह मुझे नहीं जानते। बस, इससे अधिक घनिष्ठता बढ़ाना अच्छा नहीं। उन्हें अपनी विद्या, अपनी प्रतिभा, अपने ऐश्वर्य का अभिमान है। उनके सामने मैं भी नत नहीं होने की। मैं भी उनसे किसी भाँति हीन नहीं हूँ, उनसे क्षुद्र नहीं हूँ, जो उनके गले पड़ूँ। मगर कुछ फ़र्क़ है, तो बस इतना कि उनके पिता करोड़पति हैं। होने दो। इससे मेरी हानि और मेरा लाभ क्या है। कुछ नहीं। फिर मैं क्यों आकुल होऊँ। कह दिया, अब न होऊँगी।

"अच्छा, यह मालती कौन है। सर रामकृष्ण की लड़की और मेरी सखी का नाम मालती है। परंतु उसका तो इसी वर्ष विवाह हो गया है। वह आजकल अपनी ससुराल में है। फिर यह मालती कौन है। एक बार पूछूँ भी। भला, देखूँ तो, वह कितनी सुंदर है।"

इसी समय उसके कमरे का दरवाज़ा किसी ने बाहर से खटखटाया।

आभा की विचार-धारा टूट गई। वह सिर उठाकर द्वार की ओर देखने लगी। फिर संयत होकर गले को साफ़ करके पूछा—"कौन है?"

द्वार खटखटानेवाली गंगा थी। लेकिन उसने कोई उत्तर न दिया। उसने दुबारा किवाड़ों पर थपकियाँ दीं।

आभा ने किंचित् तीव्र स्वर से पूछा—"कौन है? मैं नाम पूछती हूँ। जवाब दो।"

गंगा ने देखा, बिना उत्तर दिए द्वार न खुलेंगे, इसलिये धीमे कंठ से कहा—"मैं हूँ, तुम्हारी धाय-मा। रानी, दरवाज़ा खोलो।"

आभा ने सक्रोध कहा—"मैं नहीं खोलूँगी, जाओ। कह दिया, मुझे छेड़ो नहीं। बस, कह दिया, जाओ।"

गंगा ने स्नेह-प्लावित मृदुल स्वर में कहा—"रानो, तेरी तबीयत कैसी है? कुछ ख़राब तो नहीं हो गई? क्या डॉक्टर को बुला भेजूँ?"

आभा ने चिल्लाकर कहा—"कह दिया, तुम जाओ। मेरी तबीयत ख़राब नहीं, लेकिन अगर तुम बहुत छेड़-छाड़ करोगी, तो ख़राब हो जायगी।"

गंगा ने मृदुल स्वर में कहा—"अच्छा, मैं जाती हूँ। बाहर कोई बैठा हुआ तुम्हारी बाट जोह रहा है, उससे क्या कह दूँ?"

गंगा के स्वर में तरल हास्य छिपा हुआ था।

आभा ने उत्कंठा के साथ पूछा—"कौन है?"

गंगा ने जाते हुए उत्तर दिया—"मैं नहीं जानती। तुम्हें ग़रज़ हो, तो जाओ, देख आओ।" कहकर वह मुस्किराती हुई चली गई।"

आभा ने खीझकर कहा—"मैं नहीं जाती, मैं किसी की नौकर नहीं हूँ, जो दौड़ी जाऊँ।"

आभा चुपचाप लेटी रही। लेकिन मन फिर नहीं माना। कौन हैं, यह जानने के लिये उसका मन उद्विग्न हो उठा। वह हारकर उठी, और मुँह धोकर धीरे-धीरे कमरे के बाहर आई। गंगा का कहीं पता न था। वह दबे पैरों ड्राइंग-रूम की ओर गई। वहाँ किसी को न पाकर कुछ झुँझलाती हुई डॉक्टर नीलकंठ के कमरे की ओर चली गई।

---

## ६

आभा अपने पिता के कमरे के सामने आकर ठिठक गई। भीतर भारतेंदु अत्यंत मनोयोग के साथ प्रूफ़ देखने में संलग्न थे। आभा निःशब्द आई थी, परंतु फिर भी भारतेंदु की दृष्टि अनायास उसकी ओर हो गई। दोनो की आँखें चार हुईं, और भारतेंदु कुछ मुस्कि-राती हुई दृष्टि से आदर के साथ उठ खड़े हुए। आभा का क्रोध जाग पड़ा। वह पीछे लौट पड़ी।

भारतेंदु ने सहास्य कहा—"क्षमा कीजिएगा, मेरे आने से आपको कष्ट हुआ। यहाँ से जाते-जाते मुझे याद आया कि डॉक्टर साहब प्रूफ़ देखने का आदेश दे गए हैं, इसलिये....." इसके आगे आभा ने कुछ नहीं सुना। वह तेज़ी के साथ अपने कमरे की ओर चली गई।

भारतेंदु ने मुस्किराकर स्वगत कहा—"नाराज़ हो गई।"

उन्होंने आभा के कमरे के पास आकर कहा—"क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?"

आभा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"नहीं, मुझे अभी अवकाश नहीं।"

भारतेंदु वहीं खड़े रहे। भीतर जाने का साहस नहीं हुआ।

आभा ने दरवाज़े की दराज़ से देखा, वह चुपचाप सिर झुकाए खड़े हैं। उनके क्रोध का उफान धीरे-धीरे शांत हो रहा था। उसने दरवाज़ा खोलते हुए कहा—"बोलिए, क्या काम है? मेरे पास थोड़ा ही वक्त है, जो कुछ कहना हो, जल्दी कहिए।"

भारतेंदु को कोई उत्तर न सूझ पड़ा। वह चुपचाप वैसे ही खड़े रहे।

आभा ने किंचित् रुक्ष स्वर में कहा—"चुपचाप क्यों हैं, आप क्या कहना चाहते हैं?"

भारतेंदु ने नत-दृष्टि से कहा—"मैं आपसे क्षमा माँगने के लिये आया हूँ।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"मुझसे किस बात की क्षमा चाहते हैं? आपने मेरा कोई अपराध नहीं किया। न मुझे स्मरण होता है कि आपने कभी कोई अपराध किया है।"

भारतेंदु ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"अपराधी को अपना अपराध हमेशा ज्ञात रहता है। जिसका अपराध किया हो, वह चाहे भले ही उसे न जानता हो।"

आभा ने मुस्किराती हुई आँखों से कहा—"अच्छा, अब आप ही अपना अपराध बतलाएँ। अपने ही कथनानुसार आपको अपना अपराध तो अवश्य ही मालूम होगा।"

भारतेंदु ने कहा—"मैंने आपका तिरस्कार किया है।"

आभा ने साश्चर्य कहा—"तिरस्कार, मेरा तिरस्कार! मैं तो नहीं जानती।"

भारतेंदु ने कहा—"आपका हृदय विशाल है, आप नहीं जान सकतीं, परंतु मैं तो जानता हूँ।"

आभा ने मन-ही-मन संतुष्ट होते हुए कहा—"अच्छा, भीतर तशरीफ़ ले चलें। आपकी बातचीत से मेरी उत्सुकता जाग रही है। चलिए, अब थोड़ा-सा समय नष्ट करना ही पड़ेगा।"

भारतेंदु आभा के पीछे आकर एक कुरसी पर बैठ गए।

आभा ने दूसरी कुरसी पर बैठते हुए कहा—"हाँ, अब आप कहिए। आपने मेरा कौन-सा अपराध किया है?"

भारतेंदु उस कमरे में लगे हुए एक स्त्री के तैल-चित्र की ओर देखने लगे।

आभा ने मृदु हास्य-सहित कहा—"यह चित्र मेरी मा का है।"

भारतेंदु ने यह सुनकर उस चित्र को प्रणाम किया। आभा का मन कुछ शीतल हुआ।

भारतेंदु ने कहा—"इस चित्र से ममत्व और स्नेह की धार बह रही है। आपकी मा हैं, तो क्या मैं भी इन्हें अपनी मा कहकर पुकार सकता हूँ?"

भारतेंदु का कंठ अवरुद्ध हो गया, और आभा के हृदय की मलीनता दुह गई।

भारतेंदु ने कहा—"मुझे अपनी मा का स्मरण नहीं। उनका कोई चित्र भी मेरे पास नहीं। मैं नहीं जानता, वह कैसी थीं। पिताजी से सुना है, वह दया, ममत्व और क्षमा का अवतार थीं। उन्होंने मेरे पिता के साथ बहुत ही ग़रीबी में दिन काटे थे। उस समय वह मज़दूर थे। दिन-भर की मज़दूरी के बाद तीन-चार आने मिलते थे, उसी में दोनो ज़िंदगी बसर करते रहे। इसके बाद जब पिताजी शर्तबंदी से मुक्त होकर स्वतंत्र नागरिक हुए, तो उन्होंने उस मज़दूरी के बचे हुए धन से एक मारवाड़ी के साझे में दूकान खोल ली। किसी तरह दिन व्यतीत होने लगे। कुछ साल बाद उन्होंने बर्मा आकर, थोड़ी-सी ज़मीन लेकर मिट्टी के तेल का कुआँ खोदा। भगवान् सदय हुआ, और व्यापार चमकने लगा। इसके बाद उन्होंने रूपीलैंड में कुछ ज़मीन ली, और वहाँ उन्हें एक अच्छी माणिक की खान मिल गई। इसी वर्ष मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म के दो वर्ष बाद वह मर गईं। मैंने उन्हें अपने होश-हवास में नहीं देखा, और न उनकी याद है। पिताजी ने इसके बाद संसार के सब भोग छोड़ दिए, परंतु व्यापार नहीं छोड़ा। वह अक्सर कहा करते कि जब दुःख के दिन थे, तब तो वह ज़िंदा रहीं, लेकिन सुख के दिन आने पर चली गईं, तब मैं ही अकेले कैसे

सुख भोग करूँ। वह मेरी मा के बारे में बातें करते - करते कभी थकते नहीं। अपनी मा को हालाँकि शरीर देखने को ख़याल तो नहा है, परंतु कल्पना में उन्हें हमेशा ही देखा करता हूँ।"

आभा मंत्र-मुग्ध होकर सुन रही थी। उसने सहानुभूति के साथ कहा—"अब दुख करने से क्या फ़ायदा?" भारतेंदु ने उस चित्र को पुनः प्रणाम किया।

आभा ने कहा—"सचमुच मा का स्नेह अनुपम है। मैं भी उसका स्वाद नहीं जानती, परंतु उसका कुछ-कुछ आभास धाय-मा के अटूट स्नेह से मिलता है। जब मैं दो बरस की थी, तभी मेरी मा मुझे इसी धाय-मा के हाथ में सौंपकर मर गई थीं। धाय-मा ने एक दिन भी मा का अभाव ज़ाहिर नहीं होने दिया। वह इस समय वृद्ध हैं, परंतु मेरे लिये वृद्ध नहीं। मैं तो मा के रूप में उन्हें ही जानती हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि जब तक ज़िंदा रहूँ, तब तक वह भी जीवित रहें।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"आपका यह सौभाग्य सदा रहे, यही मेरी भी प्रार्थना है।"

आभा ने बातों का सिलसिला बदलते हुए कहा—"अरे, यह तो बतलाया ही नहीं कि आपने मेरा कौन-सा अपराध किया है। बातों-ही-बातों में टाल दिया।"

भारतेंदु ने सिर झुकाकर कहा—"क्या वास्तव में आपको नहीं मालूम?"

आभा ने हँसी दबाते हुए कहा—"जी नहीं, मुझे नहीं मालूम।"

भारतेंदु के गाल लाल हो गए, उन्होंने कहा—"आपकी अव-हेलना की है, इसलिये क्षमा माँगता हूँ।"

आभा मन-ही-मन संतुष्ट तो हुई, परंतु उसने यह भाव प्रकाशित नहीं किया। भ्रू कुंचित करके कहा—"इसमें कौन-सा अपराध,

आपको कहीं ज़रूरी काम से जाना होगा, इसलिये न ठहरे होंगे। मुझे तो इसका कोई सोच नहीं, और न इससे कोई कष्ट ही हुआ। मैं नहीं जानती कि आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

भारतेंदु ने ससंकोच कहा—"ऐसा मेरा अनुमान था। आपको कुछ कष्ट नहीं हुआ, यह जानकर मेरे मन का क्षोभ तो ज़रूर नष्ट हो गया, परंतु मेरा व्यवहार तो किसी तरह संतोष-जनक या भद्र नहीं था, इसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

आभा ने गंभीरता के साथ कहा—"मुझे तो इसमें कोई अभद्रता नहीं देख पड़ती। आप अपने समय के स्वामी हैं, मनचाहा करने के लिये स्वतंत्र हैं, तब फिर क्यों आप व्यर्थ क्षमा माँगकर अपने को नीचे गिराते हैं ?"

उसके स्वर में व्यंग्य की खनखनाहट थी।

भारतेंदु ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाए हुए बैठे रहे।

आभा ने कहा—"अच्छा, क्षमा पीछे माँगिएगा; यह तो बत-लाइए, मालतीजी कौन हैं ?"

उसकी आँखों से शरारत झाँकने लगी।

भारतेंदु सुनकर कुछ चौंके, फिर कहा—"मैं नहीं जानता, मालतीजी कौन हैं। हाँ, याद आया, वह तो हम लोगों के साथ ही पढ़ती थीं। सर रामकृष्ण की पुत्री हैं। उनकी तो आपके साथ घनिष्ठ मित्रता थी, क्योंकि मैं अक्सर आप दोनो को साथ-साथ देखा करता था।"

आभा ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"सिवा उनके क्या आप किसी अन्य मालतीजी को नहीं जानते ?"

भारतेंदु ने कुछ सोचते हुए कहा—"नहीं, मैं किसी अन्य मालती को नहीं जानता। उनसे भी मेरा कुछ विशेष परिचय नहीं। ऐसा

सुनने में आया है कि इसी वर्ष उनका विवाह हो गया है, और वह आजकल यहाँ नहीं हैं।"

आभा ने अपने प्रश्न को दुहराते हुए कहा—"तो क्या आप सत्य ही दूसरी मालती को नहीं जानते?"

भारतेंदु ने दृढ़ कंठ से उत्तर दिया—"नहीं, मैं नहीं जानता।"

आभा ने पुनः पूछा—"तो क्या मैं आपका विश्वास करूँ?"

भारतेंदु ने उसी तरह दृढ़ता से कहा—"हाँ, आप यक़ीन मानें, मैं किसी दूसरी मालती को नहीं जानता।"

आभा ने अपने ब्लाउज़ की जेब से वह रूमाल निकालकर भारतेंदु पर फेक दिया, और तीक्ष्ण स्वर में पूछा—"इस रूमाल के कोने में 'मालती' लिखा हुआ है, बतलाइए, यह मालती कौन है?"

भारतेंदु ने उसे उठा लिया, और मुस्किराकर कहा—"आप इस मालती को जानने के लिये उत्सुक हैं। ऐसी-ऐसी बहुत-सी मालतियाँ आपको 'टंडन-ब्रद्र्स' की दूकान पर मिल जायँगी। यह रूमाल मैंने कल ही उसकी दूकान से ख़रीदा है।"

यह कहकर भरतेंदु ज़ोर से हँस पडे। आभा शर्म से लाल हो गई। वह उन्हें वहीं छोड़कर कमरे के बाहर अपनी ग्लानि छिपाने के लिये चली गई। भारतेंदु वहीं बैठे-बैठे हँसते रहे।

---

## १०

पंडित मनमोहननाथ ने पान का बीड़ा देते हुए कहा—"डॉक्टर साहब, मैं कल ही यहाँ से कलकत्ते के लिये रवाना हो जाऊँगा, और वहाँ से सीधा फ़िजी के लिये चल दूँगा। दक्षिणी अमेरिका में खानवालों ने कुछ गड़बड़ी मचाई है। वहाँ भी मेरा जाना नितांत आवश्यक है। हालाँकि मैंने आज ही तार द्वारा इसकी सूचना अपने मित्र और शुरू जीवन के भागीदार कल्याणमल भंडारी को दे दी है, और उन्हें उस स्थान पर जाकर गड़बड़ ठीक कर देने का अनुरोध किया है, परंतु फिर भी जाना पड़ेगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, जाना तो आपको पड़ेगा ही, लेकिन अब एक समस्या सामने आ गई है, उसे किस तरह सुलझाऊँ। मैंने जब से भारतेंदु से यह समाचार सुना है; तब से इसी हैस-बैस में हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्कंठा के साथ पूछा—"वह क्या है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"कल ही युनिवर्सिटी की कार्यकारिणी समिति में सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव पास हुआ है कि आपको ऑनरेरी डॉक्टर की उपाधि से विभूषित किया जाय और आप जा रहे हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने ज़ोर से हँसकर कहा—"मैं निरक्षर भट्टाचार्य क्या डी० लिट्० की उपाधि पाने योग्य हूँ। इससे बढ़कर और मज़ाक क्या हो सकता है?"

स्वामी गिरिजानंद की बैठक आजकल पंडित मनमोहननाथ के यहाँ ही रहती थी। वह भी इस समय मौजूद थे। उन्होंने सहास्य

कहा—"जनाब, यह सम्मान या पुरस्कार है, जो आपने अपने दस लाख रुपयों से ख़रीदा है।"

पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर नीलकंठ, दोनो हँसने लगे।

थोड़ी देर बाद पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"ख़ैर, मैं अपने को इस सम्मान के सर्वथा अयोग्य पाता हूँ, और न कभी मैं इसे स्वीकार कर सकता हूँ। हाँ, उस दिन मुझे वास्तविक गर्व होगा, जिस दिन भारतेंदु इस सम्मान को प्राप्त करेगा। पिता का हर्ष तो पुत्र के गौरव में सन्निहित है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"भारतेंदु बहुत जल्द ही वह सम्मान प्राप्त करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आज दो-तीन साल से मैं भी देख रहा हूँ, भारतेंदु-जैसे प्रतिभावान् छात्र बहुत कम देखने में आते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने अपना गर्व दबाते हुए कहा—"यह तो ठीक है। स्वामीजी, मैंने ही इसका पालन-पोषण किया है। जब यह दो वर्ष का था, तब इसकी मा मर गई थी, और मुझे इसका भार वहन करना पड़ा। मैं इसका पिता और माता, दोनो हूँ। अतएव इसकी उन्नति से मुझे दूना उत्साह और हर्ष प्राप्त होता है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"आप कौन ब्राह्मण हैं?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं तो जाति-पाँति कुछ मानता नहीं, और न अब मेरी कुछ जाति ही है। मैं आज़ादी के साथ घूमता हूँ, आज़ादी के साथ खाता हूँ, और आज़ादी के साथ सबसे व्यवहार रखता हूँ। अँगरेज़, पारसी, मुसलमान, यहूदी और बौद्ध तथा जंगली जातियों के साथ खान-पान का व्यवहार रखता हूँ। अब अपनी जाति आपको क्या बतलाऊँ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"पंडितजी, जाति का संबंध शरीर

से नहीं, आचरण या कर्म से है। खाने-पीने या यात्रा करने से जाति का नाश नहीं होता। रह गया धर्म, उसका संबंध आत्मा से है। आत्मा जिस पर विश्वास करे, वही धर्म है। धर्म और आचार एक नहीं, दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। मौजूदा वक़्त ने धर्म, आचार और जाति, तीनो को एक में मिला रक्खा है, जिसके सबब यह गड़बड़ी है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुछ लज्जित स्वर में कहा—"मेरा मतलब यह था कि आप……"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसकर कहा—"बात यह है पंडितजी, डॉक्टर साहब की इच्छा है कि आभा का पाणिग्रहण भारतेंदु करें। इसीलिये इनका ऐसा प्रश्न था। मैं पहले कह चुका हूँ, मनुष्य सदैव से रूढ़ि का उपासक रहा है, उसका झुकाव हमेशा उसी ओर होता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न होकर कहा—"स्वामीजी, मैं यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परंतु……"

स्वामी गिरिजानंद ने बीच में बात काटकर कहा—"जब आप स्वीकार करते हैं, तब इसमें परंतु कैसा?"

पंडित मनमोहननाथ ने गंभीर मुद्रा से कहा—"इसमें दो-तीन बातों का परंतु है। प्रथम तो यह कि मैं ब्राह्मण माता-पिता से उत्पन्न हूँ अवश्य, परंतु मैं सबसे परित्यक्त हूँ। मैं कानपुर-ज़िले का रहनेवाला हूँ। अभी-अभी अपनी जन्म भूमि गया था, वहाँ कोई भी मेरे साथ व्यवहार करने को तैयार नहीं हुआ। यहाँ तक कि ब्रह्मभोज में भी कोई ब्राह्मण शामिल नहीं हुआ। अंत में वह भोजन ग़रीबों और अनाथों को खिलाना पड़ा। दूसर यह कि आभा और भारतेंदु की परस्पर सम्मति होनी चाहिए। तीसरे, मैं क़ुली-जाति का हूँ, और अंत तक क़ुली ही कहलाऊँगा, चाहे मैं कितना

ही अमीर क्यों न हो जाऊँ। अब आप सब बातें जानकर अपना मत निश्चय करें। हाँ, एक बात तो मैं कहना ही भूल गया कि भारतेंदु की माता, हालाँकि वह जाति से ब्राह्मण थी, फिर भी वह डीपोंवालों से ले जाई हुई कुली स्त्री थी! मुझे यह भय है कि कहीं आभा को अपनी सास का परिचय देने में संकुचित या लज्जित न होना पड़े।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"प्रस्ताव करने के पहले हमने ये सब समस्याएँ सोच ली हैं। हम संकुचित विचार के नहीं, और हमारा हिंदू-परिवार इतना विशाल है, जितना विश्व या ब्रह्मांड। पंडितजी आपके साथ तो हम लोगों को रहते बहुत दिन हो गए हैं, क्या आप इतना भी नहीं जान पाए?"

पंडित मनमोहननाथ ने सहास्य कहा—"यह तो मैं जानता हूँ कि आप और डॉक्टर साहब हिंदू-समाज की विशालता को मानने-वाले हैं, लेकिन डॉक्टर साहब के संबंधी तो हैं। क्या वे इस विवाह में आपत्ति न करेंगे?"

डॉक्टर नीलकंठ ने दृढ़ स्वर से कहा—"मुझे उनके प्रतिरोध की परवा नहीं। आभा को सुखी करना मेरा परम धर्म है।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न कंठ से कहा—"तब मैं भी अपनी स्वीकृति देता हूँ। भारतेंदु को अगर कोई आपत्ति न होगी, तो मेरी ओर से यह संबंध निश्चित है। जहाँ तक मैं अनुमान करता हूँ, उसे कोई आपत्ति न होगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"मेरा भी अनुमान है कि दोनो में से किसी को भी आपत्ति न होगी, और न है।" यह कहकर वह हँसने लगे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आज भारतेंदु ने जब आपके जाने की ख़बर बतलाई, तब आभा ने कहा, मैं भी संसार-भ्रमण करने जाना चाहती हूँ। उस समय तो मैंने उसे डाँट दिया था।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसते हुए कहा—"यह तो आपका अन्याय है। इससे अधिक सुख की बात मेरे लिये क्या होगी कि मेरी पुत्र-वधू मेरे साथ चलकर संसार-भ्रमण करे। स्वामीजी मेरे साथ ही जा रहे हैं, आभा के चलने से हमारा मनोरंजन होगा।

डॉक्टर नीलकंठ ने साश्चर्य कहा—"स्वामीजी आपके साथ जा रहे हैं, यह मुझे नहीं मालूम।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं पंडितजी के साथ जाऊँगा। इनका अपना जहाज़ है, और फिर फ़िज़ी-देश भी देखने को मिलेगा, जहाँ हिंदू-समाज एक दूसरे रूप में पनप रहा है। कौन जानता है, निकट भविष्य में वह भी अमेरिका की तरह संपन्न और सशक्त होकर हमसे अपना संबंध-विच्छेद न कर ले। इसलिये यह ज़रूरी है कि अभी से उससे संबंध रक्खा जाय। उसे दुरदुराकर भारत से दूर न हटाया जाय।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मंद मुस्कान-सहित कहा—"मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने तुरंत ही उत्तर दिया—"इसी स्वार्थ का नाम ही तो मनुष्य है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, यह विवाह कब और कहाँ होगा?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"विवाह यहीं लखनऊ में आगामी वर्ष होगा। हम लोग तो अभी करने को तैयार हैं, परंतु आपके जाने से उसे कुछ दिनों के लिये स्थगित करना पड़ेगा। अच्छा है, इस दर्म्यान भारतेंदु और आभा, दोनो एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जायँगे।"

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ सोचते हुए कहा—"नहीं, मुझे क्या

आपत्ति है ? ठीक है, अगले वर्ष तक भारतेंदु कर्मशील संसार में प्रवेश करेगा।"

इसी समय नौकर ने चाय का ट्रे लाकर उनके सामने रख दिया। पंडित मनमोहननाथ चाय बनाने लगे। डॉक्टर नीलकंठ ने आपत्ति की, परंतु उन्होंने नहीं माना।

तीनो प्रसन्न मन से चाय पीने लगे।

---

## ११

बिदा होते समय पंडित मनमोहननाथ ने भारतेंदु से कहा—"यदि तुम अपने को एक लक्षाधीश पिता का पुत्र समझते हो, तो बिलकुल ग़लत है। तुम्हें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि तुम एक क़ुली के—ग़ुलाम के पुत्र हो, और तुम्हारे पास एक पैसा भी नहीं। यह धन, जो मेरे पास है, ग़रीबों का है—संसार के प्रत्येक मनुष्य का है। उसके भोगने का अधिकार न मुझे है, और न तुम्हें ही। कहीं यह न हो कि धन के गर्व में मदांध होकर तुम अपना कर्तव्य भूल जाओ। तुम्हारा कुटुंब समस्त हिंदू-जाति है, और इससे भी बृहत् मनुष्य-जाति। किसी भी मनुष्य के प्रति घृणा करोगे, या उसके अधिकारों को नष्ट करोगे, तो उसका प्रहार उस मनुष्य पर न होकर मुझ पर होगा, और तुम्हारे साथ मैं भी उत्तरदायी होऊँगा।"

भारतेंदु ने कोई जवाब नहीं दिया।

पंडित मनमोहननाथ फिर कहने लगे—"तुम कर्मशील संसार में शीघ्र ही आनेवाले हो। इस वर्ष तुम्हें डी० लिट्० की डिगरी मिल जायगी, इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं। मुझे यह भय है कि कहीं तुम्हारा दिमाग़ व्यर्थ की प्रशंसा सुनकर बिगड़ न जाय, और उस हालत में तुम अपने ही भाइयों पर, जो परिस्थितियों के शिकार हो रहे हैं, कोई अत्याचार न कर बैठो। इसलिये संयत होकर, विचार-पूर्वक अपनी हीन दशा को विचारते हुए कोई काम करना।"

भारतेंदु ने नम्र स्वर में कहा—"आज तक आपको कोई शिकायत का मौक़ा न मिला है, और न मिलेगा। मैं जानता हूँ, मैं एक

तिरस्कृत और ग़ुलाम-जाति में उत्पन्न हुआ हूँ, और उस जाति के अभिशाप को वहन करने के लिये सर्वथा तैयार हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हारे वचनों से मुझे संतोष होता है। आभा को तुम्हारी अर्द्धांगिनी बनाने का प्रस्ताव डॉक्टर नीलकंठ ने किया है, और मैंने उसे स्वीकार भी किया, इस शर्त पर कि जब तुम्हारी स्वीकृति होगी। इसलिये आभा को भी तुम अपनी स्थिति बहुत ही साफ़ शब्दों में बता देना। यदि कभी आभा को अपनी सास या अपने ससुर का परिचय देने में किसी भाँति का संकोच या लज्जा हो, तो तब तुम्हारा वैवाहिक जीवन नितांत कटु और नीरस हो जायगा, और उस वक़्त मुझे भी कष्ट होगा। इसकी ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। आजकल की लड़कियाँ चमकते हुए सोने को देखकर लट्टू हो जाती हैं, परंतु बाद में, उस धन के नाश होने पर, उन्हें पछताना पड़ता है, और फिर पति-पत्नी का जीवन बड़ा दुरूह होता है।"

भारतेंदु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"मैं यहाँ से सीधे फ़िज़ी जाऊँगा, और फिर वहाँ से दक्षिणी अमेरिका। तुम्हें अगर अवकाश मिले, तो मेरे पास चले आना। अगर आभा आना चाहे, तो उसे भी ले आना। तुम्हें छोड़ने की इच्छा तो नहीं होती, किंतु कार्यवश जाना ही पड़ता है। आशा है, तुम अपना कुशल-समाचार हमेशा देते रहोगे, और........"

कहते-कहते उनका गला रुँध गया। वात्सल्य द्रवित होकर नेत्रों के बाहर निकलने का उपक्रम करने लगा। भारतेंदु का भी हृदय रोने के लिये आकुल हो उठा। उसे पिता के प्रेम की गहराई भली भाँति मालूम थी।

इसी समय डॉक्टर नीलकंठ, आभा और स्वामी गिरिजानंद भी

आ गए। उन्हें देखकर पंडित मनमोहननाथ ने अपने मन के भावों को रोक लिया।

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"आप तो बहुत पहले स्टेशन आ गए। हम लोग तो आपके घर गए थे।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर उत्तर दिया—"बहुत पहले तो नहीं, अभी थोड़ी ही देर हुई, जब आया हूँ। सामान वग़ैरह बुक कराना था, इससे कुछ पहले आना पड़ा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आप चाहे जितना छिपकर जाना चाहें, कभी जा नहीं सकते। देखिए, जहाँ लोगों को मालूम हुआ कि आप जा रहे हैं, सब लोग आपसे मिलने आ रहे हैं, और समय कम होने पर भी काफ़ी आदमी इकट्ठा हो गए हैं। देखिए, डॉक्टर पीतांबरदत्त, राजा साहब अनवरअलीख़ाँ, सर रामकृष्ण, मुंशी कालीसहाय-प्रभृति ताल्लुक़ेदार और रईस, सभी आ रहे हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने सिर घुमाकर देखा, वास्तव में सौ-सवा सौ रईस और रईसज़ादे तथा माननीय सज्जन चले आ रहे थे। दोनो ओर से अभिवादन होने के बाद मुंशी कालीसहाय ने कहा—"वाह पंडितजी साहब, आप तो बिना ज़ाहिर किए हुए एकदम से चल दिए, जैसे कोई बेगाना जाता है। आज तक मैंने तो किसी भी मेहमान को इस तरह मुँह छिपाकर जाते नहीं देखा। देखता हूँ, लखनवी हवा का असर बिलकुल ही जाता रहा।"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"चूँकि अब यहाँ से जा रहा हूँ, इसलिये यहाँ की हवा आप लोगों के लिये ही छोड़े जा रहा हूँ। ग़ुलामों के देश में इस आज़ाद हवा का गुज़र नहीं।

सब लोग हँसने लगे।

राजा अनवरअलीख़ाँ ने कहा—"आपने एक दिन भी ग़रीब-ख़ाने पर तशरीफ़ लाकर हमें सरफ़राज़ नहीं किया, इसका ग़म तो हमेशा रहेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ शोक के साथ कहा—"इसका मुझे भी बहुत रंज है। इधर मुझे बहुत काम था, जिससे आपके दौलतख़ाने पर हाज़िर न हो सका। अब जब दुबारा आऊँगा, तो ज़रूर इस फ़र्ज़ को अदा करूँगा। उम्मीद है, आप माफ़ी बख़्शेंगे।"

डॉक्टर पीतांबरदत्त ने कहा—"अभी परसों ही यह निश्चित हुआ था कि आपको डी० लिट्० की ऑनरेरी डिगरी दी जाय, लेकिन अब देखता हूँ, पिता-पुत्र को एक ही साथ डिगरियाँ प्रदान की जायँगी।"

डॉक्टर पीतांबरदत्त हँसने लगे, और दूसरे लोग भी हँसने लगे।

सर रामकृष्ण ने कहा—"लखनऊ-युनिवर्सिटी की तवारीख़ में यह बात सुनहले अक्षरों से लिखी जायगी कि एक ही साथ एक ही दिन बुज़ुर्ग व ज़ईफ़ वालिद और नौजवान बेटे को डी० लिट्० की डिगरियाँ मिली थीं।"

लखनऊ-स्टेशन का प्लेटफ़ार्म हँसी की प्रतिध्वनि से गूँज उठा।

राजा अनवरअलीख़ाँ ने हँसते हुए कहा—"क़सम ख़ुदा की, तमाम दुनिया की युनिवर्सिटियों को ऐसी ख़ुशक़िस्मती हासिल न हुई होगी। अजी जनाब, लखनऊ की बात हर सिम्त में लासानी है, यकता है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"यह सौभाग्य भी तो किसी को आज तक न मिला होगा। दुनिया में तो यही देखने में आया है कि पिता के बाद पुत्र की बारी आती है, मगर यहाँ तो सारा तख़्ता ही उलटा है। पहले तो पुत्र को डिगरी मिलेगी, और बाद में पिता को।"

हास्य की ध्वनि फिर मुखरित होकर शून्य में विलीन होने लगी। मुंशी कालीसहाय ने कहा—"अजी,

लोग कहते हैं, ज़माना है बदलता अक्सर ;
मर्द वे हैं, जो ज़माने को बदल देते हैं।"

हँसी के गंभीर शब्द ने गाड़ी के आने की सूचना को छिपा लिया।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह तो मेरा सौभाग्य है, और ईश्वर करे, यह सौभाग्य आप सब सज्जनों को मयस्सर हो, जिससे किसी को हिर्स न हो।"

इस बार की हँसी के ठहाके ने स्टेशन के सभी व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इसी दर्म्यान गाड़ी आकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ी हो गई।

पंडित मनमोहननाथ तीसरे दर्जे की ओर मुड़े। लोगों को आश्चर्य हुआ।

राजा अनवरअलीख़ाँ ने आश्चर्य के साथ कहा—"यह क्या पंडितजी, क्या आप तीसरे दर्जे में सफ़र करेंगे?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं हमेशा तीसरे दर्जे में ही सफ़र करता हूँ। क्या करूँ, अगर चौथा दर्जा होता, तो उसमें सफ़र करता।"

मुंशी कालीसहाय ने कहा—"आख़िर यह क्यों? तीसरे दर्जे में सफ़र करने से बड़ी तकलीफ़ होती है। एक तो जगह की बड़ी क़िल्लत होती है, और दूसरे बहुत ही ज़लील लोगों के साथ बैठना होता है, जिससे तबियत बुरी तरह बिगड़ जाती है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं तो जन्म से क़ुली हूँ, और क़ुलियों के जीवन का आदी हूँ। मुझे कोई तकलीफ़ इनके साथ जाने-आने में नहीं होती।"

भारतेंदु ने गाड़ी के भीतर चढ़कर सब सामान यथास्थान

लगा दिया। पंडित मनमोहननाथ सबसे हाथ मिलाकर बिदा लेने लगे।

जब डॉक्टर नीलकंठ की बारी आई, तो उन्होंने कहा—"डॉक्टर साहब, भारतेंदु की देख-रेख बराबर रखिएगा। उसका भार आपके ऊपर है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"आप इसकी कुछ चिंता न करें। भारतेंदु तो अब आपका ही नहीं, मेरा भी है।"

आभा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए सदैव सुखी होने का आशीर्वाद दिया। उस ममत्व-पूर्ण आशीर्वाद को सुनकर उसके नेत्र आर्द्र हो गए, जिसे छिपाने के लिये वह आतुर होकर उस भीड़ में छिप गई। गाड़ी छूटने का वक़्त आ गया। पंडित मनमोहननाथ ने बैठते हुए सबको प्रणाम किया, और क्षमा-प्रार्थना की। भारतेंदु ने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। उनका आशीर्वाद गाड़ी चल देने से सुन न पड़ा।

धूम का पुंज पीछे छोड़ता हुआ पेशावर मेल अनेकों की शुभेच्छा लेकर चल दिया।

---

## १२

कलकत्ते पहुँचते ही पंडित मनमोहननाथ ने भारतेंदु और डॉक्टर नीलकंठ को तार द्वारा सकुशल पहुँचने की ख़बर दी। इसके बाद उन सरकारी अफ़सरों से मिले, जिनसे जहाज़ छोड़ने के बारे में इजाज़त लेनी थी।

उनके जहाज़ का नाम था—'सुमित्रा', जो उनकी स्त्री का नाम था। यह कोई बड़ा या अद्‍भुत जलयान न था, बल्कि एक साधारण, वैज्ञानिक ढंग पर बना हुआ, अमीरों के घूमने लायक़ छोटा-सा जहाज़ था। पंडित मनमोहननाथ को समुद्र-यात्रा बहुत करनी पड़ती थी, इसलिये उन्होंने एक अमेरिकन कंपनी से मोल लिया था। पहले तो ब्रिटिश अधिकारियों ने कई प्रकार की अड़चनें उसके ख़रीदने और व्यवहार में डालीं, परंतु रुपयों के ज़ोर ने सबका मुँह बंद कर दिया, और उन्हें अधिकार मिल गया।

संध्या का आगमन मंथर गति से हो रहा था, जब पंडित मनमोहननाथ का जलयान चलने की अंतिम सूचना देने लगा। पंडित मनमोहननाथ और स्वामी गिरिजानंद डेक पर खड़े होकर अस्त होते हुए सूर्य की सुनहली किरणों में स्नान कर रहे थे। चारो ओर शांति विराज रही थी, क्योंकि जानेवाले सभी जहाज़ बंदर छोड़कर चले गए थे।

जहाज़ अपना लंगार उठा ही रहा था कि उसके कप्तान ने आकर कहा—"इस वक़्त चलना ख़तरे से ख़ाली नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखकर पूछा—"क्यों?"

कप्तान एल्फ़्रेड जैकब्स ने, जो न्यूज़ीलैंड का रहनेवाला और

समुद्री वायु का विशेष रूप से ज्ञाता था, दक्षिण की ओर देखते हुए कहा—"दक्षिणी हवा कह रही है की तीन-चार घंटे के अंदर-ही-अंदर तूफ़ान आनेवाला है।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"मालूम होना है, कप्तान बहुत गहरे पानी में हैं।"

हालाँकि उन्होंने यह बात हिंदी में कही थी, परंतु एल्फ़्रेड जैकब्स उनका आशय समझ गया। उसका मुख लाल हो गया, जो अस्त हुए सूर्य की लालिमा से कुछ भयंकर मालूम होता था। उसने तीव्र स्वर में कहा—"महाशय, मैं शराब नहीं पीता। तमाम ज़िंदगी समुद्र में बीती है, इससे समुद्री वायु की गति भली भाँति जान गया हूँ। मुझे अपने जान की फ़िक्र नहीं, परंतु उन आरोहियों की बहुत फ़िक्र है, जो हमारे जहाज़ पर हैं, जिनके जीवन का उत्तरदायित्व किसी अंश तक मेरे ऊपर है।" स्वामी गिरिजानंद संकुचित होकर चुप हो गए।

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"तूफ़ान क्या भयंकर मालूम होता है?"

एल्फ़्रेड जैकब्स ने कहा—"हाँ, आसार तो ऐसे ही नज़र आते हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि बहुत ज़बरदस्त तूफ़ान आनेवाला है, जिससे सकुशल बच जाना ज़रा मुश्किल है। व्यर्थ ही जान और माल की हानि होगी। मैं जहाज़ का लंगर डलवाए देता हूँ। यहाँ भी बड़ी मुश्किल होगी। ऐसा तूफ़ान मैंने शायद पहले कभी नहीं देखा। सिर्फ़ एक बार जब मैं दक्षिणी ध्रुव की ओर जा रहा था, तब मिला था। कौन कह सकता है, यह उससे भयंकर नहीं?"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, यह तूफ़ान कितनी देर तक ठहरेगा?"

एल्फ़्रेड जैकब्स ने कुछ देर सोचने के बाद कहा—"एक या दो घंटे। इससे भी कम ठहर सकता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तो इससे मालूम होता है, हमें यहाँ पाँच-छ घंटे ठहरना पड़ेगा। अच्छा, हम तुम्हारी बात मानते हैं। जहाज़ का लंगर डाल दो, और पोर्ट के अधिकारियों को सूचित कर दो कि हमारा जहाज़ छ घंटे बाद रवाना होगा। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इन छ घंटों की कसर तुम्हें निकालनी पड़ेगी, और जहाज़ कुछ तेज़ी के साथ ले चलना पड़ेगा।"

एल्फ़्रेड जैकब्स ने प्रसन्न-कंठ से कहा—"जी हाँ, मैं इस कमी को पूरा कर लूँगा। हमारा जहाज़ बहुत तेज़ चलनेवाला है। मुझे उम्मीद है, तूफ़ान के बाद समुद्र बिलकुल शांत हो जायगा, क्योंकि ऐसा हमेशा होता है। उस वक़्त हम तेज़ चल सकेंगे।"

यह कहकर वह पोर्ट के अधिकारियों को सूचित करने चला गया।

पंडित मनमोहननाथ और स्वामी गिरिजानंद सुदूर पश्चिम की ओर सूर्य की लालिमा देखने लगे, जो कुछ ही क्षण बाद बिलकुल अस्त होनेवाला था।

स्वामी गिरिजानंद ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—"कप्तान अनुभवी व्यक्ति जान पड़ता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जी हाँ। बड़ा चतुर और अनुभवी है। इसके अलावा बड़ा स्वामिभक्त भी। आजकल के ज़माने में ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"इसे मैंने दो बार मरने से बचाया है, तब से यह मेरा बड़ा भक्त है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्सुकता से पूछा—"वह कैसे?"

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"वह एक लंबी कहानी है।

संक्षेप में यह कि एक मर्तबा मैं इसके जहाज़ पर जापान जा रहा था। रास्ते में नाविकों ने विद्रोह कर दिया। उनकी इच्छा थी कि कप्तान को मारकर जहाज़ पर क़ब्ज़ा कर लें। यह ज़माना योरपीय महासमर का था। जर्मन जासूसों ने यह षड्यंत्र करवाया था, क्योंकि उस जहाज़ में जापान से लड़ाई का सामान इँगलैंड जा रहा था। यह षड्यंत्र उस समय हुआ था, जब जापान से सब सामान भर लिया गया था। जर्मन जासूसों की इच्छा थी कि जहाज़ मय अस्त्र-शस्त्र के जर्मनी भेज दिया जाय। जब मैं जापान में था, तब मुझे भारतीय षड्यंत्रकारियों से इसका पता चल गया था। जहाज़ पर आने और उन मल्लाहों की गति-विधि लक्ष्य करने से मुझे विश्वास हो गया कि सुनी हुई गप बिलकुल गप ही नहीं है। मैंने एक दिन एकांत पाकर इससे सब हाल कह दिया। कप्तान होशियार हो गया। उसने भी उनकी गति-विधि पर नज़र रक्खी, और अपनी बचत का प्रबंध भी किया। आख़िर ज्यों ही विद्रोह शुरू हुआ, कप्तान ने कुछ मल्लाहों की मदद से उस षड्यंत्र को दबा दिया, और कोलंबो पहुँचकर उन सबको क़ैद करवा दिया। तब से मेरा भक्त हो गया। इसके बाद जब मैं फिर इसी के जहाज़ से यात्रा कर रहा था, दस वर्ष पीछे, तब इटली के पास तूफ़ान में पड़कर वह जहाज़ टूट गया। उस समय भी मैंने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर इसकी रक्षा की थी। इसके बाद हम लोग अमेरिका गए, और यह जहाज़ ख़रीद लिया। एल्फ़्रेड ने स्वयं इस जहाज़ का कप्तान होना स्वीकार किया, और मेरे पास नाम-मात्र वेतन पर काम करता है। इसे मैंने हमेशा ईमानदार और नेकनीयत पाया है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"इसके परिवार में कौन-कौन है?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"एक लड़की को छोड़कर और कोई नहीं। उसका नाम अमीलिया है। बड़ी ही सुंदर

और भोली लड़की है। वह भी सदैव इसी जहाज़ पर रहती है। अपनी मा के मरने के बाद कुछ दिनों तक आस्ट्रेलिया के सिडनी-नगर में शिक्षा पाई। बाद में आजकल अपने पिता के साथ रहती है। मैं आपसे उसका परिचय आज या कल करा दूँगा। आप उससे मिलकर प्रसन्न होंगे। स्वतंत्र वायु मंडल में पलकर लड़कियों की प्रतिभा किस तरह विकसित होती है, यह आपको उसके देखने से मालूम होगा। वह पक्की निशानेबाज़ है, आज तक उसका लक्ष्य मैंने कभी चूकते नहीं देखा। तैराक भी अौवल दर्जे की है। संगीत-विद्या का भी अच्छा ज्ञान है, और टेनिस तथा गाल्फ की अच्छी खिलाड़िन है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"इस संसार में स्वतंत्र जाति ही जीवित है। गुलाम-जाति का कल्याण न तो इस लोक में है, और न दूसरे लोक में।"

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ क्षुब्ध कंठ से कहा—"स्वामीजी, मैं किसी दूसरे लोक में ज़रा भी विश्वास नहीं करता, और साथ ही यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप इस मिथ्या कल्पना को सत्य का रूप देकर भ्रम न फैलावें, और न युवकों का उत्साह नष्ट करें, इसी दूसरे लोक की कल्पना ने ही आज भारतवर्ष को गुलाम बना रक्खा है, और जब तक यह भाव दूर न होगा, तब तक मुझे तो कोई आशा दिखाई नहीं पड़ती।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"आप दूसरे लोक में विश्वास नहीं करते, यह ठीक है; आप न करें, और न मैं अनुरोध करता हूँ, परंतु जो सत्य है, उसे मैं किस तरह दबा दूँ?"

पंडित मनमोहननाथ ने किंचित् रोष के साथ कहा—"आपने क्या दूसरा लोक देखा है, जो ऐसा कहते हैं? मैं तो उसी को सत्य मानता हूँ, जो आँखों से देखा जाय।"

स्वामीजी ने गंभीर होकर कहा—"बिलकुल सत्य है। लेकिन आप दूसरा लोक भी देख सकते हैं, परंतु देखते नहीं। यह तो आप मानते हैं कि इस जीवन के बाद भी कोई जीवन है, अथवा यही अंतिम जीवन नहीं है?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"हाँ, यह मैं मानता हूँ।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"तो बस, इस जीवन के बाद जो जीवन प्रारंभ होगा, वही दूसरा लोक है, जहाँ वह नए कार्य-क्रम से अपने पिछले जीवन में आरंभ किए हुए कर्म को पूर्ण करेगा। यह अकेला विश्व समग्र जीवों का मिलन-ग्रह नहीं है। दूसरे लोक भी हैं, जहाँ जीवन है, मसलन् मंगल-ग्रह। मुश्किल तो यह है कि हम अपने आप कुछ विचार नहीं करते और न अपने शास्त्रों को ही सच मानते हैं। हम लोग तो पहले से ही उन्हें मिथ्या कल्पना के आगार समझ चुके हैं। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। एक तो हमारा बहुत-सा साहित्य जलाकर नष्ट कर डाला गया, और जो बचा है, उसे समझने की क्षमता हममें नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने व्यंग्य के साथ कहा—"पुराणों की कपोल-कल्पना में क्या रहस्य छिपा है, ज़रा मैं भी सुनूँ।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"ये पुराण ही तो हमारी सभ्यता के ध्वंस-चिह्न हैं, जो किसी तरह बच गए हैं। असली बात यह है कि रूपक, काव्य और संकेत-सूत्रों ने हमारे शास्त्रों को हँसी का खिलौना बना रक्खा है। काव्य का इतना उच्चतम रूप हमें किसी भी भाषा में नहीं मिलेगा, जहाँ वैज्ञानिक तत्त्व भी काव्य में लिखे गए हैं? वहाँ के विषय में कुछ कहना फ़िज़ूल है। काव्य का अंग रूपक है। रूपक की योजना इतने वैज्ञानिक ढंग और सत्यता से की गई है, जिसके जाल में मनुष्य फँस जाता है, और उसकी तह तक नहीं पहुँच पाता। उस मिथ्या रूपक को सार तत्त्व समझ लेता है। इसके

अतिरिक्त हरएक वस्तु को यथासंभव धार्मिक रूप दिया गया है, और धर्म जीवन का प्रधान अंग माना गया है, जिससे वह जीवित रहे। इस संबंध में हमारे शास्त्रकारों को पूरी सफलता मिली। आज दिन भी वे रूपक और वे तत्त्व हमारे पास जीवित हैं। हालाँकि आज हम उनका मज़ाक़ उड़ाते हैं, परंतु वे मौजूद हैं, यही संतोष की बात है। इसी सबब से हिंदू जाति अब तक जीवित है, जब कि दूसरी जातियों या उनकी सभ्यता का कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं मिलता। पुराणों में हमारा आंशिक इतिहास है, और अनुभूत तथा सत्य तत्त्वों के रूपक हैं, जो धर्म और आचार के साथ इस तरह आबद्ध हैं कि हम उन्हें अलग नहीं कर सकते।"

इसी समय कप्तान एल्फ़्रेड जैकब्स ने आकर कहा—"देखिए, मेरा कहना बिलकुल सत्य है। पोर्ट के अधिकारियों को भी 'बैरोमीटर' यंत्र से मालूम हुआ है कि कोई ज़बरदस्त तूफ़ान आनेवाला है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"तो क्या हम लोगों को पृथ्वी पर चलकर ठहरना उचित है?"

कप्तान ने जवाब दिया—"हाँ, उचित तो यही मालूम होता है। अगर तूफ़ान का ज़ोर ज़्यादा हुआ, तो यहाँ ठहरना किसी तरह भी निरापद् नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तब तो हम लोग डाक्स पर ही वापस जायँगे। आप भी हमारे साथ चलें। अच्छा, अमीलिया कहाँ है? अभी तक दिखाई नहीं पड़ी।"

एल्फ़्रेड जैकब्स ने जवाब दिया—"अमीलिया आज कई दिनों से बीमार है, यह कहना तो मैं भूल ही गया। आज उसकी तबियत कुछ अच्छी है, लेकिन कैबिन में लेटी हुई आराम कर रही है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"अब आप क्या वापस जायँगे? यहाँ ठहरने में क्या हानि है?"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराते हुए कहा—"यहाँ रहने से दूसरे लोक में जाने की बहुत शीघ्र संभावना हो सकती है, यहाँ तक कि शायद पासपोर्ट लेने की भी आवश्यकता न पड़े।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसते हुए कहा—"दूसरी दुनिया में जाने का पासपोर्ट मैं उसी तरह अपने पास तैयार रखता हूँ, जिस तरह इस दुनिया में कहीं जाने का। यह जीवन ही अंतिम जीवन नहीं है, और न मरण मेरा मरण है। मैं तो सदैव जीवित हूँ। यह संभव है, किसी लोक में इस शरीर के टिकट से मेरा प्रवेश न हो सके, इसलिये दूसरा टिकट कटाना पड़े।"

पंडित मनमोहननाथ ने सहास्य कहा—"स्वामीजी, आप तो वेदांत का टाँग हर जगह लड़ाते हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"वेदांत ही तो जीवन की सत्यता है, इसे अलग करना अपने निजत्व को भूल जाना है।"

अमीलिया और कप्तान आते हुए दिखाई पड़े। अमीलिया तेईस बरस की निर्दोष सुंदरी थी। उसके हृष्ट-पुष्ट अंग उसके रूप को अधिक लावण्यमय बना रहे थे। उसने उनके पास आकर मधुर मुस्कान से अभिवादन किया।

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता के साथ पूछा—"तुम्हारे पापा से मालूम हुआ कि तुम्हारा शरीर कुछ अस्वस्थ है, यह जानकर मुझे दुःख हुआ। अब तुम्हारी तबियत कैसी है?"

अमीलिया ने मंद मुस्किराहट के साथ कहा—"धन्यवाद! अब अच्छी हूँ। पापा कहते हैं, एक ज़बरदस्त तूफ़ान आनेवाला है, जिससे हम लोग अभी चल न सकेंगे, और इसी भय से हम लोग पृथ्वी पर पुनः जाते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, तुम्हारे पापा तो यही कहते हैं। डाक्स पर चलकर आश्रय लेने का प्रस्ताव तो मेरा ही है।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"तब तो चलना ही पड़ेगा। दूसरे यात्री तो डाक्स तक पहुँच गए, अब हमारी बारी है। चलिए।"

इसके बाद चारो व्यक्ति छोटी नौका पर बैठकर तट की ओर चल दिए। सुदूर पूर्व दिशा से लालिमा फैलकर अंतरिक्ष के साथ पृथ्वी और सागर को भी ढकने का प्रयत्न करने लगी।

## १३

प्रातःकाल के पाँच बज रहे थे। जब पंडित मनमोहननाथ का जहाज़ कलकत्ते से रवाना हुआ। पूर्व दिशा में आलोक की प्रथम रश्मि निशा का अंधकार भेदकर निद्रा-निमग्न संसार को मौन भाषा में नव-जीवन का संदेश दे रही थी। पक्षियों ने वह संदेश सुना, और वे अपनी भाषा में मानव-समाज तक पहुँचाने का प्रयत्न करने लगे। नील रत्नाकर भी रात-भर की परेशानी के बाद क्लांत होकर निष्पंद हो गया था। प्रकृति उस रात के तूफ़ान को भूलकर नव क्रीड़ा में लीन होने की तैयारी में लग गई।

स्वामी गिरिजानंद मुग्ध होकर प्रकृति का वह सुख-साज देख रहे थे। वह इस समय कुछ भावुक-से मालूम होते थे। उनके शरीर की रोमावलि खड़ी होकर उनके मन के भावों को समझने का प्रयत्न कर रही थी। वह देख रहे थे कि कैसे प्रभात की किरणें अंधकार का नाश करती हैं—वह क्षीण रेखा किस प्रकार धीरे-धीरे आकाश को भेदती हुई पश्चिम के अंधकार में लीन हो रही थी। उषा का मनोहर नृत्य आकाश को ही नहीं चकित कर रहा था, वरन् सागर को भी चैतन्य करने के लिये उपक्रम कर रहा था। प्रकृति का वह दृश्य वास्तव में सुहावना था।

जैसे ही जहाज़ ने लंगर उठाया, उनका मन एक नवीन आह्लाद से मुखरित हो उठा। उनका प्रेम मातृभूमि के प्रति प्रकट होने लगा। उन्होंने नत-जानु होकर जननी-जन्म-भूमि को प्रणाम किया। वह प्रेम द्रवित होकर आँखों से स्वतः बाहर निकलने लगा। स्वदेश त्याग करने का यह पहला अवसर उनके जीवन में नहीं था,

फिर भी न जाने क्यों आज वह विशेष रूप से मर्माहत हुए थे। इस बार का जाना निरुद्देश है, पहले किसी कार्य से होता था। परंतु आज तो केवल किसी अनजान और अदृश्य शक्ति से खिंचकर जा रहे थे। कौन कह सकता है, उनके भविष्य-जीवन में क्या है। उन्होंने गद्गद कंठ से 'वंदेमातरम्' का घोष कर प्रणाम किया। जननी-जन्म-भूमि ने अपना आशीर्वाद एक क्षीण प्रतिध्वनि के साथ दिया।

पूर्व दिशा की आलोक-रेखा शनैः-शनैः बृहत्काय हो रही थी। उषा का नृत्य समाप्त हो चुका था, और अब प्रकाश अपने श्वेत अश्व पर सवार होकर नक़ीब की तरह सूर्य भगवान् के आगमन का संदेश कहता हुआ पश्चिम दिशा को जा रहा था। जहाज़ अब किनारे से बहुत दूर आ गया था, और पृथ्वी का तट किसी ओर भी नहीं दिखाई पड़ता था। प्रकाश की आभा के साथ नील रत्नाकर का वर्ण सुंदर धूमिल दृष्टिगोचर होता था। सागर के वक्ष पर नाचती हुई लहरें उत्कंठा के साथ अंशुमाली की प्रतीक्षा में अधीर होकर, बार-बार जहाज़ से टकराती और झूमकर फिर गिर पड़तीं। स्वामी गिरिजानंद यह दृश्य देखकर हँस पड़े।

पंडित मनमोहननाथ ने पास आकर कहा—"क्या है स्वामीजी, आपके हँसने का क्या कारण?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हँस रहा हूँ मैं मनुष्य-जाति के मिथ्या अभिमान पर। आजकल थोड़ी वैज्ञानिक उन्नति ने अहंकार के पुतले मनुष्य को कितना मदांध बना रक्खा है। कल ही प्रकृति का केवल एक अनुचर, नगण्य सेवक वायु, अपने साधारण प्रगति मार्ग से जुदा हुआ, और एक प्रलय-काल की भयंकर अवस्था उपस्थित हो गई। मनुष्य का वह दर्प क्षण-भर ही में नष्ट हो गया। न-मालूम कल कितने जीव अपने जीर्ण कलेवर को छोड़कर

नवीन शरीर में प्रविष्ट हुए। क्षुद्र मनुष्य फिर भी प्रकृति का शासक होने या उसे ग़ुलाम बनाने की डींग मारता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराते हुए कहा—"आज तो आप बड़े भावुक मालूम होते हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने एक क्षीण मुस्कान-सहित कहा—"नहीं, भावुक तो नहीं हूँ। अगर सत्य को स्पष्ट रूप से कहना भावुकता है, तो बेशक मैं भावुक हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"प्रकृति और मनुष्य का झगड़ा कुछ नया नहीं। सृष्टि के आदि से इन दो शक्तियों में विरोध चला आ रहा है। कभी किसी की जीत होती है, और कभी किसी की। कभी तो मनुष्य अपनी शक्तियों से इसे अपना ग़ुलाम बना लेता है, और कभी प्रकृति अपनी शक्तियों से मनुष्य का नाश कर देती है। इस संघर्ष का नाम ही सृष्टि है, जीवन है, और विनाश है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"अच्छा, मैं यह स्वीकार करता हूँ, परंतु मैं आपसे यह पूछता हूँ कि तूफ़ान रोकने का कौन-सा साधन मनुष्य के पास है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यदि मनुष्य ने ऐसे यंत्रों का आविष्कार कर लिया है, जो उसके आगमन की सूचना घंटों पहले बतला देते हैं, तो बहुत शीघ्र ही इसके निवारण का उपाय भी वही मनुष्य निकट भविष्य में कर लेगा। यह भी संभव है कि वह इच्छा-नुसार तूफ़ान प्रकट करे, और उन्हें अंतर्हित कर दे। इच्छानुसार पानी बरसा ले, और बंद कर दे।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह सब संभव। परंतु क्या वह प्रकृति के रौद्र रूप या तांडव-नृत्य को बंद कर सकता है?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"कौन कह सकता है कि वह आगे समर्थ न होगा। शक्ति का ह्रास कभी नहीं होता।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"दरअसल बात यह है कि जब तक मनुष्य प्रकृति का सहयोग मित्र भाव से न प्राप्त करेगा, तब तक उसका कल्याण नहीं। जितने भी आविष्कार हुए हैं, वे प्रकृति के सहयोग से चलते हैं। जहाँ प्रकृति से असहयोग हुआ, वे आविष्कार बिलकुल व्यर्थ हो जाते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जिसे आप सहयोग कहते हैं, उसे मैं ग़ुलामी कहता हूँ। प्रकृति मनुष्य के साथ उसी हालत में सहयोग करेगी, जब ग़ुलाम बना ली जायगी।"

इसी समय अमीलिया ने आकर कहा—"कल तूफ़ान बड़ा ज़बर-दस्त था। जैसा पापा कहते थे, वैसा ही भयंकर था।"

स्वामी गिरिजानंद ने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—"तुम्हारे पापा बड़े अनुभवी पुरुष हैं, मिस जेकब्स।"

अमीलिया अपने पिता की प्रशंसा से प्रसन्न होकर बोली—"जी हाँ, उनका सारा जीवन समुद्र में बीता है। वह एक महीने से ज़्यादा पृथ्वी पर कभी नहीं रहे। समुद्री हवा से उनका सारा शरीर समुद्र की तरह खारा हो गया है।" यह कहकर वह हँसने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने हँसते हुए कहा—"उनका शरीर खारा तो हो गया, लेकिन स्वभाव तो मीठा है।"

अमीलिया ने मुस्किराते हुए कहा—"हाँ, स्वभाव तो बड़ा ही प्रेममय है। ऐसा पिता होना मुश्किल है।"

स्वामी गिरिजानंद ने पूछा—"तो क्या तुम्हारे पिता तुम्हें बहुत प्यार करते हैं?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"जी हाँ, वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अगर हम लोग कल समुद्र में तूफ़ान के वक़्त होते, तो हम पर बड़ी विपत्ति आती।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"इसमें क्या शक है। न-मालूम क्या होता।"

अमीलिया ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"मुझे तो यक़ीन है, पापा किसी-न-किसी तरह ज़रूर सँभाल लेते। वह मुझसे कई ऐसे तूफ़ानों का ज़िक्र कर चुके हैं, जिनमें से सफलता-पूर्वक वह निकल आए। तूफ़ान से लड़ने की उनमें अपूर्व क्षमता है।

किसी ने थोड़ी देर तक कुछ न कहा। तीनो शांत होकर सूर्य का उदय देखने लगे।

थोड़ी देर बाद अमीलिया ने पूछा—"मिस्टर भारतेंदु क्या न आएँगे? वह क्या हमेशा भारत में रहेंगे?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"भारतेंदु तीन-चार महीने में आएगा। तुमसे उसका साक्षात् हुए बहुत दिन हो गए।"

अमीलिया ने अपने मन की आह छिपाते हुए कहा—"जी हाँ, बहुत दिन हो गए। मा के मरने के बाद जब मैं फ़िज़ी आकर कुछ दिन आपके यहाँ रही थी, तब उन्हें देखा था, और फिर उनके भारत चले जाने के बाद आज तक नहीं देखा। एक बार जब वह फ़िज़ी आए थे, तब मैं आस्ट्रेलिया में पढ़ती थी।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मेरे जाने पर उसने तुम्हारी कुशलता का हाल तो दरियाफ़्त किया था। अमीलिया, यह जानकर तुम्हें प्रसन्नता होगी कि आगामी वर्ष तक उसका विवाह होनेवाला है।"

अमीलिया ने अपने मन की वेदना छिपाने का बहुत यत्न किया, परंतु मुख विवर्ण हो ही गया। उसने रेलिंग का सहारा लेकर अपने को सँभाल लिया। स्वामी गिरिजानंद की तेज़ निगाहों से कुछ बच न सका। उन्होंने करुणा-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा।

पंडित मनमोहननाथ ने अमीलिया की घबराहट देखकर पूछा—"क्या बात है अमीलिया? क्या कुछ तबियत ख़राब है?"

अमीलिया ने आत्मदमन करते हुए कहा—"जी हाँ, तबियत मेरी कई दिनों से ख़राब है। मैं अब जाकर आराम करूँगी। क्षमा कीजिएगा।" यह कहकर अमीलिया तेज़ी के साथ चलकर अदृश्य हो गई।

स्वामी गिरिजानंद ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"विचित्र लड़की है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जी हाँ, यह बड़ी भावुक है। इसे संगीत और कविता से प्रेम है। स्वयं भी कुछ गीत लिखती और उन्हें गाती है। बड़ी ही सरस और सहृदय है। एक बार भारतेंदु फ़िज़ी में बहुत बीमार पड़ गया था, उसके बचने की आशा न थी। अमीलिया उन दिनों मेरे यहाँ रहती थी। इसने बड़ी तत्परता से उसकी सेवा-शुश्रूषा की थी। मैं तो यही कहूँगा कि इसकी सेवा से भारतेंदु पुनर्जीवित हुआ था। तब से मैं भी इसे अपनी कन्या के समान मानता हूँ।"

स्वामी गिरिजानंद ने पूछा—"यह कितने दिनों की बात है?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यही चार-पाँच वर्षों की बात है। भारतेंदु के भारत जाने के पहले की बात है, उस समय उसकी अवस्था लगभग १६ वर्ष के होगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने केवल अस्फुट स्वर में कहा—"हूँ।"

दोपहर तक जहाज़ बंगाल की खाड़ी के मध्य भाग में पहुँच गया। जहाज़ बड़ी तेज़ी से जा रहा था, छोटा होने से वह बड़ी शीघ्रता से जल-राशि को काटता हुआ चला जाता था।

पंडित मनमोहननाथ और स्वामी गिरिजानंद एक ही कमरे में बैठे हुए भोजन कर रहे थे कि कैप्टेन एल्फ्रेड जैकब्स ने आकर कहा—"थोड़ी दूर पर एक छोटी नाव बही जा रही है, जिसमें केवल दो स्त्रियाँ मालूम होती हैं। मुझे तो ऐसा विदित होता है

कि कल के तूफ़ान में कोई जहाज़ डूब गया है, और केवल ईश्वर की इच्छा से ये दो स्त्रियाँ उस डूबे हुए जहाज़ की ख़बर बताने के लिये जीवित बच रही हैं। मैंने एक नौका, उन लोगों को लेने के लिये चतुर नाविकों के साथ भेजी है।"

पंडित मनमोहननाथ भोजन समाप्त कर चुके थे। उन्होंने केबिन के बाहर निकलते हुए कहा—"यह काम तुमने बड़ा अच्छा किया कैप्टेन। जहाज़ को ठहरा देना वाजिब होगा, और एक दूसरी नाव उनकी सहायता के लिये भेज दो।"

स्वामी गिरिजानंद और वह दोनों डेक पर आकर उस नाव को देखने लगे, जिस पर प्रलयकारी तूफ़ान से बचकर माधवी और राधा किसी तरह दस-बारह घंटे से अपनी जीवन-रक्षा कर रही थीं। माधवी तो अब तक बेहोश थी, लेकिन राधा प्यास से तड़पती रही थी। उसके पास पीनेवाला एक बूँद पानी न था। उसने दो चार प्यास की तड़पन से समुद्री जल पीना चाहा, परंतु एक घूँट मुँह में लेते ही उसे तुरंत उगलना पड़ा। क्षार से उसकी प्यास और बढ़ गई।

पंडित मनमोहननाथ के जहाज़ को जाते देखकर उसने अपनी श्वेत धोती का पल्ला हिलाया, जिसे कप्तान जैकब्स ने देख लिया, और सहायता के लिये नाव भेज दी।

पंडित मनमोहननाथ देखने लगे—उनकी नाव उस छोटी-सी नाव के पास पहुँच गई, और दूसरे ही क्षण उन दो स्त्रियों को उठाकर उसमें बिठा दिया गया, और वह उसे लेकर आने लगी। थोड़ी देर में राधा, अचेत माधवी के साथ, जहाज़ पर आ गई। जहाज़ पर आते ही उसने पानी माँगा। पानी पीने से वह कुछ स्वस्थ हुई। स्वस्थ होने पर वह पंडित मनमोहननाथ के सामने लाई गई। उन्होंने बड़ी करुण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा—"देवी, तुम कौन हो, और किस तरह इस मुसीबत में फँस गई?"

राधा ने धीमे स्वर में कहा—"मैं कौन हूँ, इसका परिचय तो बाद में दूँगी। इस समय इतना ही कहना काफ़ी होगा कि हम लोग कल कलकत्ता से रवाना हुए थे, और फ़िज़ी जा रहे थे। रास्ते में शाम को एक भयंकर तूफ़ान आया, जिससे हमारा जहाज़ डूब गया, और मैं सिर्फ़ एक दूसरी स्त्री के साथ बची हूँ। वह दूसरी स्त्री सिर में चोट लग जाने से बेहोश है। उसका इलाज शीघ्र होना चाहिए।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"क्या तुम भारत की रहनेवाली नहीं हो?"

राधा ने जवाब दिया—"हूँ तो मैं भारतीय, परंतु मेरा जन्म फ़िज़ी में हुआ है! वहाँ भारतीय स्त्रियाँ लाने की जो गुप्त संस्था है, उसकी नौकर हूँ। वह संस्था भारत से स्त्रियों को लाती है, और उन्हें फ़िज़ी तथा आस-पास के द्वीप-समूह में बेचने का व्यवसाय करती है। पेट की ज्वाला शांत करने के लिये यह नीच व्यवसाय मुझे करना पड़ता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने भ्रू कुंचित करके पूछा—"वह स्त्री, जो तुम्हारे साथ है, कौन है?"

राधा ने निस्संकोच कहा—"वह भारत से भगाई हुई एक सुंदरी है, जो ग़ुलाम बनाकर कहीं बेची जाती।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"वह जहाज़ किसका था, और उसमें कितने आरोही थे?"

राधा ने जवाब दिया—"वह डीपोवाला जहाज़ था, और उसमें नाविक और ख़रीदे हुए ग़ुलाम मिलाकर लगभग २०० मनुष्य थे। वे सब-के-सब मय कप्तान के डूब गए।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"चलो, यह अच्छा हुआ। पाप के व्यापार का अंत शुभ ही हुआ है।"

उनके मुख पर व्यंग्य की एक अद्भुत हास्य-रेखा थी।

---

# द्वितीय खंड

# १

उस दिन से आभा ने भारतेंदु से बोलना बंद कर दिया। अगर वह सामने पड़ते, तो वह तुरंत आँखों से ओट हो जाती। डॉक्टर नीलकंठ ने इस ओर कुछ ध्यान न दिया। वह तमाम दिन अपनी पुस्तकें लेकर उन्हीं में लीन रहते। अलबत्ता उसकी धाय गंगा ने इसे लक्ष्य किया। डॉक्टर नीलकंठ ने आभा और भारतेंदु के विवाह-संबंध की सारी बातें उसे बता दी थीं, और वह उसकी स्वीकृति भी ले चुके थे।

एक दिन गंगा ने आभा को एकांत में देखकर कहा—"क्यों रानी, तुम आजकल हम सब लोगों से छिटकी-छिटकी क्यों रहती हो?"

आभा ने झिड़ककर कहा—"चुप रहो। हमेशा बेसिर-पैर की बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैं क्या किसी की नौकर हूँ, जो हर वक़्त हाज़िरी में खड़ी रहूँ।"

गंगा ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम क्यों किसी की नौकर होगी? मैं नौकर होने की बात कब कहती हूँ। नौकर तो मैं हूँ।"

आभा ने सरोष कहा—"तुम नौकर होतीं, तो इस तरह सिर न चढ़तीं।"

गंगा के दिल में आभा की बात लग गई। उसने अपना मुख फिरा लिया।

आभा ने अपने दोनों हाथ उसके गले में डाल दिए, और प्रेम के साथ उसके हृदय से लग गई। गंगा का सारा अभिमान उसी क्षण गलकर बह गया।

उसने आभा को हटाते हुए कहा—"अरे, क्या करती हो! कोई नौकर को इस तरह सिर चढ़ाता है।"

आभा ने उसे छोड़ा नहीं। वह और ज़ोर के साथ उससे चिपट गई।

गंगा ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"रानी, तेरा लड़कपन अभी तक नहीं गया। अगर तेरा विवाह हो गया होता, तो तू अब तक चार बच्चों की मा होती। देखती हूँ, नाती खिलाने की साध लेकर चली जाऊँगी।"

आभा ने मंद मुस्कान-सहित कहा—"तुम अभी नहीं मरोगी। मुझे मारकर मरोगी।"

गंगा ने सक्रोध कहा—"अगर ऐसी बात फिर कभी मुँह से निकाली, तो मैं सच कहती हूँ, गोमती में जाकर डूब मरूँगी। मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। बिटिया (आभा की मा) की तरह मैं भी तुम्हारे सामने मर जाऊँ, तो मेरा जन्म सुधर जाय। अब तो सिर्फ़ एक हवस बाक़ी है, वह तुम्हारे विवाह की। बिटिया मरते-मरते कह गई थीं कि मेरी रानी का विवाह तुम बड़ी धूमधाम से करना, मैं स्वर्ग से देखने आऊँगी। बिटिया जानती थीं कि बाबू-जी (डॉक्टर नीलकंठ) अपना दूसरा विवाह कर लेंगे, इसलिये तेरे लिये बहुत दुःखित रहती थीं। मैं हज़ार कहती कि वह दूसरा विवाह नहीं करेंगे, मगर वह कहतीं कि पुरुष का विश्वास नहीं, न-मालूम कब क्या कर बैठे।"

आभा ने पूछा—"क्यों धाय मा, क्या सचमुच पुरुषों का विश्वास न करना चाहिए?'

गंगा ने हँसकर कहा—"क्यों, विश्वास क्यों न करना चाहिए?"

आभा ने सहज भोलेपन से कहा—"तो फिर अम्मा क्यों कहती थीं? वह पापा का विश्वास क्यों नहीं करती थीं?"

गंगा ने गंभीर मुद्रा से कहा—"रानी, उनकी बात जाने दो। यह बात नहीं कि वह बाबूजी का विश्वास न करती हों, उनके

कहने का मतलब यह था कि अगर कहीं उन्होंने विवाह कर लिया, तो फिर तुम्हारी दुर्दशा होगी।"

आभा ने पूछा—"क्यों, मेरी दुर्दशा क्यों होती?"

गंगा ने उत्तर दिया—"अरे पगली, तेरी सौतेली मा आती, तो वह तेरा निरादर करती।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"वह मेरा निरादर क्यों करतीं। क्या मैं उनकी बेटी न होती।"

गंगा ने उकताकर कहा—"अरे, बेटी होने से क्या, उनकी कोख से तो उत्पन्न न होती। अभी तुझे क्या मालूम, जब होगा, तब जान पड़ेगा। स्त्री-जाति को जितना अपना लड़का प्यारा होता है, उतना दूसरे का नहीं।"

आभा ने शरारत-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"तो फिर तुम मुझे क्यों इतना अधिक प्यार करती हो, मैं तो तुम्हारी कोख से पैदा नहीं हुई। तुम तो मेरे लिये अपनी जान भी दे सकती हो।"

गंगा ने एक हलकी चपत आभा के गाल पर जमाते हुए कहा—"मेरी और उन लोगों की बराबरी है! अरे, मैं तो तुम्हारी नौकर हूँ और बिटिया की नौकर थी। मैं तो तुम्हें इस तरह प्यार करती हूँ, जैसे नौकर अपने स्वामी को करता है।"

आभा ने सरोष कहा—"मेरे मुँह से एक मर्तबे नौकर निकल गया, बस, मेरे पीछे पड़ गई। अरे भाई, तुम मेरी नौकर नहीं, नहीं, नहीं, अब तो संतुष्ट हो।"

गंगा ने हँसते हुए कहा—"रानी, सत्य ही मेरी हैसियत एक नौकर के अतिरिक्त और क्या है? मेरा न तो तुझ पर ज़ोर है, और न इस घर में ही कुछ अधिकार है। अगर बाबूजी आज घर से निकाल दें, तो तुरंत जाना पड़ेगा।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम क्या, भारत की समस्त

स्त्री-जाति ग़ुलाम से भी गई-बीती है। यहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के आश्रित रहती चली आई हैं, इसीलिये तो उनकी ऐसी शोचनीय दशा है। अगर स्त्रियाँ भी स्वावलंबिनी हो जायँ, तो पुरुषों की क्या मजाल, जो उन पर अत्याचार करें। इसीलिये तो अब हम लोग आंदोलन कर रही हैं। हम पुरुषों के अधीन न रहेंगी।"

गंगा ने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारी बातें नहीं समझती कि तुम क्या कहती हो? मैं तो यही जानती हूँ कि स्त्री और पुरुष दोनो के संयुक्त जीवन का नाम गृहस्थी है, संसार है। जहाँ दोनो में भेद पड़ा, वहाँ सिवा अशांति और कलह के कुछ नहीं। स्त्रियों का जीवन तभी सफल है, जब वे मनुष्य-मात्र की सेवा करें। स्त्री माता के रूप में संसार की पालक है, बहन के रूप में स्नेह को खींचनेवाली है और पत्नी के रूप में सृष्टिकर्ता है। बस, इतना ही मेरा ज्ञान है। मैं पुरुषों से लड़ना नहीं चाहती, और न तुम्हें ऐसा करने के लिये उपदेश देती हूँ। तुम बहुत पढ़ी-लिखी हो, मैं तुम्हें क्या सिखलाऊँगी, परंतु मेरी एक बात गाँठ बाँध रखना। वह यह कि कभी व्यर्थ की बातों में उलझकर अपना जीवन नष्ट न करना, बैठे-बिठाए घर में अशांति न बुलाना। जिस प्रकार स्त्री पुरुष की ग़ुलाम है, उसी तरह पुरुष भी स्त्रियों के ग़ुलाम हैं। दोनो का अधिकार समान है, ज़िम्मेवारी बराबर है। कोई भी एक दूसरे से कम और बढ़कर नहीं।"

आभा ने हँसकर कहा—"अरे, वाह! धाय मा, यह तो मुझे आज मालूम हुआ कि तुम छोटी-मोटी लेक्चरार हो। मैं तो तुम्हें अभी तक बिलकुल बुद्धू समझती थी, लेकिन मेरा ख़याल ग़लत है। यह तो बतलाओ, ये बातें तुमने कहाँ सीखीं?"

गंगा ने उत्तर दिया—"नए पैदा हुए बालक को कौन मा का दूध पीना सिखलाता है? तुम कहोगी कि वह अपने आप सीख जाता

है। ठीक उसी तरह किसी के अधिकार बतलाने या सिखाने से नहीं जाने जाते, उन्हें तो मनुष्य स्वभावतः जानता है। रह गया लेक्चर देने के बारे में, सो लेक्चर तो वही देगा, जो बी० ए०, एम्० ए० पास हो। हम-जैसी मूर्खा स्त्रियाँ क्या लेक्चर देंगी।"

आभा ने प्रशंसा-पूर्ण शब्दों में कहा—"नहीं धाय मा, मैं सत्य कहती हूँ, तुमने ये बातें कहाँ और किससे सीखीं। बड़ी ही प्रभाव-जनक हैं।"

गंगा ने उठते हुए कहा—"बिटिया अक्सर कहा करती थीं। उन्हें भी इन बातों से शौक़ था। वह सभा वग़ैरा में बहुत जाती थीं, और उनके साथ मैं भी जाती थी। रानी, तुम्हारी मा सचमुच देवी थीं। वह तो न-मालूम किस अपराध से मनुष्य होकर पैदा हुई थीं। उन्हें जिसने देखा है, उसी ने सराहा है। देखो, आज सोलह साल हो गए हैं, और आज तक मैंने बाबूजी के चेहरे पर वैसी हँसी नहीं देखी, जैसी उनके सामने देखती थी। उनके मरने के बाद वह तो एकदम संसार त्यागी हो गए हैं। सिर्फ़ एक तुम्हारा बंधन है, जिससे वह संसार में बैठे हैं, नहीं तो कब के संन्यासी हो गए होते। और, संन्यासी होने में बाक़ी ही क्या है। कॉलेज जाने के अतिरिक्त मैं उन्हें कहीं आते-जाते नहीं देखती।"

आभा ने कहा—"हाँ, सचमुच धाय मा, वह कहीं नहीं जाते।"

गंगा उत्साह के साथ कहने लगी—"क्या मैं झूठ कहती हूँ। ऐसा पुरुष भी दुनिया में ढूँढ़ने से न मिलेगा। पहले वह बड़े हँस-मुख थे। रात-दिन बिटिया से छेड़ख़ानी लगाए रहते थे, लेकिन जिस दिन से उनकी आँखें बंद हुईं, वह हँसी भी उसी दिन से बंद हो गई। आज सोलह साल से मैं वह हँसी देखने के लिये तरस गई हूँ। अब सिर्फ़ किताबें-ही-किताबें हैं। पहले महीनों कोई किताब न उठाई जाती। हाँ, जब बिटिया कुछ लेकर पढ़ने लगतीं, तो यह

भी कुछ पढ़ते थे, और ज़्यादा देर तक वह भी नहीं। एक ही दो पन्ना पढ़ने के बाद वह ज़बरदस्ती किताब उठाकर फेंक देते, फिर दोनो में बड़ा झगड़ा होता। हाय वे कितने सुख के दिन थे!"

कहते-कहते गंगा की आँखों से अतीत की श्रद्धांजलि में दो आँसू ढुलक पड़े।

गंगा फिर कहने लगी—"बिटिया शायद उनका हँसमुख स्वभाव देखकर ही कहती थीं कि वह दूसरा विवाह कर लेंगे। लेकिन विवाह करने को कौन कहे, वह किसी दूसरे के विवाह में शामिल तक न हुए। जवान से एकदम बूढ़े हो गए। कोई विधवा क्या इस तरह जीवन व्यतीत करेगी। देखती हो, आजकल उनका शरीर कैसा सूख-कर काँटा हो गया है। चेहरे पर कितना पीलापन छाया हुआ है। क्या समझती हो कि वह पहले भी ऐसे थे? अब क्या रह गया है, पहले अपनी मा के सामने देखतीं। इंगुर-जैसी लाल देह रक्खी थी। बिटिया और उनकी जोडी भी ख़ूब मिली थी। दोनो एक दूसरे से ज़्यादा सुंदर थे। अब क्या रह गया है। ज़िंदा हैं, बस इतनी ही ख़ैरियत है। रानी, मैं तुम्हें क्या बताऊँ। अगर सारा हाल कहने बैठूँ, तो तमाम ज़िंदगी ख़त्म हो जायगी, और फिर भी बहुत-सी बातें बाक़ी रह जायँगी। उस दिन कहते थे, आभा का विवाह हो जाय, बस, हरिद्वार या किसी अन्य स्थान में जाकर रहेंगे। बिटिया की याद कर कहने लगे—"चाची, अभी तक उसकी याद नहीं भूलती।" कहते-कहते रोने लगे, और थाली वैसे ही छोड़कर उठ गए। एक कौर भी नहीं खाया। मैंने बहुत समझाया, मगर उनसे खाया नहीं गया। रानी, यह भी कोई भूले-भटके देवता हैं।"

कहते-कहते गंगा की आँखों से अजस्र अश्रु-धारा बहने लगी। आभा की भी आँखें आर्द्र हो गईं। गंगा अपनी आँखें पोछती हुई अंदर चली गई।

---

## २

डॉक्टर नीलकंठ ने प्रेम के साथ कहा—"आभा, केवल तुम्हारी प्रसन्नता ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। तुम्हारी मा को मरते समय यही चिंता थी, और इसी उधेड़-बुन में फँस जाने के कारण उसके प्राण निकलने में पूरे साढ़े तीन घंटे लगे थे। उसकी तड़पन देखकर दुश्मन का भी कलेजा काँप उठता, और उसे भी दया आती। वह भयानक दृश्य अभी तक मेरी आँखों के सामने अहर्निश रहता है। मैंने उस समय गंगाजल लेकर क़सम खाई थी कि आभा को मैं कुछ भी कष्ट न होने दूँगा, तब उसके प्राण शरीर से निकले थे। मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ, इसलिये यह चाहता हूँ कि मेरे सामने तुम्हारा विवाह हो जाय, और तुम सुख से गृहस्था-श्रम में प्रवेश करो।"

आभा का चेहरा लाल हुआ जा रहा था, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर नीलकंठ ने सस्नेह उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम्हारी मा के न होने से उसका भार मेरे ऊपर है। अगर तुम अपने हृदय का भेद मुझसे छिपाओगी, तो तुम भी अपना कर्तव्य पालन न करोगी। विवाह का विषय ऐसा है, जिसमें ज़रा भी लज्जा या संकोच करने से तमाम उम्र पछताना पड़ता है। मैंने तुम्हें इसी-लिये शिक्षित किया है, ताकि तुम्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो और अपनी ज़िम्मेदारी समझ सको। मैं इस समय तुम्हारा पिता नहीं, बल्कि मित्र हूँ। तुम खुलकर बिना किसी लज्जा के अपना मंतव्य और अपने विचार प्रकट कर सकती हो। कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी भ्रम में पड़कर अपना और मेरा सुख और संतोष नष्ट कर डालो।"

आभा ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"यह चित्र जो तुम्हारे सामने है, उस देवी का है, जिससे मैंने अकथनीय अनुराग और सुख पाया है, जिसकी स्मृति तुम्हारे में सन्निहित है। तुम उसके बड़े ही आदर और प्यार की वस्तु थीं। वह तुम्हें लिए हुए रात-दिन हर्ष से नाचती फिरती थी। मैं नहीं जानता कि कोई दूसरी मा अपनी संतान को उससे अधिक प्यार कर सकती है। उसके प्रति भी तुम्हारा कर्तव्य है, हालाँकि वह इस समय इस लोक में नहीं है, परंतु उसकी पवित्र स्मृति तो है। यदि तुम्हें जीवन में ज़रा भी कष्ट हुआ, तो वह उस लोक में भी सुखी न होगी। कौन जानता है, इस अनंत ब्रह्मांड में वह कहाँ है? परंतु वह जहाँ भी है, वहाँ से हमें और तुम्हें बराबर देख रही है। उसका अस्तित्व मैं सदैव अपनी आत्मा के सन्निकट ही अनुभव करता हूँ........।"

कहते-कहते डॉक्टर नीलकंठ के नेत्रों से वर्षों की घनीभूत पीड़ा मर्माहत होकर बाहर निकलने लगी।

आभा ने रोते हुए कहा—"पापा, पापा, यह क्या?"

आवेग ने उनका कंठ अवरुद्ध कर दिया। पिता पुत्री को सांत्वना देने लगा।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"आभा, मैं बहुत भीरु हो गया हूँ। उसका स्मरण होते ही प्राण रोने का प्रयत्न करने लगते हैं। हाँ आभा, तुम उसकी धरोहर हो, मैं तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ, अब तुम्हारी अवस्था १८ वर्ष की है। काफ़ी शिक्षित भी हो चुकी हो। मैंने अब तक तुम्हारा विवाह इसी हेतु से नहीं किया, जिसमें तुम अपना वर स्वयं निश्चित कर सको। अब वह समय आ गया है, अब तुम गृहस्थ-धर्म का पालन करो। तुम्हारा विवाह कर देने के बाद मैं हरिद्वार या चित्रकूट में रहना चाहता हूँ।"

आभा ने अपने को संवरण करते हुए कहा—"मैं विवाह नहीं करूँगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने विस्मित कंठ से पूछा—"क्या तुम विवाह नहीं करोगी?"

आभा ने दृढ़ कंठ से कहा—"हाँ, मैं विवाह करके अपने पिता को खोना नहीं चाहती।"

डॉक्टर नीलकंठ ने हँसकर कहा—"केवल इसीलिये विवाह नहीं करोगी। ख़ैर, तो मैं कहीं नहीं जाऊँगा। अब तो विवाह करोगी?"

आभा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर नीलकंठ ने प्रसन्न होकर कहा—"हिंदू-समाज में रहकर विवाह तो करना ही पड़ता है, और फिर तुम्हारे विवाह की साध ही एक ऐसी साध है, जिसे मैं अपने सामने पूर्ण करना चाहता हूँ। तुम्हारी मा तो यह साध लेकर चली ही गई, कहीं ऐसा न हो, मैं भी उसे पूर्ण न कर सकूँ।"

आभा अविचलित पलकों से अपनी मा का तैल-चित्र देखने लगी। डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"मैंने तुम्हारा वर मनोनीत कर लिया है। स्वामीजी और चाची की भी सम्मति मिल गई है। वह सब तरह से शिक्षित, सच्चरित्र और प्रतिभावान् व्यक्ति है। वह एक विशाल संपत्ति का स्वामी भी होगा। वह सब प्रकार से तुम्हारे योग्य है। अगर उसमें कोई दोष है, तो वह यह कि वर्तमान हिंदू-समाज से वह बहिर्गत है। लेकिन एक तरह मैं भी समाज से बहिष्कृत हूँ। मैं इँगलैंड हो आया हूँ, इससे मेरी जातिवालों ने मुझसे संबंध-विच्छेद कर लिया है। इसी सबब से कोई कनौजिया मेरे यहाँ नहीं आता, और न मैं ही किसी के यहाँ जाता हूँ। मैंने अपनी जाति के सुधारने का बहुतेरा यत्न किया, परंतु सब निष्फल

हुआ। मैं उस ओर से निराश हो चुका हूँ, और अब उस ओर जाना भी नहीं चाहता, जहाँ सिवा मूर्खता और पशुत्व के कोई दूसरा आकर्षण नहीं है। मैं अब जाति-पाँति के बंधनों को छोड़कर विशाल हिंदू-समाज में प्रवेश करना चाहता हूँ, पारस्परिक घृणा और तिरस्कार को त्यागना चाहता हूँ। इसीलिये आभा, मैंने भारतेंदु को तुम्हारा भावी पति बनाना विचार किया है। भारतेंदु को तुम जानती हो, और भी उसे निकट से जान सकती हो। अगर इसमें तुम्हारा अभिमत हो, तो ठीक है, नहीं कोई दूसरा पात्र खोजूँ।"

आभा कोई उत्तर न दे सकी, केवल उसके सहजारुण कपोल कुछ विशेष रक्ताभ हो गए।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"तुम्हारा मौन शायद सम्मति का ही लक्षण है। भारतेंदु एक प्रतिभावान् व्यक्ति है। और मैं उससे बहुत आशाएँ रखता हूँ। अगर उसके पिता का धन भी उसे न मिले, तो वह संसार में एक सफल पुरुष होगा। मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है ही। किसी युवक में मैं जिस बात को देखना पसंद करता हूँ, वह है सच्चरित्रता। वही प्रचुर मात्रा में भारतेंदु के पास है। पंडित मनमोहननाथ से मैं यह प्रस्ताव कर चुका हूँ, उन्हें भी कोई आपत्ति नहीं। अब सिर्फ़ यह ज़रूरी है कि तुम भारतेंदु को समझ लो, और वह तुम्हें। यदि तुम्हें विवाह करने में कोई आपत्ति हो, तो उसकी सूचना मुझे दे सकती हो। अगर मुझसे न कह सको, तो अपनी धाय मा से कह सकती हो।"

यह कहकर डॉक्टर नीलकंठ चले गए।

आभा सिर झुकाए बैठी रही। लज्जा से उसका बुरा हाल था, उसके कपोलों पर हृदय के सवेग धड़कन से तूफ़ान के वेग की तरह उद्वेलित रक्त स्रोत उमड़-उमड़कर इकट्ठा हो रहा था। उसकी

श्वास और निःश्वास दोनो इतने वेग से अंदर और बाहर आ-जा रही थी, मानो कोई व्यक्ति सवेग धौंकनी धौंक रहा हो। उसका सिर पसीने की बूँदों से भर गया।

इसी समय गंगा ने आकर कहा—"रानी, क्या आज खाना नहीं खाओगी? महराजिन कब से तुम्हारा इंतज़ार कर रही हैं।"

आभा ने सिर हिलाकर कहा—"महराजिन से कह दो, चली जायँ। मैं अभी नहीं खाऊँगी।"

गंगा ने मुस्किराकर कहा—"देखो, शादी की बातचीत ऐसी होती है कि भूख-प्यास सब हर जाती है।"

आभा ने सवेग कहा—"तुम्हारी बातचीत हमेशा बेसिर-पैर की होती है। जाओ, अभी मुझे दिक़ न करो। कह दिया कि मैं नहीं खाऊँगी।"

गंगा कमरे के बाहर चली गई।

आभा सोचने लगी—"विवाह करना होगा। विवाह जीवन का विकास है, और कहीं-कहीं, यह जीवन का अंत भी है। यह तो मैं भी जानती थी कि उनके साथ विवाह की बातचीत चल रही है। उस दिन स्टेशन पर जब मैंने उनके पिता को प्रणाम किया था, तो उनके आशीर्वाद से कितना प्रेम प्रकट हो रहा था। अब भी मुझसे प्रेम करते हैं, लेकिन खुलकर कुछ कहते नहीं। जब वही कुछ नहीं कहते, तो मैं कैसे कहूँ। उस दिन उन्होंने जान-बूझकर मेरी अवहेलना की, और बाद में किस तरह मुझे परेशान किया। क्या यह उनके प्रेम का प्रमाण है?

"उनकी सच्चरित्रता के बारे में पापा को विश्वास है, मुझे भी है। दो वर्ष मैंने उनके साथ बिताए हैं, कभी कोई असत् बात उनके बारे में नहीं सुनी। वह तो अजात शत्रु हैं। कोई उनकी बुराई नहीं करता, प्रशंसा—केवल प्रशंसा सुनने में आती है। कल से वह

नहीं आए। शायद नाराज़ हो गए। वह रोज़ आते हैं, मगर मैं उनके पास नहीं जाती। तब वह कैसी कातर दृष्टि से मेरी ओर देखते हैं। मैं उनसे बात नहीं करती, इसी वजह से वह कल नहीं आए, और देखो, आज आते हैं या नहीं। मान लो, अगर नहीं आए, तो? क्या उन्हें मनाने के लिये जाना पड़ेगा? यही तो मुझसे नहीं होने का।

"विवाह क्या है? प्रेम को चिरस्थायी करने की मुहर का नाम विवाह है। विवाह दो हृदय के मिलन और उनकी युग्मता का नाम है। इस शब्द में कितना आनंद है। सत्य ही हृदय नाचने लगता है, भूख और प्यास कुछ नहीं लगती। यह जीवन की भूख है, जो एक समय आने पर सबको लगती है। युवक और युवती, दोनो ही इसके लिये लालायित रहते हैं। यह युग्म कितना मनोरम और कितना शांतिप्रद है। परंतु इस मनोहरता के पीछे एक बड़ी वेदना भी छिपी हुई है। यदि पति और पत्नी में कुछ भेद है, तो फिर दोनो का जीवन दुःखमय हो जाता है!

"पापा कहते हैं, मैं तुम्हें सुखी करना चाहता हूँ, और वास्तव में उनकी यही आंतरिक इच्छा है। परंतु सुखी और दुखी होना तो भाग्य के अधीन है। मैं इस विवाह से सुखी होऊँगी—यही कौन कह सकता है। हाँ, उनसे ऐसा भय तो नहीं है। वह जैसे उच्च और महत्-हृदय हैं, उनसे ऐसी ही आशा होती है—फिर आगे भगवान् जाने। मनुष्य को बदलते हुए केवल एक क्षण लगता है, और उसी क्षण में वह पूर्व-संचित यश, मान, प्रतिष्ठा, सब गवाँ देता है। क्या ऐसा क्षण उनके जीवन में आ सकता है।

"अभी तक मैंने इस विषय में उनसे कभी बात नहीं की—उनके जानने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। किस तरह उनके मन का भेद जानूँ? वह क्या मुझे प्यार करते हैं? अभी तो ऐसा मालूम

होता है, लेकिन आगे भी क्या इस तरह उनका प्रेम स्थिर रहेगा? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे? पुरुष-जाति बड़ी स्वार्थी होती है। वे नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा स्त्रियों को अपने मोह-पाश में बाँध लेते हैं, और फिर उन्हें दुरदुराकर दूर फेक देते हैं। आज तक न- मालूम कितने अत्याचार इस पुरुष-जाति ने हमारी जाति पर किए हैं। हमारा इतिहास इनके अत्याचारों की कहानी-मात्र है। पहले मैं सोचा करती थी कि पुरुषों के साथ मैं युद्ध करूँगी, और मैं अपने अधिकारों के लिये लड़ूँगी, लेकिन अब वह उत्साह कहाँ चला गया? कुछ समझ में नहीं आता। इस वक्त यह इच्छा होती है कि किसी पुरुष से प्रेम करूँ, तन-मन से प्रेम करूँ, उस प्रेम में इतनी डूब जाऊँ कि मुझे अपनी सुध न रहे। वह भी मुझसे प्रेम करे, अपना अस्तित्व भूलकर प्रेम करे। दोनो का जीवन एक हो जाय। एक ही प्रेम की धार में हम लोग उतराते हुए चले जायँ। कोई प्रतिबंध न हो, कोई शर्म न हो, एकता का मनोरम संगम हो।

"अच्छा, मुझमें यह परिवर्तन क्यों आ गया है? मैं अपने शत्रु को क्यों प्यार करना चाहती हूँ? पुरुष-जाति हमारी शत्रु है, लेकिन मैं उसी जाति के एक व्यक्ति के आश्रय की प्रार्थना कर रही हूँ। मैं अपने हृदय में कुछ शून्य-सा पाती हूँ, और उस शून्य की पूर्ति एक पुरुष से होती हुई मालूम होती है। यह क्यों? शायद यह मेरी कमज़ोरी है।

"क्या पुरुष-जाति केवल अत्याचार करना ही जानती है, प्रेम करना नहीं? यह तो नितांत सत्य नहीं। देखो, पापा अम्मा से कितना प्रेम करते थे, नहीं, अभी तक करते हैं। उनकी याद में रो-रोकर दिन काटते हैं। अम्मा की स्मृति यद्यपि उनके लिये दुःख-दायी है, लेकिन उसे वह कंजूस के सोने की तरह अपने हृदय में

छिपाए हुए हैं। वह मुझे इतना प्यार करते हैं, क्यों ? इसलिये कि मै अम्मा के प्रेम की भेंट हूँ। क्या पापा उस पुरुष-जाति के व्यक्ति नहीं हैं ? फिर यह कहना कि पुरुष-जाति केवल अत्याचार करती है, पूर्णतया सत्य तो नहीं है। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि पुरुष-जाति प्रेम भी करना जानती है, और उसे निबाहना भी।

"धाय मा हालाँकि एक बेवक़ूफ़ और जाहिल औरत है, परंतु उन्होंने एक दिन कहा था कि संसार का सच्चा सुख तो स्त्री और पुरुष की एकता में है। युग्म हृदयों के मिलने का नाम विवाह है। उसका पालन या उस युग्मता को निभाए जाना प्रेम है, गृहस्थ-धर्म का पालन है। इस कथन में भी कुछ सत्यता मालूम होती है।

"हिंदू-समाज में पुत्री का धर्म है कि जिसके हाथ में पिता उसका संप्रदान कर दे, उसे वह अपना प्रेम और अपना जीवन समर्पण करे। अम्मा को मेरे नाना ने इसी प्रथा के अनुसार पापा को समर्पण किया था, और उन्होंने अपने को संपूर्णतया पापा के चरणों पर अर्पित किया। इतने त्याग के बाद ही वह इस तरह विजयिनी हुई। उन्होंने पापा पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। यह उसी का कारण है कि आज भी पापा, यद्यपि उन्हें मरे हुए १६ साल बीत गए, फिर भी उनकी स्मृति में घुले जाते हैं। यह कैसा प्रेम था ? कितना दोनो का परस्पर भेद-भाव-रहित निष्कपट प्रेम था। ऐसी प्रेम-मूर्तियाँ क्या इस संसार में कहीं अन्यत्र देखने को मिलेंगी ?

"पापा मुझे उनके हाथ सौंपना चाहते हैं। क्या मेरा इसमें कल्याण है ? क्या वह पापा की तरह तन्मय होकर मुझसे प्रेम करेंगे ? क्या वह भी प्रतिदान में अपने को मुझ पर निछावर कर देंगे ? उनके मन की तो वही जान सकते हैं। लेकिन मैं तो उनसे प्रेम करती हूँ। मन प्राण से उन्हें प्यार करती हूँ। उनमें एक अजीब आकर्षण है,

जो मुझे उनकी ओर खींचे लेता है। मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि मैं उन्हें पहचानती हूँ, कभी उन्हें देखा है। देखा ही नहीं, उनके साथ वर्षों और कई जन्म रही हूँ। लेकिन ठीक याद नहीं पड़ता, कहाँ रही हूँ। वह मेरे लिये बिलकुल बेगाने नहीं हैं। शायद इसमें सत्यता कुछ नहीं है—केवल मेरे हृदय की कमज़ोरी है। भ्रम की अंतिम अवस्था का नाम ही तो दुर्बलता है।

"यह हैस-बैस कब तक चलेगी? इसका कुछ-न-कुछ निष्कर्ष तो निकालना वाजिब है। इस तरह अंधकार में कब तक, कितने दिन चला जायगा। उनमें कुछ कहने की शक्ति नहीं है—वह तो स्त्रियों से भी गए-बीते हैं; उनमें मैं पुरुषों-जैसी उच्छृंखलता बिलकुल नहीं देखती, न उनमें कोई उतावलापन ही है। उनकी सहन-शक्ति का तो कोई अंत ही नहीं मालूम होता। मै उनकी विफलता उनकी आँखों में लक्ष्य करती हूँ। उनके एकांत-रुदन का चिह्न उनके कपोलों पर सूखे हुए अश्रु-बिंदुओं से साफ़ मालूम होता है। वह मुझे देखकर कुछ कहना चाहते हैं, परंतु कभी नहीं कहते। कुछ कहते-कहते रुक जाते हैं। और, यही मुझे अच्छा नहीं लगता। इसी से मुझे क्रोध आ जाता है, और फिर उनके सामने नहीं जाती। न तो वह खुलते हैं, और न मैं। तब क्या होगा?

"ठीक है, इसी तरह चलने दो। कभी-न-कभी इसका कुछ फ़ैसला तो होगा ही। या तो वही अपनी हार क़बूल करेंगे, या फिर मुझे ही झुकना पड़ेगा। विवाह तो उनके साथ होगा ही, इसमें सबकी सम्मति है। परंतु क्या उनकी भी सम्मति है? कहीं मेरे व्यवहार से उन्हें यह न मालूम हो कि मैं उनसे घृणा करती हूँ, और फिर उन्हें खो दूँ। ऐसा शायद कभी न होगा। जिस प्रकार मैं उनसे प्रेम करती हूँ, वैसे ही वह भी मुझसे प्रेम करते हैं, फिर उन्हें कैसे

खो दूँगी। यह बुनियाद-रहित, मिथ्या कल्पना है, इसके भ्रम में पड़ना अपने जीवन का आनंद खोना है। मुझे विश्वास है, ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

आभा को इन्हीं विचारों में लीन हुए बहुत देर हो चुकी थी। गंगा न-मालूम कब से बैठी उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। आभा को न आते देखकर, मन-ही-मन क्रोध करती हुई उसके कमरे में आई। आभा लेटी हुई विचारों के समुद्र में डूब-उतरा रही थी। उसे लेटे हुए देखकर गंगा घबरा गई।

उसने घबराहट के साथ पूछा—"कैसी तबियत है रानी? क्या कुछ तबियत ख़राब है, जो इस तरह आँख बंद किए हुए लेटी हो?" यह कहकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

आभा ने उत्तर दिया—"नहीं धाय मा, तबियत ठीक है, ऐसी ही लेटी हूँ।"

गंगा ने देखा, बुख़ार बिलकुल नहीं है। उसके आकुल मन को कुछ शांति मिली। उसने फिर पूछा—"अब तक खाना खाने क्यों नहीं आई। दोपहर ढल गई। महराजिन न मालूम कब चली गई। मैं भी न-मालूम कब से तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूँ।

आभा ने उठते हुए कहा—"आज खाने की इच्छा नहीं है। अच्छा चलो, खा आऊँ कुछ थोड़ा-सा, नहीं तुम भी एकादशी ही करोगी।"

आभा उठकर बैठी थी कि उसने मोटर आने का शब्द सुना। वह उत्सुकता से कमरे के बाहर आगंतुक को देखने के लिये चली आई। उसके सामने मुस्किराती हुई उसकी सहेली मालती चली आ रही थी।

उसने मालती को देखकर उत्फुल्लता से कहा—"अरे, आज यह ईद का चाँद कहाँ से दिखाई पड़ा। बड़े भाग्य थे, जो तुम्हें मेरी सुध तो आई।"

दूसरे ही क्षण मालती आभा के बाहु पाश में आबद्ध थी।

मालती ने कहा—"तुमने भी मुझे बिलकुल भुला दिया। छः-छः महीने हो गए, कभी एक पत्र भी लिखकर न पूछा कि तबियत कैसी है। मुँह-देखी प्रीति तो सभी करना जानते हैं।"

आभा ने सहास्य कहा—"यह ख़ूब, उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। तुमने ही तो मुझे कई पत्र लिखे, जो इतना बड़ा उलाहना देती हो।

मालती ने आभा के कपोल-युगल को चूमते हुए कहा—"अच्छा भई, माफ़ करो, हमारा ही क़सूर सही। अब तो ख़ुश हो।"

आभा सप्रेम मालती को अपने कमरे में खींचती हुई ले गई।

---

## ३

भारतेंदु ने उत्सुकता से लिफ़ाफ़ा खोल डाला, और पत्र पढ़ना शुरू किया। पत्र अँगरेज़ी में था, जिसका आशय था—

"प्रिय भारतेंदु,

यह पत्र मैं सिंगापुर से लिख रही हूँ, इससे तुम्हें समझना चाहिए कि हम लोगों का जहाज़ सिंगापुर पहुँच गया है। रास्ते में तूफ़ान-प्रताड़ित दो स्त्रियाँ समुद्र में बहती हुई मिली हैं। उनमें से एक तो बहुत बीमार है, उसके सिर में सांघातिक चोट लगी है। जिससे कुछ दिन के लिये यहाँ ठहरना पड़ेगा।

"हमारे-तुम्हारे बीच में बहुत दिनों से पत्र-व्यवहार बद है। इसका कारण न तो तुम्हीं बतला सकते हो, और न मैं ही। मैं यह पत्र भी न लिखती, लेकिन अनेक घटनाओं से मजबूर होकर लिखना पड़ता है। आशा है, तुम इसे पढ़ लोगे, और अगर कुछ कष्ट न हो, तो उत्तर भी देना।

"तुम शायद अमीलिया को बिलकुल ही भूल गए, और उसके साथ ही अपनी उस प्रतिज्ञा को भी भूल गए, जो तुमने फ़िज़ी में, अपने उस कमरे में, की थी, जहाँ तुमने अपनी सांघातिक बीमारी के दिन बिताए थे। यह अच्छा ही हुआ। ख़ैर, तुम उसे भले ही भूल जाओ, लेकिन मैं कम-से-कम उस घटना को नहीं भूल सकती, जिसकी स्मृति अपने हृदय में आज पाँच वर्षों से छिपाए हुए हूँ।

"क्या तुम्हें १७ सितंबर के प्रातःकाल की वह घटना याद है? नीरव, निष्पंद उषाकाल की मधुर बेला में तुमने मेरे हृदय में एक अजीब सुखद गुदगुदी पैदा कर दी थी। मैं तो तुम्हारी सेवा करती

थी, और तुम मुझे एक स्वर्गीय गीत सुनाकर अपने वश में कर रहे थे। वह गीत कितना मधुर था, कितना सुखद था, कितना मनोमोहक था, और कितना पागल करनेवाला था। उस प्रातर्वेला में तुमने अपने ओष्ठों से भरे अधरों पर अपनी मुहर लगाकर मुझे कुछ बोलने, कुछ आपत्ति करने से मजबूर कर दिया, और यह गीत सुनाया कि 'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।' मैं उस गीत के लय में अपनी सुध-बुध खो बैठी, और उस दिन से वही गीत अपनी नीरव झंकार से मेरी हृत्तंत्री के तारों में झंकृत हुआ करता है, जो मेरे हृदय की आवाज़ को डुबा देता है, और मैं उसके आवेश में कह उठती हूँ—'मैं भी तो उनसे प्रेम करती हूँ।'

"लेकिन जाने दो। ये तो बीती हुई घटनाएँ हैं, जिनकी स्मृति किसी के लिये सुखदायी है, और किसी के लिये दुखदायी। इनका भूल जाना ही अच्छा। किंतु क्या करूँ, वे तो अनायास एक के बाद एक उमगती हुई चली आती हैं। मेरा जी भी यही चाहता है कि उन्हें मैं लिखूँ नहीं। परंतु फिर भी लिखती हूँ। तुम क्षमा करना।

"हाँ, इसके बाद तुम स्वस्थ होने लगे, और तुम्हारी स्वस्थता के साथ-साथ हमारा प्रेम भी बढ़ने लगा। तुम पुरुष थे, तुम दुनिया को जानते थे। तुम शक्तिशाली थे, तुम्हारे पिता के यहाँ मेरे पिता नौकर थे। मैं हर तरह तुमसे हीन थी। एक तो बालिका थी, मा को खोकर एक अकथनीय दुःख का भार लिए हुए थी। मैं चाहती थी कि कोई मुझसे प्रेम करे। मैं प्रेम करने और प्यार किए जाने के लिये आतुर थी। मैं अपना बुरा या भला कुछ न जानती थी। तुम्हारे प्रेम-शब्द के सुनहले जाल में फँस गई। तुम ज्यों-ज्यों शब्दों से प्रेम का संसार बनाते, त्यों-त्यों मैं उसके चक्करों में फँसती जाती। तुम कहते कि मेरे लिये संसार में केवल तुम हो। तो मैं कहती कि इस ब्रह्मांड में मेरे लिये केवल तुम हो। तुम मुझसे जो चाहते,

वह मैं तुम्हारे चरणों पर समर्पित करने में कोई उज्र न करती। तुमने मुझे विश्वास दिलाया कि मैं तुम्हारा हूँ, मैंने विश्वास किया कि तुम हमारे हो। क्यों, क्या कुछ याद पड़ता है?

"इसके बाद? हाँ, वह ११ ऑक्टोबर की बात है। ग्रीष्मकाल अपने सुखद साज से जा रहा था। फूलों के खिलने का समय था। पक्षियों के आनंदोत्सव मनाने का काल था। प्रकृति अपने नव-नूतन साज से सजकर संसार को पागल बनाने में प्रयत्नशील थी। मेरे मन में भी उमंगें किलकारी मारकर हँस रही थीं, उत्साह रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रहा था, और सबसे अधिक तुम्हारे प्रेम की मदिरा मुझे बेहोश किए हुए थी। तुमने उस शाम को बर्बर पशु की तरह मेरा सत्यानास कर डाला। मैंने कोई आपत्ति न की, वह भी तुम्हारे प्रेम की सौग़ात समझी। मैं हर्ष और आनंद में विभोर थी। कुछ एक नया संवाद चखकर उसकी ही याद में तन्मय थी। मैंने उसे तुम्हारा प्रेमोपहार समझा। मैं हर्ष से नाच उठी, और कल्पना के संसार में भ्रम ु कर नए-नए क़िले बनाने लगी। तुम मेरे कान में अपने अनंत ्रेम का गीत सुनाते रहे, मैं उसी में भूली रही। क्यों भारतेंदु, क्या तुम्हें वे दिन याद पड़ते हैं, क्या उन की किंचित् स्मृति भी तुम्हारे पास अवशेष है?

"अच्छा, यह बात भी जाने दो। इसके बाद हमारा और तुम्हारा विच्छेद हुआ। मैं पढ़ने के लिये सिडनी—आस्ट्रेलिया चली गई, और तुम भारत। वह विच्छेद अनायास हो गया। तुम्हारे पिता को शायद कुछ शक हो गया, उन्होंने तुम्हें मेरे पास से छीन लिया। मैं कर ही क्या सकती थी? और, उन्होंने मेरे पिता से कहकर मुझे आस्ट्रेलिया भेज दिया। मै अपना दिल मसोसकर रह गई। जाते वक्त् तुम मुझसे उस बग़ीचे में मिलने आए, जहाँ हमारा और तुम्हारा प्रेमालाप होता था। तुमने मेरे हाथ में एक

गहरी रक़म रखकर कहा—'अभी, इसे वक़्त-ज़रूरत के लिये ले लो। विदेश में तुम्हारे काम आवेगा।' मैं तुम पर विश्वास करती थी, मैंने ले लिया। इसके बाद तुमने कहा—'देखो, मुझे भूलना नहीं। मैं जब स्वतंत्र होऊँगा, तो तुम्हारे साथ विवाह करूँगा, और तुम्हें हमेशा के लिये अपना बना लूँगा।' मै रोते रोते तुम्हारे वक्ष से चिपट गई। आह! वह दिन अभी तक मुझे याद है, मुझे कितना आश्वासन मिला, कितना सहारा मिला। तुम और बहुत-सी आशाप्रद बातें सुनाने लगे। उस समय भी कहना भूल गई कि तुम्हारे प्रेम का प्रतिफल मेरे पेट में मौजूद है। शायद यह तुम जानते थे, लेकिन तुमने भी कुछ कहना उचित न समझा। मैं वह भार लिए हुए, रोती-सिसकती आस्ट्रेलिया चली गई।

"आस्ट्रेलिया आकर मैं बड़ी विपद् में पड़ी। मेरे सात महीने का गर्भ था। मैं न जानती थी कि वह शर्म किस तरह छिपाऊँ। आख़िर एक सहेली से यह भेद बतलाना पड़ा। मैं उसकी शरण में गई, और किसी तरह उस शर्म से छुटकारा हुआ। वास्तव में तुम्हारे दिए हुए धन से मेरा वह उपकार तो हुआ—और शायद तुमने इसीलिये दिया भी था।

"इसके बाद मैंने तुम्हें पत्र लिखा, और तुमने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने बहुतेरे पत्र बाद में लिखे, लेकिन तुम हमेशा मौन ही रहे। थककर मैं भी चुप रही। मेरे मन में कोई बार-बार कहता कि उसे भूल जाओ, वह तो एक पुरुष-जाति का व्यक्ति है, जो स्त्रियों को अपने सुख और भोग की सामग्री समझता है। मैं तुम्हें भूलने का प्रयत्न करने लगी, परंतु फिर भी न भूल सकी। आस्ट्रेलिया में मन न लगा, पापा के साथ-साथ जहाज़ पर ही रहकर दिन व्यतीत करने लगी। समुद्र के ऊपर रहकर मै पृथ्वी

पर की घटनाओं की स्मृतियाँ भुलाने लगी, लेकिन कृतकार्य नहीं हुई। मैं तुम्हें फिर भी न भूल सकी।

"इसके बाद तुम एक बार फ़िज़ी आए। जी में आया कि एक बार जाकर उसे देख आऊँ, जिसने यह प्रेम की ज्वाला भड़काई है। परंतु यह सोचकर कि कहीं निरादर न हो, नहीं आई। जानते हो, अगर कहीं निरादर होता, तो मेरा हृदय और भी दुखी होता। वह स्मृति, जिसे मैं हृदय से लगाए हुए हूँ, कलेजा चीरकर बाहर निकालनी पड़ती, और तब शायद सिवा सागर की शरण में जाने के और कोई दूसरा उपाय न रहता। इसी भय से मैं मिलने नहीं आई। और, अरे कठोर! तुमने बुलाया भी नहीं। तुम दो महीने फ़िज़ी में रहकर वापस चले गए। मैं मिलने की साध लेकर ही रह गई।

"इसके बाद फिर तुम्हारा कोई समाचार न मिला, और न तुमने कुछ किसी से कहला ही भेजा। मैं अभी तक तुम्हारी प्रतिज्ञा पर विश्वास करती थी। कभी-कभी सोचती थी कि शायद पिता के शासन से स्वतंत्र होने पर तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। मगर यह विश्वास उस दिन पूर्ण रूप से टूट गया, जब तुम्हारे पिता से मालूम हुआ कि तुम्हारा विवाह-संबंध वहीं कहीं ठीक हो गया है, जहाँ तुम पढ़ते हो। अच्छा है, तुम विवाह करो, लेकिन मेरी ओर से केवल एक प्रार्थना है कि मेरी तरह उसका भी जीवन नष्ट न करना। सत्य ही तुम उसके साथ विवाह करना। विवाह का प्रलोभन देकर उसका कौमार्य नष्ट न करना। तुम मुझे भूल ही गए हो, इसलिये और कोई प्रार्थना नहीं कर सकती। तुम्हारी बुद्धि सदैव सन्मार्ग पर बनी रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना है।

अभागिनी

अमीलिया"

भारतेंदु के हाथ से पत्र गिर पड़ा, और उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। अतीत की घटनाएँ एक के बाद एक नेत्रों के सामने आने लगीं। और अमीलिया का विषाद-पूर्ण मुख, जिसकी स्मृति कभी-कभी उन्हें दुखित करती थी, उनके सम्मुख आ गया। उसका तिरस्कार उनके हृदय में वृश्चिक-दंशन से भी अधिक तीक्ष्ण तड़पन पैदा करने लगा। उसके पत्र के शब्द अग्नि शलाका की भाँति उनका हृदय विदीर्ण करने लगे। वह पथराई हुई आँखों से उस पत्र की ओर देखने लगे।

भारतेंदु के सामने अतीत जीवन के चित्र आने लगे—आज से पाँच साल पहले की घटनाएँ याद पड़ने लगीं।

वह सोचने लगे—अमीलिया का प्रेम भूल जाने की वस्तु नहीं है। वह समझती है कि मैं उसे भूल गया हूँ, यह बिलकुल झूठ है। कोई मनुष्य अपने मन से दग़ा नहीं कर सकता। दुनिया को चाहे भले ही ठग लो, किंतु स्वयं को ठगाना असंभव है। मै अमीलिया को न भूल सका हूँ, और शायद न भूल सकूँगा। आह! जब वे दिन याद आते हैं, तब हृदय में एक प्रकार की पीड़ा उठती है, जिसे सहन करना मुश्किल होता है। वे कैसे सुख के दिन थे। यौवन का प्रथम उभार था, सिवा प्रेम के और कुछ चिंता न थी। शृंगार और सुहाग के साम्राज्य में मै विचरण कर रहा था। वह मुझे तन, मन, प्राण से चाहती थी, और मै उसे। दोनो का संसार एक ही था। एक ही इच्छा, एक ही वासना, एक ही लालसा और एक ही स्वप्न थे। कल्पना के संसार में, जहाँ निराशा नहीं, दुख नहीं, टीस नहीं, तड़पन नहीं, वहाँ अबाध और उद्दाम रूप से विचरते थे। दोनो एक दूसरे की पूर्ति थे। हमारे बीच में जाति का, वर्ण का, देश का, धर्म का, कोई भेद-भाव न था। इस क्रीड़ामय संसार के हम दो हँसते-खेलते हुए पात्र थे, जिनमें परस्पर आसक्ति थी, प्रेम

और सौहार्द था। जब वह हँसती थी, तब मैं भी हँस देता था। जब वह रोती थी, तब मैं भी रो देता था। जब वह मान करती थी, तब मैं मनाता था, और जब मैं क्रोध करता, तो वह हँसती हुई आँखों से मेरे हृदय से लगकर कहती, क्रोध मत करो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। मेरा क्रोध गलकर बह जाता, और फिर दोनो एक हो जाते। आह, वह कितना सुखद काल था!

"जीवन का प्रथम प्रेम! उसमें कितना महत्त्व है, उसमें कितनी मादकता है, उसमें कितना पागलपन है। उसकी एक-एक घटना कितनी सजीव होती है। उसकी स्मृति जीवन के अंत तक रहती है, और बाद में—जीवन के उस पार—रहती है या नहीं, कौन जाने। प्रेम जीवन का विकास ह, आत्मा का ज्ञान है, और ब्रह्म का रूप है। प्रेम की ज़ंजीरों से संसार बँधा है, चर और अचर सब उसीके आश्रय से जीवित रहते हैं। ब्रह्मांड के कण-कण मे प्रेम का अस्तित्व है। और, वही प्रेम जब जीवन के प्रथम उभार में स्वर्गीय ज्योति लेकर उदय होता है, तो मन और आत्मा समुद्र की भाँति उत्तुंग लहरों से उद्वेलित होने लगते हैं। उस समय कमज़ोर मनुष्य उसके प्रवाह में बहा चला जाता है—और उसका क्या परिणाम होगा, नहीं सोचता, जानता हुआ भी, उस ज्ञान को उसी में डुबो देता है। मैंने उस रस को अपने ओष्ठों से लगाया है—उसको पान किया है। तभी तो आज भी उसकी स्मृति सजग है।

"अमीलिया के साथ क्या मैंने विश्वासघात किया है? वह मुझ पर यह दोष लगाती है। वह मुझे छलिया और पापी कहती है, लेकिन क्या उसे मालूम है कि मैं उसके साथ विश्वास-घात नहीं करता। वह कैसे समझ सकती है? सत्य ही इन सुदीर्घ पाँच वर्षों में मैंने उसे एक पत्र नहीं लिखा, एक संदेश नहीं कहलाया, एक बार उससे मिलने का प्रयत्न नहीं किया।

तब तो मैं सत्य ही विश्वासघाती हूँ। उसके गर्भ में मेरा बालक था, लेकिन मुझमें इतना साहस न हुआ कि उसे मैं अपना कहकर उसका गला घुटने से रोक दूँ। वह भार, जिसे मुझे वहन करना था, केवल अमीलिया पर छोड़कर, कापुरुष की भाँति छिटककर अलग खड़ा हो गया। अमीलिया, भोली अमीलिया, क्या करे? उसके लिये यही मार्ग था। माता होने के पहले वह हत्यारिन हुई, किसके अपराध से? मेरे। उफ़! यह वृश्चिक-दंशन असहनीय है। यही शर्म, यही भीरुता मुझे उसके सामने जाने से रोकती है, मेरा दामन पकड़ लेती है। मैं उसे कैसे मुँह दिखाऊँ? यही प्रश्न मेरे सम्मुख रहता है, और मैं उससे दूर-दूर भागता हूँ। इसी भय से यहाँ पाँच वर्षों से पड़ा हुआ हूँ। संसार के सब सुखों, सब इच्छाओं पर लात मार दी है। वह सोचती है, मैं सुखी हूँ, आनंद में मग्न हूँ, लेकिन मेरे मुख पर एक दिन भी हँसी नहीं आई। मैंने जैसा विश्वासघात किया है, उसका प्रतिफल हाथोंहाथ पा रहा हूँ। मेरा उत्साह, मेरा सुख, मेरा आनंद, मेरा शृंगार, मेरा सुहाग, सब तो नष्ट हो गया है। मैं इस वेदना को पुस्तकों के बीच में रहकर भूलना चाहता हूँ, मगर भूल नहीं सका हूँ। पिता के नियंत्रण से छूटने के लिये ही इतना घोर परिश्रम किया है कि मैं संसार में अपने पैरों खड़ा हो सकूँ, और अमीलिया को पुनः अपना कह सकूँ। परंतु वह तो जानती नहीं। वह मुझे नीच और पापात्मा समझती है— अत्याचारी और कामुक पुरुष समझती है। मैं कैसे यह भाव दूर करूँ? कैसे उसे बतलाऊँ कि मैं उससे उसी तरह प्रेम करता हूँ, जैसे पहले करता था। नहीं, उससे भी अधिक!

"वह सोचती है, मैं विवाह करने आ रहा हूँ, और विवाह कर लूँगा। यह उसका भ्रम है। आभा को पिताजी ने और डॉक्टर

नीलकंठ ने मेरे लिये मनोनीत किया है, और किसी हद तक आभा की भी यही इच्छा है। परंतु क्या मैं आभा को प्यार करता हूँ? नहीं, उसे प्यार नहीं करता। कभी-कभी उससे खेल कर लेता हूँ, जी बहला लेता हूँ, और कुछ नहीं। आभा को शीघ्र ही इस मिथ्या जाल से निकालना उचित है। कहीं वह उस पंक में न फँस जाय, जिसमें मैं फँसा हूँ, और अमीलिया फँसी हुई है। आग के साथ खेलते-खेलते कहीं घर में ही आग न लग जाय। आभा को सचेत कर देना ठीक है। डॉक्टर नीलकंठ को भी साफ़ लफ़्ज़ों में अपनी अनिच्छा बता देनी चाहिए। पिताजी कह रहे थे कि तुम्हारी इच्छा होने पर वह आभा के साथ विवाह करेंगे। पिताजी से भी यह कह देना चाहिए कि मैं आभा से विवाह नहीं कर सकता।

"अमीलिया कहती है, उसे विवाह का प्रलोभन देकर कहीं उसका कौमार्य नष्ट न करना! वह सत्य ही तो कहती है। मैंने उसे धोखा दिया है, वही यह समझती है। क्या मैं उसकी दृष्टि में इतना गिर गया हूँ? गिरने की तो बात ही है। आश्चर्य तो यह है कि वह अभी तक इस भाव को अपने उर में दबाए रही। वाजिब तो यह था कि वह संसार में प्रकाशित कर दे कि मैं नीच हूँ, विश्वास-घाती और पापी हूँ। यही मेरे लिये यथार्थ पुरस्कार था।

"आभा क्या मुझसे प्रेम करती है? मालूम तो होता है। उस दिन 'मालती' नाम का रूमाल उसके यहाँ रह गया, और उसे कितनी ईर्ष्या हुई थी। ईर्ष्या का दूसरा नाम प्रेम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ ईर्ष्या है। फिर उससे किस तरह कहूँ कि वह मेरा ध्यान छोड़ दे, क्योंकि मैं दूसरे का हूँ, दूसरे की प्रतिज्ञा में बँधा हुआ ग़ुलाम हूँ। उससे प्रेम करने के लिये स्वतंत्र नहीं हूँ। मैं अमीलिया का हूँ, और अमीलिया मेरी है। आभा, मुझे क्षमा करो।"

इसी समय आभा सत्य ही वहाँ आ गई। भारतेंदु के अंतिम

उद्गार निःशब्द न रहकर उसके मुख से सशब्द निकल गए थे, जिन्हें उस कमरे में प्रवेश करती हुई आभा ने सुन लिया। आभा का शरीर रोमांचित हो गया। उसका प्रेम प्रवाह क़ाबू के बाहर हो गया, वह गद्गद हो गई। जिसकी उसे आशा न थी, वह उसने कानों से सुन लिया। आभा प्रेम में मस्त होकर नाचने लगी।

उसने मुस्किराते हुए कहा—"क्या हो रहा है जनाब ?"

आभा ने इस तरह प्रश्न किया, जैसे उसने कुछ सुना ही न था।

भारतेंदु चौंक पड़े। अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे।

आभा ने समझा, वह अपनी कमज़ोरी प्रकट होते देखकर घबरा गए हैं। वह प्रसन्नता के शिखर पर चढ़ गई, और हृदय खोलकर हँस पड़ी। सरसता का स्रोत उमड़कर भारतेंदु को डुबाने लगा। उन्होंने अमीलिया का पत्र अपनी जेब में रख लिया। आभा ने देखा, लेकिन उसने कोई महत्त्व नहीं दिया। वह तो अपने ही सुहाग में विभोर थी। उनकी क्षमा-याचना को अपने प्रति अगाध प्रेम का दिग्दर्शन समझा। वह उसी के भँवर में पड़कर अपनी सुध-बुध खो बैठी।

भारतेंदु सोचने लगे, क्या उसने कुछ सुन लिया है। कितना सुना है, और क्या सुना है, यह उन्हें न मालूम था। परंतु उसकी खिलखिलाहट देखकर उन्हें विश्वास हुआ कि अधिक नहीं सुना। वह यह जानकर कुछ सुखी हुए कि अमीलिया का भेद अभी प्रकट नहीं हुआ। यही तो मानव-जाति की निर्बलता है।

आभा ने हँसते हुए प्रेम के साथ पूछा—"इस तरह मेरी ओर क्यों देख रहे हैं ? क्या मैंने आकर आपको कुछ विरक्त कर दिया है ? अच्छा, जाती हूँ, क्षमा कीजिएगा।"

आभा की इच्छा थी कि वह उन शब्दों को उनके सामने दुहरावे, जिन्हें वह कुछ देर पहले सुन चुकी थी।

परंतु भारतेंदु ने कहा—"यह तो मेरा परम सौभाग्य हुआ, जो आज आपने पधारकर इस कुटीर को पवित्र किया। आज के पहले मैंने कभी आपको यहाँ आते नहीं देखा, इसलिये इन आँखों को विश्वास नहीं होता कि वह स्वप्न है, या सत्य! इसी से अवाक् होकर देख रहा हूँ। आइए, विराजिए।"

भारतेंदु के स्वर में कंपन था, और छिपा हुआ भय। आभा का उस ओर ध्यान न था। वह एक कुर्सी पर बैठ गई।

भारतेंदु ने डरते हुए कहा—"आज साक्षात् देवी ने पधारकर जब घर पवित्र किया है, तो कुछ पूजा और प्रसाद भी ले आऊँ।"

कहते-कहते वह कमरे के बाहर हो गए। आभा मना करती ही रही।

---

४

पंडित मनमोहननाथ अपने केबिन में व्याकुलता से टहल रहे थे। उनके मुख पर अशांति के लक्षण और मानसिक वेदना के भाव प्रकट हो रहे थे। वह सोचने लगे—"यह कुली-प्रथा अभी तक बंद नहीं हुई। न-मालूम कितना परिश्रम इसे बंद करने के लिये किया गया, लेकिन गुप्त रूप से अभी तक जारी है, और अभागे भारतीय ग़ुलाम की तरह बेचे जा रहे हैं। मान लिया जाय कि भारतीय पुरुष अब ग़ुलाम बनाकर नहीं बेचे जाते, लेकिन स्त्रियों का कारबार अभी तक बंद नहीं हुआ। सभ्य संसार बड़े नाज़ के साथ कहता है कि मैंने ग़ुलामी-प्रथा बंद कर दी है, मनुष्य के अधिकार मनुष्य को दिलाए हैं। अमेरिका की डींग तो मशहूर ही है, और अन्य योरपीय देश भी कुछ कम डींग नहीं हाँकते। किंतु आश्चर्य तो यह है कि प्रथा अभी तक उठी नहीं। इसका नाश नहीं हुआ। आगे होगा, कौन कह सकता है। यह बात नहीं कि यह ग़ुलामी की प्रथा केवल भारत में ही प्रचलित है, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि थोड़े-बहुत रूप में सब देशों में प्रचलित है। ग़ुलामों का व्यापार करनेवालों की संस्था का संगठन ही कोई दूसरा है, जिसमें जाति, वर्ण और देश का कोई विचार या संबंध अथवा सहानुभूति नहीं। इनका ध्येय केवल पैसा कमाना है। वे भारतीय स्त्रियों को उसी प्रकार बेच देंगे, जैसे वे एक अँगरेज़, फ़्रेंच या जर्मन-जाति की स्त्री को बेचते हैं। तमाम देशों की सरकारें इसे बंद करना चाहती हैं, परंतु सफल नहीं होतीं। हाँ, इन सब देशों से उतने ग़ुलाम बाहर नहीं भेजे जाते, जितने भारत से। अभागे

भारतवर्ष के भाग्य में कब तक यह दुख देखना नसीब है, कौन कह सकता है।

"मैंने भी कुली-प्रथा के चक्कर में पड़कर बहुत कष्ट उठाए हैं। वह ज़माना और था, उस वक्त 'एमीग्रेशन' ज़ोर से जारी था, परंतु अब तो उसकी आवश्यकता नहीं रही। फ़िज़ी आदि प्रदेश जन-संख्या से परिपूर्ण हैं, उनकी आबादी बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। भारत में भी आंदोलन होने से सरकार ने क़तई बंद कर रक्खा है, परंतु यह कौन संस्था है, जो इन्हें गुप्त रूप से भारत से ले जाती और ग़ुलामों की भाँति बेचती है। इसका मूलोच्छेद करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। एक ओर संसार, विशेषकर पश्चिमीय भाग, पूँजी की समानता अथवा साम्यवाद का प्रचार कर रहा है कि प्रत्येक मनुष्य के अधिकार इस धरातल पर सम हैं, जैसे सूर्य का प्रकाश, वायु की लहर, अग्नि का उत्ताप सबको समान रूप से प्राप्त हैं, उसी प्रकार पूँजी या दूसरी आवश्यकताएँ, जो वस्तुओं के आदान-प्रदान अथवा विनिमय से प्राप्त होती हैं, समान रूप से मनुष्य को प्राप्त होनी चाहिए। एक ओर तो यह आदर्श संसार के सामने रक्खा जा रहा है, और दूसरी ओर पूर्वीय भाग में मनुष्य के सबसे साधारण अधिकार पर आघात हो रहा है—एक मनुष्य दूसरे का ग़ुलाम बनाया जा रहा है! यह कैसा अंधेर है, कैसा अन्याय है। एक पृथ्वी, जिसके दो खंड और उनमें इतना पार्थक्य।

"ग़ुलाम का जीवन क्या कोई मनुष्य का जीवन है। उसके सुखों का मुझे पूरा अनुभव है। जब वे दिन याद आते हैं, तो कलेजा धक से रह जाता है। उन दिनों अगर कभी सौभाग्य से भर पेट भोजन मिल जाता था, तो अहोभाग्य समझता था। इसके अलावा खुले हुए खेतों में—जहाँ धूप, शीत और वायु जी खोलकर अत्याचार करते थे—नंगे और भूखे काम करना पड़ता था। अगर

काम पूरा न होता था, तो 'ओवर सियर' के बेतों की बर्बरता का शिकार होना पड़ता था। पीठ उनके हंटरों के आघात-व्रणों से भरी पड़ी है। मेरे मुँह से ख़ून की धार निकली है, और शरीर कई मर्तबे लहूलुहान हो गया है। ऐसी अवस्था में भी काम करना पड़ता था, और चिकित्सा का तो कोई साधन ही न था। यह क्यों? इसलिये कि मैं ग़ुलाम था। ग़ुलामों के हृदय नहीं, मन नहीं, शरीर नहीं, उन्हें सुख तथा शांति की आवश्यकता नहीं। वे अपनी इच्छा के स्वयं स्वामी नहीं। वे अपने स्वामी की इच्छाओं के दास हैं। उसका हृदय, उसका मन और उसका शरीर उसके स्वामी का है। यहाँ तक कि उसके जीवन का भी अधिकार उसका नहीं है, वह भी खो चुका है। यह है ग़ुलामी। जब अपने ऊपर स्वयं उसका अधिकार नहीं, तो उसके बाल-बच्चों के संबंध में कुछ कहना फ़िज़ूल है। मैं सब पीड़ाएँ जानता हूँ, क्योंकि स्वयं ग़ुलाम था।

"यह तो ईश्वर की कृपा थी कि मैं उससे मुक्त हो गया हूँ, और आज मेरे पास करोड़ों रुपयों का धन है। मैं एक विशाल पूँजी का स्वामी हूँ। दर असल यह पूँजी ही ग़ुलाम बनाने की मशीन है। यदि ग़ुलामी नाश करना है, तो पूँजी नाश करनी चाहिए, और उसका अस्तित्व मिटा देना चाहिए। पूँजी के लोभ से मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार करता है। ईश्वर के दिए हुए समता के भाव को भूल जाता है, और अपनी स्वार्थ-योजना में इतना संलिप्त हो जाता है कि उसे ध्यान ही नहीं रहता कि दूसरा भी उसका-जैसा मनुष्य है, उसे उसी तरह जीने का अधिकार है, जैसे उसे है। यह पूँजी का लोभ संघातक है—मनुष्य-जाति के लिये विष है।

पूँजी क्या है? दूसरे की आवश्यकताओं को हरण कर लेने से पूँजी का जन्म होता है। ईश्वर ने खानों में सोना, हीरा, लाल,

लोहा, ताँबा आदि और समुद्र में मोती वग़ैरा सब मनुष्य-जाति के लिये उत्पन्न किया है—किसी व्यक्ति-विशेष के लिये संचित नहीं किया। जब कोई व्यक्ति-विशेष इसे अपने स्वार्थ के लिये, दूसरों के अधिकार नष्ट कर, अपहरण कर लेता है, तब वह उसकी पूँजी होती है। खानों पर सब मनुष्यों का समान रूप से उसी तरह अधिकार है, जिस तरह बरसते हुए मेघ के जल पर सबका अधिकार है। वायु पर जैसे सबका अधिकार है, उसी तरह उन पर भी वैसा ही अधिकार है। मैं कई खानों का मालिक हूँ, उनसे निकले हुए सब माल पर मनुष्य-जाति का अधिकार है। मैंने अब तक अन्याय किया है, और उन्हें उससे वंचित कर रक्खा है, जो उनका है, अकेले मेरा नहीं। मैंने बड़ा घोर पाप किया है, जिसकी क्षमा नहीं। भगवान् के दिए हुए धन को अपने और अपने पुत्र के लिये संचित कर रहा हूँ। इस धन में कितने ग़रीबों के, कितने इतर मनुष्यों के ख़ून का दाग़ लगा है, कितनों की आहों की इस पर छाप है, कौन कह सकता है। जो पाप मैंने किया है, उसका प्रायश्चित्त नहीं। मैं यह पूँजी मनुष्य-जाति को लुटा दूँगा, उनका प्राप्य उनको दे दूँगा, तभी मेरा कल्याण है, और इसी में भारतेंदु का कल्याण है।

"भारतेंदु के लिये चिंतित होना स्वार्थ है। वह भी तो मनुष्य है, वह किसी तरह उन लोगों से बढ़कर नहीं, जो मेरी खानों में काम करते हैं। उसका अधिकार क्या मेरा पुत्र होने से कुछ ज़्यादा होता है? नहीं, किसी अंश में नहीं। मेरा ही अधिकार क्या अधिक है? कुछ नहीं। सबके बराबर है।"

बाहर से स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आज इस बेचैनी का क्या कारण है, पंडितजी?"

पंडित मनमोहननाथ के विचारों का स्रोत रुक गया। उन्होंने

सिर उठाकर देखा, सामने स्वामी गिरिजानंद उनकी ओर सहानुभूति के साथ देख रहे थे।

उन्होंने उत्तर दिया—"स्वामीजी, आपके विचारों का मैं अभी तक क़ायल नहीं हुआ। मैं ज्यों-ज्यों सोचता हूँ, त्यों-त्यों यह विचार बद्धमूल हो रहा है कि मनुष्य-समाज में सबके अधिकार समान हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"यह मैं कब अस्वीकार करता हूँ। मनुष्य के अधिकार बिलकुल समान हैं, यह तो मैं भी कहता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने संतुष्ट होते हुए कहा—"जब मनुष्य-जाति के अधिकार समान हैं, तो पूँजी की कोई आवश्यकता नहीं रहती। पूँजी का जन्म तो दूसरे के प्राप्य को अपहरण करने से होता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर दिया—"पूँजी की आवश्यकता तो मनुष्य-मात्र को होती है, अब सवाल यह है कि पूँजी की समानता होनी चाहिए। समाज का संगठन इस रूप में होना चाहिए कि पूँजी सबके पास समान रूप से लभ्य हो। कोई भी काम करने के लिये आपको पूँजी की ज़रूरत पड़ेगी। आप अपना ही उदाहरण ले लें। आप कई खानों के स्वामी हैं, लेकिन उन्हें खोलने के लिये आपको पूँजी की आवश्यकता पड़ी थी। अगर आप यह कहें कि मैं चंद मनुष्यों को एकत्र कर खान खुलवाता, और वे सब अवैतनिक होते, तो पूँजी की कोई ज़रूरत न थी। यह केवल काल्पनिक बात है। मान लीजिए, आपने एक जगह इस तरह कई मनुष्यों को खान पर लगा दिया, और अगर उस खान से कुछ न निकला, तो वे मनुष्य, जिन्होंने कई दिनों भूखे रहकर काम किया है, आपकी जान के भूखे हो जायँगे। खान की जगह आपने तजवीज़ की थी, लिहाज़ा उन्हें भूखों मारने के आप ही उत्तरदायी हैं।

किंतु अगर वे आपसे वेतन पाकर उस खान में काम करते हैं, तो उनकी कोई हानि नहीं होती, चाहे खान में सिवा मिट्टी के कोई दूसरी वस्तु नहीं निकलती। इसलिये आपको पूँजी की ज़रूरत है। और अगर खान से कुछ निकला, तो आपकी पूँजी की वृद्धि हुई; अगर कुछ न मिला, तो आपकी पूँजी का नाश हुआ। और, चूँकि खान से आपकी पूँजी की वृद्धि और नाश है, इसलिये आप ही उससे फ़ायदा और नुक़सान उठाने के अधिकारी हैं। पूँजी का जन्म इसी तरह हुआ है। मनुष्य-जाति की आदिम सभ्यता में भी पूँजी की ज़रूरत थी, और अंतिम सभ्यता में ज़रूरत रहेगी। पूँजी का नाश नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ सोचते हुए कहा—"पूँजी का जन्म तो दूसरे की आवश्यकताओं को अपहरण करने से होता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर दिया—"नहीं, पूँजी का जन्म हमेशा इस तरह नहीं होता। अपनी आवश्यकताओं की काट-छाँट और उसे संचय करने से पूँजी बनती है। वास्तव में ज़रूरत यह है कि पूँजी का नाश न किया जाय, बल्कि उसकी वृद्धि की जाय, इतनी कि वह सबको सुलभ हो। उसको इस तरह से मनुष्य-समाज में लगाया जाय कि उसकी कमी किसी को महसूस न हो। जीवन की समस्त आवश्यकताएँ समान रूप से मनुष्य-मात्र को लभ्य हों। यही शायद साम्यवाद का आदर्श और उसका ध्येय है।"

इसी समय कैप्टेन जैकब्स ने आकर कहा—"उस लड़की को होश आ रहा है, डॉक्टर आपको बुलाते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्सुकता से उनकी ओर देखकर पूछा—"होश आ गया। ख़ैर, अच्छा हुआ। मानव-जाति का एक सुंदर पुष्प, जो बेतरह सताया गया मालूम होता है, मौत के मुँह से निकल आया। ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद है!"

यह कहकर उन्होंने नतजानु होकर भगवान् को धन्यवाद दिया। स्वामी गिरिजानंद संतुष्ट होकर मुस्किराने लगे।

पंडित मनमोहननाथ की आँखों से आँसू निकलने लगे, जिनसे ईश्वर की अनुकंपा सिक्त होकर रोमांचित होने लगा।

प्रार्थना समाप्त होने पर कैप्टेन जैकब्स ने कहा—"डॉक्टर कहते हैं, उसकी दशा संघातक है, शायद न भी बचे।"

पंडित मनमोहननाथ की आँखों से एक अद्भुत ज्योति निकल रही थी। उन्होंने दृढ़ता से कहा—"नहीं कैप्टेन, वह मरेगी नहीं। मुझे विश्वास है, वह जीवित रहेगी। भगवान् की इच्छा ऐसी ही मालूम होती है, और इसी का प्रमाण भी मिलता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आज उस बेचारी को दो दिन बाद होश आया है। हमारा जहाज़ कल से यहीं सिंगापुर में रुका हुआ है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे एक शब्द भी उनके कान में नहीं गया। वह कैप्टेन जैकब्स के साथ उस कमरे में आतुरता के साथ गए, जहाँ माधवी बेहोश लेटी हुई थी। उनके चेहरे पर चिंता के लक्षण प्रकट हो रहे थे।

उन्हें देखते ही डॉक्टर ने कहा—"पंडितजी, मरीज़ को अभी-अभी होश आया था, लेकिन फिर बेहोश हो गया। चोट बड़े मर्म-स्थल पर लगी है। मालूम होता है, किसी ने सिर के बल बहुत ज़ोर से उठाकर पटक दिया है। इसके दिमाग़ में धक्का लगा है, और अक्सर ऐसे धक्के लगे हुए मनुष्यों का प्राणांत हो जाता है। यह धक्का मुझे इतना गहरा मालूम होता है कि अगर भगवान् की दया से किसी तरह प्राण बच भी गए, तो दिमाग़ ज़रूर ख़राब हो जायगा। मुझे भय है, जन्म-भर के लिये कहीं पागल न हो जाय।"

कैप्टेन जैकब्स ने कहा—"अगर पागल हो जाय, तो इससे इसका मरना ही अच्छा है।"

पंडित मनमोहननाथ ने सरोष कैप्टेन की ओर देखा, और फिर आदेश-पूर्ण स्वर में कहा—"पागल हो जाने की चिंता मुझे नहीं, मैं अच्छी तरह एक पागल की देख-रेख और उसकी रक्षा कर सकता हूँ। डॉक्टर, इसका मुझे तनिक डर नहीं। इसे आप किसी तरह होश में लादें। मुझे विश्वास है, यह मरेगी नहीं।"

डॉक्टर ने गंभीरता से कहा—"मैं वही यत्न कर रहा हूँ। मुझे भी अब विश्वास होता है। यदि जीवन की कोई संभावना न होती, तो वह कभी होश में न आती। यह दूसरे बार की मूर्च्छा किसी हद तक कुछ शक पैदा करती है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप शक को निकाल दें। मैं विश्वास दिलाता हूँ, यह अवश्य ठीक हो जायगी। आपको इसके लिये यथेष्ट पुरस्कार मिलेगा।"

डॉक्टर ने मुस्किराकर कहा—"इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। यों भी मेरा कर्तव्य है कि मैं यथासाध्य इसका इलाज करूँ। मुझे एक चतुर नर्स की आवश्यकता है। यहाँ अगर कोई मिल सके, तो ठीक, नहीं तो सरकारी अस्पताल से बुलाना पड़ेगा। और जब तक पूरी तरह मरीज़ स्वस्थ न हो जायगा, जहाज़ को सिंगापूर में ठहराना पड़ेगा, क्योंकि कोई नर्स आपके साथ चल न सकेगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने चिंतित दृष्टि से चारो ओर देखा। उन्हें यह न मालूम हो सका कि यह गुरुतर भार किसे सौंपें।

अमीलिया वहाँ मौजूद थी। उसने आगे आकर कहा—"डॉक्टर, मैं नर्स का काम जानती हूँ, मैं सेवा करने के लिये तैयार हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ के नेत्र उल्लास से चमकने लगे। डूबते को सहारा मिला।

उन्होंने कहा—"ठीक है, अमीलिया को तो मैं बिलकुल भूल ही गया था। एक चतुर नर्स है। फ़िज़ी में एक बार मेरा लड़का बीमार पड़ा था, उसके जीवन की रक्षा अमीलिया ने अपनी सेवा-शुश्रूषा से की थी।"

यह सुनते ही अमीलिया का मुख विवर्ण हो गया। पुरानी घटना ने उसका घाव ताज़ा कर दिया। बड़ी कठिनता से उसने अपने को सँभाला। पंडित मनमोहननाथ कहते-कहते रुक गए।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"अमीलिया नर्स की आवश्यकता पूर्ण कर देगी, परंतु डॉक्टर, आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा। आपको मैं अपना डॉक्टर नियुक्त करता हूँ, बोलिए, आप क्या वेतन लेंगे?"

डॉक्टर हुसैन भाई अहमद भाई कुछ सोच-विचार में पड़ गए। डॉक्टर बंबई के रहनेवाले एक मुसलमान बोहरा-जाति के नवयुवक थे। इँगलैंड से कुछ ही दिन पहले डिगरी लेकर लौटे थे, और सिंगापुर में अपने चाचा करीम भाई हसनभाई के साथ रहकर प्रैक्टिस करते थे। अभी उन्हें पूर्ण रूप से अपने व्यापार में सफलता नहीं मिली थी।

उन्हें चिंतित देखकर पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप किसी बात की ज़रा भी चिंता न करें। अभी आपको ५००) वेतन मिलेगा, और आगे तरक़्क़ी भी मिलेगी। अभी फ़िलहाल तो आपको मेरे साथ रहना पड़ेगा, बाद में आपको खानों पर भेज दूँगा, जहाँ हज़ारों आदमी काम करते हैं, और एक 'कालोनी' (उपनिवेश) बनाने का विचार कर रहा हूँ। उस समय आपको भारतीय सिक्कों में ७००) माहवार दूँगा। आपको मैं हर तरह से संतुष्ट करूँगा।"

डॉक्टर हुसैन भाई ने संकोच के साथ उत्तर दिया—"आपका हुक्म मानने में मुझे कोई एतराज़ नहीं, बल्कि मेरे जैसे नए डॉक्टर के लिये सौभाग्य की बात है, लेकिन मुझे अपने चाचा से भी पूछना पड़ेगा, जिनके आश्रय में मैं हूँ। मेरे वालिद तो मेरे बचपन में ही फ़ौत हो गए थे। चाचा ने मुझे पढ़ाया-लिखाया है। उनसे बग़ैर इजाज़त लिए मैं अपनी रज़ामंदी नहीं दे सकता। निहायत अदब के साथ मैं इसकी माफ़ी चाहता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, तुम अपने चाचा से सब हाल कहकर उनकी आज्ञा ले लो। मुझे विश्वास है, वह कभी इनकार न करेंगे।"

डॉक्टर हुसैन भाई ने कहा—"जी हाँ, उम्मीद तो यही है। वह मेरी उन्नति में कभी बाधक न होंगे।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तो इस लड़की का भार मैं आप पर छोड़ता हूँ। इसे मौत की गोद से उठाकर मुझे वापस करना पड़ेगा।"

डॉक्टर हुसैन भाई ने कहा—"इंशा अल्लाह, उम्मीद तो ऐसी ही है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"क्या आप कह सकते हैं कि इसे कब होश आएगा?"

डॉक्टर हुसैन भाई ने कुछ सोचते हुए कहा—"ठीक ऐसा ही एक केस मेरे सामने ग्लासगो-अस्पताल में आया था, जब मैं एडिनबरा से वहाँ के अस्पताल में काम करने के लिये भेजा गया था। एक औरत छत पर से सिर के बल गिर पड़ी थी। उसके दिमाग़ में भी गहरी चोट पहुँचा थी। उसे पाँच दिनों बाद होश हुआ था, लेकिन फिर पागल हो गई। यह भी क़रीब-क़रीब वैसा ही केस है। इस लड़की को तूफ़ान में जहाज़ उलटने-पलटने से

संघातक चोट पहुँच गई है, इसलिये शायद होश आने पर यह पागल हो जाय। मुझे भी अब यक़ीन पड़ता है कि इसे मैं अच्छा कर दूँगा। इंजेक्शन ने जब फ़ायदा दिखलाया है, तो आगे भी ज़रूर फ़ायदा होगा। ज़रूरत सिर्फ़ एक तीमारदार की थी, वह मुझे मिल गया। अब आप निश्चिंत रहें।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अब आप कब अपने चाचा से दरयाफ़्ता कर जवाब देंगे?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आज शाम तक।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप जब शाम को आएँ, तो सफ़र के लिये बिलकुल तैयार होकर आएँ। आपका नियुक्ति-पत्र तो मैं अभी लिखे देता हूँ, और दूसरी बातों की लिखा-पढ़ी बाद में करते रहेंगे। यहाँ मैं बहुत देर ठहर नहीं सकता। आज शाम के पहले-पहल रवाना होना चाहता हूँ। बेहतर तो यह होगा कि आप दवा का इंतज़ाम करके अभी चले जायँ, और अपने चाचा से पूछकर विदा भी ले आवें।"

डॉक्टर हुसैन भाई ने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा—"जो हुक्म। ऐसा ही करूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ अपने केबिन में उनका नियुक्ति-पत्र लिखने के लिये सदेग चले गए। डॉक्टर हुसैन भाई माधवी के दूसरा इंजेक्शन लगाने की तैयारी करने लगे।

---

## ५

पंचमी का कुछ वक्र चंद्रमा धरातल को क्षीण तथा मलिन प्रकाश से स्नान कराने का उद्योग कर रहा था। श्वेत बादल के टुकड़े कभी-कभी उसके साथ आकर खेलने लगते। चंद्रमा उन्हें पकड़ने की कोशिश करता, और वे हँसते हुए वायु-वाहन पर सवार भाग खड़े होते। चंद्रमा भी उनके पीछे दौड़ता हुआ-सा मालूम होता। इसी दरम्यान दूसरा बादल का टुकड़ा उसके साथ छेड़खानी करने लगता। वह उसे छोड़कर नवागंतुक के साथ परिहास करने लगता। आभा इस दृश्य को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। प्रतिध्वनि उसकी सरसता और उत्फुल्लता चंद्रमा तक पहुँचाने का निष्फल प्रयत्न करने लगी।

आभा अपने बँगले के उद्यान में टहल रही और बादलों तथा चंद्रमा का परस्पर हास-परिहास देखकर जी खोलकर हँस रही थी। वह आज प्रसन्न थी। उसकी प्रसन्नता उमग-उमगकर बाहर निकल रही थी, और वह उसे दबाने का प्रयत्न करती, परंतु वह उसके वश के बाहर की बात थी। उसने उस दिन शाम को भारतेंदु को क्षमा-याचना करते सुना था। उसे विश्वास हो गया था कि भारतेंदु उससे प्रेम करते हैं। उसके लिये इतना ही यथेष्ट था। प्रेमी अपना प्रतिदान पाने से जगत् का सम्राट् हो जाता है—शायद उससे भी ऊँचा। वास्तव में आभा भारतेंदु से प्रेम करती थी। उसे जहाँ यह मालूम हुआ कि उनके हृदय में भी उसका स्थान है—वह भी वैसे ही आकुल हैं, जैसे कि वह—वह आनंद में विभोर हो गई। उसका प्रेम सफल होकर नृत्य करने लगा। प्रेम-संसार में यह एक

अद्‌भुत बात है कि प्रेमी अपने प्रेम-पात्र को उसी तरह दुखी देखना चाहता है, जैसा वह स्वयं है। इस वैचित्र्य का क्या रहस्य है, कौन वैज्ञानिक इसका विश्लेषण करे।

आभा ने फूली हुई गुलदाउदी का एक बड़ा पुष्प तोड़ लिया, और उसे सूँघने लगी। भीनी-भीनी सुगंध उसके प्रेम को मत्त करने लगी। उसने वह पुष्प, अपनी कुंतल-राशि में खोंस लिया। वह नाचती हुई आगे बढ़ी। सामने पीला गुलाब, चमेली के सहारे उसके अंग-प्रत्यंग के साथ लिपटता हुआ, उसके कपोलों पर प्रेम-चिह्न अंकित करने के लिये उतावली से झुक रहा था। गोल, बँधे हुए पुष्प अपनी मधुर गंध वायु को लुटा रहे थे—और समीर साम्य-वाद का सच्चा प्रतिनिधि होने से वह सुगंध-धन संसार को मुक्त हस्त से वितरण कर रहा था। वह आभा के कपोलों से टकराया, और नासिका द्वारा भीतर पहुँचकर उसके हृदय के उल्लास को देखने का प्रयत्न करने लगा। आभा ने खीझकर उसके कुछ पुष्प तोड़ लिए। गुलाब ने धन्य होकर उसे आशीर्वाद दिया। वे पुष्प उसके वक्ष पर, साड़ी के ऊपर, स्थिर होकर उसके हृदय का स्पंदन सुनने लगे, और मौन भाषा में उसका संदेश अपने स्वामी समीर से कहकर आदेश देने लगे कि जाओ, भारतेंदु के हृदय में भी ऐसा ही आनंद उत्पन्न कर दो। झूमता हुआ वायु अपनी स्वामिनी का संदेश तथा आज्ञा सुनाने चल दिया। आभा आगे बढ़ी। सामने रजनीगंधा की क्यारी थी। श्वेत पुष्पों का समूह किसी से तोड़े जाने की राह देख रहा था। उन पुष्पों की यह अभिलाषा थी कि वे किसी के कमरे में जाकर, फूलदानी में बैठकर दो प्रेमियों का हास-परिहास देखें, और उन्हें मस्त करके अपना जीवन सफल करें। मौन भाषा में उन्होंने अपनी विनय आभा को सुनाई। उसने मुस्किराकर उनकी बात मान ली, और एक नवीन

गुदगुदी के साथ उन पुष्पों को तोड़कर प्यार के साथ अपने कपोलों से लगा लिया। पुष्प अपनी सुध-बुध खोकर उसका अधरामृत पान करने लगे। आभा की आँखें रस में विभोर होने से शनैः-शनैः बंद हो गईं।

इसी समय उसकी सहेली मालती ने निःशब्द आकर उसकी आँखें बंद कर लीं। आभा चौंक पड़ी, और एक अस्फुट ध्वनि उसके मुख से निकल गई। उसने घबराकर कहा—"कौन है? छोड़ो, मेरा जी घबराता है।"

आभा सत्य ही भय से सिहर उठी। उसका शरीर काँपने लगा।

मालती ने हँसकर उसकी आँखें छोड़ दीं। आभा ने उसे पहचानकर एक शांति की साँस ली। वह भी धीरे-धीरे मुस्किराने लगी।

आभा ने मालती को धक्का देते हुए कहा—"जाओ, तुम हो।"

मालती ने हँसकर कहा—"हाँ, मैं हूँ। मुझे देखकर तो तुम्हें अपार कष्ट हुआ मालूम होता है। हाँ, भई, मैं हूँ तुम्हारी सखी मालती।"

आभा ने दूसरा धक्का देते हुए कहा—"जाओ, तुम्हें हर वक्त मज़ाक़ ही सूझा करता है। मैं तो डर गई, और तुम्हें हँसी की पड़ी है। देखो, अभी तक काँप रही हूँ।"

मालती ने अपनी हँसी बंद करते हुए कहा—"जाने को कहती हो, अच्छा, जाती हूँ। सत्य ही यह समय मेरे आने का न था। मैंने बड़ा भारी अपराध किया। ख़ैरियत यही है कि तुम अकेली थीं, और अगर 'वह' भी होते, तो शायद मार-पीटकर या अपमानित कर निकाली जाती।" यह कहकर मालती जाने लगी।

आभा ने दौड़कर पकड़ते हुए कहा—"अरे, मैंने तुम्हें कब जाने को कहा। तुम तो आज नंगी तलवार लेकर युद्ध करने आई हो।

न मालूम कहाँ के क़ुलाबे मिलाकर एक व्यर्थ का जाल रच रही हो। तुम्हें मेरी क़सम, जो एक क़दम भी आगे बढ़ीं।"

मालती ने रुककर कहा—"मैं जाती हूँ, तो तुम क़सम दिलाती हो। क्या करूँ, इधर खाँई और उधर ख़ंदक़। बड़ी आफ़त है। अगर ठहरती हूँ, तो 'वह' आकर, एक अनजान को देखकर, घबराकर वापस लौट जायँगे, और इससे मेरी प्रिय सखी की इतनी मनोहर शाम निष्फल जायगी, और अगर जाती हूँ, तो उसी प्रिय सखी की क़सम है, जिसका अनिष्ट मैं स्वप्न में नहीं कर सकती। उफ़्! बड़ी मुश्किल है।"

आभा ने प्रेम के साथ एक हलकी चपत लगाते हुए कहा—"मालती, तुम तो आज बहुत बढ़-बढ़कर बातें कर रही हो। यह क्या अपनी बीती सुना रही हो?"

मालती ने अपने कपोल को सहलाते हुए कहा—"ख़ैर, इसका इस्तग़ासा तो मैजिस्ट्रेट साहब के तशरीफ़ लाने पर दायर किया जायगा। अब रह गया बीती सुनाने के बारे में, उस विषय में यह कहना है कि अनुभूत का रहस्य अनुभव में संलिप्त रहता है।"

आभा ने खीझकर कहा—"जाओ, मैं तुम्हारी बकवास में अपना सिर नहीं दुखाती। तुम्हारा अध्यात्मवाद तुम्हीं को मुबारक हो।"

मालती ने जाते हुए कहा—"जाने की इजाज़त मिल गई, अब क़सम का बंधन नहीं रहा। नमस्कार! अब बकवास करके आपका अमूल्य समय नष्ट न करूँगी।" यह कहकर वह बड़ी तेज़ी के साथ जाने लगी।

आभा ने फिर दौड़कर उसे पकड़ते हुए कहा—"मालती, मालती, आज तुम्हें क्या हो गया है। ईश्वर के लिये माफ़ करो। तुम मेरी क़सम टालकर जा रही हो। अच्छा, तुम्हें तुम्हारे 'उनकी' क़सम है, जो एक क़दम भी आगे बढ़ीं।"

मालती ने ठहरकर कहा—"अरे! तुमने तो आज क़सम दिलाने की क़सम उठाई है। कभी मेरी क़सम, कभी 'उनकी' क़सम, कभी इसकी, कभी उसकी। वाह, तुम तो इतने ही दिनों में ऐसी बदल गईं। भई, वाह! यह तो ख़ूब रही। जाऊँ, तो जाने न दें, और अगर ठहरूँ, तो जाने को कहें। यह अजीब समस्या है। इसका हल किससे पूछूँ। और तो कोई यहाँ है नहीं, और शायद कोई आवे भी नहीं, सिर्फ़ तुम्हारे 'वह' आनेवाले हैं, उन्हीं से पूछूँगी। देखूँ, 'वह' तुम्हारा पक्ष लेते हैं, या मेरा।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम्हारी आँखों में जादू है, तुम्हारा पक्ष लेंगे। वह क्या, जिसके सामने तुम फ़रियाद करोगी, वही तुम्हारी ओर ढुलक जायगा। तुम्हें क्या मालूम कि 'वह' तुम्हें कितना प्यार करते हैं। क्या तुमने कभी उन्हें अपना रूमाल प्रेम-चिह्न में दिया था? ज़रूर दिया था। 'वह' रात-दिन उसी रूमाल को देख-देखकर रोते रहते हैं। एक दिन मैंने वह तुम्हारा रूमाल छीन लिया, तब से बेचारे रोते हैं कि मालती के वापस आने पर अपने रोने का प्रमाण क्या भेंट करेंगे, क्योंकि वह रूमाल उनके आँसुओं से रोज़ाना साफ़ किया जाता था। अब वह तुम्हारा रूमाल मेरे पास है। देखोगी?"

मालती ने हँसकर कहा—"बातें बनाना तो उन्होंने बहुत सिखा दिया है, और साथ ही निरपराध व्यक्तियों पर तोहमत और इल-ज़ाम लगा देना भी। क्यों फ़िज़ूल उन्हें बदनाम करती हो। अरे हाँ, जिस प्रकार काव्य में व्याज-स्तुति होती है, उसी प्रकार प्रेम में भी व्याज-कथन होता होगा, यानी दूसरे का नाम लेकर अपनी प्रेम-कथा कहना। वाह, आभा, तुममें चातुर्य तो बहुत आ गया है। मुझे भी अपनी शिष्या बना लो।"

आभा ने दबी हुई मुस्किराहट के साथ कहा—"यह देखो,

अपनी शिष्या होने के लिये संकेत कर रही हैं। अच्छा, मैं सहर्ष तुम्हारी शिष्या होना स्वीकार करती हूँ। अच्छा, मालती, सच कहना, तुमने चेला मूँड़ना कब से सीखा।" यह कहकर वह हँस पड़ी, उसकी दबी मुस्किराहट बंधन तोड़कर सवेग बाहर निकल पड़ी।

मालती ने हँसते हुए उत्तर दिया—"चेला मूँड़ना उस वक़्त से सीखा है, जब से तुमने यह काम छोड़ दिया, और गृहस्थिन बनकर, अपने 'उनके' साथ बैठकर राम-राम जपना सीख गईं।"

मालती और आभा की हँसी के शब्द ने उस छोटे से हौज़ में संतरण करते हुए कमल-पुष्प में बंद भौंरे को चौंका दिया, जहाँ वे दोनो टहलती हुई आकर बैठ गई थीं। मालती ने फ़ौवारा खोल दिया। पानी की महीन-महीन बूँदें चंद्रिका के प्रकाश से अनबिधे मोती बनकर कमल की बंद पंखुड़ियों पर गिरकर उस छोटे-से कुंड में विलीन होने लगीं।

आभा ने कहा—"शरद्-ऋतु वास्तव में बड़ी मनोहर होती है। कवियों ने इसकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है। देखो, चंद्रमा कैसा मनोहर मालूम होता है। हालाँकि अभी ज़रा-सा है, मगर फिर भी कैसा उज्ज्वल है।"

मालती ने मंद मुस्कान-सहित पूछा—"और अगर इस समय कोई तुम्हें प्यार करनेवाला हो, तो तुम्हें यह रात और सुहावनी मालूम हो।" यह कहकर वह फिर हँस पड़ी।

आभा लज्जित हो गई।

मालती ने उसका चिबुक उठाते हुए कहा—"शरमा क्यों गई आभा। क्या तुमने अभी तक किसी को प्यार नहीं किया। देखो, सच कहना, अगर मुझसे कोई बात छिपाई, तो मैं भी तुमसे कुछ न कहूँगी। यह सौदा तो लेन-देन का है। तुम कहोगी, तो मैं भी

कहूँगी, और अगर तुम छिपाओगी, तो मैं तुम्हें क्यों बताऊँगी। विनिमय ईमानदारी का सौदा है।"

आभा सिर झुकाकर कुछ सोचने लगी। चंद्रमा के वक्र मुख पर तिरछी हास्य-रेखा दिखाई देने लगी। मालती उत्सुकता से देखने लगी।

आभा ने कोई उत्तर नहीं दिया। मालती ने कहा—"मुझसे भी इतना परदा! क्या कोई शरमाने की बात है?"

आभा ने साहस के साथ कहा—"नहीं मालती, शरमाने की नहीं, बल्कि गौरव की बात है।"

मालती ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"तब तो सखी, तुम्हें ज़रूर बताना होगा।"

आभा के कपोलों पर लालिमा दौड़ने लगी। मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रवाह तेज़ी से बहने लगा, और कोई छिपी हुई शक्ति उसका मुख खोलने के लिये उसे बाध्य करने लगी। किंतु लाज का ताला उसके ओठों पर लगा हुआ था। आभा फिर भी उत्तर न दे सकी।

मालती ने उसे अपने गले से लगाते हुए सप्रेम कहा—"क्यों सखी, मुझे क्या न बतलाओगी। जानती हो, जो प्रेम करता है, उसे प्रेम की कहानी भी अच्छी लगती है। तुम्हें मेरी नहीं, उन्हीं की, जिन्हें तुम प्यार करती हो, क़सम है, जो तुम न बतलाओ। मैं आज बिना सुने न जाऊँगी।" यह कहकर विकट उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगी।

आभा अपने हृदय का साहस एकत्र करने लगी।

मालती ने अधीर होकर कहा—"जाओ, मुझसे न कहोगी।"

मालती के स्वर में उपालंभ और विराग की गहरी छाप थी।

आभा उठकर जाने लगी।

मालती ने उसे पकड़ते हुए कहा—"अरे! तुम तो चल दीं। ठहरो, जाती कहाँ हो? आज तुम्हारे प्रेम की कहानी सुने बिना जाने न दूँगी, और ख़ुद भी न जाऊँगी।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम कहती हो, जाओ, इस-लिये जाती हूँ।"

मालती ने ज़ोर से हँसकर कहा—"अच्छा! हुज़ूर को भी लखनवी नाज़-अंदाज़ की काफ़ी मालूमात है, और यही नहीं, मश्क़ भी है।"

आभा ने कुछ झेंपते हुए कहा—"भई, क्या करूँ, तुम जब जाने को कहती हो, तो जाना ही पड़ेगा, और इस तरह वह क़सम उतर गई, जो तुमने चढ़ाई थी।"

मालती ने कुछ ज़ोर से पीठ में थप्पड़ मारकर और किसी क़दर झिंझोड़कर कहा—"आपने तो मुझे भी पैदल-शह-मात खिला दी। अरे वाह! किस अंदाज़ से अपने 'उनके' की सौगंद की याद दिलाई है, जिसे मैं अपने उतावलेपन में भूल गई थी। हाँ भई, अगर तुम्हें 'उनके सौंह' की कुछ भी क़द्र है, तो ज़रूर कहोगी, और तुरंत कहोगी।"

आभा की लाज का ताला खुल गया। प्रसन्नता जो अभी तक मालती के प्रभाव में आकर, किसी तरह सकुचाकर मन-ही-मन किलकारी मार रही थी, उमँगकर बाहर निकल पड़ी। आभा की सरस आँखें झूमकर नाच उठीं—भाव निकलता हुआ कुछ रुककर कह बैठा—"क्या करोगी सुनकर मालती?"

मालती ने पूछा—"तुमने मुझसे क्यों पूछा था?"

आभा ने कहा—"प्रेम की कहानी सुनने को जी चाहता है। मालती, प्रेम एक सर्वव्यापी शक्ति है, जिसकी नींव पर ईश्वर या भगवान् का अस्तित्व और उसका विश्वास स्थित है। प्रेम जीवन का

अद्भुत विकास है, जिसके साथ ही ब्रह्म का वास्तविक रूप मंथर गति से इंद्रियों द्वारा देखा जाता और फिर उसमें लीन हो जाता है। इसी मिलन का नाम मोक्ष है, और इंद्रियों द्वारा दिग्दर्शन ही का नाम जीवन है।"

मालती ने हँसकर व्यंग्य के स्वर में कहा—"प्रेम वेदांत सिखाता है, यह तो आज ही मालूम हुआ।"

आभा ने गंभीर होकर कहा—"मालती, वेदांत की ज्योति का नाम प्रेम है। वेदांत के तत्त्व केवल प्रेम की कहानियाँ हैं, ऋषियों के सत्य अनुभव हैं, अनुमान हैं, विचार हैं, उपदेश हैं, मार्ग-प्रदर्शक संकेत हैं, जो इश्क़ हक़ीक़ी की अंतिम सीमा की ओर ले जाते हैं, जिससे ब्रह्म की अनुभूति है, या जो स्वयं ब्रह्म है। वेदांत का ज्ञान आत्मा का स्वयं निदर्शन है। प्रत्येक कण, उनसे भी छोटे परमाणुओं में जीवन है। उनका तो न आदि है, और न अंत। वे सदैव थे, और सदैव रहेंगे। वे परमाणु एक दूसरे के प्रति संयुक्त होते हुए भी विलग हैं, क्योंकि यही जीवन का रूप है। वही फिर मिलने का प्रयत्न करते हैं, और वह मिलन प्रेम से होता है। अतएव प्रणय, विकास, अनुराग, भक्ति और प्रेम इश्क़ मज़ाज़ी के रूप में संसार में वर्तमान रहता है, और जब ब्रह्म का सर्वव्यापी ज्ञान हो जाता है, तब ऐंद्रिक भोग-विलास की वासना, जो वास्तव में जीवन होने का सर्वप्रधान लक्षण है, अपने आप उस सुख में लीन हो जाती है, जिसे वैराग्य अथवा इश्क़ हक़ीक़ी कहते हैं। भगवान् जयदेव का जीवन ज्वलंत प्रेम का अद्भुत उदाहरण है, और चैतन्य का अव्यक्त के प्रति भक्ति का। तुलसी और सूर का आधा श्रृंगार और आधा वैराग्य का निदर्शन है।

मालती ने विस्मित होकर आभा की ओर देखा।

आभा कह रही थी—"मालती, मैं विवाह को दो आत्माओं का

परिचय और आपस में 'दो-पन' को मिटाकर एक होने का उपाय या मार्ग मानती हूँ। यह परिचय जब भगवान् के उन दो कणों में होता है, जो बहुत दिनों से जीवन के फेर में पड़कर न्यारे थे, तब दंपति में उतना आकर्षण नहीं होता, जितना उन दो कणों के विवाह में होता है, जो कई मर्तबे अन्य-अन्य जीवनों में भी मिल चुके है। यह क्या तुम्हें कभी अनुभव नहीं हुआ कि किसी वस्तु, पुरुष या स्त्री को देखकर तुम चिंता में पड़ गई हो कि मैंने इसे कहीं देखा है, परंतु ठीक से याद नहीं पड़ता। स्मृति और विस्मृति का यह अद्भुत खेल क्या है, मालती? वही भगवान् की शक्ति के किन्हीं परमाणुओं का परस्पर आकर्षण है, और शायद वे परमाणु पहले जीवन में मिल चुके हैं, इसीलिये यह स्मृति है। और, चूँकि जन्म के साथ कलेवर बदल जाता है, इसलिये विस्मृति है।

मालती ने चकित नेत्रों से देखते हुए कहा—"कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता है आभा! जीवन के किसी क्षण में अनायास यह भाव आ जाता है कि यह वस्तु अथवा मनुष्य कहीं देखा है।"

आभा ने तुरंत ही कहा—"बस, वही स्मृति तो यह सिद्ध करती है कि पूर्व-जन्म में हम मिल चुके और किसी हद तक परिचित रहे हैं। पूर्व जन्म उसी प्रकार सत्य है, जैसा यह बीतता हुआ जीवन; या यों कहो कि यह जीवन पूर्व-जीवन का परिशिष्ट-मात्र है।"

मालती ने कहा—"तब क्या यह निश्चय है कि पूर्व-जन्म के विना यह जन्म हो नहीं सकता?"

आभा ने उत्तर दिया—"हाँ, है तो कुछ ऐसी ही बात।"

मालती ने पूछा—"अच्छा, तो फिर हमें पूर्व-जन्म की बातें याद क्यों नहीं रहतीं।

आभा ने उत्तर दिया—"पूर्व-जन्म की घटनाएँ याद रह सकती

हैं, किसी-किसी को याद भी रहती हैं। लेकिन अव्वल तो मनुष्य उन पर विश्वास नहीं करता, क्योंकि उनकी पुष्टि नहीं होती, और दूसरे, जीवन-मरण का तार उन्हें भुला देता है, क्योंकि नए जीवन में मनुष्य इतना फँस जाता है कि उसे गत जीवन का स्मरण करने का अवसर नहीं मिलता। काश वह अवसर भी मिला, तो उसकी स्मृति को हम भ्रम कहकर निश्चित हो जाते हैं। जैसे स्वप्न देखने के बाद हमें उसकी स्मृति नहीं रहती, और अगर रहती है, तो हम उसे अंधकार का भ्रम समझते हैं, हालाँकि जब हम स्वप्न देखते होते हैं, तो स्वप्न की घटनाओं को सत्य समझते हैं, और उनका असर हमारी इंद्रियों तथा मन पर होता है। ठीक वही बात पूर्व-जन्म की घटनाओं के संबंध में लागू होती है।"

मालती ने चकित होते हुए कहा—"यह तो बिलकुल सत्य है आभा! तुमसे भी मैं पूर्व-जन्म में मिली होऊँगी, लेकिन याद नहीं पड़ता।"

आभा ने ज़ोर के साथ कहा—"बेशक, हम और तुम पूर्व-जन्म के मित्र हैं। यह मुमकिन है कि पूर्व-जन्म में हमारा परिचय बहुत थोड़ा हो, और इस जन्म में कुछ अधिक है। अगले जन्म में इससे भी अधिक होगा।"

मालती ने व्यग्र होकर पूछा—"तो क्या हमारा जन्म बराबर होता रहेगा, इसका कभी अंत नहीं है?"

आभा ने गंभीरता से कहा—"नहीं, हमारे जन्म का अंत नहीं है। यह तार कभी नहीं टूटता, क्योंकि इसी में ईश्वर की सत्ता निहित है।"

मालती ने पूछा—"तो फिर मोक्ष क्या है?"

आभा ने हँसकर कहा—"मोक्ष का नाम ज्ञान है। जब आत्मा को ईश्वर का सर्वव्यापी ज्ञान हो जाता है, वही मोक्ष है। मोक्ष कोई

निष्कर्म या निश्चेतन अवस्था का नाम नहीं। यह माना कि ब्रह्मांड की हर हरकत, हर वस्तु, पाप-पुण्य, सब ईश्वर है, बस, तभी आत्मा को मोक्ष प्राप्त हो गया, और फिर जन्म-मरण का दुख नहीं रहता। मोक्ष लीन होने अथवा छूटने को कहते हैं। जन्म-मरण से छूटना नहीं, बल्कि जन्म-मरण के भाव से मुक्त होने को मोक्ष कहते हैं। जब शरीर के संपर्क अथवा पंचतत्त्वों की मैत्री में आत्मा अथवा ईश्वर आता है, तब उसका नाम जन्म है, और जब उनसे विलग होकर उस सर्वव्यापी एक में लीन हो जाता है, तब उसका नाम मृत्यु या मोक्ष है। आत्मा मुक्त पहले भी था, और बाद में भी है, केवल बीच में जिसे शारीरिक जीवन कहते हैं, उसका मोह या तम-रूप है। ज्ञान उत्पन्न होने से यह द्वंद्व नाश हो जाता है, और इस शारीरिक संबंध से भी हमें वह आनंद प्राप्त होता है, जिसे ब्रह्मानंद कहते हैं। बस, यही संसार का रहस्य है।"

मालती ने कहा—"आभा, तुम्हारी दलीलों का मैं उत्तर तो नहीं दे सकती, परंतु इसमें कुछ सत्यता अवश्य मालूम होती है। मैंने कभी इतना गहरा विचार नहीं किया, और न इसके चक्कर में पड़ना चाहती हूँ, परंतु इतना ज़रूर है कि तुम्हारी बातें समझ में आती हैं, और उन पर विश्वास करने को जी चाहता है। तुम इतनी गाथा तो गा गईं, लेकिन अभी तक तुमने यह नहीं बतलाया कि तुम्हारे पूर्व-जन्म का पति कौन है, और इस जन्म में तुमने उन्हें कहाँ देखा? देखा है, या नहीं? और अगर वह यहीं है, तो तुम्हारा विवाह उनके साथ इस जन्म में होगा या नहीं? दुनिया-भर की फ़िलॉसफ़ी तो बक गईं, लेकिन असली बात तो बतलाई ही नहीं।"

आभा ने मुस्कान-सहित पूछा—"क्या अब भी तुम्हारा जी नहीं भरा? अब क्या सुनना चाहती हो?"

मालती ने एक हल्की चपत लगाते हुए कहा—"फ़िज़ूल की बातें

बक-बककर तो मेरा दिमाग़ चाट गईं, लेकिन अपना भेद बताने में आनाकानी करती हो।"

आभा ने उसके मुख को दोनो हाथों से पकड़कर और उसकी आँखों में अपनी आँखें मिलाते हुए पूछा—"तो प्यारी सखी, क्या सचमुच बता दूँ ? अच्छा, इस बात की प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरा मज़ाक़ नहीं उड़ाओगी, और किसी से नहीं कहोगी।"

मालती ने तुरंत ही प्रतिज्ञा की।

आभा ने गंभीर होकर उसके कान के पास जाकर कहा—"तुमको।"

मालती चौंकी और आभा हँस पड़ी। मालती ने सक्रोध कहा—"तुम्हें तो हमेशा मज़ाक़ सूझता है। न मालूम कब से विनती कर रही हूँ, नाक रगड़ रही हूँ, लेकिन जनाब के मिज़ाज़ सातवें आसमान पर चढ़ जाते हैं। ऐसा डरती हैं, मानो कोई तुम्हारे प्रेमी को छीन लेगा, या अपना प्रेमी बना लेगा।"

मालती ने अभिमान से अपना मुख फिरा लिया।

आभा ने उसे मनाते हुए कहा—"अच्छा, गुस्सा मत हो। सब हाल बता दूँगी। असली बात यह है कि अभी प्रेम हुआ ही नहीं, बतलाऊँ क्या। हम हिंदू हैं, और हिंदू समाज में विवाह के बाद प्रेम होता है, इसलिये अविवाहित हिंदू-कुमारी को विवाह के पहले प्रेम करना निषिद्ध है। जब विवाह होगा, तब प्रेम भी होगा।"

मालती ने कहा—"तो क्या अब तक तुम मज़ाक़ ही करती रहीं ? मुझे केवल व्यर्थ की भूलभुलैया में डाल रक्खा था। अच्छा, बताओ, तुम्हारे विवाह की बातचीत कहाँ हो रही है ?"

आभा ने कहा—"मुझे क्या मालूम, पापा कहाँ-कहाँ बातचीत कर रहे हैं।"

मालती ने कहा—"अरे, सुनती तो होगी। भला, ऐसी भी कोई बात है कि घर में छिपी रहे। नवयुवक और नवयुवतियाँ दोनो ही छिप-छिपकर अपने विवाह की बातचीत सुनना ख़ूब जानते हैं। तुम्हें सब मालूम है, लेकिन जान-बूझकर नहीं कहतीं।"

आभा ने कहा—"अच्छा, कमरे में चलो; आओ, वहीं बैठें। अब यहाँ कुछ सरदी मालूम होती है। वहीं सब बातें बतलाऊँगी।"

मालती ने अभिमान-पूर्वक कहा—"नहीं, अब मैं कहीं न जाऊँगी। अब ज़्यादा ख़ुशामद मुझे नहीं आती। मेरा कोई ज़ोर तो है नहीं, जो तुमसे कहला लूँ, और न तुम्हें ही कोई मजबूरी है कि तुम कहो ही। अब घर जाऊँगी। रात भी ज़्यादा हो गई।"

आभा ने विनय के साथ सप्रेम कहा—"सत्य ही मालती, वहाँ कमरे में बैठकर सब हाल कहूँगी। चलो, वहाँ थोड़ी ही देर बैठना।"

मालती ने कहा—"अगर सब कहने की प्रतिज्ञा करो, तो मैं चलूँ, नहीं तो नहीं।"

आभा ने प्रतिज्ञा की। मालती आभा के साथ चली गई।

---

## ६

आभा ने वह रूमाल मालती के सामने रखते हुए, जिसे कई दिन पहले उसने भारतेंदु से पाया था, पूछा—"कहो, इस रूमाल को पहचानती हो ?"

मालती ने उसे उलटते-पलटते कहा—"इसमें मेरा नाम तो ज़रूर लिखा है, लेकिन कह नहीं सकती कि यह मेरा है। ऐसे रूमाल तो सैकड़ों मेरे पास हैं, और बाज़ार में मिलते हैं। याद नहीं पड़ता।"

आभा ने मुस्किराती हुई आँखों से संतुष्ट होते हुए कहा—"अच्छा, किसे दिया था, यह तो याद पड़ता है ?"

मालती ने कहा—"यह भी याद नहीं पड़ता कि मैंने अपना रूमाल किसी को दिया था। हाँ, धोबियों को ज़रूर धोने के लिये देती हूँ। प्रेम-चिह्न करके किसी को देना तो याद नहीं पड़ता।"

आभा ने हँसकर कहा—"अब क्यों छिपाती हो। उन्होंने मुझसे तुम्हारे प्रेम का सब हाल कह दिया है। अब तुम्हारा छिपाना वृथा है।"

मालती ने खीझकर कहा—"उलटा चोर कोतवाल को चोर बनावे और डाँटे। मेरा रूमाल तो तुम्हारे पास निकला, इसके बजाय कि मैं कुछ पूछ-ताछ करूँ, तुम उलटे मुझे आँख दिखाकर पूछती हो कि किसे दिया था। कैसा उलटा ज़माना है !"

आभा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

थोड़ी देर हँसने के बाद कहा—"किसी को दिया ज़रूर होगा, लेकिन उसका नाम बतलाते हुए डरती हो।"

मालती ने खीझकर कहा—"अच्छा, नहीं बतलाती। डर मालूम होता है कि कहीं तुम उसे छीन न लो।"

आभा ने मृदु हँसी से कहा—"शायद तुम्हारा यह डर सत्य ही है।"

मालती चक्कर में पड़ गई। वह कुछ सोचने लगी।

थोड़ी देर बाद कहा—"अच्छा, बतलाओ, तुमने इसे किससे पाया?"

आभा ने उत्तर दिया—"अगर यही कह दूँ, तो फिर मजा क्या आएगा?"

मालती ने सक्रोध कहा—"भाड़ में जाय तुम्हारा मज़ा।"

आभा ने कहा—"पेट में चूहे कूदने लगे। बस, इतने में घबरा गई।"

मालती ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"इसमें घबराने की कौन बात। कुछ मैंने चोरी तो की नहीं, जो घबरा जाऊँ।"

आभा ने थोड़ी देर बाद एक काग़ज़ पर भारतेंदु का नाम लिखकर उसे दिखलाते हुए पूछा—"इस नाम के पुरुष को क्या जानती हो?"

मालती ने उत्तर दिया—"हाँ, इस नाम के कई एक पुरुषों को जानती हूँ।"

आभा ने पूछा—"अच्छा, बताओ, किस-किसको जानती हो?"

मालती ने कहा—"हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि, प्रथम नाटककार और लेखक हरिश्चंद्र ही एक हैं, जिनका उपनाम भारतेंदु था, और शायद इसी नाम का एक लड़का भी हमारे साथ एम्० ए० में पढ़ता था, जिसकी प्रशंसा हरएक प्रोफ़ेसर और ख़ासकर तुम्हारे पापा, बहुत करते थे। वह एम्० ए० में प्रथम हुआ था, और सुनने में आया था कि उसने रेकार्ड बीट किया है। और भी कई व्यक्तियों को जानती होऊँगी, लेकिन इस वक़्त याद नहीं आता।"

आभा के कपोल लाल होने लगे।

उसने कहा—"अच्छा, जो व्यक्ति इस नाम का हमारे साथ पढ़ता था, क्या उसे तुम अच्छी तरह जानती हो ?"

मालती ने उत्तर दिया—"अच्छी तरह क्या, केवल नाम और शकल से परिचित हूँ। इससे ज़्यादा कुछ नहीं जानती। वह तो अजब बुद्धू लड़का था, न किसी से बोलता था, न हँसता था। रात-दिन उसे किताबों में उलझा ही देखती थी। अवकाश के घंटों में हज़रत लाइब्रेरी में सदैव दिखाई पड़ते—एक कोने में बैठे कोई पुस्तक पढ़ने में निमग्न हैं। ऐसा सुनने में आता था कि लाइब्रेरी की कोई पुस्तक उससे नहीं बची, चाहे वह किसी विषय की हो। रास्ते में कभी नमस्कार हो गया, तो यही बहुत था। अब भी तो वह शायद डॉक्टरेट के लिये कोशिश कर रहा है।"

आभा ने अपने मन की प्रसन्नता छिपाते हुए कहा—"कभी उसके पिता के बारे में सुना है ?"

मालती ने कहा—"मेरे ससुराल से लखनऊ आने के पहले शायद उसके पिता आए थे, और उनके स्वागत में एक प्रीति-भोज क़ैसरबाग़ में हुआ था। मेरा छोटा भाई नंदलाल, जो आज-कल युनिवर्सिटी में पढ़ता है, कह रहा था कि तुम्हारे क्लासफ़ेलो भारतेंदु के पिता ने लखनऊ-विश्वविद्यालय को दस लाख रुपया दान किया है, जिसके उपलक्ष में क़ैसरबाग़ में 'ऐटहोम' हुआ था, और उसमें पिताजी भी निमंत्रित थे। क्यों, इन बातों से तुम्हारा क्या मतलब ? देखती हूँ, फिर इन्हीं बातों में आधी रात बीत जायगी, और यों ही बहलाकर मुझे बैरंग वापस भेजोगी।"

आभा ने मुस्किराकर रक्ताभ कपोलों से कहा—"कह तो रही हूँ, और कैसे कहूँ।"

मालती की आँखें सहसा चमक उठीं। तड़ित् वेग से एक विचार उसके मस्तिष्क में प्रवेश कर गया। वह खिल पड़ी। उसने सप्रेम आभा को गले लगाते हुए उसका कपोल चूम लिया, और मुख उठाकर कपोलों पर उँगलियों से मारते हुए कहा—"अरे, तुम तो ग़ज़ब कर रही हो! साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहा। इतना घुमा-फिराकर पहेली-सी बुझा रही थीं। वाह री आभा! तुम्हारी माया भी ज़बरदस्त है। उनका नाम मुँह से नहीं कहा, लिखकर बतलाया। अभी से यह भाव कि पति का नाम मुँह से उच्चारण न करोगी! शादी नहीं हुई, और पति-भक्ति होने लगी। वाह भाई, वाह! तुमने तो हम सबों के कान काट लिए।"

आभा ने उसका मुख दोनो हाथों से ढकते हुए कहा—"तुम बनाने लगीं न। अभी तुमने बाहर कहा था कि मैं मज़ाक़ नहीं उड़ाऊँगी, और फिर इतनी जल्दी भूल गईं।"

आभा का मुख लाल था, और हृदय बड़े ज़ोर से धड़क रहा था।

मालती ने मुख छुड़ाते हुए कहा—"अच्छा, मज़ाक़ न उड़ाऊँगी। एक लफ़्ज़ भी न कहूँगी।"

आभा ने उसका मुख छोड़ दिया।

आभा उठकर जाने लगी।

मालती ने उसे पकड़ते हुए कहा—"अभी कहाँ जाओगी। अभी तो सिर्फ़ नाम ही बताया है, वह भी संकेत से। अब सारा क़िस्सा अपने प्रेम का सुनाओ।"

आभा ने बैठते हुए कहा—"इससे ज़्यादा कुछ नहीं। और क्या बतलाऊँ?"

मालती ने परिहास-भरी आँखों से देखते हुए कहा—"यह बतलाओ कि प्रेम कैसे हुआ। कब हुआ? वह क्या तुम्हें चाहते हैं? कितना चाहते है? सब बातें बतलाओ।"

आभा ने अपने नेत्र नीचे करते हुए कहा—"जब वह सब कुछ है ही नहीं, तो क्या बतलाऊँ? हमारा कभी प्रेम हुआ ही नहीं। और, अभी प्रेम करने की नौबत कहाँ आई। कह तो दिया, हिंदू-घरों में प्रेम विवाह के बाद होता है।"

मालती ने दुबारा चकित होते हुए कहा—"अच्छा, तो कहो, शादी की बातचीत हुई है। उफ़! मैं तो समझ रही थी कि तुमने उनसे प्रेम किया होगा।"

आभा के कपोल लाल हो गए। उसने कुछ गर्व के साथ कहा—"हिंदू-कुमारियाँ अविवाहित प्रेम नहीं करतीं, तब मैं कैसे करूँगी मालती।"

मालती ने संकुचित होकर कहा—"हाँ-हाँ, मैं जानती हूँ। तुम्हारी धार्मिक बुद्धि का मुझे भली भाँति ज्ञान है। अच्छा, यह तो बतलाओ, विवाह की बातचीत पक्की हो गई है, या सिर्फ़ शुरू ही हुई है?"

आभा ने सिर झुकाकर कहा—"क़रीब-क़रीब तय हो गया है। पापा ने उनके पिता से सब कुछ तय कर लिया है। वह अभी एक ज़रूरी काम से दक्षिण-अमेरिका गए हैं, जहाँ उनकी खानें हैं, वापस आने पर शायद—"

मालती ने आभा को आगे कहने न दिया। उसकी बात उसके मुँह से निकलते हुए कहा—"वापस आने पर विवाह करेंगे। तब तो सब ठीक हो गया है। अब बाक़ी क्या है? सिर्फ़ इतना ही कि मंडप में वेदी के चारो ओर घूमना और आपस में मुआहिदा होना। आभा, तुम इतने गहरे में थीं, तुम्हारी शकल देखकर कौन कहेगा?"

फिर थोड़ी देर बाद कहा—"अच्छा भई, मुझे माफ़ करो। अभी-अभी तुम्हारे भावी पति महाशय को 'बुद्धू' कह दिया है, इसका कुछ ख़याल न करना। मैंने उन्हें नाज़ासफ़ेलो के नाते कहा था।

उस समय यह न जानती थी कि वह हमारे इतने निकट हैं, और उनका सम्मान और आदर करना पड़ेगा।"

आभा ने फिर उसका मुँह दबाते हुए कहा—"फिर तुम बनाने लगीं। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ मालती, मुझे बनाओ नहीं।"

मालती ने उसे पकड़ते हुए कहा—"अरे, तुम्हें क्या हो गया है? तुम तो उनका नाम लेती नहीं, और मैं उन्हें गालियाँ दूँ, अपमान करूँ। यह तो इंसानियत के बाहर की बात है। नहीं, मैं हँसी नहीं करती। सचमुच, आभा, मुझे क्षमा करो।"

आभा के कपोल लाल हो रहे थे। उसने कहा—"तुम्हें क्या हो गया है। इसमें क्या कोई शक है कि वह हमारे सहपाठी थे। सहपाठी से हमेशा मज़ाक़ होता है, चाहे रिश्ते में वह कोई हों, और उम्र में कितना ही अंतर हो। मनुष्य जैसा होता है, उसे वही कहा जाता है।"

मालती ने कुछ झेंपते हुए कहा—"नहीं, अगर वह सचमुच बुद्धू होते, तो मैं शब्द वापस न लेती, लेकिन दरअसल वह हैं नहीं। हाँ, लड़कियों के प्रति वह सदा उदासीन रहे, इसी से कहा था।"

किसी स्त्री के सामने जब कोई यह कहता है कि उसका पति अन्य स्त्रियों के प्रति उदासीन रहता है, या उनकी ओर ध्यान नहीं देता, तो उस स्त्री का हृदय आनंद से मत्त हो जाता है। प्रेम कितना स्वार्थी है!

मालती की शिकायत से आभा को कष्ट नहीं हुआ, बल्कि वह हर्ष में विभोर हो गई।

मालती ने कहा—"यह संबंध तो अच्छा है, आभा, मैं तुम्हें हृदय से बधाई देती हूँ।"

आभा के कान, आँख और कपोल, सब उग्र रक्त-संचालन से लाल हुए जा रहे थे। उसने मृदुल स्वर में, बहुत ही आहिस्ता से कहा—"धन्यवाद!"

मालती ने प्रसन्नता का भाव मुख पर लाते हुए कहा—"नहीं, हर तरह से अच्छा है। भई, माफ़ करना, मैं तो उनका नाम लूँगी। भारतेंदुजी देखने में सुश्री, मनोहर, बलिष्ठ युवक हैं, प्रतिभा में अग्रगण्य हैं, विद्वान् भी हैं, और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह सच्चरित्र युवक हैं। जिनके पिता ने केवल दस लाख का एक मुश्त दान दिया है, उसके धन का क्या वार-पार! नंदलाल तो यह भी कहता था कि उनके सोने-चाँदी की कई खानें हैं, जिनके वह एकमात्र मालिक हैं।"

आभा ने सिर झुकाकर कहा—"अँगरेज़ी में एक कहावत है—'A goodly apple rotten at heart' (ऊपर से मनोहर या सुदृश्य सेब अंदर से सड़ा होता है।) इसलिये मालती, अभी क्या कहा जा सकता है। मनुष्य और सोना कसने पर मालूम होता है।"

मालती ने अपने मन का भाव दबाते हुए कहा—"नहीं आभा, मैं कह सकती हूँ कि वह एक आदर्श पति होंगे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

आभा ने कहा—"देखो।"

मालती ने कहा—"नहीं, सत्य ही होगा। आभा, ईश्वर करे, तुम सुखी होओ। यह जानकर कि मेरी सखी सुखी है, मुझे अनुपम संतोष और आनंद होगा।"

आभा ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब तो सब बतला दिया कि अभी और कुछ कहना पड़ेगा? आज तुम यहीं खाना खाकर जाना। जाऊँ, महराजिन को यहीं खाना देने को कह आऊँ।"

मालती ने उठते हुए कहा—"नहीं आभा, किसी दूसरे दिन खाऊँगी। रात बहुत हो गई है, अब जाऊँगी। क्या तुम सिर्फ़ रोटी-दाल खिलाकर शादी तय होने की दावत से छुटकारा पाना चाहती

हो ? ऐसा नहीं होने का। मैं एक अच्छी दावत लूँगी, इतने सस्ते में न छोड़ूँगी।"

आभा ने हँसकर कहा—"मैं इनकार कब करती हूँ। जैसी दावत कहोगी, करूँगी। लेकिन आज तो तुम्हें यहीं खाकर जाना होगा। मैं फ़ोन से लेडी साहबा से कहे देती हूँ कि मालती मेरे यहाँ हैं, और भोजन करके आवेंगी। आप लोग उनका इंतज़ार न करें।"

मालती ने बहुत प्रकार से आपत्ति की, मगर आभा ने कुछ नहीं सुना। वह सर रामकृष्ण को फ़ोन करने चली गई।

उस दिन दोनो सखियों ने साथ ही भोजन किया।

# ७

मालती उस रात को सुखी होकर नहीं लौटी। आभा के विवाह-संवाद से उसे प्रसन्नता नहीं हुई। भारतेंदु-जैसे व्यक्ति के साथ उसका विवाह होते देखकर ईर्ष्या के कीटाणु उसके हृदय में घुसकर अशांति पैदा करने लगे। उसका सौभाग्य देखकर उसे कुछ भी हर्ष नहीं हुआ। वह अपने कमरे में जाकर, कपड़े बदल, अशांति का पहाड़ उठाए, सोने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन ज्यों-ज्यों वह नींद बुलाती, त्यों-त्यों वह उससे दूर भागती। वह एक अजीब उधेड़-बुन में फँस गई। वह सोचने लगी—"आभा आज सौभाग्य के उच्च शिखर पर चढ़ रही है। उसकी आँखों में तेज है, हृदय में उत्साह है, मन में उमंग है, और भुजाओं में फड़कन है। वह देखती है, उसके सदृश भाग्यवान् बहुत कम हैं। भारतेंदु-जैसा नवयुवक जिसका पति होनेवाला हो, उसे प्रसन्नता होगी ही, इसमें भी कुछ कहना है।

"मैं भी एक दिन इसी तरह प्रसन्न थी। मेरे मन में भी उमंगें थीं, उत्साह था, सब कुछ था। अभी बहुत दिन नहीं हुए, मुश्किल से छ महीने बीते हैं, मैं भी इसी तरह अपने आनंद में विभोर थी। न-मालूम कितने हवाई क़िले बना रक्खे थे, कौन-कौन अरमान मेरे मन में थे, कैसे-कैसे बाँधनू अपने मन में बाँध रही थी, वह उमंगों की एक दुनिया ही निराली थी, जिसमें मैं विचर रही थी। परंतु आज क्या है, कुछ नहीं। मेरी हसरतें रो रही हैं, जज़बात दिल के दिल में रह गए हैं। उमंगों की एक मुश्त-भर ख़ाक हो गई है।

"मेरे पास सुखी होने के लिये कौन वस्तु की कमी है। कमी

किसी वस्तु की नहीं, लेकिन फिर भी मैं दुखी हूँ। पिता हैं, माता हैं, भाई है, परिवार है, इज़्ज़त है, धन है, सब कुछ मायके में है, और ससुराल में भी इसी तरह सब कुछ है—पति हैं, ननदें हैं, सास हैं, ससुर हैं, मान है, प्रतिष्ठा है और धन है। बाह्य वस्तुएँ तो सभी हैं, मगर फिर भी मुझे शांति नहीं; सुख नहीं, सोहाग नहीं, आशाएँ नहीं। पति पढ़े-लिखे हैं, विद्वान् हैं, बड़े ही शांत हैं, स्वभाव में देवता के तुल्य हैं, विद्वत्ता में स्वामिकार्तिक के समान हैं, रूप में अश्वनीकुमारों की भाँति हैं, मगर पुरुषत्व में स्त्री के समान! कितना भयानक रहस्य है!

"मैं अपना दुख किससे कहूँ। कहते शर्म आती है। जब कोई सखी पति के प्रेम की बातें पूछती है, तो लज्जा से मुँह छिपाना पड़ता है, दो-एक झूठी बातें कहकर टालना पड़ता है। अगर कोई बहुत पीछे पड़ती है, तो एक झूठा प्रेम-संसार खड़ा करना पड़ता है। आह! हृदय से भी छल करना पड़ता है। यह छलमय जीवन किस तरह बीतेगा, भगवान् जाने। इस झूठ को हृदय में दाबकर रखना पड़ेगा—जीवन के अंत तक रखना पड़ेगा। यह कैसी विडंबना है! उफ़्! यह प्रवंचना का भार कब तक सहना होगा। अभी से जीवन को यह भार असह्य हो रहा है, आगे कैसे निर्वाह होगा।

"उन्हें तो अपनी कमी मालूम थी—अपनी असलियत उनसे छिपी न थी, और न मेरे ससुरजी से छिपी थी, फिर उन्होंने मेरा जीवन क्यों नष्ट किया? क्या उन्हें यह विचार न हुआ कि व्यर्थ विवाह करके एक बेचारी स्त्री का जीवन क्यों बरबाद करें। कहते हैं, संसार को यह शर्म का हाल न मालूम हो, इसलिये विवाह किया है। अपनी इज़्ज़त-आबरू की बेदी पर मेरा बलिदान किया है! अगर यही था, तो कुढ़ा-कुढ़ाकर मारने से तो एकदम ही मार डालना अच्छा था, ज़रा-सी तड़प के बाद शांति तो मिलती। यहाँ

तो हर वक़्त घोर अशांति है—भयानक पीड़ा है। हर घड़ी कुढ़न है। यह सब कुछ है, मगर चिल्ला नहीं सकती, आह तक नहीं कर सकती, किसी से कह नहीं सकती। भगवान् का कैसा अद्भुत न्याय है!

"दुनिया मुझे सधवा जानती है। दूसरों की बात जाने दो, अपने माता-पिता भी यह भेद नहीं जानते। वे तो मुझे पूर्ण सुखी समझते हैं, लेकिन उन्हें क्या मालूम कि मैं विधवा से भी गई-बीती हूँ। विधवा का जीवन इससे कहीं अच्छा है। उसे यह तो विश्वास हो जाता है कि मेरे पति नहीं है, लेकिन मैं तो सधवा होते विधवा हूँ। उस पति का परिचय देना पड़ता है, जो वास्तव में मेरा पति नहीं, बल्कि एक स्त्री-मित्र है। विधवा को छल, प्रवंचना, झूठ, दग़ाबाज़ी का भार तो वहन नहीं करना पड़ता। मुझे कपट की दुनिया में रहना है, जहाँ हर समय मिथ्या का ठाठ लगाकर रखना पडेगा। विधवा स्वतंत्र तो है। उसके ऊपर कोई किसी तरह का उत्तरदायित्व तो नहीं। परंतु मैं प्रतिज्ञा में बँधी हूँ, और उसकी मान-प्रतिष्ठा का भार मेरे ऊपर है। विधवा का तो पुनर्विवाह हो सकता है, परंतु मेरा विवाह किसी तरह नहीं हो सकता, क्योंकि मैं हिंदू हूँ, और हिंदू-समाज में पैदा हुई हूँ।

"हिंदू समाज को लोग संसार का सिरमौर समाज कहते हैं, परंतु मेरी समझ में यह दुनिया का सबसे घृणित समाज है। इसमें जितना अत्याचार होता है, उतना कहीं, किसी समाज की ओट में नहीं होता। अछूत और स्त्रियाँ इस समाज में ग़ुलाम से भी बदतर हैं। अछूतों की दशा तो फिर भी किसी क़दर अच्छी है, परंतु सवर्ण उच्च हिंदू-समाज में स्त्रियाँ महज़ पैर की जूती, नहीं, उससे भी हीन हैं। उनके जज़बात का, उनकी उमंगों का, उनके अस्तित्व का कोई ख़याल ही नहीं किया गया। वे पुरुषों के व्यवहार के निमित्त

ही रची गई मालूम होती हैं। वे पुरुषों की गुलाम तो हैं ही, और उनकी इज़्ज़त-आबरू बचाने के लिये बलिदान की पशु भी। इस समाज के किसी भाग में देख लो, स्त्रियों के कोई अधिकार नहीं रक्खे गये। और, जिस स्त्री के संतान नहीं, उसका तो जीवन एक ख़रीदे हुए पशु से भी गया-बीता है। पशुओं को भरपेट न सही, आधा पेट खाने को तो मिलता है, लेकिन स्त्री को वह भी नहीं। पति के पास लाखों रुपयों की जायदाद है—अगर वह कहीं मर गया, तो उसकी ग़ैरमनक़ूला जायदाद तो पति के भाई बंधु, जो सात पुश्तों में होंगे, ले जायँगे और वह अभागिन स्त्री दाने-दाने को मुहताज होकर मरेगी। यह है हिंदू-समाज का क़ानून! पति नपुंसक है, पुरुषत्व से हीन है, उसे कोई अधिकार विवाह करने का नहीं। परंतु वह विवाह कर सकता है, हिंदू-समाज उसे आज्ञा देता है। यही नहीं, मान-प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखने के लिये उसे विवाह करने को बाध्य करता है। परंतु स्त्री की क्या स्थिति है। उस अभागिनी को तलाक़ देने का कोई अधिकार नहीं। कुढ़-कुढ़कर मरने में ही उसका कल्याण है। अपनी फ़रियाद सुनाकर कोई निष्कृति का मार्ग नहीं निकाल सकती। यह है हिंदू समाज में स्त्रियों का स्थान!

"मैं क्या करूँ, यह आज मैं छ महीने से सोच रही हूँ, लेकिन कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। अगर किसी से कुछ कहती हूँ, तो उनकी, उनके पिता की इज़्ज़त-आबरू पर पानी फिरता है, और मेरे माता-पिता का सिर नीचा होता है। मुझे भी लज्जित होना पड़ता है। यह कैसी विडंबना है। अगर किसी से न कहूँ, तो यह भार उठाए हुए चलना मुश्किल मालूम पड़ता है।

"इस अभागे हिंदू-समाज को क्या शाप दूँ। मेरी-जैसी अगणित अभागिनी बहनों के न-मालूम कितने शाप इस हिंदू-समाज पर

हैं, लेकिन इसका तो बाल बाँका नहीं होता। यह उसी तरह जीवित है, और उसी तरह मनमाना अत्याचार स्त्रियों पर करता है। एक मेरे अकेले के शाप से कुछ न होगा। इसका कुछ नहीं बिगड़ता। स्त्री-जाति की निष्कृति उसी दिन होगी, जिस दिन इसका नाश होगा।

"मैं इस समाज का नाश करूँगी, इसकी जड़ खोदकर मानूँगी। मैं वह आग लगाऊँगी, जिसमें हिंदू-समाज का पुराना पोथा, जिसके बल पर वह हमारा सत्यानास करता है, जलकर राख हो जाय। उसका क़ानून, जिसके द्वारा उसने हमें भिखारिनी बना रक्खा है, नष्ट कर दूँगी। उसका सामाजिक व्यवहार, जिसकी रस्सियों से वह हमारे लिये फाँसी का फंदा रचता है, मिट्टी में मिला दूँगी। यह युग स्त्रियों का है, इसमें पुरुषों की प्रधानता न रहेगी। स्त्रियों के अधिकार अब वापस देने पड़ेंगे। अगर हिंदू-समाज हमारे अधिकार हमें नहीं देता, तो हम इसे कुचलते हुए तनिक भी नहीं हिचकिचाएँगी। हमारी जाति में वह बल है कि हिंदू-समाज की लाडली पुरुष-जाति को नाकों चने चबवा दे। केवल हमें अपने बल का ज्ञान नहीं—अपने अधिकारों की मालूमात नहीं। मैं उन्हें बताने के लिये घर-घर फिरूँगी, और झोपड़ी-झोपड़ी में जाकर पुरुषों के ख़िलाफ़ बग़ावत का मंत्र फूकूँगी। यदि हिंदू-समाज की स्त्रियाँ हमारे साथ एकत्र होकर अपने अधिकारों की आवाज़ ऊँची करेंगी, तो कितने दिनों तक हिंदू-समाज जीवित रहेगा, और हमारे अधिकारों की उपेक्षा करेगा।

"हम लोग यह अत्याचार क्यों सहें। हमें क्या ईश्वर ने इस संसार में नहीं पैदा किया है, क्या इस संसार की वायु, अग्नि, प्रकाश पर हमारा वह स्वत्व नहीं, जो पुरुषों को प्राप्त है। हमीं तो पुरुषों की उत्पत्ति करनेवाली हैं। यह देखो भाग्य का वैचित्र्य, पुरुषों को हम पैदा करती हैं, और वही पुरुष बड़ा होकर हम पर

अत्याचार करता है ! भगवान् की दृष्टि में कैसा अद्भुत न्याय है ! पुरुष-जाति की नमकहलाली भी सराहनीय है। पुरुष जिस डाल पर बैठा है, वही डाल काट रहा है। क्या उसे नहीं मालूम होता कि इस प्रकार कब तक उसकी रक्षा होगी। पुरुष तो समाज का बल पाकर मदांध हो रहा है—उसे कैसे दिखाई पड़ेगा।

"देखो, पुरुष-जाति में कितनी एकता है। जहाँ एक पुरुष के अधिकार पर कुछ व्याघात होता है, फ़ौरन् उसके शास्त्र और उनके दिग्गज आचार्य अपनी चोटी और डंडा सँभालते हुए दौड़ पड़ते हैं। हमें खरी-खोटी तो सुनाते ही हैं, धर्म का नाम लेकर सरकार तक से भिड़ जाते हैं। हमारे गर्भ से तत्काल का उत्पन्न हुआ पुरुष-बालक उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने लगते हैं। हालाँकि वह अपनी मा का दूध पीता है, लेकिन उस दूध की जगह तलवार चलाते रुकता नहीं। उसका तनिक भी हाथ नहीं काँपता। वह उस वक़्त भूल जाता है कि मेरा जीवन इसी दूध पर है। वह दूध को अपना अधिकार कहकर लेता है, दया-भाव से नहीं। उस हालत में भी वह हमारे ऊपर शासन करता है। किंतु यह उसे नहीं मालूम कि वह दिन भी शीघ्र आ रहा है, जब उसकी माता उसे दूध न पिलाएगी, और दूध की दो बूँदें डालने के पहले उसकी गरदन मरोड़ देगी। जब स्त्रियाँ ऐसा करने के लिये कटिबद्ध होंगी, और करेंगी, तब उनका कल्याण होगा, उनके स्वत्व उन्हें वापस मिलेंगे। समाज में उनके लिये भी स्थान होगा। वे भी धन और भूमि की अधिकारिणी होंगी, विवाह-विच्छेद, विधवा-विवाह आदि सभी आवश्यक अधिकार मिलेंगे। संसार के इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जहाँ अधिकार माँगने से मिल गए हों। वे तो तभी मिलते हैं, जब उनके लिये अपना और अपने शत्रुओं का ख़ून बहाया जाताहै।

"मैं यह पूछती हूँ कि उन्हें क्या अधिकार था कि विवाह करें, जब वह उसके लिये बिलकुल अयोग्य थे। उन्हें मेरा जीवन इस प्रकार नष्ट करने का क्या अधिकार था। बड़े भारी ताल्लुक़ेदार हैं, राज्य के एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। अगर वह विवाह नहीं करेंगे, तो उनका नाम रक्खा जायगा, और उनके पिता की इज़्ज़त ख़ाक में मिल जायगी। ख़ाक में क्यों मिल जायगी, क्या कोई नपुंसक नहीं होता। भला अभी उनकी कौन नामवरी हो गई। अगर मैं आज एक सभा में खड़ी होकर उनका और उनके पिता का भंडाफोड़ करूँ, तो वह क्या उत्तर देंगे, और उनकी कैसी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। क्या संसार उन्हें देखकर उन पर थूकेगा नहीं। मेरी आत्मा जल रही है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। चाहे जो कुछ हो, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दूँगी, लेकिन इस अत्याचार का बदला ज़रूर लूँगी।

"देखो, किस तरह मुझसे प्रतिज्ञा कराई। क्या सफ़ाई से कि ज़रा भी शक न हो। विवाह के बाद जब मैं कुल-गुरु का पूजन करने गई, तब उनके पिताजी ने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा, यह तुम्हारा घर है, और इस राज्य की स्वामिनी तुम होगी। तुम्हारे ऊपर बहुत-से उत्तरदायित्व हैं। यहाँ रहने पर तुम्हें ऐसी बातें मालूम होंगी, जिन्हें तुम संसार में प्रकाशित नहीं कर सकोगी, क्योंकि इससे तुम्हारी, तुम्हारे स्वामी की और तुम्हारे कुल की, सबकी प्रतिष्ठा में बल आ सकता है। हमारे वंश में यह नियम परंपरा से चला आता है कि इस घर में प्रवेश करने के दिन कुल-देवता और ईश्वर के सम्मुख, उन्हें साक्षी देकर, प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि हम इस घर का भेद कहीं भी किसी के सामने, और कैसा भी समय पड़ने पर, लालच से, फुसलाने से, या अपनी तबियत से, नहीं कहेंगी, और न लिखकर, न इशारों से बतलाएँगी। इसलिये तुम प्रतिज्ञा करो। मैं क्या जानती थी कि उस घर में यह भेद छिपा हुआ है, जो मेरी जान

का ग्राहक हो जायगा। मैंने विचार किया कि प्रतिष्ठित, प्राचीन राजवंश है, कोई गुप्त भेद होगा। मैं उस वक़्त हवाई क़िलों में घूम रही थी, कल्पनाओं के सुखमय संसार में स्वच्छंद भ्रमण कर रही थी, मेरे सामने मेरा बनाया हुआ सोने का संसार था—मैंने सहज स्वभाव से प्रतिज्ञा कर ली। मुझे अभी तक याद पड़ता है कि मेरी हलफ़ समाप्त होते ही उस वृद्ध के मुख पर क्षण-भर के लिये व्यंग्य की हँसी दिखाई दी थी। मेरी सौगंद समाप्त होते ही उसी वृद्ध ने फिर कहा—'देखो, तुमने अपनी इच्छा से प्रतिज्ञा की है, इसे निबाहना भी पड़ेगा। जीवन देकर निबाहना पड़ेगा। अगर कभी इससे विचलित होगी, तो हमारे कुल-देवता और ईश्वर का कोप तो तुम्हें भस्म करेगा ही, मगर उसके पहले हम लोग ही तुम्हारे जान के ग्राहक बन जायँगे, और तुम्हें विना किसी सोच-विचार के इस संसार से उठा देंगे। कोई न जानेगा, और न किसी को ज़रा भी मालूम होगा। इसलिये अगर अपना कल्याण चाहती हो, तो यहाँ का कोई भेद किसी से भी, यहाँ तक कि अपने माता-पिता और मित्रों से भी प्रकाशित न करना।' यह धमकी देकर वह चले गए। मैं भय से सिहर उठी। मेरे सोने के हवाई क़िले एक फूत्कार में नष्ट हो गए। उसी रात को पतिदेव से वह भयानक भेद मालूम हुआ। अपना कपाल पीटकर रह गई।

"मेरे जीवन का सुहाग तो नष्ट हो गया, लेकिन अब करना क्या उचित है? यही प्रश्न मेरे सामने सदैव रहता है, किंतु उत्तर ढूँढ़े नहीं मिलता। मेरी दूसरी सखियाँ अपने-अपने सुहाग में विभोर हैं, उनके मन उमंगों की चौकड़ी भर रहे हैं। आभा को ही लो, वह कितनी सुखी है। उसका आनंद उसके मन के बाहर निकला पड़ता है, उसके मन की आशाएँ एक सुनहला जाल गूँथ

रही हैं, वह पुनर्जन्म के प्रेम में पड़ी हुई है, पुरानी स्मृतियों की गुत्थी सुलझा रही है, वेदांत और अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ तथा पढ़ा रही है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करती है, और वह विश्वास दिन-पर-दिन दृढ़ होता जाता है, क्योंकि उसका जीवन सुखी है। मेरे लिये न तो ईश्वर है, न कोई पूर्व-जन्म, और न वेदांत तथा अध्यात्मवाद। मैं इनमें से किसी पर विश्वास नहीं करती, और न विश्वास करने को मन ही चाहता है। ये बातें केवल कपोल-कल्पना हैं, निष्कर्मों के मन-बहलाव की बातें हैं, और बैठे-ठाले का धंधा है। ये सब असत्य हैं, जिनका न सिर है, और न पैर। मैं इनके फेर में पड़कर अपने जीवन को असफल न करूँगी। मैं इस संसार में कोई गुरुतर कार्य-संपादन के लिये अव-तीर्ण हुई हूँ। मैं अपनी परिस्थितियों से लड़ूँगी और देखूँगी कि कितनी सफलता मिलती है।

"कैसी भयानक रात्रि है। संसार निद्रा में मग्न है। मेरी-जैसी युवतियाँ कैसे आनंद में मग्न, अपने प्रियतमों के वक्ष पर सिर रक्खे सो रही होंगी। जिनके पति नहीं हैं, वे निराशा को हृदय लगाए निश्चिंत सो रही होंगी। मेरी-जैसी अवस्था में तड़पती कितनी होंगी। यह तड़पन कभी कम नहीं होती। न मेरे लिये दिन है, न रात्रि। सब जगह एक भाव है, एक रूप है। इस वेदना से कभी क्षण-भर छुट्टी नहीं मिलती। रात-भर लेटी हुई आकाश के तारे गिना करूँ, तो कोई यह भी कहनेवाला नहीं कि चलो, सोओ चलकर। यह निमंत्रण देनेवाला कोई नहीं। हाय रे, मेरा भाग्य!

"उनका इसमें क्या क़ुसूर। नहीं, उन्हीं का सारा दोष है। क्या उनमें यह साहस न था कि वह विवाह करने से इनकार कर देते। उन्हें क्या नहीं मालूम था कि इस विवाह का यह अंत होगा।

अपनी लाज बचाने के लिये दूसरे का सत्यानास करना कितनी बड़ी स्वार्थपरता है । वह कहते हैं, उन्होंने पिता के दबाव में आकर यह विवाह किया है । इसमें कितनी सत्यता है । झूठ, बिलकुल झूठ । सिर्फ़ मुझे बहलाने का बहाना है, अपनी सफ़ाई की दलील है । मेरे नाश के वही अकेले उत्तरदायी हैं, और उन्हें ही सारा पाप वहन करना पड़ेगा । मैं इसका भीषण बदला लूँगी । अनूपगढ़ राज्यवंश की सारी शान धूल में मिला दूँगी । मैं मौत से नहीं डरती, मौत तो इससे हज़ार दर्जे अच्छी है । इस ज़माने में किसी को मार डालना कुछ हँसी-खेल नहीं । इसके अलावा मेरे पिता भी तो संपन्न व्यक्ति हैं, उनके हाथ में शक्ति है, और हुक्कामों से घनिष्ठता है । मेरे पीछे बल है, मेरे ऊपर हाथ डालने में दो बार सोचना पड़ेगा । मैं उस प्रतिज्ञा की कुछ क़द्र नहीं करती । धोखे में की गई प्रतिज्ञा का कोई असर नहीं रहता । मैं उसके बंधन में अब तक फँसी थी, यह भूल की । अब सब भेद खोल दूँगी । उनकी काली करतूतों के कारनामे मैं जिस समय खुली कचहरी में रक्खूँगी, तब उन्हें मालूम होगा ।"

मालती सोचते-सोचते उत्तेजित हो गई । वह पलँग से उठकर कमरे में घूमने लगी । एक खिड़की का परदा हटा दिया, और उसे खोलकर बाहर देखने लगी । बाहर निविड़ अंधकार छाया हुआ था । प्रकृति नीरव और निष्पंद शयन कर रही थी। खिड़की के सामने पूर्व दिशा थी । सुदूर पूर्व में आर्द्रा अपने रजत-केशों को फैलाए गगन के मध्य भाग में आकर नृत्य करने के लिये आतुर हो रही थी—उसके आगे-आगे मृगशिर कुछ वक्र होकर भागे चले आ रहे थ । मालती के नेत्र आर्द्रा का सौंदर्य देखने के लिये ठहर गए । उसके मन को कुछ शांति मिली । वह ध्यान से उसे देखने लगी । ऑक्टोबर-मास की सुशीतल वायु मंद-मंद हिलोरों से

संसार को थपकियाँ देकर सुला रही थी। मालती की भी आँखें झिपने लगीं। उसने खिड़की बंद कर दी, और फिर लेटकर सोने का यत्न करने लगी। अवसाद से क्लांत होकर वह सो गई।

---

## ८

मालती के पिता सर रामकृष्ण लखनऊ के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वह गवर्नर की कौंसिल में होम-मेंबर थे। उनका चारो ओर मान था, और सरकारी अफ़सरों में भी वह अपनी ईमानदारी, वफ़ादारी और राजभक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। सरकार का उन पर पूर्ण विश्वास था, और यह सुना जाता था कि वह शीघ्र ही प्रांत के गवर्नर बना दिए जायँगे। वह छ फ़ीट लंबे और अंगों से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति थे। हालाँकि उनकी आयु ढल रही थी, और थोड़े ही दिन पहले ५२वीं वर्ष-गाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी, परंतु वह पूर्ण रूप से स्वस्थ थे। उन्हें देखने से यही मालूम होता था कि अभी मुश्किल से चालीस वर्ष गुज़रे होंगे। उन्हें व्यायाम से प्रेम था, और अभी तक नियमित रूप से अनेक प्रकार के व्यायाम करते थे। व्यायाम के अतिरिक्त उन्हें सब प्रकार के खेलों का भी शौक़ था। उन्होंने अपनी आमदनी का न-मालूम कितना रुपया टूर्नामेंट वग़ैरा कराने में ख़र्च किया था। उन्हें घोड़े की सवारी का भी शौक़ था, और घुड़दौड में घोड़े दौड़ाने का भी। वह टेनिस और 'गाल्फ़' के अच्छे खिलाड़ी थे; हँसमुख और सदैव प्रसन्न रहनेवाले मनुष्य थे। उनके स्वभाव से छोटे-बड़े सभी प्रसन्न रहते थे, और जो भी उनके संपर्क में आता, उसकी भक्ति के वह पात्र हो जाते थे। वह दान देने में भी मुक्त-हस्त थे। कितनी ही संस्थाएँ केवल उन्हीं के दान के सहारे चलती थीं। वह अवध के ताल्लुक़ेदार थे। उनके पितामह वंश-परंपरा से लखनऊ के नवाबों के यहाँ प्रतिष्ठित पदों पर काम करते चले आते थे, और उन्होंने बड़ी जागीर के साथ-साथ

असंख्य धन भी पैदा किया था, जिसका एक बहुत बड़ा अंश अब भी उनके पास सुरक्षित था। उनके पूर्वज लखनऊ में रहते थे। नवाबी ख़त्म होने के बाद जब अवध-प्रांत अँगरेज़ों के ज़े॰ हुकूमत आया, तो भी इनके वंश का सौभाग्य-सूर्य अस्त नहीं हुआ, बल्कि उसमें दोपहर की-सी प्रखरता आ गई थी। इनके पिता राजा प्राण-कृष्ण की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी, और अँगरेज़ सरकार ने उन्हें राजा का ख़िताब दिया था। राजा प्राणकृष्ण समय के साथ बदलनेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने रामकृष्ण को पढ़ने के लिये इँगलैंड भेज दिया। इँगलैंड से वापस आने पर रामकृष्ण ने सरकारी नौकरी में प्रवेश किया, और धीरे-धीरे उन्नति करते-करते इस समय होम-मेंबर के पद पर आसीन थे। सफलता उन पर अपनी कृपा अविराम रूप से बरसा रही थी।

सर रामकृष्ण एक बृहत्परिवार के स्वामी थे। उनके दो पुत्र जीवनकृष्ण और नंदलाल थे। जीवनकृष्ण इन दिनों इँगलैंड गए हुए थे, और नंदलाल स्थानीय युनिवर्सिटी में पढ़ते थे। मालती जीवनकृष्ण से छोटी थी। नंदलाल से भी छोटी दो कन्याएँ थीं, जिनका विवाह अभी तक नहीं हुआ था, और ईसाबेल कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करती थीं। एक का नाम कांति और सबसे कनिष्ठ का नाम कामिनी था। मालती की मा, लेडी चंद्रप्रभा, एक ताल्लुक़े-दार की लड़की थीं, लेकिन पुराने ख़याल की। सर रामकृष्ण ने उन्हें माँज-माँजकर उस पुरानी क़लई को दूर करने का बहुतेरा प्रयत्न किया, परंतु वह मुरादाबादी क़लई की तरह किसी तरह न छूटी। इतने परिश्रम का यह फल ज़रूर हुआ कि उनकी कट्टरता किसी क़दर कम हो गई, परंतु विचारों से पुरानापन दूर नहीं हुआ था। वह एक आदर्श हिंदू-रमणी थीं, और हिंदू-देवी-देवताओं पर उनकी अटल भक्ति थी तथा अचल विश्वास था।

मालती के पिता ने उन्हें शिक्षित करने का बहुत प्रयत्न किया, मगर उन्होंने पश्चिमीय शिक्षा के प्रति कभी अनुराग प्रदर्शन नहीं किया। वह पुरुषों के बीच में जाना और उनमें निस्संकोच उठना-बैठना पसंद नहीं करती थीं। किसी निमंत्रण, ऐट-होम, प्रीति-भोज या गार्डेन-पार्टी तथा सरकारी भोज में सर रामकृष्ण को अकेले जाना पड़ता था, यद्यपि निमंत्रण-पत्र में नाम उनका पहले हुआ करता था। इसके लिये सर रामकृष्ण को कई बार लज्जित होना पड़ा, परंतु लेडी चंद्रप्रभा किसी तरह उनके अनु-शासन, उनकी अनुनय-विनय के अधीन नहीं हुईं। उनका विश्वास था कि स्त्रियों की दुनिया एक अलग दुनिया है, जिसमें पुरुषों का काम नहीं, और पुरुषों के समाज में स्त्रियों की कोई ज़रूरत नहीं। घर के मामलात में वह सर रामकृष्ण का हस्तक्षेप किसी प्रकार सहन न करती थीं, और न उनके बाहरी काम में कोई दख़ल देती थीं। सर रामकृष्ण भी गृहस्थी के जंजालों से दूर रहना पसंद करते थे। लेडी चंद्रप्रभा का शासन अकेले सँभालकर दक्षता से चला रही थीं।

लेडी चंद्रप्रभा को अपने जीवन का आदि-काल अपनी सास के नियंत्रण में व्यतीत करना पड़ा था, जो अपने समय की एक होशि-यार और तजुर्बेकार गृहिणी थीं। उन्होंने उन्हें इस प्रकार शिक्षित किया था, जिससे वह स्वतंत्रता से घर का इंतज़ाम कर लें। उस ज़माने में इनकी सास के आगे किसी को बोलने या प्रति-रोध करने की क्षमता न थी। सर रामकृष्ण ने उस ज़माने में भी अनेक प्रकार से उनको अँगरेज़ी पढ़ाने की कोशिश की, परंतु उनकी मा के आगे उनकी एक न चली। इँगलैंड से लौटने के बाद भी वह अपनी मा के शासन के बाहर न हो सके। उनका ऐसा रोब ग़ालिब था कि उनकी एक तिरछी चितवन से सर रामकृष्ण सिहरकर चुप

हो जाते ! उन्हें साहस न हुआ कि उसके विरोध में अपनी आवाज़ ऊँची उठाएँ। वह चुपचाप सहन करने लगे। लेडी चंद्रप्रभा उनके पीछे क़दम-बक़दम चल रही थीं। सास-ससुर की शक्ति पीछे होने से वह उनसे भयभीत न होती थीं, और कभी-कभी किसी विरोध करनेवाली बात में उनका स्पष्ट रूप से विरोध भी करती थीं। सर रामकृष्ण धीरे-धीरे उनके स्वभाव के इतने आदी हो गए थे कि वह लेडी चंद्रप्रभा के किसी काम में प्रतिरोध न करते थे। उन्होंने उन्हें बिलकुल उन्हीं की इच्छा पर छोड़ दिया था। इतना विरोध होते हुए भी दोनो में अद्‌भुत प्रेम था। दोनो एक दूसरे से असंतुष्ट होते हुए संतुष्ट और विरोधी होते हुए प्रेमी थे। उनके जीवन में कलह भी था, मगर वह कलह नहीं, जिससे मनोमालिन्य बढ़े। दोनो बहुत जल्द अपनी हार स्वीकार कर लेते, और एक दूसरे के साथ मिलने के लिये आतुर रहते थे।

लेडी चंद्रप्रभा की भी ढलती अवस्था थी, किंतु शरीर से वह अब भी हृष्ट-पुष्ट थीं। उन्होंने मालती आदि को शिक्षित करने में कोई दोष नहीं समझा, क्योंकि वह बदलते हुए ज़माने को देख और समझ रही थीं। उनके आचरणों पर उनकी सतर्क दृष्टि सदैव रहती थी। वह अपनी संतान को बेहद प्यार करती थीं, मगर उन पर शासन भी रखती थीं। उनके लड़के सर रामकृष्ण से तो न डरते थे, लेकिन उनसे अवश्य भय करते थे। अगर किसी को थोड़ी-बहुत आज़ादी प्राप्त थी, तो केवल मालती को। मालती के प्रति उन्हें अगाध विश्वास और किसी क़दर दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रेम था। मालती उनकी सास को भी बहुत प्यारी थी, और जब वह मृत्यु-शय्या पर थीं, तब मालती के लिये उन्होंने ख़ास तौर पर सिफ़ारिश की थी। लेडी चंद्रप्रभा अपनी सास को किसी देवी से कम न समझती थीं, और उन पर वैसी ही भक्ति करती थीं। उन्होंने

मालती को उस दिन से कुछ भी भला-बुरा नहीं कहा, उसका पालन-पोषण इस भाँति किया, जैसे कोई सहृदय स्त्री एक मातृ-हीन बालिका का करती है।

सर रामकृष्ण स्त्रियों की स्वाधीनता के समर्थक थे, और लेडी चंद्रप्रभा उसकी विरोधिनी। वह अपनी बालिकाओं को अपने साथ ले जाना और समाज में निस्संकोच प्रवेश करना चाहते थे, परंतु लेडी चंद्रप्रभा को यह पसंद न था। इस विषय को लेकर पति-पत्नी में कभी-कभी झगड़ा हो जाता, अंत में उन्हें ही अपनी टेक छोड़नी पड़ती। केवल मालती को अवश्य परिमित स्वतंत्रता प्राप्त थी। सर रामकृष्ण भी मालती पर विशेष स्नेह रखते थे। मालती के संबंध में जब कोई आपत्ति उनकी ओर से नहीं देखी, तो उन्होंने कुछ-कुछ पश्चिमीय रंग उस पर चढ़ाना शुरू किया।

मालती एक प्रतिभा-संपन्न बालिका थी। नवयौवन के साथ-साथ उसकी सर्वोन्मुखी प्रतिभा नवयुवकों की मंडली में कुछ खलबली डाल देती थी, युवकों को आकर्षित कर उनसे खेल खेलने में उसे घृणा थी, और उन्हें कभी उत्साहित न करती थी। वह उनसे हमेशा दूर रहती, और खुलती सिर्फ़ समवयस्क सहेलियों में। उसका जीवन श्रृंगारमय था, लेकिन उसमें एक संकोच था। आभा के साथ उसकी पटती थी। दोनो में एक दिन सहसा प्रेम हो गया था। आभा अपनी कक्षा में बैठी कुछ सोच रही थी। ईसाबेल-थाबर्न-कॉलेज उसी दिन खुला था। पहली अगस्त थी, और सन् १६२४ का वर्ष था। आभा भी उसी दिन कॉलेज में भरती हुई थी। उसकी किसी से जान-पहचान न थी। उसके लिये वह एक नई दुनिया थी। घर से निकलकर वह एक नवीन संसार में आई थी; जहाँ जीवन का स्रोत नई उमंगों की क्यारियों को सींचता हुआ, गुदगुदी, आकर्षण, प्रेम के पौदे लगाता हुआ मंद-मंद बहा जाता था। चतुर्दिक्

एक चहल-पहल थी, उमंगों की शैतानी थी, हँसी, दिल खोल हँसी की बौछारें थीं, खिलखिलाहट की झंकार थी, नवयौवन के गीत थे, आशाओं की किलकारियाँ थीं, शृंगार का विकास था। आभा चकित-सी, विस्मित आँखों से, मुग्ध होकर वह दृश्य देख रही थी। वह सबसे पीछे की अंतिम सीट पर बैठी थी। उसके बग़ल में केवल एक जगह ख़ाली थी। मालती भी उस दिन कॉलेज आई थी, इसके पहले उसे स्कूल-जीवन का कुछ अनुभव था। वह क्लास में कोई परिचित ढूँढ़ने के लिये घूम रही थी। उसने आभा को देखा। किसी अदृश्य शक्ति ने उसे उसकी ओर ढकेल दिया। वह आभा के पास आकर खड़ी हो गई, और सहसा पूछ बैठी—"क्या आपका नाम आभा है?"

आभा चौंकी, और कौतूहल-भरी आँखों से उसकी ओर देखने लगी। उसने सिर हिलाकर सूचित किया कि हाँ, मेरा नाम आभा है।

मालती उसके पास बैठ गई।

बस, यह उनकी मित्रता का सूत्रपात था। यह मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। काव्य, साहित्य, संगीत से दोनो को प्रेम था। संसार के कवियों और लेखकों की पुस्तकें पढ़ना, उन पर बहस करना उनका दैनिक कार्य था। समाज, देश, राजनीति आदि विषय भी रोज़ाना कार्य-क्रम से ख़ाली नहीं जाते थे। सात्त्विक प्रेम-छत्र के नीचे भगवान् के दो कण आपस में मिलकर एक दूसरे को पहचानने का प्रयत्न कर रहे थे। विवाद करने में दोनो चतुर थीं, और बात-बात में लड़ पड़ती थीं, लेकिन कभी कोई बुरा न मानती। एक को दूसरे की इतनी आवश्यकता थी कि वे दोनो अलग न रह सकती थीं। यदि कारण-वश अलग रहना भी पड़ता, तो दोनो मिलने के लिये सदैव आतुर रहतीं। मित्रता फल-फूल रही थी।

मालती के विवाह का प्रश्न ऐसा था, जिस पर सर रामकृष्ण और लेडी चंद्रप्रभा में गहरा मतभेद था। पति की इच्छा थी कि मालती का विवाह किसी उच्च शिक्षा-प्राप्त नवयुवक से करें, चाहे वह धन-हीन ही क्यों न हो। मालती के लिये वह काफ़ी गुज़ारा निकाल देंगे। इसके विपरीत पत्नी की यह इच्छा थी कि विद्या के साथ धन, और ख़ासकर ग़ैरमनक़ूला जायदाद, जो किसी बड़ी जागीर से कम न हो, होना अति आवश्यक है। आख़िर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते दोनो के मतानुसार अनूपगढ़ के राजा सूरजबख़्शसिंह के एकमात्र पुत्र कामेश्वरप्रसादसिंह मिले। मालती का भाग्य-सूत्र उनके साथ बाँध दिया गया।

अनूपगढ़ अवध के औवल दर्जे की जागीरों में एक प्रतिष्ठित जागीर थी। इस राज्य के प्रथम व्यक्ति नवाबों की फ़ौज के सेनापति थे। साधारण बैस-ठाकुरों के वंश में पैदा होकर अपने शौर्य, साहस और पराक्रम से उस पद पर पहुँच गए थे। और, जब रुहेलों से मोरचा लिया, तो इनाम में यह जागीर मिली थी। उन्होंने अपने बल से चतुर्दिक् जागीरों की बहुत-सी भूमि दबा ली थी, जो ग़दर के ज़माने में बहुत ज़्यादा बढ़ गई थी, अँगरेज़ी राज्य होने पर वैसी ही बहाल रक्खी गई। राजा सूरजबख़्शसिंह भी पराक्रमी पुरुष थे, परंतु पराक्रम के दिन चले जाने से मैदानों में न घूमकर महल के दरीख़ानों से बाहर बहुत कम निकलते थे। कभी किसी साहब के आने पर उनके साथ शेर, तेंदुआ, चिड़ियाँ, मुर्ग़ाबियाँ मार लिया करते थे। और, अगर बहुत मन घबराया, तो गंगा में बजरे पर सैर कर आते थे।

राजा सूरजबख़्शसिंह भी बदलते हुए ज़माने को निरख रहे थे। उन्होंने कामेश्वरप्रसादसिंह को सुशिक्षित करने का प्रयत्न किया, और उन्हें सफलता भी मिली। कामेश्वरप्रसादसिंह किसी तरह

एम्० ए० पास हो गए। उनका शिक्षा-काल इतनी सफलता से नहीं बीता, जितना दूसरे छात्रों का बीतता है। यह सरल स्वभाव के शर्मीले व्यक्ति थे। वह सदैव मौन ही रहा करते। आवश्यकता पड़ने पर दो-चार शब्द बोलकर फिर ख़ामोश हो जाते। उन्होंने सहन-शक्ति प्रचुर मात्रा में पाई थी, और उसका उपयोग भी करना ख़ूब जानते थे।

वह जन्म से पुरुषत्व-हीन नहीं थे, यह दुर्घटना तो एक दिन अनायास घटित हो गई। कब, यह उन्हें नहीं मालूम हो सका। इसका भेद मालती के साथ विवाह तय हो जाने पर जिस दिन उनका तिलक आनेवाला था, उस दिन पर खुला। वह आशंका से मृतप्राय हो गए। कई कारणों से अपने माता-पिता को यह भेद नहीं बतलाया। परंतु ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि निकट आती थी, उनकी विकलता बढ़ती जाती। आख़िर एक दिन उन्होंने साहस कर राजा सूरजबख़्शसिंह को पत्र द्वारा अपना सारा हाल ज़ाहिर कर दिया। राजा साहब पर भी वज्रपात हुआ। वह किसी प्रकार विवाह-संबंध स्थगित करने के लिये तैयार न थे, क्योंकि इसमें उनका सिर नीचा होता था। आख़िर किसी न-किसी तरह मालती के साथ विवाह संपन्न हो गया।

मालती को मजबूरन छ महीने तक अनूपगढ़ रहना पड़ा। उसके दिन ठीक उस प्रकार व्यतीत होते थे, जैसे जेल में क़ैदियों के। वह अपने मायके आने के लिये तड़प रही थी, परंतु राजा सूरजबख़्शसिंह उसको आने की आज्ञा नहीं देते थे। जब मालती ने दूसरी बार भेद न खोलने की प्रतिज्ञा की, तब किसी भाँति आने का हुक्म मिला था।

मालती जिस समय अनूपगढ़ के राजमहल से बाहर निकली, उसने वह विषमय दृष्टि उन पर डाली, जिसमें घृणा, क्षोभ और क्रोध

के भाव प्रतिबिम्बित थे। उस कातरता की एक क्षीण रेखा भी न थी, जो नवयौवन की उमंगों से ओत-प्रोत नववधू में होती है, जब वह अपने प्रियतम के पास से बिदा होकर अपनी बाल्य-सहेलियों में जाती है।

मालती जेल से छूटे हुए क़ैदी की भाँति उल्लास-तरंगों में उद्वेलित चली गई।

## ६

एक लिफ़ाफ़ा लिए हुए आभा ने मालती के कमरे में प्रवेश किया। मालती के सामने एक पुस्तक खुली रक्खी थी, और वह उसमें लीन थी। आभा के आते ही उसने सिर उठाकर देखा, और उसका स्वागत करने के लिये उठ खड़ी हुई।

आभा ने उसे दूर से लिफ़ाफ़ा दिखाकर, फिर अपने ब्लाउज़ में छिपाते हुए कहा—"अगर कुछ मुँह मीठा करने को कहो, तो······"

मालती का चेहरा वह लिफ़ाफ़ा देखकर क्षण-भर के लिये उतर गया। उसने वह भाव उसी क्षण छिपाकर मुस्किराते हुए कहा—"रहने दीजिए, आप ही को वह मुबारक हो।"

आभा ने मुस्किराती आँखों से कहा—"अब तो यह कहोगी। जब मुँह मीठा करने का वक़्त आया, तो कावे काटकर निकलने लगीं। ऐसा मालूम होता है, जैसे किसी अनजान का पत्र है। ज़रा झाँककर अपने दिल का हाल तो देखो, वहाँ कैसी बीत रही है।"

मालती ने हँसकर कहा—"उसमें कौन-सी बड़ी बात है। किसी मित्र का पत्र होगा।"

मालती के स्वर में छिपा हुआ व्यंग्य था।

आभा ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"अब तो यही कहा जायगा। अभी मित्र कहा है, थोड़ी देर में कहना किसी परिचित का है।"

मालती ने उत्तर दिया—"अरे भई, तुम मत देना। अपने पास ही रख लो। मुझे उसके देखने की कोई इच्छा नहीं।"

आभा ने सहास्य कहा—"वह, आज बड़े गहरे पानी में हैं। उनसे ऐसी बेपरवा हो गई कि यह पत्र देखने तक की इच्छा नहीं।"

यह कहकर वह मालती को लिफ़ाफ़ा दिखाकर पुनः अपने ब्लाउज़ में रखने लगी। इसी दर्म्यान मालती ने किताब उठाकर मेज़ पर फेंकी। आभा का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। मालती ने सहसा उसके हाथ से पत्र छीन लिया। मालती वेग से हँस पड़ी, और आभा शर्मा गई। उसके कपोल-युगल लाल हो गए। मालती ने यह पत्र तुरंत अपने ब्लाउज़ में छिपा लिया।

थोड़ी देर हँसने के बाद मालती ने कहा—"हुज़ूर की यह कमतरीन बंदी निहायत अदब से आदाब बजा लाती है। अब तो शीरीनी का दावा ख़ारिज हुआ।"

वह फिर हँस पड़ी।

आभा ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"यह तो धोखा है, डाका है।"

मालती ने हँसी बंद करते हुए कहा—"धोखा कैसा! अगर कौशल का नाम धोखा है, तो संसार धोखेबाज़ों से भरा हुआ मिलेगा। दूसरे का माल छीनना डाका है, न कि अपना माल जो किसी चोर के हाथ में पड़ गया हो।"

मालती उठकर जाने लगी।

आभा ने उसे पकड़ते हुए कहा—"मैं तुम्हें जाने न दूँगी। वह पत्र तो मुझे दिखाना पड़ेगा। आज बड़े भाग्य से यह मेरे हाथ लगा, मैं इसे ज़रूर पढ़ूँगी।"

मालती ने अपने को छुड़ाते हुए कहा—"आभा, यह कभी नहीं हो सकता। हाँ, अगर यह तुम्हारे पास होता, तो तुम पढ़ लेतीं, या पढ़कर अपने दूसरे प्रेम-पत्रों के साथ रख लेतीं, तो मुझे कोई उज़्र न था। किंतु अब मैं अपनी वस्तु तुम्हें क्यों दूँ।"

आभा ने कहा—"यह पत्र मेरे हाथ में ज़रूर था, लेकिन मैं इसकी मालकिन नहीं थी। उस वक़्त भी यह तुम्हारी वस्तु थी, और इस वक़्त भी तुम्हारी है, मगर मैं देखूँगी ज़रूर।"

मालती ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"यह भी कोई ज़बरदस्ती है। दोनो हाथ लड्डू। राजा साहब के कुँवर पैदा हुआ। कारिंदों ने रैयत से पूछा—'क्यों, कुँवर पैदा होने से राज़ी कि बेराज़ी?' किसी ने जवाब दिया—'राज़ी', तो कारिंदों ने कहा—'तो लाओ, नज़र दो।' अगर किसी ने कहा—'मैं तो बेराज़ी हूँ,' तो कारिंदों ने कहा—'फिर जुर्माना लाओ।' ग़र्ज़ कि रिआया को हर हालत में कुँवर के पैदा होने से सरकारी ख़ज़ाने में रुपया देना पड़ता है। उसी तरह हुज़ूर भी फ़रमा रही हैं कि चाहे जो कुछ हो, पत्र तो मैं पढ़ूँगी ही। अगर पढ़ने की इच्छा थी, तो न दिया होता। मैं कुछ आपसे भीख माँगने तो गई न थी।"

आभा ने लजाते हुए कहा—"क्या बताऊँ, ज़रा-सी ग़लती हो गई। मैं तुम्हारे कौशल में फँस गई। तुमने उधर किताब फेंकी, जहाँ ज़रा-सा ध्यान चूका कि तुमने चील की तरह झपटकर छीन लिया। यह कोई न्याय तो नहीं है।"

मालती शैतानी-भरी आँखों से मुस्किराते हुए कहा—"बहुत ठीक, हारा हाकिम जमानत माँगता है। जब कोई बात हाथ से बेहाथ हो जाती है, तब न्याय की दुहाई मचती है।"

आभा ने फ़ौरन् कहा—"ज़बरदस्त का न्याय भी अच्छा होता है—मारे और रोने न दे।"

मालती ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखते हुए कहा—"इसमें ज़बर-दस्ती की क्या बात। किसी से पूछो, तो वह इसमें तुम्हें ही सरासर झूठ और ज़बरदस्त कहेगा।"

आभा ने कहा—अपने पक्ष का समर्थन करना सब जानते हैं।"

मालती ने उठते हुए कहा—"अच्छा, तुम्हारा चेहरा न फीका पड़े। तुम्हारे खाने के लिये कुछ ले आऊँ?"

आभा ने कहा—"नहीं, मैं तुम्हारी दया की मिठाई खाना नहीं चाहती।"

उसके स्वर में हार जाने के दुख का आभास था।

मालती ने अपने ब्लाउज़ से वह पत्र निकालते हुए कहा—"ग़ुस्सा न हो, अगर तुम्हारी इच्छा पढ़ने की है, तो पढ़ लो।"

कहते-कहते उसका मुख उतर गया। आह्लाद का स्रोत एकदम स्तब्ध हो गया।

आभा ने पत्र लौटाते हुए कहा—"मैं किसी की दया नहीं चाहती। अब मैं यह पत्र हरगिज़ नहीं पढ़ सकती। अब कोई दूसरा ही पढ़ूँगी।"

मालती ने लापरवाही के साथ वह पत्र मेज़ पर फेंक दिया।

आभा ने कुछ चिढ़कर कहा—"मालती, उस पत्र का इतना अपमान तो ठीक नहीं।"

उसके स्वर में कुछ तिरस्कार था।

मालती ने क्षण-भर उसकी ओर देखा, और फिर कमरे के बाहर चली गई।

आभा सोचने लगी। इसके बाद उसने उस कमरे का दूसरा द्वार, जो उसकी ओर बंद था, खोल दिया, और चुपचाप अपनी जगह पर आकर बैठ गई।

थोड़ी देर बाद मालती एक तश्तरी में मिठाई लिए आई। आभा ने देखा, वह किसी भाव को दमन करने की कोशिश कर रही है। उसके नेत्र कुछ लाल हो गए हैं, और वक्षःस्थल बार-बार उठता और गिरता है। ओष्ठ फड़क रहे हैं, और भृकुटियाँ कुछ चढ़ी हुई हैं।

आभा कुछ सहम गई। क्या उससे कुछ अपराध हो गया है? वह इसी विचार में पड़ गई।

मालती ने तश्तरी मेज़ पर रखते हुए कहा—"लीजिए, आपकी पूजा आ गई।"

आभा का उत्साह भी कम हो गया था। उसने कहा—"जी नहीं, मैं कुछ भूखी तो हूँ नहीं, जो खाऊँ।"

मालती ने बैठते हुए कहा—"देखो, अभी-अभी तो इसके लिये आकाश पाताल एक किए थीं, और जब लाकर श्रीचरणों में रख दिया, तो नख़रे दिखलाने लगीं।"

आभा ने पूछा—"पहले यह बतलाओ, तुमने उस पत्र का क्यों अपमान किया? अगर मेरे पूछने से तुम्हें कुछ कष्ट हुआ, तो मैं माफ़ी चाहती हूँ। इतना तुम्हें मुझ पर विश्वास करना पड़ेगा कि मैंने उसे खोलकर नहीं पढ़ा। तुम उसमें डाक-मुहर देख लो, तुम्हें आज की तारीख़ और समय छपा हुआ मिलेगा। अगर फ़र्क़ निकल आवे, तो बेशक मैं क़ुसूरवार हूँ। आज, जब मैं तुम्हारे पास आ रही थी, तब दरवाज़े पर डाकिया मिल गया, जो इसे तुम्हारे लेटर-बक्स में डालने जा रहा था। मैंने उसे रोककर यह पत्र ले लिया, और सीधे तुम्हारे कमरे में ख़ुशख़बरी देने चली आई। मुझसे तुम चाहे जिसकी क़सम ले लो, मैंने तुम्हारा ख़त नहीं पढ़ा।"

मालती ने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हारी बातों का मतलब मैंने बिलकुल नहीं समझा। तुम किस बात की सफ़ाई दे रही हो, पत्र पढ़ने के बारे में? मैं तो कुछ पूछती नहीं, और न तुम्हारा अविश्वास ही करती हूँ। पत्र पढ़ लिया या नहीं पढ़ा, इसमें मेरी कुछ हानि या लाभ नहीं है। तुमसे सिर्फ़ एक बात के अतिरिक्त कोई दूसरी बात छिपाई भी नहीं। पत्र में रक्खा क्या है? मैंने तो तुमसे कह दिया है, यह पत्र एक मित्र का है। उसे तुम

शौक से पढ़ सकती हो। न पहले मना करती थी, और न अब मना करती हूँ। लो, पढ़ो।"

यह कहते हुए मालती ने वह लिफ़ाफ़ा खोल डाला, और पत्र निकालकर आभा की ओर बढ़ा दिया।

आभा ने वह पत्र मालती को लौटाते हुए कहा—"लीजिए, अब पढ़ने को उमंग नहीं रही। छूने से तो उसे सौत के लड़के की तरह फेंक दिया, और अगर कहीं पढ़ लूँगी, तो जला ही दोगी।"

मालती ने मुस्किराकर कहा—"हुज़ूर के ग़ुस्से का कारण अब समझ में आया। इसे मेज़ पर रख देने से आप आग बबूला हो गईं। अब से भई, अक़्ल आई। अब सब पत्रों को सिर पर बाँधा करूँगी। कहीं भी न रक्खूँगी।"

यह कहकर उसने पत्र अपने सिर पर रख लिया। आभा और मालती दोनो हँसने लगीं।

मालती ने मिठाई उठाकर आभा को खिलाते हुए कहा—"चाहे जो हो, मिठाई तो तुम्हें खाना ही पड़ेगी।"

आभा ने कहा—"मिठाई मैं इस शर्त पर खाऊँगी, जब तुम हाथ जोड़कर यह पत्र अपने सामने रखकर माफ़ी माँगो।"

मालती ने झिड़ककर कहा—"मिठाई खाओ, चाहे न खाओ, यह तो मुझसे नहीं होने का।"

आभा ने तश्तरी अपने सामने से हटाते हुए कहा—"तो मैं भी नहीं खाती।"

मालती ने कहा—"मैंने क्या क़ुसूर किया है, जो माफ़ी माँगूँ?"

आभा ने गंभीरता से कहा—"अपने देवता का प्रेम-संदेश इस तरह ठुकरा देना कुछ कम अपमान की बात है?"

मालती का चेहरा स्वतः फीका पड़ गया।

उसने मनोवेग सँभालते हुए, कुछ मुस्किराहट से कहा—"बड़े देवता! ऐसे ही होते, तो क्या बात थी।"

उसके स्वर में तीव्र व्यंग्य की झंकार था।

आभा वह व्यंग्य-ध्वनि सुनकर कुछ सोच में पड़ गई।

मालती ने कहा—"खाती हो या नहीं? अगर सीधी तरह न खाओगी, तो याद रखना, बल से काम लेना पड़ेगा। मैं बल-प्रयोग करना भी जानती हूँ, क्षत्रिय की लड़की हूँ।"

आभा ने पूछा—"क्या बात है मालती। मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

मालती ने उत्तर दिया—"समझने की बात क्या है, जो समझ में आवे। तुम व्यर्थ में तिल का ताड़ बना रही हो। अब तुमसे कौन जीतेगा।"

आभा ने कहा—"यह तो मैं कह सकती हूँ, तुम्हें उतनी प्रसन्नता नहीं हुई, जितनी वाजिब थी, मैं स्वयं चकित हूँ।"

मालती ने कहा—"चकित होने की क्या बात है? पत्र आया है, तो इसमें प्रसन्नता की क्या बात है। अब रह गई उसके अपमान की बात, तो मैंने अपनी जान में कोई अपमान तो नहीं किया। हाँ, यहाँ से मेज़ पर ज़रूर फेंक दिया। अब तुम कहती हो कि मुझे प्रसन्नता नहीं हुई, तो तुम्हारे लिये, तुम्हें अपनी प्रसन्नता का बिश्वास दिलाने के लिये, शहर में डुग्गी पिटवा दूँगी। बस, अब तो आपको यक़ीन आया।"

आभा ने हँसते हुए कहा—"मालती, मैं तुमसे बातों में कभी नहीं जीत सकी।"

मालती ने तुरंत ही कहा—"और यह तो कहिए, आप जीती किससे हैं?"

आभा ने उत्तर दिया—"वास्तव में मैं कभी नहीं जीती। जीत तो तुम्हारी हमेशा रही है।"

मालती ने आभा के मुख में मिठाई देते हुए कहा—"लो, अब सीधी तरह खा लो। बहुत नख़रा हो गया।"

आभा मिठाई खाने लगी, और स्वयं एक टुकड़ा उठाकर मालती को भी खिलाने लगी।

मालती ने मिठाई खाते हुए कहा—"आख़िर, वही खाया, लेकिन कितनी मिन्नतें करवाने के बाद!"

आभा हँस पड़ी, और मालती भी हँसने लगी।

मिठाई खा लेने के बाद आभा ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब जाऊँगी। पापा आज इलाहाबाद जायँगे, वहाँ सिनेट की बैठक है।"

मालती ने उसे बैठाते हुए कहा—"वह तो रात की गाड़ी से जायँगे, अभी दोपहर को नहीं। बैठे बैठे एक बहाना ही सूझ गया। कुछ नहीं, तो चलो यही सही।"

आभा ने गंभीर होते हुए कहा—"यहाँ क्या करूँ? मेरे बैठने से आपके सब काम रुक जाते हैं। क्या करूँ, जाना ही पड़ेगा।"

मालती ने कहा—"अरे, मेरा कौन काम रुका है, और ख़ासकर तुम्हारे बैठने से।"

आभा ने उमँगती हुई हँसी रोकने की चेष्टा करते हुए कहा—"मेरे मौजूद रहते न तो तुम उनकी चिट्ठी पढ़ोगी, और न........"

मालती ने बात काटकर कहा—"और न तुम्हें ही फिर भारतेंदु को प्रेम-पत्र लिखने दूँगी। क्यों, यह बात ठीक है न?" यह कहकर मालती सवेग हँस पड़ी।

आभा ने सहज भाव से उत्तर दिया—"अभी वह समय नहीं आया।"

मालती ने कहा—"ठीक है, मैं ग़लती पर थी। अभी तो पूर्व-जन्म स्मृतियों को कसौटी पर कसा जा रहा है। क्यों?"

आभा लाल हो गई, और दूसरे ही क्षण कमरे के बाहर हो गई। मालती हँसती हुई मना करती रही, लेकिन आभा ने कुछ नहीं सुना।

जाते-जाते आभा ने कहा—"मैं अभी आती हूँ। ज़रा चाचीजी के पास भी हो आऊँ।"

मालती कुछ क्षण तक उसके वापस आने की प्रतीक्षा करती रही, लेकिन जब उसे आभा की हँसी के साथ-साथ उसकी दो बहनों तथा मा—लेडी चंद्रप्रभा—की हास्य-ध्वनि सुनाई दी, तब वह उस पत्र को पढ़ने लगी, जिसे लेकर उन दो सखियों में इतना वाद-विवाद हुआ था। पत्र कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह का था, और इस प्रकार था—

"प्रियतमे,

"इस प्रकार संबोधन करने का मेरा अधिकार तो नहीं है, किंतु इससे बढ़कर मेरी भावनाओं को प्रतीक करनेवाला कोई दूसरा शब्द नहीं मिलता। वास्तव में तुम मुझे सबसे अधिक प्रिय हो। यह देखा गया है कि आदमी को अपने प्राणों से अधिक कोई प्रिय नहीं होता, लेकिन तुम मुझे उससे भी प्रिय हो। अभी तो तुम्हें विश्वास न होगा, लेकिन अगर कभी समय मिला, तो तुम्हें यह कठोर सत्य भी देखने को मिल जायगा।

"अभी उस दिन तुम गई हो, लेकिन ऐसा मालूम होता है, वरसों से तुमसे जुदा हूँ। जीवन की सब आशाएँ तुम अपने साथ ले गईं। मेरे लिये जो सबसे सुखद वस्तु थी, वह था तुम्हारा साथ, और भगवान् ने वह भी मुझसे छीन लिया। यह मुझे विश्वास है कि तुम वहाँ बहुत प्रसन्न होगी, इसी बात से मुझे कुछ संतोष होता है, और इस समय भी कुछ सांत्वना मिलती है। भगवान् से यही प्रार्थना है कि तुम जहाँ रहो, सदैव प्रसन्न रहो।

"इस बात को मैं बख़ूबी जानता हूँ कि मैं तुम्हें पूर्ण रूप से सुखी नहीं कर सका, और भविष्य में कर सकूँगा, इसमें मुझे संदेह तो नहीं, किंतु किसी क़दर दुरूहता अवश्य है। ईश्वर की कृपा से सब कुछ सुलभ है। भय मुझे केवल इतना है कि कहीं तुम अपने वचन न भूल जाओ। साथ ही यह भी दृढ़ विश्वास है कि तुम अपनी प्रतिज्ञा न भूलोगी।

"यह मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारे ऊपर मेरा उतना अधिकार नहीं, जितना होना चाहिए था और न मैं किसी प्रकार के विनिमय की प्रत्याशा करने का अधिकारी हूँ। परंतु न-मालूम तुम में कौन आकर्षण है, जो मुझे वारंवार तुम्हारी ओर घसीटता है। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है, और तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। तुम मेरे लिये बिलकुल अपरिचित नहीं हो। तुम्हारे स्मरण-मात्र से रोमांच हो आता है, और नयन बार-बार तुम्हें देखने के लिये लालायित हो उठते हैं। इतनी अस्थिरता तो आज के पहले कभी नहीं मालूम हुई थी। इसका कारण क्या है। जिस दिन से तुम गई हो, उस दिन से इसका कारण खोज निकालना चाहता हूँ, परंतु मिलता नहीं।

"लिखने को तो बहुत कुछ है, और मन यही चाहता है कि निरंतर लिखता ही जाऊँ, परंतु शायद तुम इतने से ही ऊब गई हो। मैं परोक्ष में भी तुम्हें क्षण-भर के लिये दुखी नहीं देखना चाहता, इसलिये यह पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। यह प्रार्थना भी करता हूँ कि अगर इच्छा हो, और तुम्हें कोई कष्ट न हो, तो केवल दो लाइनें अपनी कुशलता की लिख भेजना, ताकि हृदय को कुछ अधिक संतोष हो। माताजी सकुशल हैं। तुम्हें आशीर्वाद कहती हैं।

तुम्हारा ही

कामेश्वर"

मालती ने ज्यों ही पत्र समाप्त करके पीछे की ओर देखा—"हँसी की ध्वनि से कमरा गूँज उठा! मालती कुछ शर्मा गई। हँसनेवाली आभा थी, जो आहिस्ता-आहिस्ता आकर, मालती के पीछे खड़ी होकर पत्र पढ़ रही थी। मालती निश्चिंत होकर पत्र पढ़ने में लीन थी। उसे न मालूम हुआ कि कब आभा आई। मालती के कमरे में सामनेवाले मार्ग के अतिरिक्त एक और मार्ग उसकी बहन कामिनी के कमरे में से था, जो आजकल ख़ाली था। वह कमरा मालती के कमरे में खुलता था, और उसका मार्ग दूसरी ओर से था। आभा उसे पहले ही खोल चुकी थी, जब मालती मिठाई लेने गई थी। वह उसी मार्ग से आकर मालती का पत्र पढ़ रही थी।

मालती ने उसकी ओर पत्र देते हुए कहा—"इतनी चोरी से पढ़ने की क्या ज़रूरत थी, जब मैं ख़ुद ही तुम्हें पढ़ने के लिये दे चुकी थी।"

उसके स्वर में तिरस्कार का आभास था।

आभा ने हँसते हुए कहा—"भाई, तुमने भी तो पत्र मुझसे छीन लिया था, अब क्यों शरमाती हो? आप समझती हैं कि मैं ही बड़ी चालाक हूँ?"

मालती ने हँसकर कहा—"लेकिन आज मैं मात खा गई। मुझे क्या मालूम था कि तुमने यह दरवाज़ा खोलकर पहले से सब जाल बिछा दिया है। अच्छा, यह तो बतलाओ कि तुमने यह दरवाज़ा कब खोल लिया था।"

आभा ने शरारत-भरी आँखों से कहा—"मै क्यों बतलाऊँ? तुम्हीं कौन अपनी सब बातें बतलाती हो।"

मालती ने धड़कते हुए हृदय से पूछा—"कौन बात छिपाई है तुमसे?"

आभा ने कहा—"यही तुमने कब मुझे बतलाया था कि वह तुम्हें कितना प्यार करते हैं?"

मालती ने शरारत से पूछा—"वाह कौन?"

आभा ने उत्तर दिया—"वह और कौन?"

मालती ने कहा—"वह, क्या अच्छा जवाब है! यह मुझे आज मालूम हुआ कि सर्वनाम से सर्वनाम ही अर्थ निकलता है। चलो, एक नई बात तो मालूम हुई।"

आभा बड़े असमंजस में पड़ गई। वह न जानती थी कि किस तरह मालती के पति को संबोधन करे।

इसी समय कामिनी हँसती हुई कमरे में आई उसी ओर से, जिधर से आभा आई थी। आते ही उसने कहा—"मैं आप लोगों की बातचीत सुन रही थी। जीजी ने आभा जीजी को लाजवाब कर दिया! वाह!" यह कहकर वह हँसते-हँसते फुलझरी हो गई। आभा चुपचाप थी। उसका शर्म से बुरा हाल था।

कामिनी ने हँसी बंद करते हुए कहा—"अरे, यह तो बड़ी सहल-सी बात है। इसमें क्या मुश्किल है, जीजी तो आपसे बड़ी हैं, तो फिर आप भी उन्हें जीजा कह सकती हैं।" यह कहकर वह फिर हँसने लगी।

कामिनी ने फिर कहा—"और अगर जीजा कहते शरमाती हो, तो उन्हें कुँवर साहब कह सकती हो।" यह कहकर वह द्विगुणित उत्साह से हँसने लगी।

हास्य की ध्वनि लेडी चंद्रप्रभा के कमरे तक पहुँची। वह इतनी हँसी का कारण जानने के लिये मालती के कमरे की ओर आईं।

उन्हें देखते ही कमरे में निस्तब्धता छा गई। कामिनी की हँसी उसके मुँह में ही रह गई।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"सारा दिन तुम लोगों को हँसते ही

बीतता है। आभा बेचारी सीधी-सादी है, तुम दोनो उसे हमेशा तंग किया करती हो।"

कामिनी के मुँह से फिर हँसी निकल पड़ी। उसने कहा—"आभा जीजाजी को जीजा कहने में शरमाती हैं!" यह कहकर वह फिर हँसने लगी।

लेडी चंद्रप्रभा भी मुस्किराती हुई चली गईं।

## १०

संध्या की लालिमा सुदूर पश्चिम में आग लगाकर स्वयं पूर्व दिशा की ओर भागती हुई, यामिनी के काले अंचल के नीचे छिपकर उसी में लीन होने का प्रयत्न करने लगी। जिस समय लालिमा भाग रही थी, उसकी आभा के कुछ कण नील रत्नाकर—प्रशांत महासागर— के ऊपर संतरण करते हुए 'सुमित्रा'-नामक जलयान पर गिर पड़े। और उन्होंने माधवी को, जो तीन दिन से बेहोश थी, जगा दिया। वह शून्य दृष्टि से चारो ओर देखने लगी। वह एक नई दुनिया में थी। डॉक्टर हुसैनभाई की आँखें सफलता के उल्लास से चमक उठीं। यह उनकी चिकित्सा का दूसरा दिन था। उन्हें यह आशा स्वप्न में न थी कि इतनी शीघ्रता से उन्हें सफलता मिलेगी।

पास ही अमीलिया बैठी हुई उसकी शुश्रूषा कर रही थी। उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखा—उल्लास के नेत्र आपस में एक दूसरे का हर्ष देखने लगे। दूसरे क्षण दोनो की आँखें नत होकर अपना कुछ खोया हुआ ढूँढ़ने लगीं। अमीलिया वह समाचार पंडित मनमोहननाथ को सुनाने के लिये चल दी, और डॉक्टर हुसैनभाई शीघ्रता से ओषधि बनाने में तत्पर हो गए।

माधवी के नेत्र बंद हो गए थे। वह अपनी कुछ पुरानी स्मृतियाँ एकत्र कर रही थी, जिनका अंधकार में कुछ ओर-छोर न मिलता था। उसका दिमाग़ एक ओर कालिमा से आवृत था, जिसमें स्मृति की ज्योति कुछ प्रकाश न करती थी, बल्कि वह उसे अधिक कालिमामय बना रही थी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने दवा बनाकर उसके शुष्क ओठों में लगाते हुए, उसके कान के पास अति मृदुल स्वर में, कहा—"दवा पी लीजिए।"

मंत्र-चलित पुतली की भाँति उसने आदेश पालन किया। वह दवा पी गई।

इसी समय पंडित मनमोहननाथ के साथ स्वामी गिरिजानंद ने प्रवेश किया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मरीज़ बड़ी जल्दी होश में आ गया। मुझे यह आशा न थी कि इतनी जल्दी होश आ जायगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने संतुष्ट होकर कहा—"यह तो अच्छा है। मुझे तो कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मैं इसके जीवन से कभी निराश नहीं हुआ था।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यदि भगवान् की इच्छा यह न होती, तो कदापि इतनी भयंकर मुसीबतों को झेलकर हमारे पास न आ जाती। इसके जीवन से मैं भी कभी निराश नहीं हुआ था।"

डॉक्टर हुसैनभाई दूसरी दवा तैयार करने में संलग्न थे। उन्होंने दवा बनाते हुए कहा—"यह तो मुझे भी उम्मीद थी। मगर यह ख़याल न था कि इतनी जल्दी सफलता मिलेगी। मैंने अनुमान लगाया था कि कम-से-कम सात दिन लगेंगे। आपसे कल ही बयान किया है कि ऐसा केस मुझे इँगलैंड में देखने को मिला था। उसी के आधार पर मैं अंदाज़ा लगा रहा था।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अब आप कौन-सी दवा दे रहे हैं?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"अभी एक ताक़त लानेवाली

दाव पिला चुका हूँ, और अब सोनेवाली दवा दूँगा। गहरी बेहोशी के बाद नींद बहुत फ़ायदेमंद है।"

पंडित मनमोहननाथ ने शंकित स्वर में पूछा—"क्या आप कुछ खाने को न दीजिएगा? बेचारी आज तीन दिन से तो बेहोश है, और उसके पहले कितने दिनों से नहीं खाया। कौन कह सकता है, ऐसी अवस्था में कहीं इसकी हालत ख़राब न हो जाय।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मुस्किराते हुए कहा—"आप इसकी चिंता न करें। मरीज़ कभी भूख से मर नहीं सकता। मैंने इसका प्रबंध कर दिया है। इसे अब केवल शांति और विश्राम की आवश्यकता है। अगर अल्लाह ने चाहा, तो दो दिन में मैं सारी कमज़ोरी दूर कर दूँगा।"

दवा माधवी के उदर में जाकर अपना असर कर रही थी। उसकी धमनियों में रक्त का संचालन वेग से शुरू हो गया था, परंतु स्मृति अब भी परिष्कृत नहीं थी। उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ता था, केवल एक मृदु गुंजन के अतिरिक्त और कुछ न मालूम होता था।

डॉक्टर ने दूसरी तैयार की हुई ओषधि पिलाते हुए कहा—"इसे पीते ही अब प्राकृतिक ढंग पर नींद आवेगी, जिससे बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य ठीक हो जायगा, और इंशा अल्लाह कल एक दूसरी ही सूरत नज़र आएगी।"

माधवी दूसरी दवा भी पी गई।

पंडित मनमोहननाथ ने माधवी के समीप आकर उसे ग़ौर से देखते हुए कहा—"बहुत कमज़ोर मालूम होती है। देखो, भगवान् कब इसे अच्छा करते हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"ईश्वर सब अच्छा करते हैं, और सब अच्छा होगा। आज जब तबियत अच्छी है, तो अमीलिया को विश्राम देना वाजिब होगा, और परिचर्या के लिये राधा को

नियुक्त कर देना चाहिए। वह भी एक चतुर स्त्री मालूम होती है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, स्वामीजी, यह ठीक है। कल रात से अमीलिया सोई नहीं, अभी-अभी बीमारी से उठी है। ज़्यादा परिश्रम करने से उसके बीमार पड़ने का अंदेशा है। अब भय की कोई बात नहीं। राधा बड़े मज़े से अपनी सहेली की देख-रेख कर सकती है। राधा और माधवी तो दोनो साथ ही मिली थीं। मैं तो उसे एक प्रकार से भूल गया था।"

अमीलिया ने दृढ़ता से कहा—"जी नहीं, जब यह भार मैंने उठाया है, तो मुझे ही उठाने दीजिए। मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ। सिर्फ़ एक रात न सोने से मेरी कोई विशेष हानि नहीं हुई। आज यहाँ मैं भी सो जाऊँगी। आप मेरे लिये चिंता न करें।"

पंडित मनमोहननाथ ने सप्रेम अमीलिया के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अमीलिया, तुम भी मुझे संतान के समान प्रिय हो। यह मुझे भली भाँति मालूम है कि तुम बीमार की सेवा करने में बड़ी चतुर हो, और उसकी तीमारदारी में अपने को नष्ट करने में ज़रा भी न हिचकिचाओगी। परंतु तुम्हारे कल्याण की ओर देखना मेरा भी कर्तव्य है। मैं तुम्हें किसी तरह आज यहाँ नहीं रहने दूँगा। तुम्हें आज आराम करना होगा। अपने कमरे में जाकर विश्राम करो। मैं यहाँ किसी दूसरे का प्रबंध करूँगा।"

अमीलिया भी दृढ़ थी। उसने कहा—"मनुष्य का धर्म है कर्तव्य पूरा करना। जब मैंने एक नर्स का काम लिया है, तब उसके अनुसार काम भी करना चाहिए। नर्स अपना आराम नहीं देखती।"

उसकी आँखों से सात्विक भाव की सुनहली किरणें निकलकर पंडित मनमोहननाथ को द्रवित करने लगीं। उनके हृदय में

ममत्व की सुनहली ज़ंजीर पड़ गई। वह उसे अपनी संतान की भाँति सस्नेह देखने लगे। अमीलिया सिर नत किए हुए देख रही थी। पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न कंठ से कहा—"जब तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम रहकर अपना कर्तव्य पालन करो। जो मनुष्य कर्तव्य पालन करता है, उसका अनिष्ट कभी नहीं होता, सदैव कल्याण होता है। अगर ज़रूरत समझो, तो राधा को बुला लेना, वह तुम्हारी सहायता करेगी।" यह कहकर वह बाहर जाने लगे।

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"बेहतर होगा, आप स्वयं यह प्रबंध कर दें।"

पंडित मनमोहननाथ ठहर गए, और राधा को बुलाने के लिये एक सेवक को आदेश दिया। थोड़ी देर में राधा वहाँ आई।

राधा ने प्रश्न-भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—"कहिए, क्या हुक्म है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं समझता हूँ, तुम अब बिलकुल अच्छी हो। अपनी सहेली की देख-रेख कर सकती हो। आज उसे होश आ गया है, और डॉक्टर का कथन है कि वह बहुत जल्द अच्छी हो जायगी। तुम आज इसी कमरे में सोना, और अमीलिया की सहायता करना।"

राधा ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की।

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"क्या तुम अपनी सखी का नाम बतला सकती हो?"

राधा ने उत्तर दिया—"उसने मुझे अपना नाम माधवी बताया था, और शायद यही उसका नाम भी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"माधवी नाम है ठीक। अभी तक मैंने इसका परिचय नहीं दरयाफ़्त किया, मुझे अवकाश नहीं मिला। ख़ैर, आज जाने दो, कल सुबह मेरे पास आकर अपना

परिचय देना। कल तक माधवी भी पूरे होश-हवास में आ जायगी, उस वक़्त अगर तुम दोनो अपने-अपने घर जाना चाहोगी, तो भेज दूँगा।"

राधा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर हुसैनभाई से पूछा—"क्या माधवी को नींद आ गई?"

डॉक्टर ने माधवी की ओर देखते हुए कहा—"जी हाँ, वह इस वक़्त सो रही है।"

पंडित मनमोहननाथ ने जाते हुए कहा—"आप रात की दवा का भी प्रबंध कर दीजिएगा। अगर कोई ज़रूरत दरपेश हो, तो मुझे फ़ौरन् इत्तिला दीजिएगा। यह ख़याल न कीजिएगा कि मैं नींद में हूँ। मुझे आप सोते से जगा सकते हैं।" यह कहकर वह स्वामी गिरिजानंद के साथ चले गए।

राधा अमीलिया और डॉक्टर हुसैनभाई की ओर आदेश मिलने के लिये देखने लगी।

अमीलिया ने कहा—"अब रात हो गई है, तुम अभी जाकर खाना वग़ैरा से फ़राग़त हो आओ, मैं यहाँ बैठी हूँ।"

राधा चली गई।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मिस साहबा, आप भी इस वक़्त जा सकती हैं। मुझे कोई काम नहीं, मैं मरीज़ के पास बैठा हूँ।"

अमीलिया ने नम्रता के साथ कहा—"धन्यवाद! मैं अभी राधा के वापस आने पर चली जाऊँगी।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने एक दवा की शीशी उठाते हुए कहा—"देखिए, मनुष्य घटनाओं का कैसा शिकार हो जाता है।"

अमीलिया ने नेत्र नीचे किए हुए कहा—"मैं आपका मतलब नहीं समझी।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—'मैं अपने संबंध में कह रहा था। अगर परसों शाम तक कोई मुझसे आकर कहता कि कल तुम्हारी नौकरी लग जायगी, और तुम घर छोड़-कर कल ही शाम तक परदेश जाओगे, तो मैं उससे ज़ोर के साथ कहता कि तुम झूठे हो, मगर देखिए, आज वही लफ़्ज़-बलफ़्ज़ सच है। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों हुआ, और अक्सर ऐसा हो जाता है।" यह कहकर वह कुछ मुस्किराए। अमीलिया भी मुस्किराने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने कहा—"जी हाँ, आपका कहना बिलकुल ठीक है।"

फिर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—"क्या आप ईश्वर पर विश्वास करते है ?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मुसलमान होने से ज़रूर ख़ुदा को मानता हूँ, मगर दिल से मैं उसका क़ायल नहीं। मैं बहुत दिनों तक इँगलैंड में रहा हूँ, और वहाँ मुझे कई धर्मों के बारे में जान-कारी हुई। मैंने अपने बहुत दिन उन लोगों की सोहबत में गुज़ारे हैं, मगर मुझे अफ़सोस है कि कोई धर्म मुझे अपना मुरीद नहीं बना सका। शायद आपको ताज्जुब होगा कि न तो मैं ख़ुदा में यक़ीन करता हूँ, और न किसी धर्म पर।"

अमीलिया तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। उसके मुख का भाव देखकर डॉक्टर हुसैनभाई कुछ सहम से गए।

उन्होंने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"मालूम होता है, आप ख़ुदा पर यक़ीन करती हैं।"

अमीलिया ने दृढ़, किंतु शांत स्वर में कहा—"जी हाँ, मैं ईश्वर पर विश्वास करती हूँ, और धर्म पर भी। ईश्वर हमारा लक्ष्य है, और धर्म उस तक पहुँचने का रास्ता।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"यह तो पुरानी बात है, जो सदियों से इंसान को पागल बनाए हुए है। यह एक ऐसा गोरख-धंधा है, जिसमें दुनिया फँसी हुई है, और यह यक़ीन भी, छूत की बीमारी की तरह, पुश्त-दर पुश्त चला जाता है। यही तो ताज्जुब है।"

अमीलिया ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"क्यों, आपको ताज्जुब होता है?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"ताज्जुब की तो बात ही है कि पढ़ी-लिखी दुनिया महज़ एक लग़ो ख़याल में मुब्तिला चली आती है। क्या इंसान की समझ में यह नहीं आता कि मज़हब के हिमायती मुल्लों, पादरियों और बिरहमनों की दिमाग़ी फ़रेबसाज़ी है, जो उन्हें बहकाकर सिर्फ़ अपना उल्लू सीधा करते हैं। जिस ख़ुदा की वे दुहाई देते हैं, उसका वजूद कहाँ है, यह नहीं बतलाते। जवाब में बेसिर-पैर की बातें, जिनकी ताईद किसी इल्म, साइंस वग़ैरह से नहीं हो सकती, कहते हैं, ताकि इंसान उन पर यक़ीन करे। वे तरह-तरह की झूठी नज़ीरें व दलीलें पेश करते और आख़ीर में दोज़ख़ और बिहिश्त के ख़याली करिश्मे दिखाते हैं। मैंने आज तक किसी मुल्ला, पादरी या साधू-बिरहमन को अपने ज़ाती फ़ायदे से बहुत दूर नहीं पाया। हालाँकि वे दुनियाबी न्यामतों को हक़ीर और हेच कहते हैं, इंसान की तबियत उस तरफ़ से हटाने की कोशिश करते हैं, मगर ख़ुद उनमें ग़र्क़ रहते हैं। यहाँ तक कि उन्हें दस्तयाब करने के लिये ही फ़रेबों का जाल बिछाते हैं। मक्कारी की हद तोड़ देते हैं उस वक़्त जब वे इंसान को, भोले इंसान को, इन दुनियाबी न्यामतों से मुँह मोड़ने की तक़रीर करते हैं, और ख़ुद उन्हें हासिल कर ऐस व इशरत से ज़िंदगी बसर करते हैं।" कहते-कहते डॉक्टर हुसैनभाई जोश से उतावले हो गए।

अमीलिया ने शांति के साथ उनकी ओर देखते हुए कहा—"डॉक्टर साहब, मुल्लाओं या पादरियों के निस्बत आपका ख़याल ठीक भी हो सकता है, और दरअसल ज़्यादातर ऐसे ही हैं, जैसे आप बयान करते हैं, मगर ये बातें हरगिज़ ख़ुदा के वजूद को मिटाती नहीं। ईश्वर की पहचान, उसका अनुभव या उसका अस्तित्व उस वक़्त मालूम होता है, जब इंसान ख़ुदी को भुला देता है। ख़ुदी को भूल जाना ही ख़ुदा की पहचान है। अगर मज़हब में दुनियावी न्यामतों की तरफ़ हिक़ारत दिखलाई है, तो वह इसलिये नहीं कि इंसान उन्हें हासिल न करे, उन्हें भोगे नहीं, उनसे फ़ायदा न उठावे, बल्कि इसलिये कि वह उनमें ग़र्क़ न हो जाय, और साथ ही एक इंसान दूसरे इंसान पर उन्हें हासिल करने के लिये ज़ुल्म न करे। इससे ज़्यादा उनका कोई दूसरा मक़सद नहीं।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आप तो मेरा पक्ष भी लेती हैं, और मज़हब की भी हिमायत करती हैं। यह तो ठीक नहीं। आदमी एक ही नाव पर जा सकता है, दो नावों पर एक साथ नहीं।" यह कहकर वह कुछ हँस पड़े।

अमीलिया ने गंभीरता-पूर्वक कहा—"मैं किसी का पक्ष नहीं लेती। मैं सिर्फ़ वही बयान करती हूँ, जो मेरा विश्वास है, या जो कुछ मैं समझती हूँ। सचाई कभी दो मुख़ालिफ़ सिरों पर नहीं होती, वह हमेशा बीच में हुआ करती है।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"सचाई मैं हमेशा उसी में पाता हूँ, जो ख़ुद सच है। जो ख़ुद ऐक फ़रेबी और दग़ाबाज़ है, उससे सचाई की उम्मीद करना फ़िज़ूल है। सच वह है, जिसे मैं आँखों से देख सकूँ, कानों से सुन सकूँ और हाथ से छू सकूँ। मैं ख़याली पुलाव पकाना पसंद नहीं करता। इंसान अपने को कमज़ोर समझता है, इसलिये वह ख़ुदा की तरफ़ भागता है। अगर इंसान अपने को

कमज़ोर न ख़्याल करे, तो वह ख़ुदा की खोज में दर-दर भटकता न फिरे।"

अमीलिया ने कहा—"कमज़ोरी का दूसरा नाम इंसान है, वह इस ( इंसान ) से इस तरह जुदा नहीं हो सकती, जैसे सूरज से रोशनी, आग से गरमी, पानी से नमी, बर्फ़ से ठंडक। चूँकि इंसान कमज़ोर है, इसलिये वह अपने से ज़्यादा ताक़तवर का ख़याल करता है, और जिसे वह ख़याल करता है, वह ख़ुदा है। कमज़ोर लफ़्ज़ जिस तरह ताक़तवर लफ़्ज़ की कल्पना करा लेता है, हालाँकि आपने सिर्फ़ कमज़ोर लफ़्ज़ ही इस्तेमाल किया है, और ताक़तवर लफ़्ज़ नहीं कहा है, उसी तरह इंसान कहने से किसी ऐसी चीज़ का भी ख़्याल आता है, जो इंसान नहीं है—उससे भी ऊँचा है। बस, वही ऊँची चीज़ ख़ुदा है।"

इसी समय राधा कमरे में आई। उसके आते ही डॉक्टर हुसैन-भाई उठ खड़े हुए।

उन्होंने उठते हुए कहा—"आज आपकी तक़रीर से मुझे निहायत ख़ुशी हासिल हुई, और साथ ही दिल-बहलाव का एक दिलचस्प सवाल उठ खड़ा हुआ। मैं ख़ुदा पर यक़ीन नहीं करता, और आप उसकी पुजारिन हैं, चलिए, तफ़रीहन घंटे-दो घंटे इस बहस-मुबाहिसा में कट जाया करेंगे। अगर आपको कोई तकलीफ़ न हो, तो कल किसी वक़्त फिर इसी मसले को हल करेंगे।"

अमीलिया ने प्रसन्नता के साथ कहा—"मैं हमेशा तैयार हूँ। आज पाँच साल से मैं इन्हीं ख़यालातों में मुब्तिला रहती हूँ। आपसे बातचीत करने से मेरी जानकारी बढ़ेगी, और दरअसल वक़्त मज़े के साथ कटेगा। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मुस्किराते हुए कहा—"मेरी बातचीत से आपका कुछ दिल-बहलाव हुआ, यह जानकर मुझे बेहद ख़ुशी हुई।

इस बेइंतिहा ख़ुशी के लिये महज़ शुक्रिया अदा करना बहुत थोड़ी बात है।"

अमीलिया ने हँसते हुए कहा—"ख़ैर, आप कष्ट न करें। इतना ही बहुत है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"अब आप भी जाकर कुछ देर आराम करें। यह बाई मरीज़ के पास बैठ जायँगी। मैंने सोने की दवा दी है, जिससे कम-से-कम छ घंटे मुतवातिर नींद आएगी। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप आज रात-भर जागकर अपनी तबियत न ख़राब करें। मरीज़ की हालत बड़ी अच्छी है, और ज़्यादा देख-रेख की ज़रूरत नहीं। रात को मैं ख़ुद दो-एक मर्तबे आकर हालत देख लूँगा, और मुनासिब दवा दे दूँगा। सारी ज़िम्मेवारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। अब आप तक़लीफ़ न उठाएँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई की आँखों से आजिज़ी व मिन्नत झाँक रही थी।

अमीलिया मन-ही-मन मुस्किराती हुई कुछ सोचने लगी।

---

## ११

रात्रि की नीरवता को देखकर अमीलिया का हृदय काँप उठा। संसार इस समय केवल अंधकार का विशद् विस्तार मालूम होता था। रत्नाकर काला था, आकाश काला था, और प्रशांत सागर पर संतरण करता हुआ जहाज़ काला था। चतुर्दिक् गंभोर शांति छाई हुई थी, जिससे मनुष्य प्रसन्न होने को जगह काँप उठता था। अमीलिया ने देखा—राधा जागती-जागती ऊँघ गई है, और माधवी सो रही है। वह सजग होकर उठ बैठी। घड़ी में देखा, अभी तो १०-४० हुए हैं। वह आराम-कुरसी पर बैठ गई, और विचारों में निमग्न हो गई। इसी समय पूर्व दिशा से चंद्रमा उदय होकर अमीलिया के भावों को समझने का यत्न करने लगा। अमीलिया सोचने लगी—

"इस समय संसार नींद में बेख़बर है। प्रकृति भी अपनी बेसुधी में मग्न है। परंतु मुझे नींद नहीं आती। न-मालूम क्यों मेरा मन बार-बार घबराता है। मन में आता है, रोऊँ, और इतना रोऊँ कि उसमें अपनी सुध-बुध खो दूँ। किंतु आश्चर्य तो यह कि आँसू एक नहीं निकलते। मेरा मन जल रहा है, और फिर भी रो नहीं सकती।

"यह दशा क्यों है? इसका उत्तर मुझे नहीं मिलता। जब से मैंने भारतेंदु के विवाह की बातचीत सुनी है, तभी से मेरा यह हाल है। उस वक़्त से मानो किसी ने मेरे हृदय में आग लगा दी है। ज़रा भी शांति नहीं मिलती। अगर भारतेंदु का विवाह होता है, तो उसमें मेरी क्या हानि है? कुछ नहीं। उन्होंने तो मुझसे

आज से पाँच साल पहले ही संबंध-विच्छेद कर लिया है। इतने दिन हो गए, और उन्होंने मित्र के नाते भी यह न पूछा कि तुम प्रसन्न तो हो। हाय री निष्ठुरता और स्वार्थपरता!

"पुरुष कितना स्वार्थी होता है। वह अपने पशुत्व-पूर्ण आचरण से सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी का भार स्त्री पर डाल देता है, और फिर छिटककर अलग खड़ा हो जाता है। वक़्त पर अनजान का पुतला बनकर सफ़ाई देता है। जिस स्त्री का वह सर्वनाश करता है, समय पर वह उसे ज़रा नहीं पहचानता, और अगर उसे मौक़ा मिलता है, तो उसके प्राण लेने में भी संकोच नहीं करता है? पुरुष-जाति!

"मैं कितनी सुखी थी, कितनी बेफ़िक्री से अपने दिन व्यतीत कर रही थी। मेरे सामने सोने का संसार था, जिसमें आशाएँ थीं, उमंगें थीं, प्रेम था, आनंद था, और मतवालापन था। संसार का शृंगार और सोहाग अपनी-अपनी जयमाल मेरे गले में डालने को उत्सुक था। न-मालूम किस कुघड़ी मैंने भारतेंदु को देखा, और देखते ही उसकी मीठी-मीठी बातों में फँस गई। इसके बाद वह बीमार पड़े। मेरे मन में भयानक पीड़ा होने लगी। जितना वह तड़पते अपनी पीड़ा से, मैं उससे भी ज़्यादा तड़पती उनकी पीड़ा से। कुछ दिन पहले ही मैं अपनी मा खो चुकी थी। मेरे मन में भय उत्पन्न हुआ कि कहीं इन्हें भी न खो दूँ, जी-जान से उनकी सेवा करने लगी। अहर्निश ईश्वर से उनके अच्छा होने के लिये प्रार्थना करती। वह तो बेहोश रहते, और मैं एकाग्र-मन से प्रार्थना करती। भगवान् ने मेरी प्रार्थना सुन ली, और वह अच्छे हो गए।

अच्छे होने पर उनका प्रेम मेरे प्रति गहरा रंग पकड़ने लगा। मैं तो पहले से ही उनके जाल में फँसी थी, उन्होंने मुझे ज्यों-ज्यों अपनी ओर खींचा, त्यों-त्यों उनकी ओर खिंचती चली गई। उन्होंने जो कुछ कहा, उस पर विश्वास किया। मैं तो उन्हें देवता की

भाँति पूजती और वैसी ही भक्ति करती थी। वह मेरी आशाओं के केंद्र, मेरी प्रेम-भावनाओं के मंज़िले-मक़सूद थे। मैं अपना निजत्व भूलकर उनकी हो चुकी थी। मेरी आँखों में उनके रूप का नशा हमेशा चढ़ा रहता, और मेरा मन तो उनकी प्रेम-मदिरा से डूबा रहता। उनके ज़रा-से रूठने पर मेरे हृदय को पीड़ा होने लगती, और उनकी तनिक-सी मुस्किराहट से मेरे मन की कली-कली खिल जाती। मैं उन्हें अपने से भी अधिक प्यार करती थी। मेरे प्यार की दुनिया ही अलाहिदा थी, जहाँ हम दोनो के सिवा कोई दूसरा न था। हम दोनो अपनी-अपनी प्रेम-लीला में मस्त थे। मुझे न तो इस संसार की कुछ ख़बर थी, और न किसी दूसरी दुनिया की। मेरे लिये तो यहीं बिहिश्त और यही मेरा ख़ुदा था। वह मेरा दीन-ईमान और मेरा मज़हब था।

"मैं तो उसे इतना प्यार करती थी, परंतु क्या वह भी मुझे प्यार करते थे? इस वक़्त तो यही कहूँगी कि उस निष्ठुर के हृदय में मेरे लिये ज़रा भी प्यार न था। जो कुछ प्यार वह दिखलाते थे, सिर्फ़ मेरा सर्वनाश करने के लिये। जब उसने मेरा अच्छी तरह सर्वनाश कर दिया, तो उसके एवज़ में कुछ रुपए देकर अपना पिंड छुड़ा लिया। मैं संसार से अनभिज्ञ थी, स्वार्थी पुरुष-जाति को न पहचानती थी। उसकी कपट-पूर्ण बातों को मैंने सत्य समझा, और उन पर विश्वास किया। प्रेम के क्षणिक आवेश में मैंने अपना बहुमूल्य नहीं, अमूल्य रत्न भी उसके पैरों पर भेंट चढ़ा दिया। उस निष्ठुर, कपटी ने जो कुछ कहा, स्वीकार किया, और उसका नतीजा क्या हुआ? मेरी समस्त आशाओं का सर्वनाश, मेरी सद्भावनाओं का सर्वनाश, मेरे प्रेम का सर्वनाश, मेरी पवित्रता का सर्वनाश और मेरा सर्वनाश। हाय रे भाग्य!

"वह दिन मुझे अभी तक याद पड़ता है, जब मैं एक बच्चे की

मा होनेवाली थी। संसार की स्त्रियाँ उस दिन के लिये आशा से बाट देखा करती हैं। वही दिन मेरे सामने था, मगर मेरी आशाओं का ख़ून हो चुका था, और हत्याकारिणी बनने जा रही थी। मैंने अपने हाथ से उसका गला घोट डाला। वह मा-आ चिल्लाता रहा, लेकिन मैंने अपनी शर्म बचाने के लिये अपना कलेजा कठोर कर लिया था, मैंने कुछ न सुना, और उसकी मा-मा की आवाज़ को हमेशा के लिये बंद कर दिया! उसकी प्रतिध्वनि अभी तक सुनती हूँ, जिसे सुनकर मेरे अंग-प्रत्यंग में अनिर्वचनीय भय का तड़िद्प्रवाह दौड़ने लगता है। उसी चिल्लाहट से बचने के लिये मैं इस समुद्र में रहती हूँ, मगर वह तो हमेशा सुनाई पड़ती है।

"वह मेरा बच्चा था, भारतेंदु के प्रेम का उपहार था। मेरे प्रथम प्रेम का फल था। बड़ा नयनाभिराम था। उसे देखकर मैं क्षण-भर के लिये अपनी शर्म की बात भूल गई थी, और यह निश्चय किया था कि इसे मारूँगी नहीं। मैंने उसे अपने कलेजे से लगा लिया। अभागा, मौत की दाढ़ में दबा हुआ बालक चिल्ला उठा, और चिपट गया। मैं बेसुध हो गई, और जब होश में आई, तो उस दुष्ट दाई ने कहा कि वह मर गया है। मैं हाय मारकर रह गई। मैं उसे अच्छी तरह प्यार भी न कर पाई थी, और उसे अपने स्वार्थ के लिये मार डाला।

"मैं उसकी हत्याकारिणी हूँ, क्योंकि मेरे ही कारण उसकी अकाल मृत्यु हुई। मैंने उसकी रक्षा नहीं की। मेरे समान पापिनी दूसरी कौन होगी। क्या यह पाप क्षमा हो सकता है? नहीं, भगवान् इसको कभी क्षमा नहीं करेंगे। तभी उस दिन से मैं परेशान हूँ, और मुझे क्षण-भर के लिये शांति नहीं मिली, और, इस जीवन में मिलेगी, यही कौन कह सकता है।

"अच्छा, भारतेंदु ने क्यों नहीं स्वीकार किया कि मैं इसका पिता

हूँ ? अगर वह स्वीकार कर लेते, तो क्या मुझे हत्यारिनी बनना पड़ता, अपने ही बच्चे का गला दबाना पड़ता ? मैं धन्य हो जाती, और उसे अपने हृदय से लगाए घूमती। आह, उसमें कितना सुख होता, कितनी शांति होती, और कितना हर्ष होता। परंतु वह कापुरुष है। उसका पुरुषत्व तो मेरे सर्वनाश के लिये ही था, और कुछ नहीं। इस हत्या का अपराधी दरअसल वही है। इस दुनिया में वह चाहे भले ही निरपराध होकर बच जाय, मगर ईश्वर के सामने तो उसे अपना अपराध स्वीकार करना पड़ेगा, और इसके लिये उसे दंड भी भुगतना पड़ेगा। उस निष्ठुर ने मेरा सर्वनाश किया, मैं उसे इसके लिये क्षमा कर सकती थी, परंतु उसने मेरे बच्चे का ख़ून किया है, इसे मैं भूल नहीं सकती। मैं इसका बदला चाहती हूँ, ऐसा प्रतिशोध चाहती हूँ कि जिस आग में मैं आज पाँच वर्ष से निरंतर जल रही हूँ, इससे भी भीषण अग्नि में वह जले। क्षण-भर के लिये उसे शांति न मिले। जब वह इस प्रकार तड़पेगा, तब मालूम होगा कि उसका बच्चा किस तरह तड़प-तड़पकर, मा-मा, चिल्लाता हुआ मरा था। उस वक़्त मैं हँसूँगी, दिल खोलकर हँसूँगी।

"अरे, यह क्या ? मैं फिर उस प्रतिहिंसाग्नि की ज्वलित धारा में बह चली, जिसकी ओर न जाने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी। वह कभी मेरा प्रियतम था—कभी क्या, अभी तक है। उसकी मधुर स्मृति मैं अपने हृदय में अंतिम दिन तक छिपाए रहूँगी। मेरा जीवन तो उसी स्मृति पर अवलंबित है। यह सत्य है कि मैं सब कुछ खो बैठी हूँ, लेकिन उसकी स्मृति अब भी मेरे पास सुरक्षित है, उस तरह, जैसे कोई महाकृपण अपना धन छिपाए रहता है। भला उस स्मृति को मैं किस तरह खो सकती हूँ।

"मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रतिशोध की कामना नहीं

करूँगी। प्रभु ईसा मसीह ने अपने सारे दुश्मनों को, जिन्होंने उन्हें सूली पर चढ़ाया था, क्षमा कर दिया था। प्राण निकलते-निकलते उनकी माफ़ी के लिये ही वह ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। मेरे सामने भी वही आदर्श है! उनका कहना है कि अगर कोई तुम्हारे बाएँ गाल पर तमाचा लगाता है, तो तुम दाहना गाल भी उसकी ओर घुमा दो, ताकि उसे दूसरा तमाचा मारने में तकलीफ़ न हो। अपने शत्रु के अपराध क्षमा करना, और उसे दया-भाव से देखना ही धर्म है। हे प्रभो, मुझे बल दो, साहस दो, शक्ति दो कि मैं भारतेंदु के सारे अपराध भूल सकूँ, और उसे अंतःकरण से क्षमा कर दूँ; चाहे वह कभी अपने अपराध के लिये अनुतप्त न हो।

"इसमें भारतेंदु का क्या क़सूर है? कुछ नहीं। ऐसा तो पुरुष प्रायः किया करते हैं। उसने कोई नई बात नहीं की, केवल अपनी जाति-स्वभावोचित काम किया है, जिसके लिये वह अकेला उत्तर-दायी नहीं हो सकता। दूसरी स्त्रियाँ चाहे ऐसे अत्याचारियों को क्षमा न करें, लेकिन मैं तो उसे क्षमा करती हूँ, और आज से पुनः प्रतिज्ञा करती हूँ कि उसके अपराधों पर दृक्‌पात नहीं करूँगी।

"भारतेंदु को मैं भूलने का प्रयत्न क्यों न करूँ? उसे भूल जाने में ही मेरा कल्याण है। वह एक विदेशी जाति का पुरुष है, जिसका देश आजकल मेरे देशवासियों के अधीन है। वह ग़ुलाम जाति का है, और मैं उसकी स्वामिनी हूँ। नहीं जानती, कैसे मैंने उसे प्यार किया था। प्रेम तो किया था, मगर अब उस प्रेम की स्मृति कैसे बाहर निकालकर फेंक दूँ?

"यह मैंने क्या कह डाला, वह ग़ुलाम जाति का है? फिर वही प्रतिहिंसा का भाव। ईश्वर की सृष्टि में कोई ग़ुलाम पैदा नहीं हुआ, सब स्वतंत्र हैं, सबके अधिकार बराबर हैं। स्वामित्व का भाव रखना ईश्वरीय धर्म के प्रति आघात करना है। यह सृष्टि समता

के भाव से परिपूर्ण है, जिसका संदेश दिन-रात हमें वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल से मिला करता है। वह नील रत्नाकर समस्त जीव-मात्र के लिये एक-सा व्यवहार करता है, इसके लिये ग़ुलाम और उसका स्वामी, दोनो बराबर हैं। इसी तरह अग्नि उनके साथ एक ही तरह अपना गुण प्रकट करेगी। मैं और भारतेंदु, दोनो एक ही ईश्वर के पुत्र हैं। न वह ग़ुलाम है, और न मैं। ऐसा कलुषित भाव रखना अन्याय और ईश्वर का अपमान करना है। मैंने भूल की, जो उसे ग़ुलाम कहा। यह मेरी ईर्ष्या का भाव है, जिसे दमन करना चाहिए।

"भारतेंदु विवाह करता है, इसमें मुझे प्रसन्न होना चाहिए। दुखी क्यों होऊँ। मैं इतना ज़रूर सतर्क होकर देखूँगी कि वह कहीं उसे भी इसी प्रकार भ्रष्ट न कर दे, जैसे मुझे किया है। उसे विवाह करना होगा। मैं तो किसी तरह बच गई, अपनी शर्म छिपा डाली, लेकिन उस अभागिनी के लिये मुश्किल हो जायगा। अगर वह उससे विवाह न करेगा, तो मुझे कुछ उपाय करना पड़ेगा।

"भारतेंदु को मैं भूल जाऊँगी, उसकी याद कभी न करूँगी। न-मालूम क्यों मैंने सिंगापुर से उसे वह पत्र लिख दिया। उस दिन मेरे मन में बहुत पीड़ा थी। जब से उसके विवाह का समाचार सुना था, अपने मन से युद्ध कर रही थी। उस दिन प्रतिहिंसा का भाव प्रबल हो गया, और मुझे वह पत्र लिखना पड़ा। पत्र लिख-कर मैंने अपने को नीचे गिरा दिया। मेरा पत्र पाकर उसने क्या समझा होगा? क्या वह मेरे पागलपन पर हँसता-हँसता प्रसन्न नहीं हुआ होगा? उफ़्! मैंने कितनी बड़ी बेवक़ूफ़ी की, जो उसे वह पत्र लिख दिया, किंतु अब क्या उपाय है?

"जीवन के दिन क्या इसी प्रकार निरुद्देश होकर बीतेंगे? मेरा कर्तव्य क्या होना चाहिए? क्या मैं विवाह के जाल में फिर फँसूँ?

नहीं, यह तो असंभव है। अब पुरुष-जाति पर मेरा विश्वास नहीं रहा, और न उसे अब मैं प्यार ही कर सकती हूँ। मनुष्य-मात्र की सेवा करना ही मेरा ध्येय है। गिरे हुए को ऊपर उठाना, रोते हुओं के आँसू पोछना, दुखी को सांत्वना देना, संतप्त को सुखी करना, निराश के हृदय में आशा-प्रदीप जलाना, समता, दया, क्षमा, सौहार्द, प्रीति के भाव मनुष्य-जाति में उत्पन्न करना—बस, यही मेरे जीवन का उद्देश होगा। भगवान् मेरी सहायता करेंगे, और प्रभु ईसा मुझे मार्ग प्रदर्शित करेंगे।"

बाहर पैरों की आहट सुनाई दी और द्वार पर डॉक्टर हुसैनभाई आते हुए दिखाई दिए। अमीलिया के विचार जहाँ के तहाँ रह गए। वह उनकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्सुकता से आगे बढ़ते हुए कहा—"मिस जैकब्स, आपने मेरे अनुरोध की रक्षा नहीं की, और फिर मरीज़ के पास आ गईं?"

उनके स्वर में प्रेममय तिरस्कार की मिठास थी।

अमीलिया ने शांत स्वर में कहा—"डॉक्टर साहब, मैं आपका अनुरोध नहीं रख सकी, इसका मुझे खेद है, क्योंकि मुझे अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने चकित होकर, उसकी ओर देखते हुए कहा—"इस मरीज़ के प्रति आपका क्या कर्तव्य हो सकता है?"

अमीलिया ने उसी भाँति उत्तर दिया—"मनुष्य के प्रति मनुष्य का क्या कर्तव्य नहीं होता? यह मरीज़ हमारी स्त्री-जाति की एक अभागिनी बहन है, इससे अधिक दृढ़ संबंध और क्या हो सकता है। मेरे लिये इतना ही यथेष्ट है कि यह पुरुष नहीं है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"मालूम होता है, आप पुरुष-जाति-मात्र से घृणा करती हैं। ऐसा क्यों?"

अमीलिया ने कुछ मुस्किराते हुए कहा—"मैं घृणा तो किसी से नहीं करती, परंतु मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह उसका पक्ष करे, जो उसके निकट अधिक होता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने पूछा—"आख़िर इस पक्षपात का कारण क्या है?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"कारण तो मैं अभी स्पष्ट रूप से कह चुकी हूँ। मनुष्य स्वभावतः अपनी जाति का पक्ष लेता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई चुप होकर कुछ सोचने लगे।

अमीलिया ने थोड़ी देर बाद कहा—"आपने क्यों तकलीफ़ की?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"मैंने भी अपना कर्तव्य पालन किया है। मेरी नियुक्ति केवल इसलिये हुई है कि मैं इस मरीज़ को आराम करूँ। उसकी देख-रेख करना मेरा फ़र्ज़ है, इसलिये मुझे आना पड़ा। इसके अतिरिक्त······"

कहते-कहते वह रुक गए।

अमीलिया ने उत्सुकता से पूछा—"कहिए, इसके अतिरिक्त क्या?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने धीरे-धीरे कहा—"इसके अतिरिक्त यह कि जब मैंने आपसे आराम करने के लिये अनुरोध किया था, तब कहा था कि मैं रात्रि में एक बार आकर मरीज़ को देख जाऊँगा। मुझे विश्वास था कि आप मेरी बात मानकर तकलीफ़ नहीं उठाएँगी, इसलिये यहाँ आकर मरीज़ को देखना अनिवार्य था। परंतु आप जब यहाँ हैं, तब अवश्य ही मेरा आना व्यर्थ हुआ, और आपको विरक्त किया।"

अमीलिया ने विस्मित स्वर में पूछा—"मैं नहीं जानती, आपने कैसे मुझे असंतुष्ट किया। जहाँ तक मुझे ख़याल है, मैंने ऐसी कोई

बात नहीं कही। यदि किसी प्रकार आपको यह भाव मालूम हुआ हो, तो मैं इसके लिये क्षमा माँगती हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने लज्जित होकर कहा—"यह आप क्या कहती हैं? मैंने तो यों ही कह दिया था, क्योंकि आप पुरुष-जाति के प्रति इतनी असंतुष्ट मालूम होती थीं। मैं भी उसी पुरुष-जाति का एक व्यक्ति हूँ।"

यह कहकर वह हँसने लगे। अमीलिया भी हँसने लगी।

# १२

पंडित मनमोहननाथ ने आदर के साथ राधा को बैठने का आदेश दिया। उसके बैठ जाने पर पूछा—"देवी, मैं तुम्हारी कहानी सुनने के लिये तैयार हूँ। विस्तार-पूर्वक कहो। मुझसे कोई भेद छिपाने की ज़रूरत नहीं। मुझसे तुम्हारे कल्याण के अतिरिक्त कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।"

राधा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी ओर करुणा-दृष्टि से देखा, और फिर कहा—"न-जाने क्यों आपको देखकर एक प्रकार की भक्ति हृदय में जाग उठी है। मैं आपसे कुछ नहीं छिपाऊँगी, जो कुछ मुझे मालूम है, वह कहती हूँ।"

राधा कहने लगी—"मैं जन्म से हिंदू हूँ। पवित्र वैवाहिक बंधन में बँधे हुए हिंदू-माता-पिता की संतान हूँ। मेरे माता-पिता भारत के रहनेवाले थे, और काशी के पास किसी गाँव में रहते थे। मेरे पिता ने मेरी माता को त्याग दिया था, किस कारण, मालूम नहीं, तब वह अपने दूर के भाई के यहाँ रहने के लिये गईं। परंतु उन्हें वहाँ भी स्थान न मिला। उनके भाई ने एक दिन घर के बाहर निकाल दिया। उसी रात्रि को डीपोवालों के फेर में पड़ गईं, और पहले तो फुसलाकर, पीछे ज़बरदस्ती फ़िज़ी भेज दी गईं। जिस वक़्त वह फ़िज़ी में आईं, मैं गर्भ में थी, और थोड़े दिन बाद ही मेरा जन्म हुआ। उस वक़्त मेरी मा उस अँगरेज़ व्यापारी के यहाँ थीं, जिसने उन्हें दस वर्ष के लिये ख़रीद लिया था।

"उस अँगरेज़ व्यापारी का नाम था जॉर्ज टॉमस। वह सहृदय और दयालु-प्रकृति का मनुष्य था। उसके परिवार के लोग भी

कुछ ज़्यादा ख़राब न थे। दस वर्ष की लिखा-पढ़ी ख़त्म होने के बाद भी हम लोग उसके यहाँ रहते रहे, और उसके खेतों पर काम करते रहे। जॉर्ज टॉमस ने मेरे पढ़ने-लिखने की सुविधा कर दी थी। जब मैं पंद्रह वर्ष की थी, तब टॉमस साहब काल-कवलित हो गए, और उनके लड़के जायदाद बेचकर दक्षिणी आस्ट्रेलिया में जाकर आबाद हो गए। मेरी मा का सहारा टूट गया, और साथ ही हमारी मुसीबतों के दिन शुरू हो गए।

"मेरी मा इस वक़्त निहायत कमज़ोर हो गई थीं, और मेहनत-मज़दूरी के लायक़ न रह गई थीं। उनकी ज़िंदगी की कोई उम्मेद न रह गई थी। इधर मेरी भी फ़िक्र उन्हें थी। हम लोग बड़ी मुसीबतों से दिन काट रहे थे। हमारे देश-भाई हमारा साथ देने या मदद करने के लिये तैयार न थे। मुझे 'रखेल' रखने के लिये तो लोग तैयार थे, मगर विवाह करने के लिये कोई तैयार न होते थे। आख़िर मुसीबतों के आगे हमें झुकना पड़ा, और इज़्ज़त-आबरू इस पेट के लिये बेचनी पड़ी। मै एक चीन-प्रवासी के यहाँ नौकर रख ली गई, और किसी तरह, लसटम-पसटम मेरे दिन व्यतीत होने लगे। मेरी मा भी मेरे साथ रहती थीं।

"थोड़े दिनों में उस चीन-प्रवासी का मन मुझसे ऊब गया, और हम लोग भी उससे कुछ परेशान हो गए थे, क्योंकि वह ख़र्च में हाथ सिकोड़ने लगा था, यहाँ तक कि हमें खाने-पीने की तकलीफ़ होती थी। कपड़ों वग़ैरा के संबंध में कुछ कहना फ़िज़ूल है। नतीज़ा यह हुआ कि एक दिन मेरी मा और उससे कहा-सुनी हो गई। दूसरे दिन से मैं एक जापानी के पास रहने लगी, जिसकी शत्रुता उस चीनी के साथ थी। इसी जापानी को लेकर हमारा वाद-विवाद प्रारंभ हुआ था। क्योंकि उस चीनी को यह शक था कि उसके साथ मेरा गुप्त संबंध है। किसी हद तक यह बात ठीक थी, क्योंकि वह

अक्सर हमें भर पेट खाने को भेज दिया करता, और मेरी मा के पास यह कहलाता रहता था कि हम लोग उसका आश्रय ले लें। चीनी को यह बात मालूम हो गई थी, और वह अपने दुश्मन को अपने घर में प्रवेश कराने के लिये तैयार न था, हमें भी बड़ी मजबूरी से ऐसा घृणित काम करना पड़ता था।

"जापानी भी चीनी से किसी तरह अच्छा न था। वह भी ऊधो का भाई माधो निकला। जब तक हम लोग चीनी के आश्रय में रहती थीं, तभी तक उसे हमारी परवा थी, क्योंकि वह अपने शत्रु का अपमान करता था। जब हम लोग उसके पास चली गईं, तो उसकी पूरी विजय हो गई, और विजय होने से हमारी आवश्यकता कम हो गई। बहुत जल्दी हमारे साथ उसका व्यवहार घृणित हो गया। मेरी मा दूसरे आश्रय के अनुसंधान में लग गईं। इस बार हमारी इच्छा थी कि उस नगर को छोड़कर दूसरी जगह चली जायँ, वहाँ किसी एक के साथ रहकर जीवन व्यतीत करें। चीनी और जापानी के झगड़े से हमारी बदनामी बहुत हो गई थी, और वहाँ रहना प्रथम तो आपत्ति से ख़ाली न था, दूसरे कोई आश्रय देनेवाला भी न मिलता था, क्योंकि जो कोई हमें आश्रय देता, वही उन दोनों का विराग-भाजन होता। हम लोग वह गाँव छोड़कर शहर में रहने के लिये चले आए। अब हमारे पास कुछ पूँजी थी, जिससे कई महीने सुख से कट सकते थे।

"सूना-नगर में आकर हम एक हिंदुस्थानी मुहल्ले में रहने लगे। मेरी मा मेरे विवाह की बातचीत करने लगीं। एक जगह पक्की भी हो गई, लेकिन उनके यहाँ उसी गाँव का कोई आदमी आया था, जिसने मुझे पहचान लिया। शादी का सुख-स्वप्न उसी दिन भंग हो गया। वहाँ रहना भी मुश्किल हो गया। हम लोगों ने वह शहर उसी रात को छोड़ दिया।

"इसके बाद हम लोग दूसरे शहर में चले गए। यह जगह बड़ी थी, और सूबा से बहुत दूर थी, जहाँ किसी जान-पहचान के मिलने की बहुत कम संभावना थी। यहाँ हमारा परिचय एक हिंदुस्थानी से हुआ, जो मुझे अपनी संरक्षता में रखने के लिये तैयार था। हम लोग विवाह की आशा छोड़ चुकी थीं, इससे उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वह देखने-सुनने में अच्छा था, और उसके पास काफ़ी धन भी था। वह इसी कंपनी में नौकर था, जो हिंदुस्थान से स्त्रियों और पुरुषों को लाकर फ़िज़ी में बेचती थी। अब हमारे दिन बड़े सुख से व्यतीत होने लगे। मेरी मा उसके घर की मालकिन होकर रहती थीं, और सारा रुपया-पैसा हमारे हाथ में रहता। वह हमारा पूर्ण विश्वास करता था, और मैं भी उसके साथ सच्ची मुहब्बत करने लगी थी।

"हमारे भाग्य में वह सुख-भोग नहीं लिखा था। एक दिन अकस्मात् वह बीमार पड़ा। प्लेग का प्रकोप शहर में था। चारो ओर लोग मर रहे थे। शहर में त्राहि-त्राहि मची थी। हम लोग कोई दवा वग़ैरा भी ठीक से नहीं कर पाए थे कि वह मर गया, और अपनी संपत्ति का मालिक हमें बना गया। थोड़े दिनों में हम लोग उसे भूल गईं, और मेरी मा मेरे लिये कोई दूसरा व्यक्ति ढूँढ़ने लगीं।

"किंतु मेरा जीवन मेरे लिये भार हो गया था। मैं इस घृणित जीवन से ऊब उठी थी, और अब स्वतंत्रता-पूर्वक अपनी मज़दूरी के सहारे दिन व्यतीत करना चाहती थी। अब हमारे पास काफ़ी धन था, जिससे किसी का आश्रय लेने की आवश्यकता न थी। इसके अतिरिक्त मेरा प्रवेश उसी कंपनी में हो गया। मैं अपने आश्रय-दाता की जगह नौकर रख ली गई। इस काम के लिये मुझे शिक्षा दी जाने लगी। यह मेरे लिये एक नया मार्ग था, इससे दत्तचित्त होकर सीखने लगी।

"इस स्त्री बेचनेवाली कंपनी का संचालक एक अधगोरा ईसाई था, जिसका नाम एडमंड हिक्स था। इसके पास उसका निजी जहाज़ था, और वह उसका कप्तान था। इसका बड़ा दफ़्तर फ़िज़ी में था, लेकिन इसकी शाखाएँ भारत के प्रसिद्ध नगर और दूसरे देशों में थीं। एडमंड हिक्स चतुर व्यक्ति था, जिसने अपना व्यापारिक संबंध अन्य-अन्य कंपनियों से स्थापित कर रक्खा था। अक्सर ऐसा होता कि ये कंपनियाँ एक देश के ख़रीदे हुए ग़ुलाम आपस में बदल लेतीं। इस तरह पुलिस के आदमी धोखे में डाल दिए जाते, और हम लोग उनके क़ानून पर हँसा करते।

"मुझे भी कई बार एक जहाज़ से सदल-बल दूसरे जहाज़ में जाना पड़ा है। तरह-तरह के कौशल से पुलिस के शिकंजों से निकलना पड़ा है। पहले तो मैं बहुत घबराती थी, मगर बाद में हर तरह से होशियार हो गई। पुलिस की आँखों के नीचे से औरतों को उड़ा लाना मैं ख़ूब जान गई थी। भले घरों की विधवा बहू-बेटियों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर, ऐश और विषय-वासना का मनोरम चित्र खींचकर भगा लाती, और फिर फ़िज़ी या आस-पास के देशों में ले जाकर बेच देती थी। मुझे इस काम में विशेष आनंद मिलता था। हिंदू-जाति के प्रति मेरे मन में विद्वेष की आग जल रही थी। मुझे अपनी मा के अपमान की बात हमेशा याद रहती। उनके ऊपर किए गए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने में मैं ज़रा भी संकोच न करती थी। मैंने अब तक एक हज़ार से भी ज़्यादा हिंदू-स्त्रियों को भगाकर, उनका जीवन अपना-जैसा घृणित और नारकीय बना दिया।

"आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हिंदू-समाज की विधवाओं को वश करने में मुझे कभी मुश्किलात से सामना नहीं करना पड़ा। दो-एक बार के प्रयत्न से ही मुझे सफलता हो जाती। जहाँ

किसी मंदिर अथवा गंगा-स्नान के बहाने से उन्हें घर से निकाल पाती कि वे डीपोवालों के हाथ में आ जातीं, और उनका हमारे व्यूह से निकलना बहुत मुश्किल था—नहीं, असंभव था। मेरी सफलता से उस कंपनी पर मेरी धाक जम गई थी। इसके साथ ही मुझे धन की भी काफ़ी प्राप्ति हुई थी। ज्यों-ज्यों मैं सफल होती, त्यों-त्यों मेरी उमंग बढ़ती और द्विगुणित उत्साह से मैं काम करती।

"हम लोगों का प्रधान केंद्र कानपुर नगर था। कई मुहल्लों में हमारे मकान थे और हम लोग हमेशा एक मकान में नहीं रहतीं। दो-एक दिन एक मकान में रहकर दूसरे मकान में चली जाती थीं। इससे पुलिस को छकाने में बड़ी सहायता मिलती। हम लोग मंदिर वग़ैरा में चक्कर लगाया करतीं, और घरों में भी अपना आना-जाना शुरू कर लेतीं। थोड़े दिनों के आने-जाने से हम अपना विश्वास जमा लेतीं, और उन घरों की बहू-बेटियों से विशेषतया मेल-जोल पैदा कर लेतीं, उन्हें अपने अड्डे में फँसाकर भी उन घरों में आना-जाना बंद नहीं करती थीं, और उनके साथ हम भी रोती थीं। हमेशा हम लोग दूध की तरह पवित्र बनी रहतीं।

"हिंदू-समाज का खोखलापन मैंने अंदर घुसकर देखा है। मैं नहीं जानती, यह समाज अब तक कैसे जीवित है। जितना अंध-कार, जितना अत्याचार, जितना पाप इस समाज ने देखा है, जितनी लांछना, तिरस्कार स्त्री-जाति का मैंने इस हिंदू-समाज में पाया है, उसका शतांश भी अन्यत्र नहीं देखा। हालाँकि फ़िज़ी में हम लोगों की गणना ग़ुलामों में है, मगर वहाँ से तो हमारी जाति की दशा कहीं अच्छी है। वहाँ हमारा मूल्य तो है। यहाँ, भारत में, इनका मूल्य पशुओं से भी कम है। यह सब देखकर मेरा विश्वास इस समाज से दूर हो गया है, और मैं इससे घृणा करती हूँ।

"अभी एक हफ़्ता पहले हम लोगों का दल फ़िज़ी वापस आ

रहा था। भिन्न-भिन्न केंद्रों से काफ़ी तादाद में स्त्रियों के इकट्ठा होने की ख़बर आ गई थी। उसी दिन हमारे दल के एक आदमी के साथ यह माधवी आई थी। यह अकेली कानपुर शहर के पास एक गाँव के स्टेशन पर मिली थी। हमारे दल के आदमी के साथ दो स्त्रियाँ और थीं, जिन्हें वह भगाकर ला रहा था। रास्ते में माधवी को देखकर, उसने उसे भी सब्ज़बाग़ दिखलाकर अपने साथ कर लिया, और कानपुर शहर में हमारे अड्डे में ले आया। मैं पहले कह चुकी हूँ कि एक बार जो हमारे अड्डे में प्रवेश कर गया, वह बग़ैर हमारी आज्ञा के बाहर नहीं निकल सकता था। माधवी उसमें पड़कर छटपटाने लगी। उसकी दशा देखकर मुझे बड़ी दया आई, वैसा करुणा का भाव मेरे मन में कभी नहीं उदय हुआ था। वह प्रथम अवसर था, जब मेरे मन में मनुष्यता का भाव उदय हुआ था। मैंने मन-ही-मन उसकी रक्षा करने का संकल्प कर लिया।

"हमारे दलवालों को अगर मनुष्य कहा जाय, तो अतिशयोक्ति होगी। वे पशु से भी हीन थे। उनका धर्म था, पापाचार, नशेबाज़ी और अविराम व्यभिचार। हमारे अड्डे नारकीय कुंड से कम न थे। यदि व्यभिचार का नग्न रूप देखना हो, तो वह हमारे अड्डों पर ही देखने को मिलेगा। जो स्त्री पहले अड्डे में दाख़िल होती, उसके नारी-धर्म की धज्जी-धज्जी उड़ा दी जाती, और इस पाप के नग्न नृत्य में सब अड्डेवाले शामिल रहते। गाँजा, शराब, अफ़ीम खाकर, बेहोश होकर उन अबलाओं पर अत्याचार करते, इतना कि उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। वे भले घर की बहू-बेटियाँ उस अत्याचार के आगे सिर नत कर देतीं, और बचने का कोई उपाय न रहने पर सब सहन करतीं। उन्हें इतनी यंत्रणा दी जाती कि उससे उद्धार होने के लिये वे जीवित नरककुंड में गिरना कहीं श्रेयस्कर समझतीं। उन्हें वशीभूत करने का हमारे पास यही अमोघ अस्त्र

था। वे हमारी शर्तें सिर झुकाकर बिना किसी आपत्ति के मान लेती थीं, और गौ की तरह सीधी हो जाती थीं। यदि कोई स्त्री सुंदरी हुई, तो उसके सौंदर्य का अभिमान दूने उत्साह से नष्ट किया जाता था। मैं भी वह दृश्य देखकर काँप उठती थी, और इससे अधिक वर्णन नहीं कर सकती।

"माधवी को देखकर उस अड्डे के सभी आदमी उसका सतीत्व नष्ट करने के लिये आमादा हो गए। मैंने उसे बचाने का पूर्ण संकल्प कर लिया था, और उस दल के मुखिया से बातचीत करनेवाली थी। मैंने उसे बुलाया भी, और जब वह हमारे सामने आया, तो आते ही उसने यह समाचार कहा कि कलकत्ते से तार आया है, और फ़ौरन् सबको बुलाया है। यह समाचार माधवी के लिये बड़ा शुभ था। मैंने सोचा, चलो, कोई झगड़ा नहीं करना पड़ा, और यों ही छुटकारा हो गया।

"हमारे दल का यह नियम है कि इसमें कोई भी सदर दफ़्तर के हुक्म की अवहेलना नहीं कर सकता। अवहेलना करने की सज़ा है मृत्यु-दंड। हम बड़ी आसानी से किसी भी मनुष्य को मार सकते हैं। हमारा जाल भी एक प्रकार से संसारव्यापी है, इसलिये कोई धोखा देनेवाला मनुष्य हमसे बचकर भाग नहीं सकता।

"कलकत्ते से हुक्म आने पर उसी दिन हमें वहाँ जाना पड़ा। रास्ते में कोई अत्याचार न हो, इसलिये माधवी की रक्षा का भार मैंने लिया। उस दल के कई लोगों की आँख उस पर थी, मगर मेरे होने से किसी को साहस न पड़ता था कि उसके साथ कोई अप-मान-जनक बर्ताव करे। हम लोग दूसरे दिन कलकत्ते पहुँच गए, और उसी दिन तीसरे पहर फ़िज़ी के लिये रवाना हो गए।

"मेरे आने की कोई आवश्यकता तो न थी, केवल माधवी की रक्षा के लिये आना पड़ा। कप्तान एडमंड हिक्स और संचालक ने

मुझे ले जाने से इनकार किया, क्योंकि मेरे जाने से कंपनी की बहुत क्षति होती थी, परंतु मैंने माधवी का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया। एडमंड हिक्स भी परले सिरे का व्यभिचारी था। माधवी को देखकर वह उस पर मुग्ध हो गया, और उसे राज़ी करने के लिये एक स्त्री को नियुक्त किया, जिसका नाम गुलाब था। मैं कोई विरोध प्रदर्शित नहीं कर सकती थी, किंतु कौशल से उसकी रक्षा करना चाहती थी।

"शाम हो गई थी। जहाज़ धीरे-धीरे बंगाल की खाड़ी में जा रहा था कि एक बड़ा भीषण तूफान आता हुआ मालूम पड़ा। हमारा जहाज़ उसमें पड़कर डगमगाने लगा। मैं कार्य-वश ज़रा नीचे गई कि गुलाब ने मौक़ा पाकर माधवी को कप्तान के कमरे में पहुँचा दिया। जहाँ तक मैं समझती हूँ, माधवी का कुछ अनिष्ट नहीं हुआ। तूफ़ान का वेग बढ़ रहा था, और ऐसा मालूम होता था कि प्रलय-काल आ गया है। उसी तूफ़ान में माधवी गिर पड़ी, या कप्तान से और उससे हाथापाई हुई, जिससे उसके सिर में चोट लगी, और बेहोश हो गई। जहाज़ एक चट्टान से टकरा गया, और दूसरे क्षण डूबने लगा। उसमें क़रीब दो सौ आदमी थे, और सब अपनी जान बचाने के लिये उत्सुक थे। वे सब नावों पर बैठकर भागने लगे। उस जहाज़ पर हम सिर्फ़ पाँच आदमी रह गए। मैं, माधवी, कप्तान एडमंड हिक्स और दो नाविक। एक छोटी-सी नाव पर हम पाँचों व्यक्ति सवार हुए। माधवी उस समय भी बेहोश थी। कप्तान उसे अपने कमरे से बाहर निकालकर लाया था। हम लोग तूफ़ान के थपेड़ों को सहन करते किसी तरह रवाना हुए।

"रास्ते में उन दो मल्लाहों और कप्तान हिक्स में झगड़ा हो गया। वे लोग उससे कहते थे, आज से यह पाप-व्यवसाय त्याग दो, और आइंदा के लिये शपथ लो कि हम ऐसा पाप-कर्म न करेंगे।

एडमंड हिक्स शराब में मस्त था। वह कब उनकी बात सुनता। इसी बात के लिये उनमें झगड़ा हो गया, और उन दोनों ने उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया। मैं उनकी यह लीला देखकर भय से बेहोश हो गई।

"जब होश में आई, तब मैंने देखा, तूफ़ान तो शांत हो गया है, और माधवी मेरे बग़ल में लेटी है, उसे होश नहीं आया था। जहाज़ पर उन दोनो नाविकों का कहीं पता नहीं था, जिन्होंने एडमंड हिक्स की बलि उस तूफ़ान पर चढ़ाई थी। शायद वे भी आपस में लड़कर डूब गए, या और कोई घटना घटी, मैं नहीं कह सकती। मैं सजग होकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगी, और उसी दिन प्रतिज्ञा की कि अब से इस पाप-व्यवसाय को न करूँगी।

"मैंने माधवी को होश में लाने की बहुत कोशिश की, किंतु उसे किसी तरह होश नहीं आया। मैंने बड़ी बेचैनी से वह रात काटी। मैं इतनी भयभीत कभी नहीं हुई थी। सुबह होते ही मुझे बड़े ज़ोर की प्यास लगी। हमारे पास पीने का पानी नहीं था। मैं प्यास से तड़पने लगी। दोपहर तक वही यंत्रणा सहन करती रही। जब ईश्वर की कृपा या माधवी के भाग्य से आपके जहाज़ के दर्शन हुए, तो कुछ आशा बँधी। इसके आगे का हाल तो आपको मालूम ही है।"

राधा ने अपनी कहानी समाप्त कर पंडित मनमोहननाथ की ओर देखा। उनके मुख का भाव देखकर वह सहम गई। घृणा, क्रोध के भाव से उनका मुख विकृत हो रहा था। उनके ओष्ठ फड़क रहे थे, और उनकी आँखों से शोले निकल रहे थे। राधा भयभीत होकर दूसरी ओर देखने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैंने सब सुना। राधा, वास्तव में हिंदू-समाज की जो दुर्दशा न हो, वह थोड़ी है। तुमने भी उसे नष्ट करने में सहायता दी है, इसका मुझे रंज है। परंतु मैं तुमसे

संतुष्ट और प्रसन्न हूँ कि तुमने निष्कपट हृदय से अपना सब हाल कहा है। यही तुम्हारे सुधार का लक्षण है। तुमने इस पाप-व्यवसाय को छोड़ देने की प्रतिज्ञा की है। इससे मुझे हार्दिक संतोष हुआ है। तुम्हारी कहानी सुनकर मेरी आँखें खुल गईं। मैं इस ग़ुलामी-प्रथा को समूल नष्ट करूँगा, और तुम इसमें मेरी सहायता कर सकती हो, क्योंकि तुम इस दल के गुप्त स्थानों से भली भाँति परिचित हो। अब तुम जाओ, मैं इस समस्या पर कुछ सोचना चाहता हूँ। अगर तुम अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहती हो, तो माधवी की सेवा करो। तुमने जिस प्रकार उसकी रक्षा की है, उससे मुझे विश्वास होता है कि तुम्हारे हृदय की मानवोचित सद्भावनाएँ संपूर्णतया नष्ट नहीं हुईं! समय और अवसर मिलने पर वे पुनः प्रस्फुटित होकर तुम्हारा जीवन मंगलमय बना सकती हैं। तुम्हें अपने जीवन से घृणा न करनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। जो कुछ तुम्हारे मन में ग्लानि हो, उसे निकाल दो, और निष्कपट हृदय से उस जाति का भला करो, जिसे तुमने इस प्रकार नष्ट किया है। मुझसे तुम सब प्रकार की सहायता ले सकती हो। मैं तुमसे सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि तुम उस मार्ग में अब भूलकर न जाना, जहाँ से इस समय आ रही हो। बस, जाओ, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।"

वह अधिक न कह सके। आवेग से उनका कंठ रुद्ध हो गया। वह कैबिन में टहलने लगे।

राधा उनकी ओर हैरत से देखती हुई कमरे के बाहर हो गई। कमरे के बाहर निकलते निकलते उसने अपने मन से पूछा—"यह कौन है, देवता या मनुष्य?" मन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी बेवक़ूफ़ी पर वह हँसने लगा।

---

## १२

पंडित मनमोहननाथ को चिंतित देखकर स्वामी गिरिजानंद ने पूछा—"आज आप बहुत उदास हैं, पंडितजी। क्या कारण है?"

उन्होंने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"हिंदू-समाज का भविष्य सोचकर मैं चिंतित हूँ। मैं देख रहा हूँ, हमारा समाज, जिस पर हमें नाज़ है, धीरे-धीरे रसातल की ओर जा रहा है। यदि यह अपना पुरानापन न छोड़ेगा, तो इसका अंत वैसा होगा, जैसे रावण के परिवार का हुआ था।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसकर कहा—"समय मनुष्य का सबसे बड़ा शिक्षक है, वह आप करा लेगा। समय ने हमें और आपको पैदा किया है। उसे जैसी आवश्यकता होती है, वैसा ही मनुष्य वह पैदा कर लेता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह सत्य है कि समय मनुष्य का गुरु है। वही समय हमसे बदलने के लिये तक़ाज़ा कर रहा है। आज मैंने राधा की कहानी सुनी। सुनकर रोष और करुणा दोनो, यद्यपि विरोधी भाव हैं, उत्पन्न हुए हैं। हमारे समाज की बहू-बेटियाँ किस प्रकार ग़ुलामों के बाज़ार में बेची जा रही हैं, सुनकर कलेजा मुँह को आता है। उन पर कैसे-कैसे भीषण अत्याचार हो रहे हैं, यह सुनकर आँख खुलती है। यह सृष्टि ईश्वर की रचना का मनोरम रूप है, जिसमें सबके अधिकार बराबर हैं, किंतु हम आपस में एक दूसरे पर कितना अत्याचार करते हैं, इसकी गणना कौन करे। मनुष्य मनुष्य को खाए जा रहा है। सबल निर्बल को दबा लेता है, उसे मसलकर फेक देता है, एक घर को उजाड़कर उस पर अपना

घर बनाता है। स्त्री और पुरुष, दोनो ईश्वर के दो रूप हैं—किंतु देखिए, एक, जो सबल है, दूसरे पर, जो निर्बल है, कैसे रोमांचकारी अत्याचार करता है। हम साम्यवाद की ओर दौड़ते हैं, किंतु सबसे पहले हमें अपने घर में साम्यभाव व्यवहृत करना होगा। जब घर में साम्यवाद सफल होगा, तब बाहर का विराट् साम्यवाद सफल हो सकता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने गंभीरता से कहा—"यह सत्य है। पहले सामाजिक और घरेलू साम्यवाद की समस्या हल हो जाय, तो सामूहिक या पूँजी के साम्यवाद के सफल होने में कुछ देर न लगेगी। आपने राधा की कहानी सुनते समय मुझे क्यों नहीं याद किया?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप उस समय आराम कर रहे थे, इसलिये तकलीफ़ नहीं दी। उसकी जीवन-कहानी एक परिस्थितियों से लाचार स्त्री का हृदय-विदारक वृत्तांत है।"

स्वामी गिरिजानंद ने दुख के साथ कहा—"मैं भी सुनने के लिये उत्कंठित था। ख़ैर, आप ही उसे संक्षेप में कह दीजिए।"

पंडित मनमोहननाथ ने संक्षेप में राधा का हाल कहकर कहा—"सुन लिया आपने अपने समाज की स्त्रियों का पतन, पुरुषों का पतन और समाज के आचार्यों का आँखें बंद किए पीनक में मस्त अपने पुराने गौरव का विक्षिप्त-प्रलाप?"

स्वामी गिरिजानंद ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन होकर सोचने लगे।

पंडित मनमोहननाथ ने कटुता से तीव्र स्वर में कहा—"कहिए स्वामीजी, क्या आप मेरी बात पर विश्वास नहीं करते?"

स्वामीजी ने लज्जित स्वर में कहा—"विश्वास करता हूँ, मैं स्वयं जानता हूँ कि ऐसे अत्याचार पुरुष-जाति किया करती है।

पंडितजी, मैं आपके सामने भगवा वस्त्र पहने स्वामी बना बैठा हूँ, लेकिन मैं भी वास्तव में बड़ा पापी हूँ। विदेश में जाकर मैंने आर्य-संस्कृति और आर्य-सिद्धांतों की विजय-पताका फहराई है, किंतु स्वयं नारकीय कीट से भी घृण्य हूँ। स्त्री-जाति पर मैंने भी अत्याचार किया है, उसी के प्रतिफल से मैं आज तक सुखी नहीं हो सका—एक दिन भी शांति-लाभ नहीं कर सका। आपके कथन पर विश्वास करता हूँ, और स्वीकार करता हूँ कि पवित्रता के नाम पर हिंदू-समाज ने स्त्रियों पर बर्बरता-पूर्ण, अमानुषिक अत्याचार किए हैं, और इन देवियों ने सबको मौन होकर सहा है, एक आह तक नहीं निकाली है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"गुज़श्त, गुज़श्त। किंतु अब हमें सचेत होना चाहिए। मनुष्य जब अपने कर्म पर पश्चात्ताप करता है, तब सुधार के प्रति उसका प्रथम प्रयास शुरू होता है। अपनी कमज़ोरी को महसूस करना मनुष्यत्व है। आपने जो कुछ अपने पूर्व-जीवन में अत्याचार किया है, उसे आप तभी मिटा सकते हैं, जब हिंदू-जाति के प्रत्येक घर में इस ईश्वरीय साम्य का प्रचार करें, और समाज से उनका अधिकार उन्हें दिला दें।"

स्वामी गिरिजानंद ने दृढ़ता से कहा—"अब मेरा यही उद्देश होगा। धार्मिक संकीर्णता छोड़कर ईश्वरीय साम्य का प्रचार करूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने संतुष्ट होते हुए कहा—"स्वामीजी, आप प्रचार करें, और मैं उसका क्रियात्मक उदाहरण संसार के सामने रक्खूँ। मैंने अपनी सारी संपत्ति का लेखा कर लिया है। जितनी संपत्ति मेरे पास है, उससे मैं एक छोटा-सा साम्यवाद का आदर्श संसार के सामने रख सकता हूँ। मैं भिन्न-भिन्न जाति, देश के मनुष्यों की एक ऐसी संस्था निर्माण करना चाहता हूँ, जिसमें सबके

अधिकार बराबर हों, उनमें कोई द्वेष न हो, वे सब व्यक्तित्व से विलग होते हुए भी सामूहिक रूप में एक हों।"

स्वामी गिरिजानंद ने प्रशंसा-पूर्ण स्वर में कहा—"मैं उससे पूर्ण सहयोग करूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"यह संस्था मैं अपनी खानों के समीप ही स्थापित करना चाहता हूँ। ज़्यादा खानें दक्षिण अमेरिका में चाइल और आरजेंटाइना में हैं, उन्हीं के समीप कहीं स्थान निर्दिष्ट होगा। वहाँ समुद्र के निकट कई मील जगह मेरी है, जिसका वहाँ के क़ानून-अनुसार मैं पूर्ण स्वत्वाधिकारी हूँ। वह स्थान पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता की पहुँच से बहुत दूर है, जहाँ जल-वायु प्रचुरता से प्राप्य है। इसकी कार्य-प्रणाली तो मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूँ, परंतु अभी तक ठीक से बनी नहीं। आप भी उसे सुनकर अपना मंतव्य प्रकट कीजिएगा।"

इसी समय राधा ने सवेग प्रवेश कर कहा—"माधवी होश में आ गई!"

स्वामी गिरिजानंद ने राधा की ओर करुण दृष्टि से देखा। उसे देखकर उनके हृदय में एक कसक होने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने सवेग कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—"आइए, स्वामीजी, अत्याचारों से पीड़ित एक स्त्री का पुनर्जीवन देखिए।" यह कहकर वह बाहर चले गए, और कुछ सोचते हुए स्वामी गिरिजानंद भी चले गए।

केवल राधा क्षण-भर तक उनकी ओर देखती रही, और वह भी उनके पीछे-पीछे चली गई।

---

# तृतीय खंड

## १

डॉक्टर नीलकंठ ने सहज स्नेह-स्वर में पूछा—"आभा, आज कई दिनों से मैं भारतेंदु को नहीं देखता। उसकी कहीं तबियत तो नहीं ख़राब हो गई?"

आभा टाइपराइटर पर बैठी हुई एक पुस्तक की पांडुलिपि छाप रही थी। प्रश्न सुनकर उसके कपोल रक्ताभ हो गए। एक प्रकार का छिपा हुआ संकोच उसे पराजित करने का प्रयत्न करने लगा। आभा कोई उत्तर न दे सकी। डॉक्टर नीलकंठ उसके मौन रहने से प्रसन्न हुए।

उन्होंने पुनः प्रश्न किया—"इधर क्या तुम भी उससे नहीं मिलीं?"

आभा ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

उसका उत्तर सुनकर वह सोच में पड़ गए।

उन्होंने मोटर लाने के लिये आदेश दिया, और कपड़े पहनने लगे।

आभा ने टाइपराइटर से उठते हुए कहा—"आप कहीं जाने का कष्ट न करें।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"क्यों, क्या बात है? भारतेंदु सकुशल हैं?"

आभा ने नत-सिर होकर उत्तर दिया—"जी हाँ, शरीर से तो सकुशल है। कल मोटर पर जाते देखा था।"

डॉक्टर नीलकंठ की चिंता दूर हुई। उन्होंने कोट उतार दिया। आभा धीरे-धीरे कमरे के बाहर चली गई।

डॉक्टर नीलकंठ सोचने लगे—"अब जब मैं आभा को देखता हूँ, तो मुझे उसकी मा की याद अपने आप हो जाती है। न-मालूम उसकी आत्मा कहाँ भ्रमण कर रही होगी। क्या उसको याद होगा कि कोई उसके लिये संतप्त होकर अभी तक आँसू बहाया करता है। क्या उसको अपनी नन्ही-सी 'रानी' की याद है। नहीं। आज उसको हम लोगों से बिछुड़े हुए सोलह वर्ष से भी अधिक हो गए। अगर उसने कहीं जन्म लिया होगा, तो उसका एक नया ही संसार होगा, एक नया जीवन-स्रोत होगा, प्रेम-बंधनों की नई ज़ंजीरें होंगी, कल्पनाओं की नई उड़ान होगी, सोहाग, उत्साह, हर्ष, शृंगार की नूतन पुनरावृत्ति होगी; जहाँ अतीत की स्मृतियाँ न होंगी, अतीत के संबंध का ज्ञान न होगा। उसे क्या ख़बर होगी कि कोई उसको देखने, मिलने के लिये उतना ही लालायित है, जितना वह पहले—जीवन के प्रथम परिच्छेद में—रहता था। उसे क्या मालूम है कि अभी तक कोई उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। क्या उसको अपने मरण-काल की प्रतिज्ञा स्मरण होगी?

"पुनर्जन्म पूर्वजन्म का विस्तार और उसका परिशिष्ट है। जन्म और मरण एक विस्तृत जीवन के भिन्न-भिन्न रूप के विस्तार हैं, तब उनमें यह पार्थक्य क्यों है? एक-एक कड़ी जब तक अलग रहती है, तब तक हम उसे ज़ंजीर नहीं कहते। उन कड़ियों के जुड़ जाने से ज़ंजीर अपना असली रूप धारण करती है। इसी प्रकार जब जीवन के भिन्न-भिन्न रूप कड़ियों की तरह जोड़ दिए जाते हैं, तो वे एक ज़ंजीर में बँधकर अपना विस्तृत रूप धारण करते हैं। इस ज़ंजीर का ज्ञान उस समय तक नहीं होता, जब तक गत जीवनों की स्मृति नहीं हो जाती। परंतु मनुष्य को अपने पूर्व-जीवन की याद तो नहीं रहती।

"पूर्वजन्म की स्मृति अगर रहती, तो संसार एक अविराम कलह

और अशांति का घर हो जाता। किसी तरह के झगड़ों का अंत कहीं न होता। माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-पुत्र के संबंध के तार बने रहते, जो कभी छिन्न-भिन्न न होते, तब संसार में एक उथल-पुथल और अशांति के अतिरिक्त कुछ न दिखाई देता। परिवर्तन के आनंद का मज़ा और नवीनता की इतिश्री हो जाती। या यों कहो कि जीवन के असली तत्त्वों का नाश हो जाता। तभी भगवान् ने विस्मृति की सृष्टि की है। इस जीवन के संस्मरण इस कलेवर के साथ भस्म हो जाते हैं, और आत्मा को नवीन उत्साह से इस अनंत, लीलामय संसार में प्रवेश करने का अधिकार मिलता है।

"तब उसको इस जीवन का कुछ भी स्मरण न होगा। न होने में ही उसका कल्याण है। विस्मृति आनंद है, और स्मृति घोर उत्पीडन। मुझे अभी तक अपने इसी जीवन के अतीत काल की स्मृति है, तो क्या मैं सुखी हूँ। मेरा जीवन मेरे लिये स्वयं अभिशाप है। मैं इहलीला संवरण करने के लिये लालायित हूँ, इसी को मैं दूसरे शब्दों में कहता हूँ कि मैं विस्मृति-सागर में निमज्जित होने के लिये आकुल हूँ। इस जीवन के अंतिम अध्याय को हमेशा के लिये उलट देना चाहता हूँ, और नया अध्याय, जिसमें नवीन आकर्षण हो, खोलना चाहता हूँ। यह मेरी आकांक्षा का असली रूप है।

"कौन जानता है, मैं इसी जीवन में उससे नित्य ही मिलता होऊँ, उसे देखता होऊँ, और उसे जानता होऊँ। किंतु उसे मैं पहचान नहीं सकता—उसे आभा की मा कहकर पुकार नहीं सकता। काश मैं उसे पहचान भी जाऊँ, तो वह कब स्वीकार करेगी कि मैं वही हूँ। मान लो, अगर वह भी पहचान जाय, मैं भी पहचान जाऊँ, तो दुनिया प्रमाण माँगेगी। मैं कौन-सा प्रमाण पेश कर सकता

हूँ। मान लो, यदि प्रमाण भी मिल जाय, और यह सिद्ध हो जाय, तो सामाजिक बंधन और आयु का भेद कब एक दूसरे को मिलने देंगे। इसी हेतु विस्मृति की सृष्टि भगवान् ने की है, और संसार किसी-न-किसी रूप में विस्मृति पाने के लिये लालायित रहता है। मनोवेदना का अंत विस्मृति में निहित है।

"मैं विस्मृति-विस्मृति करता हूँ, किंतु क्या अभी तक एक क्षण के लिये उसे भूल सका हूँ। कहते हैं, समय विस्मृति का पिता है; समय के साथ-साथ घाव अपने आप भर जाता है, किंतु मैं तो अपने संबंध में प्रतिकूल पाता हूँ। अभी तक पीड़ा की वही कसक है, वेदना की वही टीस है, और संताप की वही ज्वाला है, जो आज के सोलह वर्ष पूर्व आरंभ हुई थी। आशा की मा यद्यपि नहीं है, लेकिन उसके संस्मरण अब भी उसे मेरी आँखों के सामने जीवित कर देते हैं।

"ठीक दस बजे मुझे कॉलेज जाना पड़ता था। मैं न जाने के कितने उपाय सोचा करता था, और वह मुझसे जाने के लिये बार बार आग्रह करती। उसे भय रहता कि कहीं देर न हो जाय, तो मुझे लांछित होना पड़े, या सिर नत करना पड़े। वह मुझे भोजन कराकर भेज देती, किंतु मेरे जाते ही वह शोक-ग्रस्त हो जाती। स्नान, भोजन भूलकर घंटों पड़ी न-मालूम क्या सोचा करती। अकस्मात् कॉलेज बंद हो जाने पर जब मैं आनंद में मग्न घर आता, तो देखता कि वह बिलकुल निश्चेष्ट बैठी है। मुझे देखते ही उसका मुरझाया हुआ चेहरा प्रफुल्लित हो जाता, और फिरकी की तरह नाचने लगती। वह मेरे क्रोध करने पर हँसकर उत्तर देती—'तुम नाराज़ क्यों होते हो, मैं अभी-अभी दस मिनट में सब कामों से फ़ारिग़ हुई जाती हूँ।' सत्य ही वह अदम्य उत्साह से काम में लग जाती। मैं उसे देखता रह जाता। उस समय

यह नहीं मालूम था कि यह आनंद तो कुछ ही दिनों का है। किसी ने भी चेतावनी नहीं दी। मैं तो उसे अनंत ही समझता रहा। यही तो मेरे जीवन की भूल थी, जिसने मेरा पराभव किया है।

"कितना गंभीर, कितना शांत, कितना अद्भुत, कितना अगाध, कितना निश्चल, कितना पवित्र और कितना जीवित उसका प्रेम था। उसके लिये संसार में मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं था। इतनी तन्मयता का रहस्य अन्यत्र देखने को न मिलता था। हम दोनो एक दूसरे में इतने संलिप्त थे कि हमारे पृथकत्व का विचार-मात्र हमें दुःख देता था। मेरे लिये संसार में जो कुछ थी, वह थी, और वैसे ही उसके ज्ञान की परिधि मैं था, ध्यान का केंद्र मैं था, भक्ति का देवता मैं था। हमारा वह जीवन दो आत्माओं के परस्पर परिचय, आलाप, अनुराग, प्रेम और भक्ति की कहानी है—हम दोनो के जीवन के विकास का इतिहास है। हाय! आज अब क्या है, अब केवल उस अतीत जीवन की निष्प्रभ छाया है, जिसमें कंकाल की भयंकरता है, और मृत्यु की विभीषिका।

"अब क्या हो सकता है? धैर्य के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करूँ, जब इस जीवन का ज्ञान विस्मृति के निविड़ कालिमांधकार में लीन हो जायगा—जब इस जीवन के हास-परिहास, आशा-निराशा, सुख-दुख, क्रोध-मत्सर, राग-द्वेष, प्रीति-वैर का अंत होगा—जब मृत्यु की कोमल छाया मेरे इस जीवन का अवसान करने के लिये अग्रसर होगी। उस दिन इस भयानक पीड़ा का, जो रात-दिन मुझे परेशान किए है, अंत होगा। उस दिन ही मैं आभा की मा को भूल सकूँगा—इसके पहले नहीं।

"मैं इतना व्याकुल क्यों होता हूँ, यह मुझे स्वयं नहीं मालूम होता। रह-रहकर मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कहता है, आभा की मा के फिर दर्शन होंगे। कभी-कभी मैं चौंक पड़ता

हूँ, और मुझे ऐसा विदित होता है कि वह मेरे पास खड़ी है—उसकी छाया आजकल प्रतिदिन दिखाई पड़ती है। मैं जानता हूँ, यह मेरा भ्रम है, मेरा विचार है, जो रूप-रेखा में प्रकाशित होता है। यह मेरी व्याकुलता का प्रमाण है, जो सशरीर होकर मुझे छलने का प्रयत्न करता है। यह मेरी उत्कट कल्पना का चमत्कार है, जो मुझे देखने को मिलता है। यह सत्य की छाया है, जिसमें असत्य सन्निहित है। किंतु मैं फिर भी उसे अपने से विलग नहीं कर सकता ; वह मेरी छाया की तरह मुझसे आबद्ध है।

"हम दोनो के प्रेम का फल आभा के रूप में मुझे मिला है। वह तो चली गई है, लेकिन अपने प्रेम की भेंट देकर गई। तभी तो मैंने इसे अपने हृदय के उस गुह्यतम भाग में छिपा रक्खा है, जिसके समीप ही उसका स्थान है। आभा को सुखी करना मेरे जीवन का लक्ष्य है—उसकी मा के प्रति मेरा प्रतिज्ञा-पालन है। अपनी अंतिम घड़ी में उसने आभा को मेरी गोद में देते हुए कहा था—"देखो, अगर तुमने मुझे कभी प्यार किया है, तो इसे कष्ट न होने पावे। यदि इसे कुछ दुख मिलेगा, तो स्वर्ग में मेरी आत्मा कदापि सुखी न हो सकेगी। तुम अपना विवाह भले ही कर लेना, किंतु इसके कष्ट का ध्यान रखना, यह विचारना कि रानी मातृहीना बालिका है, इसका पक्ष लेनेवाला कोई नहीं है।" कहते-कहते उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई थी। आह! वह दिन तो अभी तक मुझे स्पष्ट रूप से याद है—उसका चित्र मेरी आँखों के सामने सदैव रहता है। उसकी वह करुण दृष्टि मेरे हृदय में बिंधी हुई है। उफ़! अब बरदाश्त नहीं होता····· "

कहते-कहते डॉक्टर नीलकंठ सत्य ही रोने लगे। आँखों के परदे के भीतर छिपी हुई वेदना द्रवित होकर बाहर प्रवाहित होने लगी।

वह उठकर कमरे में टहलने लगे, और उस शोक-प्रवाह को रोकने की चेष्टा करने लगे।

आभा पुनः टाइप करने के लिये उनके कमरे में आई। डॉक्टर नीलकंठ ने उसे देखकर अपने आँसू पोंछ डाले, और आवेग को दमन करने लगे। आभा उनकी दशा देखकर, स्तंभित होकर उनकी ओर व्याकुल दृष्टि से देखने लगी।

डॉक्टर नीलकंठ ने मलिन हास्य-रेखा के साथ पूछा—"क्या टाइप करना चाहती हो? नौकर से कहकर टाइपराइटर अपने कमरे में क्यों नहीं मँगा लिया?"

आभा धीरता के साथ उनके पास आई, और उनकी ओर देख-कर पूछा—"पापा, आप दुखी हैं। क्या मेरे किसी अपराध से आपको कुछ कष्ट हुआ है?"

दुखी से उसका दुख पूछने में दमन किया हुआ दुख प्रकट होने के लिये उतावला हो जाता है। वही यहाँ भी हुआ, किंतु डॉक्टर नीलकंठ धीर-प्रकृति के मनुष्य थे। उन्होंने उस प्रवाह को रोककर कहा—"नहीं आभा, मैं दुखी नहीं हूँ। एक तो तुम अपराध करना जानती नहीं, ठीक अपनी मा के अनुरूप हो, और यदि तुमसे कुछ अपराध हो भी जाय, तो यह विश्वास रक्खो कि तुम्हारे पिता के हृदय में इतनी शक्ति नहीं कि उस पर ध्यान दें।

आभा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सिर नत किए कुछ सोचने लगी।

थोड़ी देर सोचने के बाद उसने दृढ स्वर में कहा—"पापा, मैं विवाह नहीं करूँगी।"

डॉक्टर नीलकंठ मानो आकाश से गिर पड़े। उन्होंने विस्मय के साथ पूछा—"क्या बात हुई आभा?"

आभा ने सिर हिलाकर कहा—"कुछ नहीं, केवल मेरी इच्छा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने शंकित स्वर में पूछा—"इस इच्छा का कारण क्या है, बेटी ?"

आभा ने उत्तर दिया—"कारण कुछ नहीं है। क्या संसार में सब कोई विवाह करता है ? विवाह करना किसी क़ानून के अधीन नहीं है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने वात्सल्य-पूर्ण हँसी के साथ कहा—"यह सत्य है, किंतु हमारे हिंदू-समाज के क़ानून से तो आवश्यक है।"

आभा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"हम लोग तो समाज से बहिष्कृत हैं, फिर उसके विधान मानने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

डॉक्टर नीलकंठ के हृदय में कुछ वेदना हुई, यह अनुभव कर कि वह सचमुच ब्राह्मणों के कान्यकुब्ज-समाज से बहिष्कृत हैं। उन्हें वह दृश्य याद आ गया, जब उनके इँगलैंड से वापस लौटने पर ब्राह्मण-समाज ने उन्हें दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया था। उन्होंने शास्त्रोक्त विधान से प्रायश्चित्त करने का वचन दिया। विराट् ब्रह्मभोज देने, हत्याहरण नहाने, एक सौ एक गोदान करने को तैयार हुए, किंतु ब्राह्मण-समाज अचल रहा, और उन्हें अपने मध्य से निकालकर ही शांति ली। ब्राह्मणत्व के तेज में किंचित् बल न पड़ने पाया। वह उस दिन की याद करके कुछ दुखी हो गए।

आभा ने जोश के साथ कहा—"पापा, मै उस समाज के विधानों के सम्मुख अपने को नत नहीं कर सकती, जिसने हमारे निरपराध माता-पिता का बहिष्कार कर दिया था। समाज के रक्षक वे मूर्ख मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने स्नेह के साथ उसकी पीठ पर हाथ फेरकर आश्वासन देते हुए कहा—"इतनी अधीर न हो बेटी। मनुष्य का निर्वाह समाज के बिना नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि हम

अपना दूसरा समाज अपने मनोऽनुकूल बना लें। क्या तुम नहीं देखतीं कि 'विलायती ब्राह्मणों' के समाज का स्वतः आविर्भाव हो रहा है। हमें उसका अंग होकर रहना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कदाचित् हम ब्राह्मणों के समाज से बहिष्कृत हैं, किंतु हिंदू-समाज से बहिष्कृत नहीं—और न उससे कोई हमारा बहिष्कार कर सकता है। हम जन्म के साथ इस हिंदू-समाज से संबद्ध हैं, जिससे छुटकारा धर्म-परिवर्तन के बाद भी होना मुश्किल है। देख लो, कितने ही ईसाई और मुसलमानों के घरों में हिंदू-समाज के रस्म-रिवाज अब तक प्रचलित हैं, हालाँकि उन्हें धर्म-परिवर्तन किए सदियाँ हो गई हैं। आभा, हमारे हिंदू-समाज में स्त्रियों को अविवाहित रहने की प्रथा नहीं, और न इसमें किसी तरह का कल्याण है। पुरुष और स्त्री का जन्म संसार की वृद्धि के लिये हुआ है। इस मूल-तत्त्व को हमारे प्राचीन महर्षियों ने भली-भाँति समझकर अनिवार्य विवाह की योजना की है। हमें भी प्रजापति भगवान् की आज्ञा-पालन करना उचित है।"

आभा ने कुछ शांत होकर कहा—"किंतु अविवाहित रहकर माता-पिता की सेवा करना क्या धर्म नहीं है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"अब मालूम हुआ, तू क्यों विवाह करने से इनकार करती है। माता-पिता की सेवा करने का अधिकार पुत्र को है—पुत्री को नहीं। अथवा दूसरे शब्दों में पुरुष को है—स्त्री को नहीं। स्त्री का अधिकार है अपने पति-पुत्र और सास-ससुर की सेवा करना। हमारे समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग कार्य विभाजित कर निर्दिष्ट कर दिया गया है।"

आभा ने कहा—"अगर किसी के पुत्र न हो, तो उसकी सेवा कौन करे?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"जिसके संतान न हो, वह गोद लेकर उस अभाव की पूर्ति कर सकता है। हमारे धर्म-शास्त्र में बारह प्रकार के पुत्रों का वर्णन है, और वे सब क़ानूनन् जायज़ क़रार दिए गए हैं। यदि इस विषय में विशेष जानना चाहो, तो मनुस्मृति में देख लेना।"

आभा ने पृथ्वी की ओर देखते हुए पूछा—"तब आप दत्तक पुत्र क्यों नहीं लेते?"

डॉक्टर नीलकंठ ने हँसते हुए कहा—"मेरे तो संतान है, मैं क्यों किसी को गोद लूँ। तू मेरे लिये मेरे पुत्र की भाँति है, और तुझे उसी भाँति पाला है।"

आभा ने मुस्किराते हुए कहा—"तब मैं आपको छोड़कर कैसे जा सकती हूँ? पुत्र अपने पिता से दूर नहीं रह सकता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने ज़ोर से हँसते हुए कहा—"अरी पगली, तूने मुझे निरुत्तर कर दिया।"

फिर थोड़ी देर हँस लेने के बाद कहा—"मै तुझे अपने से दूर कब भेजता हूँ?"

आभा ने आरक्त कपोलों के साथ कहा—"विवाह कर देने के पश्चात् पिता का अधिकार नष्ट हो जाता है। दान की हुई वस्तु पर कोई स्वत्व नहीं रहता।"

डॉक्टर नीलकंठ फिर हँसने लगे।

फिर कहा—"अच्छा, मैं एक शर्त के साथ कन्या-दान करूँगा।"

आभा ने तत्क्षण उत्तर दिया—"शर्त के साथ कोई दान जायज़ नहीं हो सकता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"यह मुसलमान-क़ानून की बात है, हिंदू-क़ानून की नहीं। हिंदू-समाज में जायदाद का दान शर्तों के साथ हो सकता है।"

आभा ने उत्तर दिया—"किसी भी धर्म तथा समाज में दान दी हुई वस्तु पर दान देनेवाले का अधिकार नहीं रहता। वह उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त कन्या न तो जायदाद है, और न उसका जायदाद से कुछ संबंध है।"

डॉक्टर नीलकंठ हँसने लगे, और कहा—"अच्छा, मैं हार गया। अपनी संतान से हारने में पिता का गौरव है।"

आभा ने कहा—"तो फिर मैं विवाह न करूँगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"यह नहीं हो सकता, आभा! मैं इतना नीच नहीं कि अपने लिये तुम्हारा सुख नष्ट कर दूँ। मैं तुम्हारी मा से प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ। मेरी प्रतिज्ञा नष्ट करने का प्रयत्न मत करो।"

आभा ने कहा—"आपने विवाह करने की प्रतिज्ञा नहीं की, मुझे सुखी करने की की है। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं इसी में सुखी हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है। मेरा कर्तव्य मुझे यह आदेश देता है कि मैं तुम्हें गृहस्थ-धर्म में प्रवेश कराऊँ। हाँ, यदि तुम भारतेंदु से विवाह नहीं करना चाहतीं, तो मैं कोई दूसरा पात्र ढूँढ़ूँगा।"

आभा ने नत नेत्रों से कहा—"यह बात नहीं। मैं आपको ऐसी अवस्था में देखकर विवाह नहीं कर सकती। मेरे बाद आपकी देख-रेख करनेवाला कोई नहीं है, और.... ......." कहते-कहते वह रुक गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने उसकी कठिनता समझकर कहा—"मेरे लिये तुम चिंतित न हो। अभी तुम्हें नहीं मालूम, कभी समय आने पर यह तुम्हें मालूम होगा कि पिता और माता को आनंद उसी समय प्राप्त होता है, जब वे अपनी संतान को हँसते, फूलते और

फलते देखते हैं। माता-पिता अपने सारे सुखों का बलिदान संतान को सुखी करने के लिये करते हैं। आभा, यह हठ तुम्हारा उचित नहीं, और न तुम्हारे इस आचरण से मैं कभी सुखी हो सकता हूँ। यह ज़रूर है कि मुझे उस वक़्त असह्य दुःख होगा।"

आभा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"पिता के हृदय में केवल एक चिंता व्याप्त रहती है, और वह अपनी संतान को सुखी करने की। इसी इच्छा के वश होकर, वह अपना पेट काटकर धन संचय करता और अपनी आवश्यकताएँ पूरी नहीं करता। पिता संतान के कल्याण की कामना सदैव करता रहता है। मेरी सतत इच्छा है कि मैं तुम्हें पूर्ण रूप से सुखी देखूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ चुप होकर आभा की ओर देखने लगे।

आभा ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह सिर नत किए, चुपचाप कमरे के बाहर चली गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आह, मेरा दुख देखकर अपना जीवन नष्ट करने के लिये तैयार हो गई। कितना त्याग है। ठीक अपनी मा-जैसा हृदय पाया है। वही भाव, वही आत्मत्याग, वही आत्मिक उच्चता और महत्ता है।"

वह चुपचाप फिर अपने विचारों में लीन हो गए।

---

## २

ज़िला रायबरेली में अनूपगढ़-नामक पुरानी जागीर है, जिसे लखनऊ के नवाबों ने इनायत किया था। जिस वक्त इस जागीर का जन्म हुआ था, उस वक्त लखनऊ के नवाबों की गणना दिल्लीश्वर के बाद होती थी, और नाम-मात्र वे उसके अधीन समझे जाते थे। यह लखनऊ के वैभव का मध्याह्न-काल था। नवाब आसफ़ुद्दौला का ज़माना था। उनकी सख़ावत की धूम अवध-प्रांत को उल्लंघन करके समस्त भारत में व्याप्त हो गई थी। दानी होने के साथ-साथ उनके पराक्रम और शौर्य का भी गुण-गान होता था, और शायद लखनऊ के नवाबों में वह सिरमौर थे। उनके समय में लखनऊ की गणना बड़े शहरों में होने लगी थी, और रोज़गार के मुंतज़िर होकर वीर पुरुष बजाय दिल्ली के यहाँ आने लगे थे। ऐसी ही नौकरी के उम्मीदवारों में आनेवाले ठाकुर महीपतिसिंह भी थे। प्रकृति ने उन्हें लंबा, क़द्दावर जवान बनाया था। वह सात फ़ीट लंबे, हट्टे-कट्टे, ताक़तवर थे। उनका रंग गंदुमी था, और उनकी काली दाढ़ी उनके मुख पर बहुत फबती थी। वह जाति के बैस ठाकुर थे। उनका जन्म ज़िला रायबरेली के डलमऊ-क़स्बे में हुआ था। उनके पिता साधारण स्थिति के काश्तकार थे। ठाकुर महीपतिसिंह को खेती का धंधा पसंद न आया, और उसे छोड़कर लखनऊ आ गए, या यों कहा जाय, तो अधिक उपयुक्त होगा कि उनका भाग्य उन्हें लखनऊ घसीट लाया।

लखनऊ आकर वह पलटन में भरती हो गए। वह सुस्ती से दिन

काटनेवाले जवान न थे। चुपचाप, निष्कर्म बैठनेवालों को वह 'मक्खीमार' कहा करते थे, इसीलिये वे लोग व्यंग्य से उन्हें 'सिंहमार' कहते थे। धीरे-धीरे उनका यही नाम मशहूर हो गया। एक दिन भाग्य-वश उन्होंने नवाब साहब को सचमुच शेर के मुँह से निकाल लिया, जब वह शिकार में गए थे। उस दिन नवाब साहब ने उन्हें सेना में एक उच्च पद प्रदान कर 'सिंहमार' की पदवी से विभूषित किया। व्यंग्य का नाम सत्य चरितार्थ हुआ। फिर जब रुहेलों से लोहा लिया, और उन्हें परास्त किया, तो वह प्रधान सेनापति बनाए गए, और इनाम में अनूपगढ़ की जागीर भी मिली। भाग्य-चक्र ने एक भिखारी को सत्य ही महीपति बना दिया।

लखनऊ के प्रधान सेनापति होने से उनका दबदबा और रोब चारो ओर था। वह निःशंक होकर अपने पड़ोसियों की ज़मीन दबाते चले जाते थे, जिसकी फ़रियाद कहीं न सुनी जाती थी। लखनऊ की नवाबी का सितारा जब अस्त हुआ, और अँगरेज़ों ने वहाँ के लाड़ले नवाब वाजिदअलीशाह को मटियाबुर्ज में रहने के लिये भेज दिया, तथा अवध पर क़ब्ज़ा कर लिया, तब भी अनूपगढ़ का बाल बाँका न हुआ, वरन् तत्कालीन जागीरदार भैरवबख़्शसिंह की क़द्र हुई, और उनकी क़ुर्ब व इज़्ज़त में किसी क़दर तरक़्क़ी ही हुई। उनके पुत्र सूरजबख़्शसिंह को राजा का ख़िताब मिला, और दूसरी तरह से भी उनकी इज़्ज़त-आबरू बढ़ी।

राजा सूरजबख़्शसिंह भी लंबे, क़द्दावर और हृष्ट-पुष्ट थे, हालाँकि उनमें उस शौर्य का सर्वथा अभाव था, जो उनके पूर्वजों में था। बहादुरी का ज़माना भी चला गया था। उनकी ताक़त लड़ाई के मैदान में अपना जौहर दिखाना छोड़, ऐयाशी के समुद्र में ग़र्क़ हो रही थी। उनके व्यभिचार की कहानियाँ सब जगह सुनी जाती थीं। उनसे

डरकर अनूपगढ़ की बहू बेटियाँ घर के बाहर न निकलती थीं। सख़्त परदे का रिवाज था, यहाँ तक कि नीच जाति की स्त्रियाँ भी चादर से अपना सारा शरीर छिपाकर बाहर आती-जाती थीं।

इस व्यभिचार में उनकी सहायता करनेवाले, भले घरों की बहू-बेटियों को लोभ, भय और बल से लानेवाले बाबू मातादीनसहाय थे, जो आजकल अनूपगढ के दीवान-पद पर सुशोभित थे। यह बात आम तौर से ज़ाहिर थी कि उन्होंने अपनी एक बहन भी राजा साहब को समर्पण की है। इस समय भी वह राजा साहब के आश्रित थी, और किसी हद तक राज-काज में उसका भी हाथ रहता था। इनकी बहन का नाम था अनूपकुमारी। वास्तव में वह अपने नाम के सदृश थी। वह बाबू मातादीन की सगी बहन न थी, और न किसी ने कभी उसे देखा था। वह अकस्मात् प्रकट हुई थी। उसका आविर्भाव केवल राजा साहब की उपपत्नी होने के समय ही हुआ था।

अनूपकुमारी के अंतःपुर में प्रवेश होने के बाद बाबू मातादीन की पदोन्नति होने लगी। एक मामूली प्यादे से वह दीवान हो गए थे—यही नहीं, वह लाला सूरजबख़्शसिंह की नाक के बाल भी थे। अनूपकुमारी पर राजा साहब इतने आसक्त थे कि राज्य-प्रबंध उन्होंने उसी के हाथ में सौंप दिया था, और वह अपने भाई बाबू मातादीन की सहायता से चलाती थी। यह मशहूर था कि वह लखनऊ में पैदा हुई थी, और विधवा हो जाने पर उनका आश्रय ग्रहण किया था। उसके लिये एक कोठी लखनऊ में बन गई थी, जहाँ उसने बहुत-सा धन भी जमा कर लिया था। जब कभी राजा सूरजबख़्शसिंह लखनऊ जाते, वह भी उनके साथ जाती थी, और वे लोग उसी कोठी में ठहरते थे। अनूपकुमारी राजसी ठाट से रहती थी। भगवान् ने उसे भुवन-मोहन सौंदर्य दिया था, जो

समय के साथ ह्रास होना जानता ही न था। नाना प्रकार के कृत्रिम उपायों से वह अपना लावण्य सुरक्षित किए थी, जो राजा को मुग्ध रखने के लिये पर्याप्त था। उसके पास जाने का अधिकार सिवा बाबू मातादीन के दूसरे पुरुष को न था। उसके रूप की प्रशंसा चतुर्दिक् थी, और सब लोग उसके दर्शनों के लिये लालायित थे।

राजा सूरजबख़्शसिंह अपने शुरू ज़माने में चतुर और होनहार मालूम होते थे, परंतु यौवन के मध्याह्न-काल में वह अपने मार्ग से फिसलकर चरित्रहीनता के गह्वर में प्रविष्ट हो गए। फिर भी वह ज़माने की तबदीली से परिचित थे, और अपने पुत्र कामेश्वर-प्रसादसिंह को नवीन शिक्षा में दीक्षित करना भूले नहीं। कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह लखनऊ के कालविन-स्कूल में पढ़ने के लिये भेज दिए गए। वहाँ से सफल होने पर उच्च शिक्षा के लिये कॉलेज में प्रविष्ट हुए। अनूपकुमारी ने अधिक ख़र्चे की मंज़ूरी नहीं दी, जिससे वह इँगलैंड जाकर नवीन संस्कृति का प्रमाण-पत्र लाने में असमर्थ रहे।

राजा सूरजबख़्शसिंह को इतना समय न मिलता कि वह अपने पुत्र तथा रानी की खोज-ख़बर लेते। अभाग्य से वह इतनी सुंदरी न थी, जितनी अनूपकुमारी। रूपसी न होने से वह अपने अधिकार से वंचित थी। उनके तीन संतानें हुईं—एक पुत्र और दो कन्याएँ, जो सब जीवित रहीं। पुत्र कामेश्वरप्रसादसिंह का विवाह सर रामकृष्ण की लड़की मालती से हुआ, किंतु दोनो कन्याएँ अभी तक अविवाहित थीं। अनूपकुमारी उनके विवाह के ख़र्चे की मंज़ूरी न देती थी। तब विवाह कैसे होता।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह भी अपने पिता से बहुत कम मिल पाते थे। उन्हें इस प्रतिबंध से इतनी घृणा हो गई थी कि वह बहुत कम अपने पिता से मिलते थे, यहाँ तक कि वर्षों एक दूसरे

के देखने की नौबत ही न आती थी। वह अपना ख़र्च भी बहुत मामूली रखते थ। पढने-लिखने में बहुत अच्छे तो न थे, किंतु पास हमेशा हो जाते थे।

अनूपकुमारी को उस दिन विशेष प्रसन्नता हुई, जब यह मालूम हुआ कि वह पुरुषत्व हीन हैं। वह उस दिन का स्वप्न देखने लगी, जब उसका पुत्र अनूपगढ़ की गद्दी का मालिक होगा। राजा सूरज-बख़्शसिंह उस भेद को जानकर बहुत क्षुब्ध हुए, और उनके क्रोध का वार-पार न रहा। उसे अपनी संतान कहने में शरमाने लगे, और उस दिन से वह कामेश्वरप्रसादसिंह का मुँह देखना भी भयानक पातक समझने लगे। बाबू मातादीन के विशेष अनुरोध से उन्होंने उनका इलाज कराना स्वीकार तो किया, लेकिन उस ओर कोई ध्यान न दिया।

बाबू मातादीन दूरदर्शी पुरुष थे। जिस दीवान-पद को उन्होंने इतने कौशल और प्रयत्न से पाया था, उसको सदैव, कम-से-कम अपने जीवन-काल में, सुरक्षित रखना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि वह इस पद पर राजा सूरजबख़्श के जीवन-काल तक रह सकते हैं; इसलिये वह किसी तरह कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह को अपने वश में करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने एक भयानक षड्यंत्र की रचना की, जो उन्हीं के दिमाग़ की उपज थी।

अगर बाबू मातादीन को काम-शास्त्र का आचार्य कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। उन्हें इस विषय के कई आश्चर्य-जनक नुस्ख़े और ओषधियाँ मालूम थीं, जिनसे मनुष्य की काम-वासना इच्छा-नुसार घटाई और बढ़ाई जा सकती थी। एक नुस्ख़ा तो ऐसा था, जिससे पुरुष बिलकुल निष्काम हो सकता था, और दूसरा ऐसा था, जिससे मनुष्य-मात्र कामांध हो जाते थे। इन दोनो प्रकार की दवाओं की शक्ति में विभिन्नता थी। पुरुषत्व-हीन करनेवाली दवा

का असर, एक बार खिलाने से, एक वर्ष रहता था, और कामांध करनेवाली दवा का प्रभाव कुछ घंटों तक। उन्हें उन दोनो दवाओं के प्रतिरोध की ओषधि भी मालूम थी।

बाबू मातादीन ने कामांध करनेवाली ओषधि के बल पर ही दीवान-पद प्राप्त किया था, और अब पुरुषत्व-हीन करनेवाली ओषधि की शक्ति से उस पद को सुरक्षित करने का उपाय कर रहे थे। दीवान-पद के लोभ से ही कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह को बाबू मातादीनसहाय की दुरभिसंधि का शिकार होना पड़ा। उन्होंने भोजन की वस्तुओं में उस दवा को मिलाकर उन्हें खिला दिया। यह घटना उस दिन घटी, जब उनके विवाह का तिलक आनेवाला था। कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह अपने में सहसा यह परिवर्तन देखकर बहुत कुंठित हुए। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह भेद अपने पिता पर उस दिन प्रकट किया, जब उनके विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। उनके स्वाभिमान ने यह भेद छिपा रखने के लिये बाध्य किया था, किंतु उनकी न्यायपरायणता ने एक स्त्री का जीवन नष्ट करने के लिये उन्हें आज्ञा न दी। राजा सूरजबख़्शसिंह के क्रोध का यद्यपि वार-पार न रहा था, फिर भी स्वाभिमान ने मालती की बलि चढ़ने के लिये मजबूर किया। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय न था। संसार के सामने वह कब स्वीकार करनेवाले थे कि उनका पुत्र पुरुष कहलाने योग्य नहीं है।

राजा सूरजबख़्शसिंह प्राण-पण से इस भेद को छिपा रखना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने मालती से वैसी प्रतिज्ञा करवाई थी, और भय-प्रदर्शन भी किया था। 'भय बिनु होहि न प्रीति'-वाली कहावत के उपासक थे, इससे उसे प्राणदंड तक देने का भय बतलाया था। वास्तव में कर्ता-धर्ता बाबू मातादीन ही थे, राजा सूरजबख़्शसिंह ने ग्रामोफ़ोन की भाँति केवल उनकी आज्ञा को दोहराया-भर था।

## ३

संध्याकालीन सूर्य की लालिमा अनूपगढ़ के उस राजप्रासाद को स्वर्णमय बना रही थी, जिसमें अनूपकुमारी का निवास था। उस दिन विजया दशमी थी। क्षत्रियों का जातीय त्योहार था। अनूपगढ़ की रामलीला आस-पास के गाँवों में मशहूर थी, जिसे देखने के लिये बहुत-से देहातों के आदमी आया करते थे। अनूपकुमारी ने ख़र्च के इस मद में काट-छाँट नहीं की थी, ज्यों-का-त्यों क़ायम रक्खा था। इससे इस उत्सव में फीकापन नहीं आने पाया था।

ज्यों ही संध्या की कालिमा निशा रानी को काले वस्त्र पहनाने लगी, त्यों ही चंद्रमा की चंद्रिका अपनी सखी का शृंगार करने के लिये उतर आई, और धवल वस्त्र पहनाकर उसके श्यामल रूप को छिपाने का प्रयत्न करने लगी। चंद्रमा आनंद में विभोर होकर अपना रूप अनूपकुमारी के शराब के प्याले में देखने लगा। लाल अंगूरी मदिरा लहरें ले-लेकर मौन भाषा में अपनी विजय के गीत गाने लगी।

अनूपकुमारी ने उस प्याले को राजा सूरजबख़्शसिंह की ओर बढ़ाते हुए कहा—"प्रियतम, यह देवी का प्रसाद लीजिए।"

यह कहकर वह एक नवीन भाव से कटाक्ष करके मुस्किराई। उसके भुवन-मोहन रूप के समक्ष मदिरा लज्जित होकर स्थिर हो गई।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने एक प्याला भरते हुए कहा—"विजयदेवी का प्रसाद पान करने का अधिकारी केवल मैं ही नहीं हूँ, उसका कुछ भाग तो उस देवी को भी पान करना पड़ता है, जो सबको अपना प्रसाद बाँटती है।" कहते-कहते उन्होंने दूसरा प्याला भर लिया।

दोनों ने एक दूसरे के प्याले को बदल लिया, और पान करने लगे।

अनूपकुमारी ने दूसरा प्याला तुरंत भर दिया।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे पीते हुए कहा—"प्रियतमे, तुम्हारे सौंदर्य का मुझे ओर-छोर नहीं मिलता। तुम आज भी वैसी ही सुंदरी दिखाई पड़ती हो, जैसी सत्रह वर्ष पहले जब तुम आई थीं, और तुम्हें रास्ते में दीवान साहब के घर से निकलते देखा था। वह दिन मुझे भली भाँति याद है, जब तुम अपने को घूँघट से ढाँक, अपनी रूप-राशि बिखेरती पानी भरने जा रही थीं। मैं घूम-कर लौट रहा था। तुम्हारी रूप-राशि देखकर मैं चकित रह गया। हृदय में एक दर्द लेकर लौटा, और फ़ौरन् दीवान साहब को बुलाकर तुम्हारा हाल दरयाफ़्त किया। पहले तो दीवान साहब ने बहुत बहाने बतलाए, लेकिन बाद में तुम्हारे दर्शन कराने के लिये राज़ी हो गए। किंतु दर असल तुम उस घटना के ठीक एक महीने बाद यहाँ आईं। और उस वक़्त से तुमने मेरे और मेरे राज्य पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। जो कुछ मेरे पास था, वह सब अर्पण कर चुका हूँ।"

अनूपकुमारी ने तीसरा प्याला अपने हाथ से पिलाते हुए कहा—"प्रियतम, आपकी कृपा का अंत नहीं है। मैं भी ऐसा प्रेमी पाकर धन्य हो गई हूँ, और सर्वस्व आपके चरणों पर अर्पण कर दिया है। बस, अब मेरी एक हविस बाक़ी है, ईश्वर की इच्छा से वह भी पूर्ण हो जाय, तो ठीक है।"

तेज़ शराब का सुरूर पेट को गरम कर मस्तिष्क को एक लुभा-वनी मादकता से भर रहा था। अनूपकुमारी की सुडौल भुजाएँ उनके गले में प्रेम का फंदा डाले हुए थीं। उसी कुंतल-राशि की एक लट उनके वक्षःस्थल पर गिरकर मौन भाषा में प्रेम का संदेश दे रही थी। उसका सिर धीरे-धीरे सुगंध का भंडार लिए उनके

गले से लग रहा था, जो उनके उत्तप्त मस्तिष्क में बेसुधी का संचार कर रहा था। राजा सूरजबख़्शसिंह के मन में गुदगुदी होने लगी। उन्होंने आवेश के साथ उसे हृदय से लगा लिया, फिर अरुण कपोलों पर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"वह कौन-सी साध है प्रिये!" उनका स्वर प्रेमावेग से काँप रहा था।

अनूपकुमारी ने अपना सिर उनके स्कंध पर रखकर, विशाल नेत्रों से उनकी ओर जादू-भरी चितवन डालते हुए कहा—"वह एक ऐसी ही साध है!"

राजा सूरजबख़्शसिंह की उत्सुकता जाग पड़ी। उन्होंने उसके अधरों को पकड़कर फिर अपने प्रेमावेग की छाप लगाते हुए कहा—"तुम्हें आज वह कहना होगा। यदि मुझे ज़रा भी प्यार करती हो, तो ज़रूर कहो।"

यह कहकर वह उत्सुकता और दीनता से उनकी ओर देखने लगे।

अनूपकुमारी कुछ मुस्किराई, फिर दोनो हाथों से उनके गले में झूलने लगी। उसके आयत लोचनों से आवेश की मदिरा ढुलकने लगी। एक वंकिम कटाक्ष निक्षेप करके कहा—"कह दूँ, बोलो, नाराज़ तो न होगे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह की उत्सुकता अपनी सीमा उल्लंघन करने लगी। उन्होंने अधीरता के साथ कहा—"क्या मैं आज तक कभी तुमसे नाराज़ हुआ हूँ, जो आज होऊँगा? कहो प्रियतमे, कहो। मैं तुम्हारे ऊपर सब निछावर कर सकता हूँ, तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो।"

अनूपकुमारी ने अपनी आँखें नीची कर लीं, और फिर धीरे-धीरे कहा—"यह प्रार्थना हमेशा भगवान् से करती हूँ कि इसी तरह जैसे आज इस वक़्त हूँ, तुम्हारी गोद में मेरे प्राण निकल जायँ...."

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे आगे बोलने नहीं दिया, और प्रेम

के क्रोध से कहा—"यह क्या बक रही हो, सरो ! आज त्योहार के दिन ऐसी अशुभ बात निकालती हो। जानती हो, तुम्हारे बग़ैर मेरा जीवित रहना असंभव है। यदि ऐसी बात फिर कभी कहोगी, तो कहे देता हूँ, अच्छा न होगा।"

अनूपकुमारी ने विजय की हँसी हँसते हुए कहा—"क्यों, क्या करोगे। मार डालोगे ?"

राजा सूरजबख्शसिंह ने खीझकर कहा—"फिर वही बात। अगर तुम्हें फ़िज़ूल की बकवास करनी है, तो मैं जाता हूँ।"

यह कहकर वह उठने लगे।

अनूपकुमारी ने उनका दामन पकड़ते हुए कहा—"अच्छा, अब न कहूँगी। तुम्हें मेरी क़सम, बैठो। कहो, तो आज वह केशरी शराब निकाल लाऊँ, जिसे आपने सरकार से अनुमति लेकर निकलवाया है।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने बैठते हुए कहा—"मैं शराब-वराब कुछ न पीऊँगा। तुम्हें तो ऐसी भद्दी बातें सूझती हैं, जिससे पहले की शराब का नशा तो उतर गया। अब केशरी शराब पीकर क्या करूँगा। उसे ख़राब तो करना नहीं है।"

उनका स्वर प्रेमाभिमान से आवृत था।

अनूपकुमारी ने हृदयोल्लास से हँसते हुए कहा—"अच्छा, अब न कहूँगी। तुम तो इतने ही में नाराज़ हो गए। आख़िर मरना तो एक दिन...."

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उठते हुए कहा—"बस, अब मैं नहीं ठहर सकता। तुम आज सब मज़ा किरकिरा कर दोगी। जो मना करूँगा, वह तुम ज़रूर करोगी। यह तुम्हारी पुरानी आदत है।"

उनके स्वर में दुःख का आभास था, और उपालंभ की करुणा थी।

अनूपकुमारी ने मदिरा का प्याला उनके मुँह से लगाते हुए कहा—"अच्छा, मेरा क़ुसूर माफ़ करो। यह प्याला पी लो। मैं

तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मुझे माफ़ करो। अब अगर कुछ भी कहूँ, तो चले जाना।"

यह कहकर वह आवेग के साथ उनसे लिपट गई।

राजा सूरजबख़्शसिंह न जा सके। वह हाथ में शराब का प्याला लिए हुए बैठ गए। अनूपकुमारी ने दूसरा प्याला भरकर उनके मुँह में लगाते हुए कहा—"अगर मुझे ज़रा भी प्यार करते हो, तो इसे पी जाओ, मेरा क़ुसूर माफ़ करो।"

वह इनकार न कर सके, और प्याले की छलकती हुई मदिरा पी गए। अनूपकुमारी ने तुरंत दूसरा प्याला भर दिया।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"तुम तो पीतीं नहीं, मुझे पिलाती जाती हो। यह न होगा। यह प्याला तो तुम्हें पीना होगा।"

अनूपकुमारी ने बिना किसी उज़्र के उसे ख़ाली कर दिया।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने जेब से एक छोटी शीशी निकालते हुए कहा—"शराब ढालो, आज दीवान साहब ने दूसरी दवा तैयार करके दी है। इसका मज़ा, कहते थे, पहले से कहीं ज़्यादा और अद्भुत है। इसकी एक ख़ूराक तुम्हें भी पीना होगा।"

अनूपकुमारी उठकर अलमारी से एक बोतल मदिरा की निकाल लाई, जिसे राजा सूरजबख़्शसिंह ने तरह-तरह के मसालों से निकलवाया था।

उससे दो प्याले भरते हुए अनूपकुमारी ने एक अंदाज़ के साथ कहा—"मैं नहीं खाऊँगी। दीवान साहब दवा बनाने के लिये पागल हैं, और तुम खाने के लिये। बुढ़ापा आ रहा है, और दवा खाना नहीं छोड़ते। घर में लड़का तो किसी अर्थ का नहीं, बेचारी बहू हविस लेकर चली गई। यह दवा उसे क्यों नहीं खिलाते?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने तड़पकर कहा—"उस कुलांगार का नाम

मेरे सामने मत लो। मैं उसे अपना पुत्र नहीं कह सकता। मेरा पुत्र तो पृथ्वीसिंह है, उसमें कोई दोष निकाल तो दो, देखूँ।"

अनूपकुमारी से जो पुत्र था, उसका नाम पृथ्वीसिंह था।

अनूपकुमारी का मुख प्रसन्नता से दमकने लगा। पुत्र की प्रशंसा सुनकर किस मा का हृदय आनंद से ओत-प्रोत नहीं हो जाता?

अनूपकुमारी ने सिर नीचा करके कहा—"इससे क्या होता है। गद्दी के मालिक तो लाल साहब ही हैं, और एक दिन वही बैठेंगे। इसीलिये तो कहती हूँ कि अगर तुम्हारे सामने मेरी गति हो जाय, तो ठीक है, नहीं तो दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दी जाऊँगी।"

कहते-कहते उसकी विशाल, आम की फाँक-जैसी आँखों से आँसू की एक बूँद गैस के प्रकाश में चमककर राजा सूरजबख़्शसिंह के हृदय में कसक पैदा करने के लिये ढुलक पड़ी। वह तड़प उठे।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह का नाम था लाल साहब।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"उस कपूत के बैठने से गद्दी निहाल हो जायगी न, इसलिये लाल साहब गद्दी पर बैठेंगे। तुम घबराओ नहीं, मैं ऐसा प्रबंध करूँगा, जिसमें गद्दी पृथ्वीसिंह को मिले। मैं इस संबंध में गवर्नर से बातचीत करूँगा। लाल साहब को गद्दी पर बैठाने से तो अच्छा है कि मैं एक औरत को गद्दी दे दूँ। मैं संसार में अपना मुख काला नहीं करना चाहता।"

उनके स्वर में तीव्र व्यंग्य और क्रोध का विकास था।

अनूपकुमारी यही चाहती थी। अपनी सफलता देखकर वह आनंदोत्फुल्ल नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

फिर उसने अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए कहा—"मैं तो हँसी करती थी। मैं किसी का अधिकार नष्ट नहीं करना चाहती। मेरा पृथ्वी

और न मैं गद्दी की भूखी हूँ। हम लोगों को तो सिर्फ़ तुम्हारा प्रेम चाहिए, और कुछ नहीं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने ज़ोर से कहा—"नहीं, गद्दी का मालिक पृथ्वीसिंह होगा।"

अनूपकुमारी ने मलिन हँसी के साथ कहा—"यह असंभव है। असंभव का लोभ दिखाकर मेरे मन में एक नया उपद्रव न खड़ा करो।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"इसमें असंभव की क्या बात है। पहले हिंदू-धर्म-शस्त्र में अपंगु और विकृतांग पुत्र उत्तराधिकार से वंचित किए जा सकते थे, किंतु आजकल सरकारी क़ानून से वह धारा रद्द कर दी गई है। अगर काश, ज़माने-हाल में वह क़ानून रायज होता, तो लाल साहब को मैं ख़ुद उत्तराधिकार से वंचित कर सकता था, किंतु अब उसके रायज न होने से कुछ कोशिश करनी पड़ेगी। अभी तक गवर्नमेंट ने मेरी कोई बात अस्वीकार नहीं की, उम्मीद है, यह बात भी अस्वीकार न करेगी।"

अनूपकुमारी ने व्यंग्य से हँसते हुए कहा—"ऐसा होना सर्वथा असंभव है। आज तक कहीं 'रखैल' का लड़का गद्दी का मालिक हुआ है, जो मेरा होगा?"

उसके स्वर में तीव्र व्यंग्य की कटुता थी।

राजा सूरजबख़्शसिंह उसकी बात सुनकर कुछ स्तंभित हो गए। रखैल का प्रश्न उन्हें चकित करने लगा। उनकी दशा देखकर अनूपकुमारी ज़ोर से हँस पड़ी। व्यंग्य उनका उपहास करने लगा।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—"तुम्हें रखैल कौन कहता है? किसके धड़ पर दो सिर हैं, जो ऐसा कहकर तुम्हारा अपमान करता है?"

अनूपकुमारी ने मुस्किराते हुए कहा—"रखैल मुझे वह व्यक्ति कहता है, जिस पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं चल सकता।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने तीव्रता से कहा—"ख़ैर, मेरा अधिकार उस पर चल सकता है या नहीं, यह मेरे जानने की वस्तु है। मैं सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम पूछता हूँ।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराते हुए कहा—"वह तुम्हारा हिंदू-क़ानून है। भाला, उस पर क्या अधिकार है? क़ानूनन् तो मैं तुम्हारी रखैल ही हूँ—या इससे भी कुछ अधिक!"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने गंभीर कंठ से कहा—"ठीक है, उस पर मेरा कोई वश नहीं।" फिर थोड़ी देर सोचने के बाद कहा—"नहीं, उस पर भी मेरा अधिकार है, उसे मैं अपने अनुकूल बना सकता हूँ, ऐसा कि वह मेरा प्रतिरोध न करे।"

अनूपकुमारी ने हँसकर कहा—"अब यह असंभव है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने तीव्रता से कहा—"असंभव को मैं संभव कर सकता हूँ। मैं तुमसे विवाह करके तुम्हारा कलंक दूर करूँगा। मुझे इस बात का शोक है कि यह विचार अब तक क्यों न मेरे ख़याल में आया, और न तुमने ही इस ओर मेरा ध्यान दिलाया। ख़ैर, अब भी कुछ देर नहीं हुई। मैं तुमसे विवाह करके पृथ्वीसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा।"

अनूपकुमारी उनकी बात सुनकर ज़ोर से हँस पड़ी। राजा सूरजबख़्शसिंह क्रोध से उन्मत्त हो गए।

अनूपकुमारी ने हँसते हुए कहा—"ब्राह्मण और क्षत्रिय का अंतर्जातीय विवाह किस क़ानून से विहित माना जायगा?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"अँगरेज़ी क़ानून के अनुसार विवाह करने से सब विहित है। अँगरेज़ी क़ानून ने विवाह को 'सोशल कांट्रैक्ट' बनाकर सबके लिये सुलभ कर दिया है। मैं तुम्हारे साथ विवाह उसी रीति से करूँगा।"

अनूपकुमारी ने गंभीर होकर कहा—"क्या उस विवाह से पहले के उत्पन्न हुए पुत्र जायज़ वारिस क़रार दिए जा सकते हैं?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"अगर अब तक वे जायज़ वारिस क़रार नहीं दिए गए, तो अब दिए जायँगे। मैं अपना संपूर्ण बल लगाकर इसका क़ानून बनवाऊँगा, और इस बार मैं भी एसेंबली का सदस्य होने के लिये कोशिश करूँगा। इस तमाशे को कभी नहीं देखा, इस मर्तबे ज़रूर देखूँगा। चुनाव की तैयारियाँ हो रही हैं। मैं कल ही अपना नाम उम्मीदवारों में दूँगा, और मेंबर होने के लिये रुपया पानी की तरह बहाऊँगा। चाहे जो कुछ हो, कितना ही विरोध क्यों न हो, मैं तुम्हारे साथ विवाह करके पृथ्वी को अनूपगढ़ की गद्दी पर बिठाऊँगा। इसके लिये अगर लाल साहब का ख़ून भी करना पड़े, तो वह भी करते न हिचकिचाऊँगा।"

कहते-कहते उनकी आँखों से शोले निकलने लगे। मदिरा के आवेश के साथ क्रोध का उफान बहकर उन्हें पागल बनाने लगा।

अनूपकुमारी ने सप्रेम उनके कंठ को बाहु-पाश से आबद्ध करते हुए कहा—"मेरे लिये ऐसा भयानक पाप करना! नहीं-नहीं, मैं गद्दी नहीं चाहती। आग लगे मेरे मुँह में, जो यह बात निकल गई..."

राजा सूरजबख़्शसिंह ने क्रोध के साथ उसकी बात काटते हुए कहा—"नहीं, ऐसा ही होगा। आज तक जो कुछ मैंने विचारा है, वही हुआ है। यह विचार भी कार्य रूप में परिणत होगा। इसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती।" आवेश से वह काँपने लगे।

अनूपकुमारी ने मदिरा का दूसरा प्याला भरते हुए कहा—"ख़ैर, अब इन बातों को जाने दो। लो, यह पी जाओ, जिससे मन का विकार दूर हो। मैं तो तुम्हारे अधीन हूँ, चाहे विवाह करो, चाहे जो कुछ करो। जो कुछ तुम करोगे, उसे सिर नत करके ग्रहण करूँगी।" राजमाता होने का गौरव मेरे फूटे भाग्य में है, यह अभी तक एक

कल्पना की बात मालूम होती है। इसका मूल्य पागल की बहक से ज़्यादा कुछ नहीं जान पड़ता। मैं क़ानूनी बातें समझती नहीं, इसके बारे में तो तुम्हीं जानते हो।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने शराब का प्याला भरकर उसे देते हुए कहा—"आज विजया दशमी है, इस पुण्य तिथि पर मैं घोषित करता हूँ कि तुम अनूपगढ़ की राजमाता होओगी, और पृथ्वीसिंह इस राज्य का मालिक होगा। आओ, इसी शुभ कामना में हम लोग एक-एक प्याला शराब पिएँ।"

अनूपकुमारी ने अपनी प्रसन्नता दबाते हुए कहा—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो ऐसा ही हो।"

यह कहकर वह प्रसन्नता से उनका दिया हुआ शराब का प्याला एक ही घूँट में पी गई। राजा सूरजबख़्शसिंह भी पी गए।

इसके बाद अविराम गति से शराब का दौर चलने लगा। मादकता उन दो निर्बल, निरीह व्यक्तियों को अपनी उँगलियों पर नचाने लगी। आवेश उन पर अपना बेसुध करनेवाला पंखा झलने लगा। तंद्रा उनकी आँखों पर बैठकर संसार की कालिमा उनके लिये एकत्र करने के लिये आवाहन करने लगी, और अनूपकुमारी का भाग्य समय के परदे की ओट में किसी नूतन नाटक का आयोजन करने में लीन हो गया।

राजा सूरजबख़्शसिंह बेसुध होकर अनूपकुमारी की गोद में गिर पड़े।

---

## ४

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा सूरजबख़्शसिंह अपनी उम्मीदवारी की दरख़्वास्त पेश करने के लिये रवाना हो गए। अनूपकुमारी ने उन्हें मना किया, किंतु उन्होंने उसकी एक न सुनी। दीवान साहब को भी साथ जाना पड़ा।

क़रीब नौ बजे दिन को, राजा सूरजबख़्शसिंह के जाने का समाचार सुनने पर, रानी श्यामकुँवरि के आने की ख़बर एक दासी ने अनूपकुमारी को दी। वह उस वक्त स्नान कर फ़ारिग़ हुई थी। ढलता हुआ यौवन अपनी शुष्क हँसी हँसकर अपना पुराना समय स्मरण करा रहा था। कृत्रिम उपाय, जिनसे वह मनोमोहिनी देख पड़ती थी, गरम जल के प्रभाव से बहकर साफ़ हो गए थे। शरीर की झुर्रियाँ मुँह लटकाकर रो रही थीं। आज अकस्मात् रानी श्यामकुँवरि को अपने घर के दरवाज़े पर देखकर वह किसी अज्ञात भय से सिहर उठी। जब से वह आई थीं, तब से उसने कभी उन्हें नहीं देखा था। दोनो के मिलने का मौक़ा ही न आया था। दोनो का गुप्त-घृणित व्यवहार उन्हें आपस में मिलने से रोकता था, और किसी हद तक उनमें भयानक शत्रुता चलती थी। दोनो एक दूसरे को चोर समझकर आंतरिक द्वेष और ईर्ष्या से भस्मीभूत हो रही थीं। आज उसी परम शत्रु को अपने घर के द्वार पर देख वह चिंतित होकर उनके आगमन का कारण जानने के लिये आतुर हो उठी।

रानी श्यामकुँवरि ने आज्ञा मिलने की प्रतीक्षा नहीं की। वह दासी के पीछे-पीछे आकर खड़ी हो गईं। सद्यः स्नाता अनूपकुमारी अपने कपड़े बदलने के लिये वेग से दूसरे कमरे में जाने लगी।

रानी श्यामकुँवरि ने धीमे स्वर में कहा—"ज़रा ठहरिए, मैं आपसे दो-एक ज़रूरी बात करने आई हूँ।"

अनूपकुमारी ने अपने कमरे का दरवाज़ा बंद करते हुए कहा—"कपड़े बदलकर अभी हाज़िर होती हूँ, आप कमरे में बैठें।"

रानी श्यामकुँवरि को दासी ने उसी कमरे में लाकर बैठाया, जिसमें कल रात्रि को राजा सूरजबख़्शसिंह और अनूपकुमारी बैठे थे, जो उनकी ख़ास बैठक का कमरा था। दासी वापस चली गई।

रानी श्यामकुँवरि इधर-उधर घूमकर उस कमरे की वस्तुएँ देखने लगीं। धीरे-धीरे घूमती हुई वह एक अलमारी के पास आकर खड़ी हो गईं, और उसकी वस्तुएँ ग़ौर से देखने लगीं। उसमें उन्हें काग़ज़ का एक पुलिंदा मिला, जिसे उन्होंने बिना देखे अपने वस्त्रों में छिपा लिया, और उसमें कई शीशियाँ थीं, जिनमें से उन्होंने कई एक अपनी कमर में छिपा लीं, और फिर आकर कुरसी पर बैठ गईं।

वह कुरसी पर बैठी ही थीं कि अनूपकुमारी झपटती हुई उस कमरे में आई। ज्यों ही उसे दासी से मालूम हुआ कि वह उन्हें ख़ास कमरे में बैठा आई है, वह अपना श्रृंगार करना भूल गई, और वैसे ही कमरे की ओर दौड़ी। उसने कमरे में प्रवेश करते ही अपनी अलमारी को शंकित दृष्टि से देखा, और उसे ज्यों-का-त्यों पाकर कुछ स्वस्थ हुई।

रानी श्यामकुँवरि ने हँसते हुए कहा—"मैं आपकी कोई चीज़ चोरी करने नहीं आई।"

अनूपकुमारी संकुचित हो गई। उसके कपोल लाल और कान गरम होने लगे।

उसने हँसी का निष्फल प्रयास करते हुए कहा—"नहीं, आपसे यह भय करना सर्वथा निर्मूल है। अगर चोर हो सकती हूँ, तो मैं हूँ, जिसने आपका सर्वस्व अपहरण कर लिया है।"

उसके स्वर में तीव्र व्यंग्य का आभास था।

रानी श्यामकुँवरि ने मलीन हँसी के साथ कहा—"इसका मुझे दुःख नहीं। मैंने अपने को उस दुःख का अभ्यस्त बना लिया है। मैं तो आज आपसे एक भीख माँगने आई हूँ—वह भी स्त्री होने के नाते।"

अनूपकुमारी ने व्यंग्य से हँसते हुए कहा—"पथ की भिखारिन, समाज की कलंक एक रखैल आपको क्या भीख दे सकती है, रानी साहबा! यह आपका अन्याय है, जो ऐसा कहती हैं।"

रानी श्यामकुँवरि ने उस व्यंग्य को सहकर कहा—"समय सब कुछ करा लेता है। आज राज्य के समस्त अधिकार आपके हाथ में हैं। अनूपगढ़-राज्य की बागडोर आपके हाथ में है। मेरे और मेरे बच्चों के लिये खाना और ख़र्च बाँधने का भी आपको पूरा अख़्त्यार है। मैं अपने लिये नहीं, अपने बच्चों के लिये नहीं, उनके लिये भी नहीं, इस अनूपगढ़-राज्य की इज़्ज़त-आबरू के लिये आपके द्वार भीख माँगने आई हूँ। आशा है, आप मुझे निराश न करेंगी।"

अनूपकुमारी ने मौन होकर कुछ देर तक सोचा, फिर कहा—"रानी साहबा, आपका आशय मैं बिलकुल नहीं समझी। क्या आप मेरा उपहास करने आई हैं, या लड़ाई-झगड़ा? कुछ समझ में नहीं आता कि आप क्यों आई हैं। किसी सद्भावना से प्रेरित होकर तो आप आ नहीं सकतीं, क्योंकि हमारे दरम्यान तो उसका संपूर्ण अभाव है, और न मेरे पास मित्रता के नाते आई हैं, क्योंकि आज के पहले आपको देखने या मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। अतएव इस संबंध में कुछ ख़याल करना बेसूद है। आज राजा साहब किसी कार्य-वश शहर गए हैं, इसलिये शायद मौक़ा पाकर अपनी द्वेषाग्नि शांत करने आई हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। रंग-ढंग भी कुछ ऐसा ही मालूम होता है, क्योंकि आते ही आप व्यंग्य बोल रही हैं, और छींटे कस रही हैं। अगर किसी दुर्भावना

से प्रेरित होकर आप आई हैं, तो कृपा कर पधार जावें, वरना अगर आपका कुछ अपमान हो जाय, तो मुझे दोष मत देना।"

यह कहकर वह तीक्ष्ण दृष्टि से रानी श्यामकुँवरि की ओर देखने लगी।

रानी श्यामकुँवरि ने अपने मन का भाव दबाकर मधुर स्वर से कहा—"जब जवानी में लड़ने या झगड़ा करने नहीं आई, तब बुढ़ापे में किसलिये आऊँगी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं कोई नीच ख़याल से नहीं आई। मैं तो आपके इजलास में असालतन दरख़्वास्त पेश करने आई हूँ। मेरी दरख़्वास्त पर ग़ौर करना या न करना आपके अधीन है।"

अनूपकुमारी ने सरोष कहा—"फिर वही व्यंग्य! मेरा इजलास कैसा?"

रानी श्यामकुँवरि ने धीरता के साथ कहा—"यदि सत्य कहना व्यंग्य है, तो मैं नहीं जानती कि किस तरह कहूँ। ज़्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं; दूसरे, कई दुखों से परेशान होने से, मुमकिन है, कुछ गुस्ताख़ी हो जाती हो, आप उसे भी क्षमा करें।"

अनूपकुमारी ने तीव्र स्वर में कहा—"अच्छा, कहिए, आप क्या कहती हैं? मेरे पास व्यर्थ की बकवास करने के लिये समय नहीं है, और राजा साहब भी शीघ्र ही आनेवाले हैं। अतएव जो कुछ आप अच्छा या बुरा कहना चाहती हों, कह डालें। मैं सब कुछ सुनने को तैयार हूँ।"

रानी श्यामकुँवरि ने कहा—"कहूँगी, अच्छा ही कहूँगी। बुरा क्यों कहूँगी। अगर राजा साहब आ जायँगे, तो उनसे भी निवेदन करूँगी, उन्हें भी स्मरण दिलाऊँगी कि यह तो आपका कर्तव्य है।"

अनूपकुमारी ने सक्रोध कहा—"राजा साहब के कर्तव्य की विवेचना करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है, और न मैं अपने को

उनका अधिकारी ही समझती हूँ। व्यर्थ समय नष्ट करना ठीक नहीं।"

रानी श्यामकुँवरि ने अपने मन का क्रोध दमन करते हुए कहा—"इतनी रुखता से कोई दुश्मन भी शायद ही पेश आवे, अगर कोई उसका घोर शत्रु उसके द्वार पर जाकर, आँचल पसारकर भीख माँगे। ख़ैर, अपने बच्चों के लिये सब कुछ बरदाश्त करूँगी। हाँ, सुनिए, कमला और किशोरी, दोनो ही बहुत अर्से से विवाह करने योग्य हो गई हैं। अभी तक उनका विवाह नहीं हुआ। राजा साहब को अभी तक उनके योग्य वर ढूँढ़ने को समय नहीं मिला। उनका विवाह इस वर्ष होना ज़रूरी है। कृपा कर स्त्री होने के नाते तो ज़रूर ही उनके विवाह को आज्ञा दें, और राजा साहब को भी कह-सुनकर इसके लिये उद्यत करें। बस, यही मेरी प्रार्थना है। इसे स्वीकार करना या न करना आपके हाथ है।"

अनूपकुमारी ने ज़ोर से हँसकर कहा—"मैं इसके लिये क्या कर सकती हूँ। क्या राजा साहब को नहीं मालूम कि उन्हें अपनी लाड़ली लड़कियों की शादी करनी है। मैं आज्ञा देनेवाली कौन हूँ, जो आप इस तरह व्यंग्य करती हैं।"

रानी श्यामकुँवरि अपने मन का क्रोध दमन न कर सकीं। उन्होंने सक्रोध कहा—"इतना अभिमान अच्छा नहीं। रावण का गर्व जब नहीं रहा, तब एक क्षुद्र नारी का कभी नहीं रह सकता। जो कुछ आज तक नहीं किया, वह अपने बच्चों के ख़ातिर करना पड़ा। ख़ैर, जाती हूँ। अगर राजा साहब अपनी लड़कियों का विवाह नहीं कर कते, तो उनकी ननिहालवाले करेंगे और गवर्नमेंट करेगी। मैं अब तक अनूपगढ की लाज जाने से डरती थी, किंतु देखती हूँ, खुलकर लड़ना पड़ेगा। मेरे बच्चे मुट्ठी बाँधकर इस दुनिया में आए हैं, जिन्हें अधिकार से वंचित करना तुम्हारी-जैसी सड़कों पर

फिरनेवाली वेश्याओं के हाथ में कदापि नहीं। यदि स्वत्व के लिये पति से भी युद्ध करना पड़े, तो करूँगी। मैं अब तक अपने ससुर के वंश की लाज-मर्यादा से डरती थी, और सहज भाव से शांति-पूर्वक काम निकालना चाहती थी, किंतु देखती हूँ, इन तिलों में तेल नहीं। मैं जाती हूँ, और कहे जाती हूँ कि तुम ......"

क्रोध का उफान दूध के उफान से भी अधिक तेज़ होता है। जिस वक़्त दबा हुआ क्रोध प्रवाहित होने लगता है, वह रुकना नहीं जानता। रानी श्यामकुँवरि क्रोध से आगे न कह सकीं।

अनूपकुमारी उनका भयंकर रूप देखकर कुछ स्तंभित हो गई।

रानी श्यामकुँवरि ने जाते हुए कहा—"सब कुछ खोकर भी मैंने धैर्य रक्खा था, परंतु इस दुनिया का क़ायदा है कि जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। अब देखूँगी, कितने दिन तुम और राजा साहब आनंद करते हो। पति के ऊपर वार करना स्त्री का धर्म नहीं, इससे चुप बैठी थी, और उस भावना में पड़कर अपने बच्चों का जीवन नष्ट कर डाला। मेरे बेटे को तो तूने न-मालूम क्या खिलाकर नष्ट कर डाला, अब मेरी लड़कियों का जीवन, उनकी इज़्ज़त-आबरू नष्ट करने के लिये आमादा है। जब तक मेरे शरीर में एक बूँद रक्त रहेगा, उसे बहाकर उनकी रक्षा करूँगी। मा के साए के नीचे से कोई आततायी उसके बच्चे को नष्ट नहीं कर सकता। जो तेरे मन में आवे, राजा साहब से कह देना और यह भी जान लेना कि अब तुम्हारा कुचक्र अधिक नहीं चल सकता। तुम्हारे पाप का घड़ा भर गया है......"

कहते-कहते वह तेज़ी से कमरे के बाहर हो गईं। अनूपकुमारी भय के साथ चुपचाप खड़ी रही।

रानी श्यामकुँवरि के जाने के बाद उसे होश हुआ। वह दौड़-कर उन्हें पकड़ने के लिये द्वार की ओर झपटी, परंतु रानी श्याम-

कुँवरि उसके घर से बाहर निकल गई थीं। वह क्रोध से काँपती हुई अपने उसी कमरे में लौट आई।

कमरे में आते ही देखा, उनके प्यार की दासी कस्तूरी पान का डिब्बा लिए खड़ी है। उसे देखते ही उसका क्रोध अपना प्रतिशोध निकालने के लिये आकुल हो उठा। उसने उसके हाथ से पान का डिब्बा छीन लिया, और उसे मारना शुरू किया। असहाय दासी रोकर अपने उद्धार की प्रार्थना करने लगी। उसकी करुण पुकार अनूपकुमारी को और अधिक मारने के लिये उत्तेजित करने लगी। थोड़ी देर में घर-भर की दासियाँ उस कमरे में एकत्र हो गईं, लेकिन किसी को साहस न हुआ कि अभागिनी कस्तूरी को बचावें।

दूसरी दासियों को देखकर अनूपकुमारी ने सक्रोध चिल्लाकर कहा—"तुम लोग अब यहाँ आई हो। मेरे घर में वह टुकड़ही मेरा अपमान करके चली गई और तुम लोगों में से किसी को साहस न हुआ कि उसकी अच्छी तरह मरम्मत करतीं। मेरा अपमान करने का मज़ा उसे मिल जाता। मैं आज ही तुम सबको निकाल दूँगी। जानती हो, अनूपगढ़ की रानी मैं हूँ। वह तो मेरी टुकड़हैल है।"

कस्तूरी ने चिल्लाकर कहा—"मेरा क्या क़ुसूर है, आप ही ने तो पान लगाने के लिये कहा था, इसलिये पान लगाकर अब आई हूँ। मुझे क्या मालूम था कि वह हरामज़ादी आपकी बेइज़्ज़ती करने आई थी।"

अनूपकुमारी ने उसे मारते हुए कहा—"सब तेरा क़ुसूर है। किसने उसे मेरे ख़ास कमरे में बैठाने को कहा था। बता, तू उसे यहाँ क्यों लाई थी?"

कस्तूरी ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"यह ग़लती हुई, माफ़ कीजिए, आपने तो उन्हें बैठाने के लिये कहा था, इसलिये यहाँ ले आई थी।"

अनूपकुमारी ने उसे मारना बंद नहीं किया था। हालाँकि मारते-

मारते उसके हाथ दुखने लगे थे, फिर भी वह मारती रही, जिससे उसका क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। क्रोध उस अवस्था में अधिक उग्र हो जाता है, जब मनुष्य को कुछ कष्ट या पीडा होती है।

अनूपकुमारी ने सक्रोध कहा—"हरामज़ादी, तू उसे रानी समझकर यहाँ लाई थी। तू यह अच्छी तरह जान ले कि अनूपगढ़ की रानी में हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ। मेरा लड़का अनूपगढ़ का राजा होगा, मैं राजमाता होऊँगी। उसके भरोसे मत रहना। ज़मीन में गड़वाकर कुत्तों से खाल नुचवा लूँगी। बोल, तू उसे यहाँ लाई क्यों? झाड़ू मारकर दरवाज़े से बाहर क्यों नहीं कर दिया?"

कस्तूरी रोती हुई उसके पैरों पर गिर पड़ी, और क्षमा माँगने लगी।

अनूपकुमारी बिलकुल थक गई थी। वह हाँफती हुई सोफ़ा पर बैठ गई। उसकी आँखों से अँगारे अब भी निकल रहे थे, ओष्ठ-युगल फड़क रहे थे, और उसके शरीर में इस समय वृद्धावस्था तथा विलासिता के सभी चिह्न प्रकट होने लगे थे। सामने दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखकर वह द्विगुणित क्रुद्ध हो गई। उसने सक्रोध पान का डिब्बा उठाकर उस मूक चुग़लख़ोर के मारा। दर्पण टूटकर, टुकड़े-टुकड़े होकर, भूमि पर गिरकर अपनी इहलीला समाप्त करने लगा।

उसने अपने पैर का स्लीपर निकालकर सिसकती हुई कस्तूरी पर फेंककर मारते हुए कहा—"दूर हो सामने से हरामज़ादी! चल अभी मेरे महल से अपना मुँह काला कर। जा अपनी अम्मा के पास। अब मेरे यहाँ तेरा कुछ काम नहीं। जिसकी इतनी आव-भगत की थी, उसी के पास जा।"

कस्तूरी उठकर जान बचाने के लिये जी छोड़कर भागी।

अनूपकुमारी ग़ुस्से से ताव-पेच खाती रही। क्रोध उसकी विवेक-शून्यता पर हँसने लगा।

---

## ५

माधवी को होश आए आज कई दिन हो चुके हैं, किंतु उसकी स्मरण-शक्ति किसी तरह वापस न आई। डॉक्टर हुसैनभाई ने बहुत यत्न किया, और फ़िज़ी के कई एक चतुर डॉक्टरों ने भी भरसक कोशिश की, किंतु सब निष्फल गया। पंडित मनमोहननाथ को फ़िज़ी पहुँचे हुए दस दिन हो चुके थे। वह दक्षिणी अमेरिका जाने के लिये व्यग्र हो रहे थे, और इधर माधवी की दशा में कोई अंतर पड़ता नहीं दिखाई देता था।

राधा अपनी माता के पास चली गई थी, किंतु शीघ्र ही वापस आने का वचन दे गई थी। पंडित मनमोहननाथ के प्रति उसकी भक्ति जाग्रत् हो गई थी, और वह ऐसे बड़े आदमी का सहारा छोड़ने के लिये तैयार न थी। उसे उस नीच व्यवसाय से घृणा हो गई थी। उसने जहाज़ डूबनेवाली रात को, जब कैप्टेन एडमंड हिक्स का प्राणांत हुआ था, यह प्रतिज्ञा की थी कि ग़ुलामों के व्यापार में सहायता करना छोड़, मेहनत-मज़दूरी कर अपना गुज़र करेगी। बाद में पं० मनमोहननाथ के सतसंग से वह प्रतिज्ञा उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई।

माधवी के प्रति अमीलिया का स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। उसकी असहाय दशा देखकर करुणा से उसका हृदय ओत-प्रोत हो जाता, और उसने अपने को उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिये उत्सर्ग कर दिया। कैप्टेन अल्फ्रेड जैकब्स ने कोई आपत्ति नहीं की। उन्हें उसी में प्रसन्नता थी, जिसमें अमीलिया को आनंद मिले। उसकी कार्य-तत्परता देखकर पंडित मनमोहननाथ उसे पुत्री की भाँति स्नेह करने लगे थे, और उसकी क्षमता लक्ष्य कर उसे अपनी नवीन संस्था का एक विशेष उत्तरदायित्व-पूर्ण भार सौंपने का विचार करने लगे।

दोपहर का समय था। आकाश शांत और निर्मल था। आज-कल दक्षिणी भाग में गरमी के दिन थे। भारत से बिलकुल उलटी ऋतु थी। वह गरमी ऐसी न थी, जो सहन न हो सके, या जैसी भारत में पड़ती है। समुद्र का जल-वायु उसे किसी क़दर सह्य बना देता है। पंडित मनमोहननाथ अपने बँगले के एक कमरे में लेटे हुए विचार-मग्न थे। पास ही स्वामी गिरिजानंद बैठे हुए वदांत की एक पुस्तक मनन कर रहे थे। कुछ ईसाइयों ने उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारा था। स्वामीजी उसी की तैयारी में लगे थे। उनके सामने ईसाई-धर्म की कई पुस्तकें खुली पड़ी थीं।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"स्वामीजी, आप क्या पूर्व जन्म पर विश्वास करते हैं, और उसका संबंध क्या इस जन्म से हो सकता है?"

स्वामी गिरिजानंद ने अपनी पुस्तक रखते हुए कहा—"इस विषय में हमारा आपका वाद-विवाद पहले भी हो चुका है। पूर्व-जन्म और परजन्म उसी तरह सत्य हैं, जैसे यह जन्म। परमात्मा का अद्भुत-अद्भुत रूप में कलेवर धारण कर तत्संबद्ध सुख और दुख भोग करना ही जन्म और मरण है। वास्तव में जन्म और मरण सत्य नहीं—दोनों एक हैं। चूँकि हमारे लिये समय का भेद है, इसीलिये हम उन्हें दो नाम से पुकारते हैं, किंतु इस भेद को हटा दीजिए, जो वास्तव में सत्य नहीं है—माया है, तो हम समस्त ब्रह्मांड को एकाकार पावेंगे। समय और सीमा ( Time and Space ) का अनुभव यह शरीर और मस्तिष्कधारी आत्मा करता है। किंतु इस विचार से मुक्त होने पर—जिसे हम मोक्ष कहते हैं, वह प्राप्त होने पर—यही भेद नष्ट हो जाता है, तब हम अपने को ब्रह्म कहते हैं।

पंडित मनमोहननाथ ने विचारते हुए कहा—"जब सब एक है,

और समय का भेद नष्ट करने से हमारा पूर्वजन्म, यह जन्म और पर जन्म एक हो जाता है, तब हमें अपने पूर्वजन्म की बातें क्यों याद नहीं रहतीं ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यही माया है। आत्मा माया-जाल में उसी समय फँस जाता है, जब वह कलेवर धारण करता है। शरीर धारण करने पर शरीर-संबंधी सब न्यूनताएँ और विशेषताएँ उसे घेर लेती हैं। चूँकि मनुष्य का ज्ञान सीमित है, अतएव वह इस पूर्वजन्म के अतिरिक्त जन्म का स्मरण नहीं रख सकता। कभी-कभी यह देखने में आया है कि कुछ एक मनुष्यों को अपने पूर्वजन्म की सुध हो आई है, और उन्होंने अकाट्य प्रमाण देकर सिद्ध भी कर दिया है। यह स्मरण किसी एक विशेष अवस्था में होता है, जब मनुष्य के मस्तिष्क में आत्मिक ज्ञान का विकास होता है। आत्मा के विकास से मेरा यह तात्पर्य है कि जब आत्मा अपने इस जन्म-संबंधी विचारों को भूलकर किसी पूर्वजन्म के विचारों में लीन हो जाता है, उस समय उसे इस जन्म का ज्ञान नहीं रहता—वह अपने को पूर्वजन्म का ही मनुष्य मानता रहता है। कोई-कोई हममें से इसे उन्माद भी कहते हैं। उन्माद कहने का एक यह भी कारण है कि हम उसका कहना सत्य नहीं मानते और उसके मस्तिष्क का विकार या तज्जनित भ्रम कहकर टाल देते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"पूर्वजन्म का स्मरण क्या मनुष्य-मात्र को हो सकता है, या होता ही नहीं ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"स्मरण के साथ संकल्प और विकल्प निहित रहता है, इसी से हमें अगर पूर्वजन्म का स्मरण भी हो, तो हम उसे सत्य नहीं मानते। थोड़ी देर के लिये आप एकाग्र-चित्त होकर बैठ जायँ, और इसी जन्म की कोई विगत घटना स्मरण करें। आप अगर वास्तव में एकाग्र-चित्त हैं, तो इस समय

की अवस्था, स्थान, सब आपको विस्मृत हो जायँगे, और केवल वे ही काल, स्थान और अवस्था सत्य रूप में दृष्टिगोचर होंगे। इसी भाँति जब आत्मा किसी कारण विशेष से अपने किसी जन्म की घटनाओं का स्मृति में निमग्न हो जाता है, तब उसे उसी का ज्ञान-मात्र रहता है, और इस काल की घटनाओं को भूल जाता है। जब तक मन आत्मा पर शासन करता है, तब तक ऐसा होना असंभव है, क्योंकि मन का संबंध केवल इसी जन्म के शरीर से है।"

पंडित मनमोहननाथ कुछ सोचने लगे।

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए पूछा—"आज क्या कारण है, जो पूर्वजन्म की समस्या पर विचार करने लगे?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"ऐसी कोई विशेष बात तो नहीं है, यों ही पूछ बैठा।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हरएक वस्तु का कुछ कारण होता है, यह निर्विवाद है। आपकी इस इच्छा का भी कोई कारण अवश्य होना चाहिए।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि मेरे लिये यह संसार एकदम नया नहीं है। कोई-कोई वस्तु देखकर यह सोचने लग जाता हूँ कि इसे कहीं अवश्य देखा है—किंतु ठीक स्मरण नहीं होता। इसी से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि शायद पूर्वजन्म था, और आगे भी जन्म होगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने प्रसन्नता से उछलकर कहा—"बस, बस, इसी में पूर्वजन्म का रहस्य छिपा हुआ है। जिस वस्तु से आत्मा का परिचय हो जाता है, उसे वह मन के प्रभाव से मुक्त होकर पह-चानता है, परंतु मन का प्रभाव संपूर्णतया नष्ट नहीं होता, इसलिये वह स्थान और काल का स्मरण नहीं कर पाता। मन के दो सहचर

संकल्प और विकल्प तत्क्षण प्रकट होकर आत्मा को अपने जाल में पुनः फँसा लेते हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"ठीक यही हालत उस समय मेरी हो जाती है। एक भाव कहता है कि 'देखा है', दूसरा उसी क्षण कह उठता है कि 'भ्रम है।' बस, इसी विवेचना में पड़ जाता हूँ। ठीक से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आप निष्कर्ष पर पहुँच कैसे सकते हैं। इस जन्म के शरीर के स्वामी मन के दो सहचर कब आपको अपने प्रभाव से मुक्त होने देंगे। जब तक यह शरीर है, तब तक वे अमर हैं, और सर्वविजयी भी हैं।"

इसी समय अमीलिया ने आकर कहा—"माधवी किसी तरह नहीं मानती, वह बार-बार भागने की कोशिश करती है।"

पंडित मनमोहननाथ तुरंत उठ बैठे, और कहा—"चलो, मैं अभी आता हूँ।"

फिर स्वामी गिरिजानंद से कहा—"इस अभागिन बालिका की ओर मेरा मन अपने आप खिंचता जाता है। न-मालूम क्यों इससे मैं इतना आकर्षित हो गया हूँ। इसको बचाने के लिये मैं अपना सर्वस्व देने में तिल-मात्र संकोच न करूँगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"शायद पूर्वजन्म का कोई संबंध हो।" उनकी बात सुनकर वह भी मुस्किराने लगे।

अमीलिया चली गई, और उसके पीछे-पीछे वह भी माधवी को देखने के लिये चले। माधवी का शरीर सूखकर कंकाल-सरीखा हो गया था। उसके शरीर पर नवयौवन के आगमन के सब चिह्न इस प्रकार नष्टप्राय हो गए थे, जैसे पनपता हुआ वृक्ष तुषार से जर्जरित हो जाता है। किंतु उसके मुख पर एक अप्रतिम प्रभामय ज्योति थी,

उसके आयत लोचनों से सरलता और पवित्रता का प्रकाश निकलता था, जो हृदय में करुणा तथा दया का संचार करता था।

पंडित मनमोहननाथ को देखकर डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मैंने आपसे कहा था कि मरीज़ अगर अच्छा हो जायगा, तो वह पागल हो जायगा, क्योंकि उसके दिमाग़ में जिस ज़ोर का धक्का पहुँचा है, उससे या तो उसकी फ़ौरन् मृत्यु हो जाय, या अगर बचे, तो पागल होकर ज़िंदगी बसर करे। मुझे तो अब पागलपन के सभी निशान मालूम होते हैं। अभी तक यह बोलती नहीं रही, जिससे मैं समझता था कि शायद अच्छी हो जाय, लेकिन आज जब बोली है, तो इसे अपनी पिछली बातें एकदम भूल गई हैं। याददाश्त का बिगड़ना दिमाग़ की ख़राबी का निशान है।"

जब से पंडित मनमोहननाथ उस कमरे में आए थे, उस वक़्त से माधवी उन्हें निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी। वह भी उसे पितृस्नेह से देख रहे थे।

उन्होंने एक कुरसी पर उसके समीप बैठकर पूछा—"क्यों, कैसी तबियत है बेटी?"

उनका स्वर वात्सल्य से ओत-प्रोत था।

माधवी ने उनकी ओर उस तरह देखा, जैसे कोई मनुष्य किसी अनजान को पहचानने का प्रयत्न करता है।

माधवी ने धीमे स्वर में कहा—"आपको तो मैं नहीं पहचानती। कभी देखा है, यह भी याद नहीं पड़ता। फिर आप मुझे बेटी क्यों कहते हैं?"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराकर कहा—"अच्छा, तुमको बेटी न कहकर माता कहूँगा, हिंदू-धर्म में तो दोनो पूजनीय हैं।"

माधवी ने कुछ सोचते हुए कहा—"हाँ, मैं एक बच्चे की मा ज़रूर हूँ। वह तो मेरी लड़की है, मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय

है। तुम लोगों ने क्या उसे भी मेरी तरह मार डाला है ? मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, उसको वापस कर दो। वह अभी आते होंगे, तुम जो कुछ माँगोगे, उनसे कहकर दिला दूँगी।"

माधवी चुप होकर किसी विचार में पड गई।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"देखा आपने, यह सब प्रलाप है। दिमाग़ ख़राब हो जाने पर विचारों में स्थिरता नहीं रहती। अब इसको किसी पागलख़ाने में भेज दीजिए।"

पंडित मनमोहननाथ ने सक्रोध कहा—"यह कभी नहीं हो सकता। प्रथम तो यहाँ कोई विश्वसनीय पागलख़ाना नहीं, दूसरे मैं अपने आश्रित को इस तरह त्याग नहीं सकता। इसकी हालत क्या पागलख़ाना भेजने क़ाबिल है ? आपको मैंने केवल इसके लिये ही नियुक्त किया है। अगर इसका इलाज करने की आप में क्षमता न हो, तो कहें, मैं दूसरा प्रबंध करूँ।"

उनका स्वर तिरस्कार से पूर्ण था, जिससे सब लोग चकित होकर उनकी ओर देखने लगे।

डॉक्टर हुसैनभाई ने सिर नत कर सविनय उत्तर दिया—"मैंने केवल आपकी सुविधा और परेशानी के लिहाज़ से कहा था, वरना ऐसी गुस्ताख़ी न करता। मैं इलाज करने से घबराता नहीं, यह तो मेरा पेशा है।"

उनके स्वर में आत्माभिमान का भी रंग चढ़ा हुआ था।

पंडित मनमोहननाथ ने शांत होते हुए कहा—"ठीक है, यह आपको मालूम हो जाना चाहिए कि यह लड़की यतीम नहीं है—कम-से-कम जब तक मैं जीवित हूँ, यतीम कही जाने योग्य नहीं। इसका संरक्षक, इसका अभिभावक, जो कुछ भी कहें, मैं हूँ।"

उनके स्वर में चेतावनी के साथ अभिमान मिला हुआ था।

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"अभिभावक का पद पिता के तुल्य

होता है। दरअसल इस अभागिन का आपके अतिरिक्त दूसरा सरपरस्त कौन है?"

पंडित मनमोहननाथ ने तीव्र स्वर में कहा—"स्वामीजी, यह अभागिन नहीं। इसका सौभाग्य इसकी इसी विक्षिप्तावस्था में छिपा हुआ है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

माधवी कहने लगी—"देखो, शाम हो रही है, उनके आने का समय हो गया है। हाय, मैं क्या करूँ? मुझमें उठने की शक्ति नहीं। उनके जलपान के लिये क्या प्रबंध किया जाय?"

पंडित मनमोहननाथ शांत होकर बड़े ग़ौर से उसका प्रलाप सुन रहे थे।

उन्होंने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम घबराओ नहीं, अगर वह आवेंगे, तो मैं उनके जलपान का प्रबंध कर दूँगा, माधवी!"

माधवी ने धीमे स्वर में पूछा—"माधवी किसका नाम है?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तुम्हारा नाम है।"

माधवी ने चकित होकर कहा—"मेरा नाम माधवी है!"

यह कह वह बड़े वेग से हँस पड़ी। उसकी हँसी में विचित्रता का आभास था।

हँसने के बाद उसने कहा—"मेरा नाम माधवी तो नहीं है। हाँ, तुम कैसे मेरा नाम जानोगे? मुझे तो तुम लोग चुराकर लाए हो। तुमने मेरा वियोग मेरे पति और मेरी बच्ची से कराया है। बोलो, तुमने उन्हें कहाँ छिपा रक्खा है? क्या वे लोग इसी घर में कहीं हैं? मैं अपनी बच्ची, अपनी रानी की आवाज़ सुन रही हूँ। भूख से वह रो रही है। उसे दूध पिलाए बहुत वक़्त बीत गया। उसे मेरे पास ले आओ। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मेरी बच्ची मुझे

वापस कर दो, उसके बदले मेरी जान ले लो। मैं उँ भी न करूँगी...."

यह कहकर माधवी रोने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"तुम सब्र करो, रोओ नहीं, अभी-अभी तुम्हारी बच्ची तुम्हारे पास ले आऊँगा। तुम्हारी तबियत ज़्यादा ख़राब है, इसलिये उसे दूर हटा दिया है। अभी बुलाए लेता हूँ। तुम रोना बंद करो।"

माधवी ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—"तुम मुझे बहलाते हो, तुमने मेरी बच्ची का ख़ून कर डाला है। तुम ख़ूनी हो, मैं तुमको पुलिस में पकड़ा दूँगी। मेरी बच्ची, मेरी बच्ची...."

माधवी फिर दून वेग से रोने लगी।

पंडित मनमोहननाथ उसे अनेक भाँति से धैर्य बँधाने का प्रयत्न करने लगे।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"पंडितजी, आप परेशान न होइए, यह सचमुच पागल हो गई है। इसका इलाज होने पर अपने होश-हवास में आएगी। आप जितना इसे धैर्य देंगे, उतना रोएगी। अब आप तशरीफ़ ले जाइए, और कोई फ़िक्र न करें। कुछ ही दिनों में इसे मैं बिलकुल ठीक कर दूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने जाते हुए अमीलिया से कहा—"अमीलिया, मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास है। तुम मनुष्य-रूप में देवी हो। तुम्हारे हाथ से किसी का अकल्याण नहीं हो सकता। माधवी का भार तुम्हारे ऊपर है।"

अमीलिया ने शांत स्वर में कहा—"आप बेफ़िक्र रहें। भगवान् सब कल्याण करेंगे। सेवा करना मेरे अख़्तियार है, और अच्छा करना सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"भगवान् सब मंगल करेंगे। तुम्हारी-जैसी देवी की निःस्वार्थ सेवा कभी वृथा न जायगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता से उनकी ओर देखा, और धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गए।

डॉक्टर हुसैनभाई दूसरी दवा बनाने लगे। अमीलिया माधवी के सिरहाने बैठकर उसके रुक्ष केशों पर भगिनी के स्नेह से हाथ फेरने लगी, और माधवी आँख बंद कर अपने विचारों की माला पिरोने लगी।

---

६

रात्रि के आठ बजनेवाले थे। उस दिन कार्त्तिक-मास की पूर्णमासी थी। मेष-राशि का चंद्रमा धवल प्रकाश का पुंज लिए, अपनी सोलहो कला से उदय होकर, अवनी-तल को रजनीगंधा-जैसा श्वेत बनाने का प्रयत्न कर रहा था। वह दक्षिणी अर्ध भू-भाग को मनोमोहक शीतलता प्रदान कर रहा था, क्योंकि दिन के प्रचंड उत्ताप से फ़िज़ी पीड़ित हो गया था। उस दिन सत्य ही बहुत गरमी थी। अमीलिया तमाम दिन उस ज्वाला से क्लांत होकर मन बहलाने के लिये बाग़ में चली आई। चंद्रिका उसके शरीर की कांति से प्रतिद्वंद्विता करने के लिये आगे बड़े उत्साह से बढ़ी, किंतु लज्जित होकर वायु-वाहन पर विहार करते हुए एक बादल के टुकड़े की ओट, में छिप गई। निशा उसका मान भग होते देख हर्ष से उन्मत्त होकर अमीलिया को आशीर्वाद देकर, उसके गत जीवन की स्मृतियाँ उभारने लगी। उसे क्या मालूम था कि उससे उसे पीड़ा होगी; जैसे पूँजीपति अभागे श्रमजीवियों के कष्टों का अनुमान नहीं करते, और अपने स्वार्थ के लिये उनके ख़ून का मूल्य पानी से भी कम समझते हैं। अमीलिया ख़ून के आँसू गिराने लगी। उसके सामने वही घर था, वही उद्यान था, जिसमें वह एक दिन पक्षियों की-सी बेफ़िक्री से आनंद में मग्न, सीटी बजाती हुई, सोहाग, प्रेम और शृंगार का भार लिए, उमंगों की फुलवारी में स्वच्छंद घूमती-फिरती थी, किंतु आज वह सब नष्ट हो गया था। उसकी कल्पना करना केवल मूर्खता थी। धीरे-धीरे घूमती हुई वह उसी लताकुंज के समीप आकर खड़ी हो गई, जहाँ उसके जीवन के—

प्रथम प्रेम के सुनहले दिन बीते थे। पुरानी बातों की स्मृति उसकी चुटकियाँ लेने लगी। वह तड़पने लगी, किंतु तड़प-तड़पकर पुनः उन दिनों की याद करने लगी। मनुष्य अपने अतीत काल के आनंद-दिवस की स्मृति कभी नहीं भुला सकता। इसी रहस्य में उसका मनुष्यत्व छिपा हुआ है।

अमीलिया बैठी हुई आँसू बहा रही थी। डॉक्टर हुसैनभाई भी घूमते हुए वहाँ अकस्मात् आ गए। दूर से अमीलिया को बैठा देखकर वह उसी ओर आने लगे। अमीलिया अपने ध्यान में मग्न थी। उसे बाह्य संसार की कुछ चिंता न थी। वह अपनी पुरानी दुनिया में विचर रही थी। उसने डॉक्टर हुसैनभाई की पद-ध्वनि नहीं सुनी।

उन्होंने उसके निकट आकर कहा—"कौन, मिस जैकब्स! वाह, यह मेरा सौभाग्य है, जो आपके दर्शन हो गए। मैं भी अकेला बहुत घबराता था।"

अमीलिया की चेतना जागी। उसने चौंककर भीत दृष्टि से डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखा। चंद्रमा सहमकर उसकी आँखों से गिरती हुई मोतियों की लड़ी छिपाने के लिये बादलों की ओट हो गया, लेकिन दो बड़े-बड़े दाने उसकी आँखों की कोर में लगे रह गए। डॉक्टर हुसैनभाई ने उन्हें देख लिया, और वह भी चंद्रमा की भाँति उसकी ओर सभीत देखने लगे। अमीलिया ने उन्हें पुनः सयत्न अपने हृदय के ख़ज़ाने में छिपा लिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने सहानुभूति के साथ कहा—"मैं आपके निजी मामलों में किसी प्रकार की दस्तंदाज़ी करने का अधिकार नहीं रखता। फिर भी एक मित्र के नाते, मनुष्य के नाते, सिर्फ़ यह प्रार्थना करता हूँ कि अगर मैं आपका कुछ उपकार कर सकता होऊँ, तो आप तुरंत कहें। मैं आपका कष्ट दूर करूँगा।"

अमीलिया अब तक अपने मन का उफान शांत कर चुकी थी। उसने अपने सहज मृदु स्वर में कहा—"धन्यवाद, डॉक्टर! मुझे कोई दुख नहीं है!"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कुछ देर बाद कहा—"शायद आपको मेरे आने से कुछ कष्ट हुआ, और आपकी विचार-धारा में कुछ ख़लल पहुँचा है। इसकी क्षमा चाहता हूँ, और अब जाता हूँ।"

डूबते हुए आदमी को जब कुछ आधार मिल जाता है—चाहे वह कितना ही क्षीण और कमज़ोर क्यों न हो—वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। अमीलिया भी उनको छोड़ना नहीं चाहती थी।

उसने कातर कंठ से कहा—"नहीं, डॉक्टर, आप ठहरिए। आपके . से मुझे प्रसन्नता हुई है। देखिए, आज की चाँदनी कैसी मनोहर है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने ठहरकर कहा—"हाँ, चाँदनी बड़ी निर्मल और सुख-प्रद है। दरअसल इसका मज़ा गरमी के महीने में ही आता है, जब इंसान बेफ़िक्री से खुली हवा में घूम सकता है।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"हाँ, चाँदनी का मज़ा खुले समुद्र में ख़ूब आता है, जब चंद्रमा को देखकर लहरें वेग से उठती और गिरती हैं। समझ में नहीं आता, चंद्रमा और समुद्र में क्या संबंध है?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मुस्किराते हुए कहा—"वही संबंध है, जो प्रेमी और प्रेमिका में होता है।"

अमीलिया मुस्किराने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मैं आजकल कवि होने का अभ्यास करता हूँ। आप तो पुरानी कवयित्री हैं, कहिए, उपमा कैसी है?"

अमीलिया ने मुस्किराकर कहा—"एक नवीन प्रेमी के लिये सर्वथा उपयुक्त है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने रसिकता के साथ कहा—"नवीन प्रेमी का

प्रेम तिरस्कार करने योग्य नहीं होता। उसमें उमंगों और भावनाओं का गुरु भार होता है।"

अमीलिया ने मलिन हँसी के साथ कहा—"किंतु उनमें स्थिरता का अभाव होता है, विशेषकर पुरुषों के प्रेम में।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने हलकी मुस्किराहट से कहा—"आज तक मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि आप पुरुषों के इतना ख़िलाफ़ क्यों हैं?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"मैं उनके ख़िलाफ़ नहीं, उनके प्रेम के ख़िलाफ़ ज़रूर हूँ। पुरुष-जाति बड़ी स्वार्थी है। पुरुष केवल अपना स्वार्थ देखता है, और हर तरह से एक अभागिनी स्त्री-जाति को समूल नष्ट करने के लिये कटिबद्ध रहता है। इसी में वह अपना शौर्य और साहस समझता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने अस्थिरता से कहा—"आपका ख़याल सरासर ग़लत है। क्या नाइट्स के क़िस्से दोहराने पड़ेंगे, जो अपनी जान स्त्रियों की रक्षा के हित हथेली पर लिए घूमा करते थे। आज-दिन भी स्त्रियों का स्थान समाज में पुरुषों की अपेक्षा ऊँचा है।"

अमीलिया ने व्यंग्य के साथ कहा—"स्थान उच्च है? यह भी एक सुनहला जाल है हमारी स्त्री-जाति को फाँसकर उनका गला काटने के लिये। इस आदर और सम्मान की ओट में उनका भयंकर तीक्ष्ण पंजा हमें दबोचने के लिये तैयार रहता है। हाथी के दाँत दिखाने के दूसरे होते हैं, और खाने के दूसरे।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने दुःखित स्वर में कहा—"आपके मन में इतना द्वेष है, जिसका मैं किसी भाँति निवारण नहीं कर सकता। मेरे कहने और प्रमाण देने का कोई असर नहीं पड़ सकता।"

अमीलिया ने विजयोल्लास से कहा—"सत्य छिपाने का प्रयत्न करना सदैव हास्य-प्रद होता है। यदि मैं पुरुषों की बेवफ़ाई

के कारनामे खोलूँ, तो आपको भी, हालाँकि आप पुरुष हैं, इस पुरुष-जाति से घृणा होगी। शायद आप स्वयं अपने से घृणा करने लगें।

डॉक्टर हुसैनभाई ने मुस्किराते हुए कहा—"आप माफ़ कीजिए, बख़्शिए। मैं नत-मस्तक होकर आपका कथन स्वीकार करता और मंज़ूर करता हूँ। दर असल पुरुष-जाति कठोर-हृदय और ख़ुद-ग़रज़ है। इसे स्त्रियों का ग़ुलाम बनाकर सदियों रक्खा जाय, तो शायद इसका फिरा हुआ दिमाग़ क़ाबू में आवे। और, सबसे पहले मै ग़ुलामी के दस्तावेज़ पर दस्तख़त करने को तैयार हूँ।" यह कहकर वह हँसने लगे, और अमीलिया भी हँस पड़ी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, कुछ कहने को उद्यत हुए, लेकिन कुछ सोचकर कहते-कहते रुक गए। अमीलिया ने उनके मन का संकोच देखकर कहा—"कहिए, आप क्या कहने जा रहे थे?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने इतस्ततः करते हुए कहा—"नहीं, कोई ऐसी ख़ास बात नहीं।"

अमीलिया ने उनका साहस बढ़ाते हुए कहा—"आपको कहना होगा।"

अमीलिया इस अधिकार-प्रदर्शन से स्वयं चकित हो गई, और डॉक्टर हुसैनभाई की अंतरात्मा प्रसन्नता से उमँग उठी।

उन्होंने सिर नत करके कहा—"एक बात पूछने की इच्छा है, किंतु साहस नहीं होता।"

अमीलिया ने कहा—"ऐसी कौन-सी बात है?"

उसके स्वर में उत्सुकता थी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने मंद स्वर में पूछा—"मै सिर्फ़ यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आपने कभी प्रेम किया है?"

अमीलिया उनकी ओर त्रस्त दृष्टि से देखने लगी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आप यह ख़याल न कीजिए कि मैं आपकी गुप्त बातें जानना चाहता हूँ, या किसी बुरी अभिसंधि से पूछता हूँ। अगर आप मेरा विश्वास करें, तो अपने दिल का भेद कहें। अपनी तरफ़ से तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं एक सच्चे मित्र की तरह आपकी सहायता करूँगा, और आपके दुख में शरीक होकर उसे यथाशक्ति कम करने की कोशिश करूँगा।"

अमीलिया दृष्टि नत करके पृथ्वी की ओर देखती रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई कहने लगे—"मैं कई दिनों से देख रहा हूँ, और आपको समझने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे मालूम होता है, आप किसी अकथनीय दुख से दबी जा रही हैं, और वह दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। यह तकलीफ़ और ज़्यादा है, क्योंकि आप किसी से अपना दुख कह नहीं सकतीं, यानी दूसरे शब्दों में आपका कोई मित्र नहीं। दुख अगर अपने मन में ही रक्खा जाय, तो असह्य हो जाता है, किंतु उसे किसी सहृदय मित्र से कहने से उसकी वेदना की उग्रता किसी क़दर कम हो जाती है। आप मुझे अपना मित्र समझें, और निस्संकोच अपना दुख प्रकट करें।"

अमीलिया फिर भी कुछ न कह सकी, केवल सिर झुकाए कुछ सोचती रही।

डॉक्टर हुसैनभाई ने आश्वासन देते हुए कहा—"शायद आप यह सोच रही हैं कि यह डॉक्टर भी तो पुरुष-वर्ग का एक व्यक्ति है। इससे भी मैं किसी तरह की अच्छाई की उम्मीद नहीं कर सकती। मैं पुनः आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मै नीच-हृदय नहीं हूँ। स्त्रियों की क़दर करता हूँ, और उनके अधिकारों पर ज़ोर या

ज़ुल्म नहीं करना चाहता। हालाँकि मैं मुसलमान हूँ, लेकिन स्व-तन्त्र विचारों का हूँ। मेरे जीवन के अधिक साल इँगलैंड में गुज़रे हैं—वहीं से प्रभावों से मेरे जीवन के विचार और आदर्श बने हैं। आप किसी तरह का अणु-मात्र मेरे ऊपर संदेह न करें। मैं आपको कभी धोखा न दूँगा।"

अमीलिया फिर भी उत्तर देने का साहस न कर सकी।

डॉक्टर हुसैनभाई कहने लगे—"अफ़सोस है, आप मेरा भरोसा नहीं करतीं। मैं इससे ज़्यादा कह भी नहीं सकता। आप मेरी परीक्षा करें; यदि आपको कभी मेरे ऊपर यक़ीन हो जाय, भरोसा आ जाय, तो अपने दुखों का हिस्सेदार बना लीजिएगा। मैं आपको अब अधिक विरक्त नहीं करना चाहता। केवल इतना कह देना चाहता हूँ कि आप मुझे अपना मित्र समझिएगा, और मैं हमेशा आपकी सेवा के लिये तैयार हूँ।"

यह कहकर डॉक्टर हुसैनभाई सवेग चले गए। अमीलिया को साहस न हुआ कि वह कुछ कहे, या उन्हें रोके। उसके सामने एक नया प्रश्न उपस्थित था, जिसकी दुरूहता उसे कुछ दूसरा काम करने को अवकाश न देती थी। वह सिर नत करके नवीन विचार में मग्न हो गई। चंद्रमा अब भी आकाश में मंद गति से झूमता हुआ पश्चिम की ओर प्रयाण कर रहा था, वायु अब भी अपनी शीतलता से संसार को आह्लादित कर रही थी, और चंद्रिका अवनि के साथ अब भी क्रीड़ा कर रही थी, परंतु अमीलिया अपने जीवन की गत घटनाओं को भूलने का नया प्रयत्न करने लगी।

---

७

अमीलिया टेनिस खेलने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई के बहुत कहने-सुनने और पंडित मनमोहननाथ के अनुरोध से वह खेल के मैदान में उतर पड़ी। उसके प्रतिद्वंद्वी थे डॉक्टर हुसैनभाई। वह भी किसी ज़माने में अच्छे खिलाड़ी थे, लेकिन अभ्यास न रहने से कुछ कमज़ोर पड़ते थे। अमीलिया ने जो पहले नाम कमाया था, अब उसकी छाया-मात्र थी। दोनो अपने-अपने पुराने दाँव-पेंच स्मरण कर दूसरे को हराने की चेष्टा कर रहे थे।

खेल ख़त्म होने पर पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अमीलिया अब तो उतना अच्छा नहीं खेलती, जैसा पहले खेलती थी। तुम्हारे खेलन की शक्ति में यह ह्रास क्यों?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मुस्किराते हुए कहा—"आप ह्रास कहते हैं, लेकिन मुझे तो पुराने दिन याद आ गए, जब मैं इँगलैंड में टेनिस खेला करता था। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन मिस जैकब्स को नहीं हरा सका।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"डॉक्टर, अमीलिया आज तो अपने पुराने खेल का शतांश भी नहीं खेलती। आपको पहले खेल का अंदाज़ा नहीं। पाँच-छ साल हुए, जब अमीलिया ने सारे आस्ट्रेलिया की स्त्री-खिलाड़ियों को हराकर विजय का सेहरा अपने सिर पर बाँधा था। अब तो वह खेलना बिलकुल भूल गई। आपको शायद उस टेनिस-मैच की याद नहीं, जो न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में हुआ था। ठीक है, आपको कैसे याद रह सकता है। आप तो उस ज़माने में उत्तरीय भू-खंड में हमसे बहुत दूर रहते

होंगे। यह हमारा देश समस्त विश्व से न्यारा है, जिससे कोई संपर्क नहीं रक्खा जा सकता।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"ख़ैर, अब मुझे हारने का कुछ रंज नहीं रहा, क्योंकि मैं अगर हारा, तो एक पुरानी चैंपियन से, जिससे हारने में भी जीत है।"

पंडित मनमोहननाथ हँसने लगे, और अमीलिया शरमा गई।

पंडित मनमोहननाथ ने स्वामी गिरिजानंद के साथ बँगले के अंदर जाते वक़्त कहा—"आइए डॉक्टर, हम लोग रोगी के कमरे में चलें।"

यद्यपि डॉक्टर की इच्छा जाने की न थी, किंतु बाध्य होकर जाना पड़ा।

अमीलिया अकेली रह गई। एकांत पाकर उसके मन की भावनाएँ जाग्रत् होने लगीं। वह सोचने लगी—"पंडितजी कहते हैं, मेरा खेल बिगड़ गया, और मैं कहती हूँ, मेरा जीवन बिगड़ गया। उस समय खेलने की उमंग थी, लगन थी, उत्साह था, वह समय ही दूसरा था—उस वक़्त तो मेरे मन में भी आशाओं के सुनहले महल बन रहे थे, मैं इच्छाओं के घोड़े पर सवार होकर बेलगाम दौड़ रही थी। किंतु अब क्या अवशेष रह गया है—उनकी राख भी तो बाक़ी नहीं। सब कुछ नष्ट हो गया है। आश्चर्य तो यही है कि मैं अभी तक जीवित हूँ।

"मैं क्या अभी सुखी नहीं हो सकती; वही पुराना उत्साह, वही साध, वे ही इच्छाएँ, वे ही उमंगें क्या फिर पैदा नहीं हो सकतीं? क्या प्रेम की सुमधुर वंशी का मतवाला करनेवाला गीत नहीं सुन सकती? क्या मैं इस मुरदापन को हटाकर जीवन की तरल तरंगों में स्नान नहीं कर सकती? क्या मेरे सुख-स्वप्न हमेशा के लिये नष्ट हो गए? मैं असमय वृद्ध क्यों हो गई? मैं प्रेम, प्रेम की लकीर पीटकर पागल हुई जा रही हूँ, और वह निर्दय आनंद की मलारें गा रहा है। मैं अपना जीवन नष्ट कर रही हूँ, और वह विवाह के लिये

तैयार हो रहा है। कितना विरोध है। हम दोनो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की भाँति विपरीत हैं।

मैं अपने को इस तरह नष्ट नहीं करूँगी। इस पागलपन के भूत से, चाहे जैसे हो, अपना पिंड छुड़ाऊँगी। संसार में आई हूँ, तो संसार के सुखों का उपभोग करूँगी। किसके लिये इन सबको त्याग दूँ। इन्हें त्याग देने से मुझे कौन वाहवाही मिल जायगी। अपनी चिंताओं की चिता में व्यर्थ जलना होगा। मैं अब इस पथ का त्याग करूँगी। भारतेंदु को भूल जाऊँगी, और भूल जाऊँगी अपना दुःखमय अतीत। अतीत की विस्मृति और भविष्य की चिंता-त्याग में वर्तमान जीवन का आनंद है।

"संसार एक क्रीड़ा-स्थल है, जीवन एक खेल है, और हम खिलाड़ी हैं। हार और जीत के द्वंद्व का नाम खेल है। सफलता और विफलता प्रत्येक खेल के साथ सन्निहित है, अतएव जीवन में कभी सफलता मिलती है, तो कभी विफलता। विफलता साफल्य का प्रथम रूप है। जब विफलता मिली है, तो सफलता भी अवश्य मिलेगी। अपनी हार के गीत अविराम रूप से गाना मनुष्यत्व नहीं। यह तो निष्कर्म का लक्षण है। मैं तो साथ ही निष्कर्म और कमज़ोर हो रही हूँ। अंत में सफल वही होता है, जो बार-बार गिरता है। मैं सफलता प्राप्त करूँगी।

"यह पुराना जामा त्यागकर कर्मिष्ठ का नया चोग़ा पहनूँगी। पंडितजी नया उपनिवेश बसा रहे हैं। उन्होंने मुझे एक पद पर प्रतिष्ठित करने का विचार किया है। मैं उसमें काम करूँगी। समता का रूप ही अनोखा होगा। वह एक आदर्श जीवन होगा—एक नया प्रवाह होगा। साम्य संसार का वह ढाँचा होगा, जिस पर भविष्य का साम्यवाद अपना असली रूप देखेगा। वह ईश्वर के आशीर्वाद से अमर रहेगा, और उसे बनानेवाले भी अमर रहेंगे। उन्होंने

बड़ी विशाल कार्य-प्रणाली बनाई है, जिसमें जीवन के प्रत्येक अंग का पूर्ण विकास देखने को मिलेगा, और सांसारिक जीवन के प्रत्येक पहलू का समीकरण होगा। बस, मेरे जीवन का यही कार्य-क्रम होगा। और, आज से भूल जाऊँगी अपना पुरातन वीभत्समय इतिहास।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसी समय वहाँ आकर उसके आवेश-पूर्ण अंतिम शब्द सुन लिए थे। उसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—"ज़रूर, ज़रूर।"

अमीलिया भीत दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आप घबराइए नहीं, मैंने आपके सारे उद्गार नहीं सुने, सिर्फ़ आ़ख़ीर के शब्द सुने हैं। मैं आपका भेद जानने के लिये आकुल नहीं हूँ। मेरी अभिलाषा तो केवल आपको सुखी करने की है। जिस दिन आपके चेहरे पर हँसी के चिह्न देखूँगा, वही दिन मेरी ज़िंदगी में ईद का दिन होगा।"

अमीलिया ने मलिन स्वर से कहा—"आप ऐसा क्यों चाहते हैं?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"क्या कह ही दूँ। हाँ, कहने में ही मेरा कल्याण है। ज़रूर कहूँगा, यह मौक़ा केवल सौभाग्य से प्राप्त होता है। अमीलिया, मेरी प्यारी अमीलिया, मैं तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। मेरा प्रेम इतना ऊँचा है, जितना आकाश, इतना गंभीर है, जितना सागर; इतना विशाल है, जितना ब्रह्मांड; इतना बलवान् है, जितना पवन, इतना सहनशक्तिवाला है, जितनी पृथ्वी, इतना प्रदीप्त है, जितना अनल। तुम विश्वास नहीं करोगी, देख लो, मेरा हृदय चीरकर देख लो। तुममें मैं एक आकर्षण पाता हूँ, जिससे निरंतर, अविराम रूप से, खिंचता चला आता हूँ। मैंने क्या अपने से युद्ध नहीं किया, क्या अपनी भावनाओं को दबाने का प्रयत्न नहीं किया है, क्या अपने मन के उद्दाम प्रवाह को रोकने के लिये तर्कों और युक्तियों का बाँध नहीं बाँधा? किंतु सब निष्फल हुआ, सब बेकार हुआ। मैं उत्तरोत्तर तुम्हारी ओर खिंचता गया

हूँ। यहाँ तक कि आज सचमुच भावों का सैलाब आ गया है, जिसमें विवेक के सब प्रतिबंध टूटकर गिर पड़े हैं, और मैं तुम्हारे सामने नत-जानु होकर प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ।"

वह दूसरे क्षण अमीलिया के सामने नत-जानु हो गए। उन्होंने उसका हाथ पकड़कर उसे अपने प्रेम के उद्गार से अंकित करना चाहा, किंतु अमीलिया ने उसे सवेग छुड़ा लिया। वह थर-थर काँप रही थी, उसके मुख का रंग बार-बार बदल रहा था।

उसने काँपते हुए स्वर में कहा—"नहीं, नहीं, अब वह आग मत लगाओ, जिसमें अब तक जल रही हूँ। मुझे माफ़ करो। मैं उस प्रलोभन में अब न पड़ूँगी। जो कुछ हो गया है, वही बहुत है, यही मुझे जीवन-भर कुढ़ाने के लिये पर्याप्त है। डॉक्टर, आप मुझे भूल जायँ। इसी में आपका और मेरा कल्याण है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसकी ओर दीनता-पूर्वक देखते हुए कहा—"ऐसा साफ़ उत्तर मत दो। कम-से-कम थोड़ा-सा सहारा तो ज़रूर दो, जिसके अवलंब से मैं कुछ दिन तक, नहीं, जीवन की अंतिम घड़ी तक, प्रतीक्षा तो कर सकूँ। यदि उस दिन मेरी आशा पूर्ण नहीं होगी, तो सुख से मर सकूँगा। क्योंकि महशर में मिलने की उम्मीद बँधी रहेगी। तुमको मुझे इतनी आशा तो ज़रूर देनी होगी।"

अमीलिया ने दोनो हाथों से अपना मुख छिपा लिया, और कहा—"डॉक्टर, मुझे माफ़ करो, मेरी आशा मत करो। मैं प्रेम का राज्य हमेशा के लिये खो चुकी हूँ, अब उसमें प्रवेश करने का अधिकार नहीं। मुझे भूल जाओ, और किसी अन्य स्त्री से प्रेम कर अपना जीवन सफल करो।"

यह कहकर, वह तेज़ी से दौड़कर डॉक्टर हुसैन भाई की दृष्टि से ओट हो गई। वह हत-बुद्धि होकर श्यामली संध्या की ओर देखने लगे, जो संसार के साथ-साथ उनके हृदय में भी निराशांधकार ला रही थी।

---

८

मालती ने अपने पिता सर रामकृष्ण के कमरे में प्रवेश किया। उस वक़्त वह ज़रूरी काग़ज़ात देखने में लीन थे। उसे सामने देखकर उन्होंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से पूछा—"क्या काम है?"

मालती ने कुछ उत्तर न दिया।

सर रामकृष्ण ने काग़ज़ों की फ़ाइल एक ओर रख दी।

उन्होंने स्नेह के साथ पूछा—"क्या कहना चाहती है मालती! कहती क्यों नहीं? कहने के लिये तो यहाँ तक आई है, और कहती नहीं। क्या आज तुम्हारी मा से फिर कुछ कहा-सुनी हो गई?"

मालती ने उनकी ओर न देखकर कहा—"जी नहीं, मैं आज एक प्रार्थना करने के लिये आई हूँ।"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"अच्छा, सुनूँ, तुम्हारी वह क्या प्रार्थना है?"

मालती ने उत्तर दिया—"मैं चुनाव में खड़ी होना चाहती हूँ।"

सर रामकृष्ण बड़े वेग से हँसने लगे।

मालती लज्जित हो गई।

सर रामकृष्ण ने हँसते हुए पूछा—"प्रांतीय कौंसिल के चुनाव में या एसेंबली में? कहाँ के लिये खड़ा होना चाहती हो?"

मालती ने उत्तर दिया—"एसेंबली के चुनाव में खड़ी होना चाहती हूँ।"

सर रामकृष्ण ने गंभीरता धारण करते हुए पूछा—"क्या सत्य ही तेरा इरादा एसेंबली के लिये चुनाव में खड़े होने का है?"

मालती ने सिर नत किए हुए उत्तर दिया—"जी हाँ, मेरी

इच्छा तो यही है, फिर अगर आपकी अनुमति न होगी, तो न खड़ी होऊँगी।"

सर रामकृष्ण ने सस्नेह उत्तर दिया—"मालती, मै इससे बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम्हारे मन में यह इच्छा जागरित हुई। मै तुम्हारा उत्साह भंग नहीं करना चाहता। तुम अवश्य खड़ी हो, और मुझे आशा है, तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी। स्वदेश-सेवा के लिये प्रत्येक स्त्री-पुरुष को कटिबद्ध रहना चाहिए।"

मालती का मुख प्रसन्नता से प्रदीप्त हो गया। उसने धीमे स्वर में कहा—"अम्माजी को राज़ी कर लीजिएगा। वह ज़रूर आपत्ति करेंगी। मैंने अभी तक उनसे ज़िक्र नहीं किया।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराकर कहा—"यह मुझसे नहीं होने का। उन्हें तुम्हीं समझाना-बुझाना। हाँ, मैं दूसरी तरह से तुम्हारी सहायता ज़रूर करूँगा।"

मालती ने हँसते हुए कहा—"उन्हें यह सब कुछ पसंद नहीं। चुनाव में खड़े होने का सवाल उठाते ही वह उबल पड़ेंगी, और मेरा पूर्ण विरोध करेंगी। आप ही उनको समझा-बुझाकर राज़ी कर लीजिए। इस बार मैं ज़रूर एसेंबली में जाऊँगी।"

सर रामकृष्ण ने उत्साह-पूर्ण स्वर में कहा—"इससे मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। मैंने तुम्हें पुत्र की भाँति शिक्षित किया है। तुममें प्रतिभा है, उसे विकसित होने का अवसर देना मेरा कर्तव्य है। तुम्हारी यशोवृद्धि से मेरा मुख भी उज्ज्वल होगा। अफ़सोस सिर्फ़ इतना है कि तुम्हारी मा जिहालत की मूर्ति हैं। वह ये बातें न तो खुद समझती हैं, और न समझाने से मानती हैं। वह पुरानी रूढ़ियों की अंध-भक्त हैं।"

इसी समय लेडी चंद्रप्रभा ने उस कमरे में प्रवेश किया।

उनको देखकर सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"देखो, वह

स्वयं आ गईं। मेरे सामने ज़रा कहकर तमाशा देखो।" यह कह-कर वह हँसने लगे। मालती भी हँसने लगी। लेडी चंद्रप्रभा कुछ विस्मित होकर पिता-पुत्री की हँसी देखने लगीं।

लेडी चंद्रप्रभा ने रुष्ट होकर कहा—"क्या बात है, जो बाप-बेटी इस क़दर हँस रहे हैं?"

सर रामकृष्ण ने हँसना बंद कर कहा—"हम लोग तुम्हारा गुणगान कर रहे थे। हँसी इसी बात को सोचकर आई कि जहाँ तुम्हारी चरचा छिड़ी कि तुम शैतान की तरह मौजूद हो जाती हो।" यह कहकर सर रामकृष्ण फिर हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने सक्रोध कहा—"यदि तुम बाप-बेटी को मन-चाहा करने दूँ, तो मैं शैतान न कहलाकर देवी कहलाऊँ! क्यों, यही बात है न? मेरी ज़िंदगी में यह नया चलन न चल सकेगा, मेरे मरने के बाद मन-चाहा करना, मैं मना करने न आऊँगी।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"तारीफ़ तो यह है, जब तुम मरने के बाद भी भूत बनकर हम लोगों को मन-चाहा न करने दो।"

वह हँसने लगे, और लेडी चंद्रप्रभा बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोक सकीं। मालती खिड़की के बाहर देखने लगी।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"भूत बनकर उस वक़्त ज़रूर लगती, जब तुम कभी मेरी सौत ले आते। उस वक़्त मज़ा मालूम होता।"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"घबराइए नहीं, वह मौक़ा भी बहुत जल्द आ जायगा। हमारी मालती इस साल एसेंबली की सदस्या होगी, और हिंदू-समाज के लिये तलाक़ का बिल पास कराएगी; बस, उस वक़्त मैं तुमको तलाक़ देकर बड़ी धूमधाम से दूसरा विवाह इस बुढ़ापे में करूँगा।"

मालती सुनकर चौंक पड़ी। अपने मन का गुप्त भाव कहीं प्रकट न हो जाय, इस भय से वह कमरे के बाहर जाने लगी।

सर रामकृष्ण ने उसे जाते देखकर कहा—"मालती, कहाँ जाती है। अपनी अम्मा से एसेंबली में खड़े होने के लिये आशीर्वाद तो ले ले।"

मालती ने आदेश का पालन किया।

लेडा चंद्रप्रभा ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"अब एसेंबली का नाटक खेलने की तैयारी की है। मालूम होता है, पिता-पुत्री मिल-कर इसी बात के मंसूबे बाँध रहे थे। अब ठीक है, बाप सरकार का होम-मेंबर है, और बेटी क़ानून बनानेवाली समिति की सदस्या होगी। अब डर क्या है। दोनो मिलकर ख़ूब ग़रीबों का गला घोटो, और उन पर करों का बोझ लाद दो, जिससे उन्हें रोटी न मिल सके, जो अभी तक थोड़ी-बहुत मिलती है। तलाक़-बिल पास करा-कर हिंदू-समाज का कलंक धो डालो, ताकि घर-घर में पति और पत्नी में विद्वेष की आग जल उठे, जिसमें दांपत्य जीवन का सुख भस्म हो जाय। अभी तक जो पति इस घृण्य प्रथा के प्रचलित न होने से, या अपना भाग्य-विधान समझकर मजबूरी के साथ पत्नी के प्रति सब्र कर लेता है, और गृहस्थ होकर जीवन व्यतीत करता है, अब इस बिल के पास होने से खुल्लम-खुल्ला ज़रा-सी बात पर रूठकर, ज़रा-सा दुर्व्यवहार होने पर, तलाक़ देकर अपनी निवृत्ति करा लेगा—और इस तरह समाज में वेश्यावृत्ति की प्रथा अबाध गति से प्रचलित हो जायगी। विवाह की पवित्रता नष्ट हो जायगी, तथा मनुष्य-जीवन पशु-जीवन के समान हो जायगा। एक यही बाक़ी रहा है, अब उसको भी तुम लोग नष्ट कर डालो।"

सर रामकृष्ण ने गंभीरता के साथ कहा—"अभी स्त्री और पुरुष बड़े सुखी हैं न? आजकल देखो, कैसे-कैसे अनमेल विवाह हो रहे हैं, लड़का तो शिक्षित है, और लड़की देखने और तमीज़ में बिलकुल भैंस! अब तुम्हीं कहो, यह बेमेल गाड़ी कब तक चल सकेगी। दूर

क्यों जाओ, तुम अपना ही उदाहरण ले लो, कहाँ तुम दक़ियानूसी और कहाँ मैं नई रोशनी का। हमारी-तुम्हारी क्या कभी पटी है ?"

लेडी चंद्रप्रभा ने जोश में आकर कहा—"ठीक है, यह मुझे अभी तक न मालूम था कि ऐसी सुंदर गाड़ी, नहीं-नहीं, लैंडो में मैं भैंस होकर जुती हुई हूँ, जिससे लैंडो या फ़िटन की सारी शान किर-किरी हो गई है। लेकिन यह भी याद रखिएगा कि गृहस्थी भैंसों के सहारे ही चलती है, अरबी घोड़ों से नहीं। वे तो सिर्फ़ बेलगाम भागने के अर्थ के हैं, जिनका बाह्य रूप तो सुंदर है, मगर ताक़त में, परिश्रम में सर्वथा पोच हैं। वे सिर्फ़ तीन-चार आदमियों को ही थोडी दूर ले जाकर पस्त हो जायँगे, मगर भैंसा २५-३० मन बोझ सुबह-शाम तक घसीटा करे, फिर भी न थकेगा।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"लेकिन ज़माना यह तो नहीं कहता। समय कह रहा है, बदल जाओ। और, हमको पश्चिमीय आदर्श के सहारे बढ़ना पड़ेगा, यदि हम इस दुनिया में जीवित रहना चाहते हैं। गृहस्थी का बोझ सँभालना और उसका परि-चालन ही सब कुछ नहीं, इसके अतिरिक्त भी तो हम कुछ चाहते हैं। उसकी पूर्ति न होने से जीवन का सौख्य तो नष्ट हो जाता है, फिर गृहस्थी सँभालकर ही क्या करना है ?"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"बहुत ठीक, गृहस्थी-परिचालन के अतिरिक्त जो वस्तु आप चाहते हैं, क्या उससे आपका पेट भर जायगा ? पेट की समस्या सबसे पहले है। ये रँगरेलियाँ उसी वक्त सूझती हैं, जब पेट भरा होता है। स्त्री का प्रथम कर्तव्य पति, पुत्र, सास और ससुर की क्षुधा तृप्त करना। जो स्त्री इससे वंचित है, उसका नारी-जीवन निरर्थक है। उन दूसरी वस्तुओं की ख़्वाहिश आप पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से करते हैं, किंतु क्या कभी आपने यह भी विचारा है कि आया वे हमारे समाज के लिये उपयुक्त

हैं ? उन्हीं का समाज देख लो, उसके दुष्परिणाम भी देख लो। मुझे कहते हुए शर्म आती है। उन लोगों ने पवित्रता को किस तरह नष्ट कर दिया है। अमेरिका और रूस तो सबमें बाज़ी मार ले गए। एक जगह हर तीसरा विवाह तलाक़ में समाप्त होता है, और दूसरी जगह तो विवाह बंधन को भी, जो नाम-मात्र था, बिलकुल उड़ा दिया गया है। अब ठीक है, पशुओं की श्रेणी में आ गए। क्या पश्चिमीय शिक्षा के इन्हीं पद-चिह्नों पर चलकर हिंदू-समाज की प्राचीनता का पाप धोया जायगा ? क्या यही जीवन और शिक्षा के विकास का अर्थ है ? क्या यही अतृप्ति, असंतोष, द्वेष और कलह जीवन को सुखमय बनाने के साधन हैं ?"

उनके स्वर में तीव्र कटुता थी, जिसने सर रामकृष्ण को थोड़े समय के लिये स्तंभित कर दिया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने हँसकर कहा—"अरे, तुमने कहना बंद क्यों कर दिया—"तुममें व्याख्यान देने की अपूर्व क्षमता है, यह मुझे आज मालूम हुआ। अब ठीक रहेगा, मा-बेटी दोनो एसेंबली में निर्वाचित होकर जायँ। बेटी तो नई रोशनी के प्रभाव को तलाक़-बिल प्रवेश करके प्रदर्शित करे, और मा उस बिल की धज्जियाँ उड़ाकर अपना दक़ियानूसीपन बखान करे, और मैं तुम दोनो की लड़ाई देखकर अपना दिल ख़ुश करूँ।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"अपने लिये क्या अच्छा काम निकाला ! फ़ज़ीता तो हम लोगों का हो, और ख़ुद मलारें गावें।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"भई, क्या करूँ, दो बिल्लियों की लड़ाई में बंदर हमेशा फ़ायदे में रहता है।"

लेडी चंद्रप्रभा हँस पड़ीं। मालती भी हँसने लगी।

सर रामकृष्ण ने फिर कहा—"इसके अलावा न मुझमें इतनी हिम्मत है कि मैं तुम्हारा मुक़ाबला कर सकूँ, और मालती तो मेरी

बेटी है, जिससे हमेशा ख़ूब पटती आई, इसलिये बक़ौल श्रीकृष्ण भगवान्, समन्वय में मेरा कल्याण है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने रुष्ट होकर कहा—"यह सब अकथ्य कहकर मेरे ऊपर अपराध लादते हो। अगर कोई सुन ले, तो क्या कहे ?"

सर रामकृष्ण ने तुरंत कहा—"यही तो कहेगा कि होम मेंबर के ऊपर भी कोई दबंग गवर्नर है। इसमें कुछ भी झूठ नहीं। बाहर नौकरी में था है, और घर में भी।" यह कहकर वह हँस पड़े। लेडी चंद्रप्रभा भी अपनी हँसी न रोक सकीं।

लेडी चंद्रप्रभा ने गंभीर होते हुए कहा—"जब बात आज चल पड़ी है, तो कह डालना ठीक है। मैं आजकल की बातें देखकर कह सकती हूँ कि अगर ये विदेशी भाव न रोके जायँगे, या विदेशी शिक्षा को जब तक भारतीय ढाँचे में न ढाला जायगा, तब तक हिंदू-समाज का कल्याण नहीं हो सकता। वह रसातल की ओर जा रहा है, और उस गर्त में गिरकर अपनी असलियत खो बैठेगा।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"अरे, तुम तो दौड़कर उसे रसातल में जाते हुए रोको !"

लेडी चंद्रप्रभा ने गंभीरता से कहा—"मैं परिहास नहीं करती, सत्य कहती हूँ। अनतिदूर में हिंदू-समाज नष्ट हो जायगा, कम-से-कम अपनी संस्कृति का निजत्व तो ज़रूर खो बैठेगा।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"कैसे ? अगर देश-काल के अनुसार समाज को अपने काम लायक़ व्यावहारिक बनाना या उसे नष्ट करना है, तो अवश्य हिंदू-समाज नष्ट होगा, और उसके नष्ट होने में ही कल्याण है।"

उनके स्वर में विरोध का तीव्र भाव था।

लेडी चंद्रप्रभा ने शांत स्वर में कहा—"मैं मानती हूँ, परिवर्तन केवल जीवन के विकास का दूसरा नाम है। परंतु परिवर्तन कैसा ?

जैसे हम कपड़े बदलते हैं, लेकिन शरीर वैसे ही रहता है। आप तो हमेशा विदेशी काट-छाँट के कपड़े पहनते हैं। यह तो कहिए कि वे क्या आपके शरीर को सुख देते हैं? उनकी ज़रूरत वहीं है, जहाँ के लिये वह काट-छाँट आविष्कृत हुई है। इसी प्रकार हमारे समाज के लिये विदेशी चारजामा ज़ेबा न देगा, उसकी रूप-श्री उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे हाथी के ऊपर ऊँट की काठी।"

सर रामकृष्ण हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने उनके हँसने की परवा न की, और कहने लगीं—"हरएक समाज में केवल दो व्यक्ति हैं—एक स्त्री और दूसरा पुरुष। इन्हीं दोनो के युग्म का नाम समाज है। इन दोनो के संबंध की जटिलता ही समाज की जटिलताएँ हैं—उसके विचारने और निर्णय करने के प्रश्न हैं। आज भी उसी प्रश्न को हल करने के लिये आप लोग व्याकुल हैं। किस प्रकार इन दोनो के संबंध और व्यवहार का समीकरण हो, बस, यही प्रश्न प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में रहा है।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है। ईश्वर की सृष्टि में यही दो प्रकार के जीव हैं। उनके पारस्परिक संबंध का निर्णय करना हमारी समस्या रही है। चलिए, मैं मानता हूँ।"

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"इस प्रश्न को हमारे हिंदू-समाज में बड़े सुचारु रूप से हल किया गया है। एक वस्तु जब दो झगड़ते हुए मनुष्यों को बराबर बाँट दी जाती है, तब कोई झगड़ा नहीं रहता। जब तक किसी के पास कमोवेश है, तब तक विग्रह, युद्ध और कलह न मिटेगा। एक घर में दो भाई, जब तक एक दूसरे के अधिकार पर हावी न होंगे, उनमें कोई झगड़ा न होगा। उसी प्रकार हमारे हिंदू-समाज में अधिकारों का समन्वय हो गया है। पति का स्थान और उसका अधिकार-क्षेत्र अलग है, जहाँ वह एक सीमा तक

स्वतंत्र है। पत्नी का अधिकार-क्षेत्र भी स्वतंत्र है। परंतु दोनो एक हैं, दोनो एक दूसरे पर निर्भर हैं, और एक दूसरे के वशीभूत। अपनी-अपनी सीमा के अंतर्गत रहकर दोनो एक दूसरे पर शासन करते हैं। उस शासन का सूत्र दंड, घृणा, वैमनस्य, भय, क्रोध और विद्वेष पर अवलंबित नहीं, वह तो प्रेम, स्नेह, अनुराग, भक्ति, क्षमा, दया, त्याग और शांति में निहित है। पति यदि अपराध करता है, तो पत्नी क्षमा करती है, और अगर पत्नी अपराधिनी होती है, तो पति उसे भूल जाता है। दोनो को एक दूसरे के प्रति सहानुभूति होती है, एक दूसरे के प्रति संतोष और साधना होती है। पहले दो व्यक्ति बिलकुल अनजान होकर मिलते हैं, दोनो में नव-मिलन की आकांक्षा होती है, नव उमंगों से खेलने की इच्छा होती है। दोनो दो चुंबक पत्थर की भाँति एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर एक हो जाते हैं, फिर दोनो उस मुग्धावस्था को त्यागकर कर्मिष्ठ संसार में प्रवेश करते हैं, जहाँ दोनो के लिये अलग-अलग कर्म उपस्थित हैं। वे अपने पार्थक्य को समझने लगते हैं, लेकिन उस मुग्धावस्था में जिन सुनहली ज़ंजीरों से बँध गए थे, वे धीरे-धीरे दृढ़ होती जाती हैं, और उस पार्थक्य भाव को मिटाकर पुनः एक हो जाते हैं। यही हिंदू-समाज का व्यावहारिक और वास्तविक रूप है, जिसके प्रभाव से वह अभी तक जीवित है, और जब तक एक भी नारी और पुरुष रहेगा, जीवित रहेगा।"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—"वाह पंडितानीजी! इतने दिनों बाद तुम्हारा मूल्य खुला है। मुझे तो तुम्हारी हाँ में हाँ मिलानी ही पड़ेगी, मगर मालती इससे सहमत होगी, यह कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने सरोष कहा—"इसका उत्तरदायित्व तो तुम्हारे ऊपर है। तुमने उसके दिमाग़ में पश्चिमीय विचार भर दिए हैं,

जिनका विषमय प्रभाव उस समय नष्ट होगा, जब उसके कोई ठोकर लगेगी।"

मालती सिहर उठी, और सर रामकृष्ण भी विराग-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"मैं कोई शाप नहीं देती, सिर्फ़ इसका फल बतलाती हूँ।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"नहीं, तुम्हें यह न कहना चाहिए। अब अगर उसका कल्याण हृदय से चाहती हो, तो उसे एसेंबली के लिये खड़े होने की अनुमति दो, और मा की तरह आशीर्वाद दो कि वह सफल होकर हमारा मुख उज्ज्वल करे। क्या स्त्रियों को शासन-प्रबंध में हाथ बटाने का अधिकार नहीं?"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"अवश्य है। मैं इसका विरोध नहीं करती। जब पिता की अनुमति हो गई, तब मा की तो पहले मिल गई समझना चाहिए। मैं आशार्वाद देती हूँ कि वह सफल हो, और उसकी प्रतिभा का विकास हो।"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्नता-भरी दृष्टि से मालती की ओर देखा। पिता-पुत्री दोनो मुस्किराने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा दूसरे कमरे में चली गईं और उनके पीछे-पीछे मालती भी प्रहृष्ट मन से चली गई।

---

## ९

आभा ने सवेग मालती के कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"बधाई है, मुबारक हो !"

मालती ने मुस्किराते हुए पूछा—"आखिर बात क्या है, जो इस प्रकार दानी कर्ण की तरह मुबारकबाद लुटा रही हो ? अभी भारतेंदु बाबू से विवाह तो नहीं हुआ, मालूम होता है, सब कुछ तय हो गया है। इसी वजह से इतनी खुश हो रही हो।"

आभा ने हर्ष से उसके गले से लिपटते हुए कहा—"मेरे विवाह की बात छोड़ो।"

मालती ने बीच ही में बात काटकर कहा—"क्योंकि तुम्हारा तो आध्यात्मिक विवाह है, पूर्व-जन्म का संसर्ग है ?"

आभा ने लजाकर कहा—"उस दिन से तो तुमने मेरी बात गिरह बाँधकर पकड ली। यों टालने की कोशिश मत करो। आज तो मैं भर पेट मिठाई खाऊँगी—"ब्राह्मण की लड़की हूँ, आशीर्वाद भी दूँगी।"

मालती और आभा दोनो हँसने लगीं।

आभा फिर कहने लगी—"आज मैंने पहले ही तुम्हारा ख़त खोलकर पढ़ लिया है, तुम्हारे पूछने की ज़रूरत नहीं रक्खी।"

मालती ने अपने मन का भाव दबाते हुए कहा—"पढ़ लिया, अच्छा किया। अपने-अपने प्रेमी का पत्र सब कोई पढ़ता है, इसमें कहने की कौन बात है ?"

आभा ने शरमाकर कहा—"तुम कैसी अकथ्य बात कहती हो ? वह मेरे पूजनीय हैं।"

मालती ने हँसकर कहा—"तुम्हारे लिये भले ही पूजनीय हों, लेकिन मेरी दृष्टि में तो वह बहुत नीचे हैं।"

आभा ने उत्तर दिया—"ऐसा ही होता है। 'घर की मुरग़ी दाल-बराबर।' मालती, तुम क्या सचमुच उनकी क़द्र नहीं करतीं, या सिर्फ़ मुझे चिढ़ाने के लिये कहती हो?"

उसके स्वर से वेदना झाँक रही थी।

उसका प्रश्न सुनकर मालती का मुख विवर्ण हो गया।

आभा ने उसे लक्ष्य कर कहा—"सच क्यों नहीं कहतीं, मुझसे भी अपना भेद छिपाती हो!"

मालती ने नत दृष्टि से कहा—"तुमसे क्या छिपाऊँगी?" फिर मलिन हँसी के साथ कहा—"कुछ नहीं।"

आभा ने गंभीर होकर कहा—"मालती, कहो, क्या बात है? मैं आज कई दिनों से देख रही हूँ कि तुम हँसती हो, लेकिन दिल खोलकर नहीं; बोलती हो, लेकिन प्रसन्न मन से नहीं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तुम मुझसे, अपने बंधुओं, अपने आत्मीयों और शायद स्वयं अपने से कपट कर रही हो। इसका कारण कुछ समझ में नहीं आता। यह दोमुहाँ जीवन क्यों व्यतीत कर रही हो? इसका रहस्य तुम्हें आज खोलना होगा।

मालती ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"कुछ नहीं, यह सब तुम्हारा भ्रम है। आजकल तुम्हारे बजाय दो के चार आँखें हो रही हैं, इसलिये ज़्यादा दिखाई पड़ता है।"

आभा ने कहा—"मेरे अभी तो दो ही आँखें हैं, चार जब होंगी, तब देखा जायगा। परंतु तुम्हारे तो अभी, इसी समय, चार हैं, जिन्हें हुए क़रीब आठ या नौ महीने बीत गए।"

मालती ने तुरंत जवाब दिया—"मेरे तो सिर्फ़ दो ही आँखें हैं, दो तो फूट गई हैं।"

आभा ने सप्रेम एक हल्की चपत लगाते हुए कहा—"चुप रहो, क्या बकती हो, कैसी अशुभ बात अपने मुँह से निकालती हो।"

मालती ने शरमाते हुए स्वर में उत्तर दिया—"आँख फूटने से कोई मेरा अशुभ तात्पर्य नहीं। आँख फूटने से अर्थ है—दृष्टि-विहीन। मैं सचमुच उनकी ओर से दृष्टि-विहीन हूँ।"

आभा ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"मालती, क्यों ग़ज़ब करती हो। भगवान् की देन पर लात न मारो। उनका-जैसा प्रेम करनेवाला इस जगत् में ढूँढ़ने से मिलेगा। उस दिन मैंने उनका पत्र पढ़ा था, और आज अभी पढ़ा है। उसे पढ़ने से पत्थर का कलेजा भी एक बार हिल जायगा। उनका एक-एक शब्द प्रेम से प्लावित है, उनका प्रेम निःसीम है, अनंत और अगाध है। ऐसा प्रेम करने-वाला व्यक्ति क्या संसार में है? बार-बार यही प्रश्न उठता है। मालती, तुम उनकी क़द्र नहीं करतीं, यह तुम्हारी भूल है, शायद जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी।"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुप रहकर आभा की ओर देखने लगी।

आभा कहने लगी—"मेरी ओर क्या देखती हो? मैं झूठ नहीं कहती। आज का पत्र तो ऐसा ही है, जिससे रोना आ जायगा। दुष्ट, तुमने अभी तक उस पहले पत्र का उत्तर भी नहीं दिया! उफ़्! मालती, तुम कितनी निष्ठुर हो, तुम पहले तो ऐसी हृदय-हीन नहीं थीं। यह परिवर्तन कैसे घटित हुआ। तुम पशु कब से बन गईं। वाह री मालतीदेवी, कोई तो कुढ़-कुढ़कर मरे, और कोई परवा भी न करे!"

मालती ने मलिन हँसी के साथ कहा—"यह तुम्हारा झूठा इल-ज़ाम है, आभा।"

आभा ने सरोष कहा—"झूठा इलज़ाम! क्या तुम अपने हृदय

पर हाथ रखकर कह सकती हो कि मेरा कथन मिथ्या है। ज़रा कहो, तो देखूँ।"

मालती मलिनता के साथ मुस्किराने लगी।

आभा ने दुःखित स्वर में कहा—"मुझे शोक है, तुम एक देवता की इतनी अवहेलना करती हो। देखो, वह तुम्हें क्या लिखते हैं।"

यह कहकर वह कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह का दूसरा पत्र पढ़ने लगी। मालती ने कोई आपत्ति नहीं की। वह सुनने लगी—

"प्राणोपम प्रियतमे,

प्रतीक्षा करते-करते लगभग एक महीना बीत गया, किंतु तुम्हारा पत्र मिलने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ। मैं कभी-कभी, नहीं रोज़ यह सोचता हूँ कि इसमें अपराध किसका है? तो मुझे अपना ही मालूम होता है, और फिर सब्र कर लेता हूँ। अपने अपराध का यदि दंड मिले, तो शिकायत किससे और क्यों की जाय। उसकी बाबत किसी अन्य को दोष देना नितांत अन्याय है। मैं जानता हूँ, मैं कैसा अपराधी हूँ, किंतु क्या किया जाय, मेरा मन अपने आपे में नहीं रहता। रह-रहकर यह इच्छा जाग उठती है कि मैं तुमसे कहूँ कि मेरा अपराध क्षमा करो। अपनी कुशलता की केवल दो पंक्तियाँ लिख देने से मेरा ऐसा कल्याण होगा, जैसा स्वाती के जल से चातक का होता है। मुझे यह भी अवगत है कि वामन आकाश छूने का अगर प्रयत्न करेगा, तो संसार आकाश को तो नहीं, बल्कि उस मूर्ख को अवश्य हँसेगा।

"क्या तुम इतनी कठोर-हृदया हो सकती हो? मन को विश्वास तो नहीं होता। जो इतना सुंदर, भव्य, कोमल, मनोहर और अभिराम है, वह कभी हृदय-हीन नहीं हो सकता। यह मेरा भ्रम है, जो मैं ऐसा विचार करूँ। सौंदर्य में कुरूपता हो नहीं सकती, प्रकाश में अंधकार और अमृत में विष नहीं हो सकता, इसलिये तुममें

कठोरता हो नहीं सकती। स्वीकार करना पड़ता है, यह भी मेरा अपराध है।

"तुमसे क्षमा-प्रार्थना करना अपने अपराध की गुरुता बढ़ाना है, सूखे घाव को कुरेदकर हरा करना है, और शायद तुम्हारा उपहास करना है। इसलिये मैं क्षमा-प्रार्थना भी नहीं कर सकता।

"मेरे जीवन की रानी, तुम्हीं मेरे जीवन का उपाय बताओ। मेरा आश्रय, मेरा आधार तुम हो। मैं इससे अधिक कुछ माँग नहीं सकता कि एक मित्र के नाते तो कभी-कभी याद कर लिया करो। मुझे इसी में संतोष मिल जायगा। और क्या लिखूँ ?

तुम्हारा ही<br>कामेश्वर"

पत्र समाप्त कर आभा ने कहा—"सुना निष्ठुर! अब कहो, तुम्हारी हृदय-हीनता का कुछ ठिकना हो सकता है। अब क्या मेरा इलज़ाम झूठा है ?"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आभा ने कहा—"लिखो, अभी-अभी इसका उत्तर लिखो। कल या परसों उन्हें मिल जाय। उनका हृदय दुखाकर क्या तुम सुखी होने की आशा कर सकती हो ?"

मालती ने धीमे स्वर में कहा—"आभा, मेरे भाग्य में सुख नहीं।"

उसका कंठ-स्वर विषाद से पूर्ण था। आभा सिहरकर उसकी ओर देखने लगी। उसने व्याकुलता से पूछा—"क्यों, तुम्हारे भाग्य में सुख नहीं ?"

मालती अपने हृदय की वेदना दबा रखने में सफल नहीं हुई। उसकी आँखों से उसके हृदय का आवेग निकलने लगा। उपाधान में मुँह छिपाकर वह रोने लगी। आभा बड़ी व्याकुलता से उसकी

ओर देखने लगी। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"मेरी प्यारी मालती, तुम इतनी दुखी क्यों हो? अपने दुःख का कारण मुझसे बतलाना ही होगा।"

उसके स्वर में विनय थी, और प्रेम का दबाव था।

मालती ने झिझकते हुए कहा—"आभा, मैं तुम्हें नहीं बतला सकती, प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ।"

आभा ने साश्चर्य कहा—"प्रतिज्ञा-बद्ध कैसे? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

मालती ने उत्तर दिया—"तुम इस भेद को नहीं समझ सकतीं, और इसे न जानने में ही तुम्हारा कल्याण है।"

आभा ने विस्मय के साथ कहा—"मालती, तुम एक कठिन पहेली की भाँति मुझे मालूम होती हो। आज तक ऐसा परिवर्तन तो तुममें नहीं देखा।"

मालती ने अपने आँसुओं को रोककर कहा—"क्या कहूँ, आभा! जो सर्वदा भार होकर मेरे उर पर रहता है, उसे मैं अपने अंतरंग मित्र, माता-पिता से भी कहने योग्य नहीं हूँ। एक आततायी ने, जिसने मेरा सर्वनाश किया है, उसने इस भेद को छिपा रखने की प्रतिज्ञा करा ली है, और यह भी धमकी दी है कि भेद खुलने पर वह मेरा प्राणांत करेगा। धमकी की तो मुझे परवा नहीं, किंतु अपनी प्रतिज्ञा का मुझे ख़याल है। मैं अवश हूँ आभा, नहीं तो..."

आभा की उत्सुकता चरम सीमा को पहुँच गई थी। उसने कहा—"तुम्हारी सब बातें किसी प्रहेलिका से कम नहीं। अच्छा, अगर सब बातें साफ़-साफ़ नहीं कह सकतीं, तो क्या कुछ संकेत भी नहीं कर सकतीं?"

मालती ने मलिन हँसी के साथ कहा—"वह भी तो कहने के बराबर है।"

आभा ने पूछा—"क्या इस भेद को वह जानते हैं ?"

मालती ने उत्तर दिया—"हाँ, उनके सामने मुझसे प्रतिज्ञा कराई गई थी। इसमें उनकी अनुमति थी या नहीं, यह मैं नहीं जानती।"

आभा ने पूछा—"अच्छा, यह प्रतिज्ञा किसने कराई थी ?"

मालती ने कहा—"मेरे ससुरजी ने।"

आभा ने पूछा—"क्यों ?"

मालती ने उत्तर दिया—"जिसमें यह भेद तीसरे के कान में न जाय, चाहे वह मेरे कितने ही निकट क्यों न हो।"

आभा ने कहा—"क्या वह ऐसा गुप्त भेद है ?"

मालती ने कहा—"दरअसल भेद-जैसी तो कोई बात नहीं है, मगर राजा-महाराजों की बहँक तो मशहूर ही है—ऐसी एक बहँक यह भी है।"

आभा ने पूछा—"अच्छा, इस भेद से किसका संबंध है ?"

मालती ने कहा—"उनसे, और किससे।"

आभा विचार मे पड़ गई।

मालती ने कहा—"इस क़िस्से को अब जाने दो। इसे जानने से तुम्हें भी दुख होगा, और मेरे ऊपर तुम्हारी दया जागरित होगी। मैं किसी की दया की भिखारिन नहीं होना चाहती।"

आभा और अधिक विचार में पड़ गई।

मालती ने फिर कहा—"संसार का कोई मनुष्य सब प्रकार से सुखी नहीं हो सकता, आभा। सुख की हीनता ही मनुष्य में ज्ञान-संचार करती है, और एक दूसरे के प्रति सहानुभूति। मेरे हृदय में एक भीषण तूफ़ान उठा हुआ है, जिसे शांत करना असंभव है। तुम कहती हो, मैं उन्हें कुढ़ा रही हूँ, और अगर मैं यह कहूँ कि उन्होंने मुझे जन्म-भर कुढ़ाने के लिये मेरे साथ विवाह किया, तो तुम क्या कहोगी ?"

मालती प्रश्न-भरी दृष्टि से आभा की ओर देखने लगी।

वह फिर जोश के साथ कहने लगी—"आभा, अभी तक तुम कल्पना के सुंदर संसार में भ्रमण करती हो, पूर्व-जन्म के प्रेम का सुख-स्वप्न कल्पना के अंतर्गत देखकर उसी की सुनहली प्रभा में भूली हुई मुग्ध होकर देख रही हो। जब संसार में प्रवेश करोगी, तब तुम्हें मालूम होगा कि पुरुष-जाति कितनी हृदय-हीन है। वह हमारी जाति को केवल अपनी इच्छा-तरंगों का अनुगामी समझकर उन्हें किसी रूप में, अपने सुख के लिये, इस्तेमाल करने का अधिकारी समझता है। वह हमको अपनी ज़रा-सी बात के लिये बलिदान पर चढ़ाने में तिल-मात्र संकोच न करेगा। आभा, मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम मुझे ही दोष देती हो, लेकिन उन लोगों ने जो मेरे साथ दग़ा और छल किया है, उसे जानकर क्या उन्हें दोष न दोगी! यदि मैं कह दूँ, तो तुम घृणा से प्लावित होकर उन्हें सहस्रों दुर्वचन कहोगी, जिन्हें सुनने से मेरी मर्यादा नष्ट होगी।"

आभा के विस्मय का अंत न रहा। उसने कहा—"भगवान् जाने, वह कौन-सा भेद है।"

मालती ने खीझकर कहा—"हाय मूर्ख, तू अब भी नहीं समझी!"

उसका स्वर करुणा से पूर्ण था।

आभा ने विमुग्ध भाव से कहा—"नहीं, मैं अब भी नहीं समझी।"

मालती ने सिर नत कर कहा—"मैं अभी तक वैसी ही पवित्र हूँ, जैसी तुम।"

आभा ने उत्तर दिया—"क्या मैंने कभी तुम्हारे चरित्र पर अविश्वास किया है? नहीं, तुम्हें अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे प्रति कोई भी उँगली उठाने का साहस स्वप्न में भी नहीं कर सकता।"

मालती ने अधीरता के साथ कहा—"मूर्ख, तू अब भी नहीं समझी, या जान-बूझकर मेरा उपहास करती है। प्रतिज्ञा की मैं अब क्या परवा करूँ? उसे भाड़ में झोंक दो। मैं अभी तक कुमारी हूँ, और कुमारी-जैसा जीवन व्यतीत किया है—केवल विवाह का स्वाँग रचा गया है। जिनकी तुम तारीफ़ करती हो, और प्रेम की प्रशंसा में गीत गाती हो, उन्होंने मेरा सर्वनाश किया है। वह एक स्त्री से भी गए-बीते हैं, और पुरुष कहलाने योग्य नहीं!"

आभा की आँखें विस्मय से कपाल पर चढ़ गईं। वह हत-बुद्धि होकर मालती की ओर देखने लगी। मालती अपनी शरम छिपाने के लिये तकिए में मुँह छिपाए हुए थी। उस कमरे में भयानक निस्तब्धता छाई हुई थी। मालती की सिसक ने आभा की विमुग्धता को भंग किया। किंतु वह अपने दुःख को रोक न सकी, और मालती के गले से लिपटकर रोने लगी। वेदना और सहानुभूति का वह निर्मल रूप था।

थोड़ी देर बाद आभा ने कहा—"मालती, मैं नहीं जानती कि कैसे तुम्हें सांत्वना दूँ। केवल इतना कह सकती हूँ कि धैर्य रक्खो, भगवान् सब कल्याण करेंगे, भयानक-से-भयानक रोग भी औषध से आराम होते हैं। भगवान् पर विश्वास रक्खो, वह कभी अपने भक्त को निराश नहीं करते।"

मालती ने शुष्क हँसी हँसकर कहा—"हिंदू-समाज में किसी भी अन्याय से त्राण पाने का यही अंतिम अवलंब है—जो उसकी अक्षमता का ज्वलंत उदाहरण है। किंतु मैंने इसके विरोध का पूर्ण विचार कर लिया है। मैं पुरुष-जाति से लड़ूँगी और अपने अधिकार प्राप्त करूँगी। तुम मुझको पत्रोत्तर न देने के लिये मेरी भर्त्सना करती हो, किंतु अब क्या तुम कह सकती हो कि मैंने अन्याय किया है। मेरे मन की उमंगें तो सब नष्ट हो गई हैं, उनको अपना पति

स्वीकार करते लज्जा लगती है, फिर कैसे प्रेम से ओत-प्रोत पत्र लिखूँ। जब हृदय में ही प्रेम नहीं, विद्वेष है, तब कैसे प्रेम का नाटक रचने में सफल हो सकती हूँ।" यह कहकर मालती आभा की ओर देखने लगी।

आभा ने सहज कोमल स्वर में कहा—"यह ठीक है, ऐसी दशा में कोई भी स्त्री ऐसा ही करेगी। किंतु तुमको धैर्य के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब वह अच्छे हो जायँगे। इन पत्रों को देखने से मै यह कह सकती हूँ कि उनके हृदय में अगाध प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा है। वह तुमको प्राणों से भी अधिक चाहते हैं, और शायद इसमें उनका दोष नहीं, बल्कि उनके पिता का है। तुम्हारा जीवन नष्ट किया है, तो उन्होंने! इसलिये इसमें उनका कुछ दोष नहीं।"

मालती ने चिढ़कर कहा—"वह अगर विवाह न करते, तो कैसे हो जाता। जानते-बूझते हुए उन्होंने मुझे विवाहा है। यह मैं जानती हूँ कि उनका प्रेम अनंत है, अगाध है, निष्कपट है, परंतु मेरे मन में तो उनके प्रति वे भाव जागरित नहीं होते!"

आभा ने कुछ सोचते हुए कहा—"मेरे मन में यह कोई बार-बार कहता है कि तुम्हारा सुहाग तुमको फिर मिलेगा, इसमें ज़रा भी झूठ न समझो।"

मालती अविश्वास की हँसी हँसने लगी। फिर कहा—"यह कल्पना का प्रासाद तुम्हीं को मुबारक हो! बालू से तेल निकालना असंभव है। हाँ, इसका एक उपाय है, वह है तलाक़ या डाइवोर्स।"

आभा ने कहा—"किंतु हिंदू-समाज में तो उसका चलन नहीं।"

मालती ने आवेश के साथ कहा—"उसका चलन नहीं, तो क्या हुआ? उसे मैं क़ानून द्वारा विहित बनाऊँगी, और हिंदू-समाज पर लादूँगी। देखूँ, वह कैसे इसे अस्वीकार करता है। मैं लेजिस्लेटिव

एसेंबली के चुनाव में इस वर्ष खड़ी होऊँगी। पिताजी ने सब तरह से मेरी सहायता करने का वचन दिया है। सदस्य होते ही एसेंबली के प्रथम अधिवेशन में डाइवोर्स तथा अन्य स्त्री-जाति के अधिकारों की प्राप्ति का बिल रक्खूँगी। सुशिक्षित जनता मेरा साथ देगी, और देश में ऐसी जागृति पैदा करूँगी कि बिल सर्व-सम्मति से पास हो जाय। मुट्ठी-भर दक़ियानूसी जाहिलों की बात कौन सुनेगा? बस, तभी मेरा कल्याण है; और इस देश की अभागिनी स्त्री-जाति की पुरुषों के अत्याचार से रक्षा होगी।"

आभा ने मंत्र-मुग्ध की भाँति उसकी ओर देखते हुए कहा—"क्या सत्य ही तुम एसेंबली के लिये खड़ी हो रही हो?"

मालती ने उत्तर दिया—"इसमें भी क्या कोई शक है। कल के अख़बार में यह समाचार प्रकाशित हो जायगा, और पिताजी बड़ी तत्परता से इसमें मेरी सहायता करेंगे। मेरे खड़े होने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

आभा ने गंभीर होकर कहा—"चाहे जो कुछ हो, अभी यह बिल पास नहीं हो सकता।"

फिर सँभलकर कहा—"इसका यह तात्पर्य न समझना कि मेरी इससे सहानुभूति नहीं।"

मालती ने रुष्ट होकर कहा—"पास होगा, अवश्य होगा।"

इसी समय उस कमरे में मालती की छोटी बहन कामिनी आ गई। मालती उसे देखकर चुप हो गई। आभा उससे बातें करने लगी।

---

## १०

उस दिन से भारतेंदु की अवस्था एक अद्भुत कशमकश की थी। उनके जीवन का सारा उत्साह फीका पड़ गया था। इधर कई दिनों से डॉक्टर नीलकंठ ने उन्हें नहीं देखा था। आज वह उनसे मिलने के लिये अकस्मात् आ गए। भारतेंदु अपने कमरे में बैठे हुए विचार में मग्न थे। उनको आया देखकर वह चकित होकर उनकी ओर देखने लगे।

डॉक्टर नीलकंठ ने मृदु हास्य के साथ पूछा—"कैसी तबियत है?"

भारतेंदु ने होश में आकर उनको प्रणाम किया, और विनम्र कंठ से कहा—"जी हाँ, सब ठीक है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"इधर कई दिनों से तुम्हें देखा नहीं था, इसलिये यह अंदेशा पैदा हुआ कि कहीं तुम्हारी तबियत ख़राब तो नहीं हो गई। तुम्हारे न आने का क्या कारण है?"

भारतेंदु ने सिर खुजलाते हुए कहा—"यों ही, एक पुस्तक लिखता हूँ। वह अब लगभग पूर्ण हो गई है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्फुल्ल होकर कहा—"पूर्ण हो गई; अच्छा हुआ। देखूँ।"

भारतेंदु ने अपनी अपूर्ण पांडुलिपि उनके सामने रख दी। वह उसे देखने लगे। थोड़ी देर तक उसे देखने के बाद उन्होंने कहा—मुझे जैसी आशा तुमसे थी, वैसी ही यह पुस्तक मालूम होती है। सरसरी दृष्टि से देखने से मालूम होता है कि यह अच्छी होगी।

तुम इसे ख़त्म कर लो, पीछे मैं भी एक बार इसे पढ़ जाऊँगा।"

भारतेंदु ने उत्तर में कहा—"जी हाँ, समाप्त होने पर मैं आपको देखने के लिये ज़रूर देता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"पंडितजी का कोई पत्र इधर नहीं आया, तुम्हारे पास क्या कोई पत्र आया है?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"जी नहीं। इस हफ़्ते में कोई पत्र नहीं आया। आज-कल में शायद आ जाय। वह फ़िज़ी पहुँच गए, और दक्षिणी अमेरिका जाने का विचार कर रहे हैं। पिछले पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं शीघ्र ही स्वामी गिरिजानंद के साथ जानेवाला हूँ। शायद यह तो आपको मालूम है कि वह उग्र साम्यवादी विचार के हैं। दक्षिणी अमेरिका के चाइल प्रदेश में, जहाँ हमारी खानें हैं, वह एक उपनिवेश तमाम कुलियों और खानों में काम करनेवालों से बसाना चाहते हैं, जिसमें साम्यवाद के समग्र सिद्धांतों का पालन होगा। दूसरे शब्दों में, वह अपनी सब संपत्ति सम भाग में सब मज़दूरों और कुलियों को बाँट देंगे, और पूँजी का नाम न रक्खेंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने चकित होकर पूछा—"क्या वह तुम्हें पथ का भिखारी बनाना चाहते हैं?"

भारतेंदु ने हँसकर कहा—"पथ का भिखारी क्यों, मेरा भी तो उसमें सम भाग रहेगा। मैं उससे अपना जीवन बड़े सुख से व्यतीत कर सकता हूँ। अलबत्ता मैं किसी विशाल पूँजी का मालिक न होऊँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुछ सोचते हुए पूछा—"तो इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?"

भारतेंदु ने कहा—"मेरी सम्मति क्या हो सकती है। उन्होंने इसका आभास मुझे पहले दे दिया था, और कह दिया था, 'तुम

कभी यह विचार न करना कि मेरा पिता किसी विशाल संपत्ति का मालिक है, और वह मुझे मिलेगी। जो संपत्ति मेरे पास है, वह उन ग़रीबों की है, जिन्हें मैंने उनके अधिकारों से वंचित कर लूट लिया है। यह अत्याचार मैंने बहुत दिनों तक किया है, किंतु अब इसके होने का द्वार बंद कर दूँगा। तुम्हें समझना चाहिए, मैं एक ग़रीब बाप का बेटा हूँ, और मेरा बाप भारतवर्ष से मोल लिया हुआ ग़ुलाम है, जो समय के प्रभाव से क़ुली होकर स्वतंत्र नागरिक हुआ।' इसके आगे उन्होंने कभी मुझे यह आशा नहीं बँधाई, और न मैंने एक दिन भी यह सोचा कि मैं किसी संपत्ति का मालिक हूँ। इससे अगर वह अपनी संपत्ति ग़रीबों या श्रमजीवियों में समरूपेण वितरण कर देंगे, तो मुझे कुछ कष्ट न होगा, बल्कि इस व्यर्थ के जंजाल से अनायास मुक्ति मिल जाने पर मुझे प्रसन्नता होगी।"

डॉक्टर नीलकंठ आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे। कमरे में निस्तब्धता छा गई।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"समष्टिवाद के सिद्धांतों की ओर उनका झुकाव पहले से था, और एक दिन इस विषय में उन्होंने अपने विचार भी प्रकट किए थे, किंतु मेरा यह ख़याल था कि यह केवल आजकल के विचारों की एक झलक-मात्र है। वह इतनी जल्दी अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत कर देंगे, यह स्वप्न में भी आशा न थी।"

भारतेंदु ने हँसकर उत्तर दिया—"आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं। वह कभी किसी काम को कल के लिये उठा नहीं रखते। विचारों का उठना आरंभ होते ही वह उन्हें कार्य में परिवर्तित करने लगते हैं। जब वह जा रहे थे, इसका आभास मुझे दे गए थे, और अवकाश मिलने पर आप लोगों पर भी प्रकट कर देने का आदेश दे गए थे।"

डॉक्टर नीलकंठ 'आप लोगों' का अर्थ समझ गए।

उन्होंने व्यग्र कंठ से पूछा—"क्या इसमें तुम्हारी सम्मति है?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"जी हाँ, मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उनका विरोध कर सकूँ। यदि विरोध भी करूँ, तो वह मेरी बात कभी न मानेंगे, जो विचार लिया है, उसे अवश्य करेंगे। इसके अतिरिक्त क़ानूनी तौर पर भी मैं उन पर कोई दबाव नहीं डाल सकता, क्योंकि यह सब संपत्ति उन्हीं की उपार्जित है, अतएव वह अपने इच्छानुसार व्यय कर सकते हैं। मैं ख़ुद भी पूँजीपति होना नहीं चाहता, तथा उनके विचारों से मेरा पूर्ण सादृश्य और सहानुभूति है।"

डॉक्टर नीलकंठ पुनः कुछ सोच में पड़ गए।

भारतेंदु कहने लगे—"हम लोग कोई उच्च वंश के नहीं और न संकुचित हिंदू-समाज के अंतर्गत हैं—एक प्रकार से समाज-च्युत हैं। ग़ुलाम बनाकर मेरे पिताजी बेचे गए थे, और उन्होंने एक-एक दाने को तरसकर अपने दिन काटे हैं। मुझे तो इसका गर्व है, अभिमान है, लेकिन किसी अन्य को हो सकता है या नहीं, यह विचारणीय है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। वह अपनी उधेड़-बुन में लगे थे।

भारतेंदु फिर कहने लगे—"मैं आज कई दिनों से अथवा यों कहिए, महीनों से सोच रहा था कि कम-से-कम आप पर अपने तथा पिताजी के विचारों को प्रकट कर दूँ, किंतु साहस न होता था। जब सौभाग्य-वश आज वह सुअवसर प्राप्त हो गया, तो साफ़-साफ़ कहना उचित है। मेरे पास सिवा मेरी विद्या अथवा बुद्धि-बल के दूसरा कोई सहारा नहीं, और न कोई संपत्ति है। मैं पथ का भिखारी पहले था, और इस समय हूँ। अतएव जो कुछ काम

किया जाय, उसका अंत सोच लेना वाजिब होगा, जिससे आगे चलकर कोई दुष्परिणाम घटित न हो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने भारतेंदु का संकेत समझकर कहा—"यह तुम सत्य कहते हो भारतेंदु। तुम्हारी स्पष्टवादिता से मैं विशेष रूप से प्रसन्न हुआ हूँ। इस विषय में मैं भली भाँति विचारकर तुम्हें उत्तर दूँगा।"

भारतेंदु सिर झुकाकर सामने खुली हुई पुस्तक देखने का बहाना करने लगे। उनके हृदय में एक तूफ़ान उठा हुआ था, जिसे वह छिपाए रखना चाहते थे। उन्हें अब विस्मय हो रहा था कि कैसे उन्होंने ये बातें उनसे कह डालीं। उनमें इतना साहस न था कि वह अपनी दृष्टि उनसे मिला सकते।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"ख़ैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुमने मुझे सावधान कर दिया, और सूचित भी कर दिया, इसके लिये मैं तुम्हारा विशेष रूप से आभारी हूँ। मैं पंडित मनमोहननाथ से इस विषय में कुछ बातें करना चाहता हूँ, और एक बार प्रयत्न करना चाहता हूँ कि वह तुम्हें पथ का भिखारी न बनावें। उनके पास करोड़ों की संपत्ति है, तब उसमें से कई लाख तुम्हारे लिये निकाल देने से उनकी कोई विशेष क्षति न होगी, और न किसी भाँति की रुकावट ही पड़ेगी।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"मुझे तो कोई आशा नहीं कि वह किसी प्रकार का समझौता करेंगे। इसका 'नोटिस' तो वह एक प्रकार से मुझे दे गए हैं, और बातचीत होने पर शायद यही उत्तर देंगे।"

भारतेंदु उठकर जाने लगे, और बोले—"माफ़ कीजिएगा, आपके लिये कुछ फल ले आऊँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मलिन हँसी के साथ कहा—"इस सरदी में फल खाने की इच्छा नहीं। तकल्लुफ़ की कोई ज़रूरत नहीं।"

उनके स्वर में वेदना की गहरी छाप और व्यंग्य की कर्कशता थी।

भारतेंदु लज्जित होकर बैठ गए।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"सत्य है, संसार के बड़े आदमी कुछ सनकी तबियत के हुआ करते हैं।"

भारतेंदु ने कुछ उत्तर नहीं दिया, और सहज भाव से मुस्किरा दिया।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"पंडितजी को मैं एक अद्भुत क्षमता-शील व्यक्ति मानता हूँ, और उसी प्रकार उनकी इज़्ज़त करता हूँ। किन्हीं विशेष कारणों अथवा समय के प्रभाव से ऐसे महान् व्यक्ति प्रकट होते हैं, लेकिन उनमें भी कुछ-न-कुछ हीनता अवश्य होती है।"

भारतेंदु ने हँसकर कहा—"इसी हीनता के कारण वे मनुष्य कहलाते हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुछ ध्यान नहीं दिया, वह कहते ही रहे—"क्या उन्हें मालूम नहीं कि संसार अभी तक साम्यवाद के सिद्धांतों को ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं। यदि साम्यवाद कहीं स्थापित हो सकता है, तो वह एक देश में और एक शासक शक्ति से। रूस में वह ख़ून की नींव पर स्थापित हुआ, और तलवार के बल पर जीवित है। समत्व तो योग का सिद्धांत है, वेदांत की अंतिम सीढ़ी है। मनुष्य-हृदय में यह भाव बड़ी उग्र तपस्या, यम, नियम के पालन के पश्चात् उदय होता है। जो इतने परिश्रम के बाद मिलता है, क्या वह एक तुच्छ प्रयत्न से इतनी जल्दी प्राप्त हो जायगा? मेरे विचार में तो नहीं आता। यह अवश्य सत्य है कि इस विफलता का दृश्य सर्वस्व स्वाहा कर लेने के पश्चात् देखने को मिलेगा। मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है। साम्यवाद के लिये ज़रूरी है कि वह इस स्वार्थी तत्त्व का नाश करे। किंतु जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह तत्त्व मनुष्य नाम के साथ निहित है, अतएव इसका नाश नहीं।

जब तक इसका नाश नहीं, तब तक साम्यवाद का स्थायी रूप हमें प्राप्त नहीं हो सकता।"

भारतेंदु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर नीलकंठ कहने लगे—"इस विषय में पंडितजी से बात-चीत करूँगा। क्या यह मुझे बता सकते हो कि वह कब तक फ़िज़ी में ठहरेंगे ?"

भारतेंदु ने कुछ सोचते हुए कहा—"मैं ठीक नहीं कह सकता। उनका दूसरा पत्र आने पर ही प्रकट होगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मैं उनसे मिलने के लिये फ़िज़ी जाऊँगा। आजकल वहाँ ग्रीष्म-ऋतु का सुहावना समय होगा। कल ही मैं छुट्टी के लिये प्रार्थना-पत्र दूँगा। कई सालों से एक दिन की छुट्टी नहीं ली, अब एक साथ लूँगा।"

भारतेंदु ने कहा—"अच्छा तो है। मेरी भी पुस्तक उस वक़्त तक तैयार हो जायगी, फिर मैं भी साथ चलकर आपको दक्षिणी भू-भाग दिखा सकूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

भारतेंदु ने बैठने के लिये बहुत कुछ आग्रह किया, किंतु वह चले गए, और साथ में एक भार भी लेते गए।

---

## ११

डॉक्टर नीलकंठ ने सप्रेम कहा—"आभा, तुम क्या कर रही हो ?"

आभा अपनी धाय-मा के साथ बैठी कुछ परामर्श कर रही थी। गंगा और आभा ने उत्सुकता के साथ उनकी ओर देखा। आभा प्रसन्नवदन से उठकर तेज़ी के साथ उनके पास आकर खड़ी हो गई। उसकी आँखों से सौंदर्य का उज्ज्वल प्रकाश निकल रहा था, और उसके पीछे उत्साह झाँक रहा था। डॉक्टर नीलकंठ उसकी उत्फुल्लता देखकर चुप हो गए। उनके मन का भाव मन ही में रह गया। भारतेंदु के साथ जो बातचीत हुई थी, उसका निष्कर्ष गंगा को सुनाना चाहते थे।

आभा ने पूछा—"क्या है पापा ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने बात टालते हुए कहा—"कुछ नहीं, यों ही बुलाया था। तू अच्छी तो है ?"

आभा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, आप कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कहते क्यों नहीं ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"क्या कहूँ। हाँ, याद आया। तूने एक दिन कहा था कि मैं पृथ्वी-भ्रमण करने जाऊँगी। क्यों, याद है ?"

आभा का उत्साह छलाँगें भरने लगा।

उसने उत्तर दिया—"हाँ, मैंने कहा था, और अब भी मेरी इच्छा पृथ्वी-भ्रमण की है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"अच्छा, चाची को भी बुला लाओ।"

आभा गंगा को बुलाने चली गई। गंगा यद्यपि इस घर की नौकरानी थी, लेकिन उसका आदर और सम्मान घर के आदमी-जैसा था। वह आभा की मा के साथ उनके मायके से आई थी, और फिर वहीं रहने लगी थी। उसके कोई संतान न थी, और आभा की मा के मरने के बाद उसने आभा का पालन-पोषण किया था। आभा की मा उसे चाची कहती थी, इसलिये डॉक्टर नीलकंठ भी उसे उसी प्रतिष्ठा से पुकारते और आदर करते थे।

गंगा आभा के पीछे-पीछे आकर खड़ी हो गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"चाची, आओ, ज़रा बैठकर सुनो। बात बड़ी गंभीर है।"

आभा की कुर्सी के पास ज़मीन पर गंगा बैठ गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"चाची, बात आभा के विवाह की है।"

आभा ने अपना मुख फिरा लिया, और गंगा की उत्सुकता बढ़ गई।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कुछ सोचते हुए कहा—"क्या कहूँ, मैं बड़े संकट में पड़ गया हूँ।"

गंगा की उत्सुकता बढ़ने लगी, किंतु उसने शब्दों से ज़ाहिर नहीं किया।

डॉक्टर नीलकंठ ने संकोच के साथ कहा—"जब से सुना है, तब से परेशान हूँ, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ?"

आभा ने विचार किया कि शायद उसकी उपस्थिति के कारण वह कहने में संकोच करते हैं। उसकी इच्छा वहाँ से उठकर जाने की न थी, किंतु वह कोई दुखप्रद समाचार सुनकर अपने मन का

भाव भी प्रकट होने देना नहीं चाहती थी। उसके पिता की भूमिका और संकोच से तो यही भासित होता था कि कोई शोक-संवाद है। वह उठकर जाने लगी। डॉक्टर नीलकंठ ने कोई आपत्ति प्रकट नहीं की, बल्कि उसके जाने से उनका संकोच किसी हद तक कम हो गया।

आभा दूसरे कमरे में जाकर उनकी बातचीत सुनने लगी।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"चाची, यह तो तुम्हें मालूम है कि आभा का विवाह-संबंध भारतेंदु से ठीक किया है। सब तरह से दोनों एक दूसरे के उपयुक्त हैं, किंतु आज मुझे एक नए भेद का पता चला है, जिसकी वजह से कुछ शंका उत्पन्न हो गई है।"

गंगा ने अधीर होकर पूछा—"आप तो कहते नहीं। मेरी चिंता बढ़ रही है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"बात यह है कि अब तक मैं समझता था कि भारतेंदु एक विशाल संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा, और उसके साथ विवाह होने से आभा को आर्थिक कष्ट का सामना नहीं करना पड़ेगा, जैसा हमें करना पड़ा था।"

गंगा ने कहा—"मुझे वे दिन बहुत अच्छी तरह याद हैं। बिटिया की वह तकलीफ़ याद आ जाने से अब भी मेरा मन दुःखित हो उठता है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने एक ठंडी साँस के साथ कहा—"तुम्हें तो सब कुछ मालूम है। उसके तमाम गहने बेंचकर मैं इँगलैंड गया था, और फिर कई वर्षों बाद वैसे ही दूसरे गहने बनवाकर दे सका था। निर्धनता मनुष्य के लिये महान् शाप है, ईश्वर का कोप है। मैं उसके दारुण प्रसाद से पूर्णतया अवगत हूँ। यह सत्य है कि मैं उसे वे कष्ट नहीं होने दूँगा, जिन्हें स्वयं भुगत चुका हूँ, किंतु उसकी विशाल संपत्ति इस प्रकार नष्ट होते भी तो नहीं देख सकता।"

गंगा ने अधीर कंठ से पूछा—"क्या पंडितजी ने कोई जाल रचा था, या वह भी दग़ाबाज़ निकले ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"नहीं, यह बात तो नहीं है। उन्होंने कोई जाल नहीं रचा, और न वह दग़ाबाज़ हैं। इसमें तिल-मात्र संदेह नहीं कि वह करोड़पति हैं, और उनका कारबार विशाल है।"

गंगा ने अधिक उद्विग्नता के साथ पूछा—"तो आख़िर बात क्या है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने खेद के साथ कहा—"उन्होंने अपनी सब संपत्ति दान करने का विचार कर लिया है। इन दिनों एक नई लहर उठी है कि कोई व्यक्ति अपने पास संपत्ति रखने का अधिकारी नहीं है, मनुष्य-मात्र का उस संपत्ति पर अधिकार है। इसे कहते हैं साम्यवाद, यानी सब कोई बराबरी के साथ रहे। इसी विचार के माननेवाले वह हैं, और उन्होंने अपनी समग्र संपत्ति उन मज़दूरों में बराबर बाँट देने का विचार किया है, जो उनकी खानों पर काम करते हैं।"

गंगा ने विस्मित स्वर में पूछा—"और अपने लड़के के लिये एक पैसा भी न रक्खेंगे ? यह कैसी बात है। आजकल का ज़माना उलटा हो गया है। अभी तक तो यह रिवाज था कि मनुष्य अपनी संतान के लिये सब कुछ संचय करता था, और अब संतान को फूटी कौड़ी न देकर ऐरे-ग़ैरों का घर भर देगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, आजकल रंग कुछ ऐसा ही है। भारतेंदु कह रहा था कि यह काम उसकी सम्मति से हुआ है। बाप का रंग बेटे पर भी चढ़ रहा है। इसी से तो मुझे चिंता होती है कि कहीं आभा को कष्ट न हो !"

गंगा ने करुण स्वर में पूछा—"अच्छा, उपाय क्या है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"उपाय क्या है ? भारतेंदु कह रहा था कि जो कुछ उसके पिता निश्चय कर लेते हैं, उसे कभी बदलते नहीं। वह अपनी सब संपत्ति अवश्य दान कर देंगे।"

गंगा ने कहा—"इसमें राना की भी सम्मति जान लेना चाहिए, क्योंकि वह अब अपना भला-बुरा समझती है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तुम सब हाल ख़ुलासा तौर पर कह देना, और उसका विचार भी जान लेना। मुझसे वह अपने हृदय का भेद नहीं कहेगी।"

गंगा ने कहा—"पंडितजी का पागलपन क्या किसी तरह रोका नहीं जा सकता ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"मैं भी उन्हें एक बार समझाना चाहता हूँ, देखूँ, क्या असर पड़ता है। वह अभी तक तो फ़िजी में हैं। इसके लिये मुझे जाना पड़ेगा। आभा को भी साथ ले जाना चाहता हूँ, और अगर तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी चलो।"

गंगा ने मलिन स्वर में कहा—"मैं जाकर क्या करूँगी। हाँ, अगर बिटिया होती, तो ज़रूर जाना पड़ता। वह मेरे बग़ैर एक क़दम बाहर न निकलती थी।"

कहते-कहते गंगा का कंठ-स्वर स्मृति की करुणा से आर्द्र हो गया। डॉक्टर नीलकंठ भी विकल हो गए।

डॉक्टर नीलकंठ ने शांत होते हुए कहा—"वह नहीं है, मैं तो हूँ। मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। इससे आभा की तरफ़ से मैं निश्चिंत रहूँगा ; तुम भी देश देख आओगी, आभा का ऐश्वर्य भी देख-सुन आओगी।"

गंगा ने कुछ सोचते हुए कहा—"हाँ, यह एक प्रलोभन ज़रूर है। उसके लिये अगर इस बुढ़ापे में समुद्र पार करना पड़े, तो करूँगी।

यह बिटिया की धरोहर है, जब तक ठिकाने नहीं लगती, मेरा खाना-पीना सब निष्फल है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"वही मेरा हाल है।"

गंगा ने कहा—"उस पागल पंडित को समझाना चाहिए कि यह क्या अनर्थ कर रहे हो। जब भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदामा के तंदुल दो मूठो खा लिए, और तीसरी मूठी भरकर खानेवाले थे कि रुक्मिणीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया, और कहा था कि क्या अब अपने को सुदामा बनाना चाहते हो। ठीक वही हाल यहाँ है। उन्हें किसी तरह समझाना पड़ेगा कि यह गाढ़ी कमाई ग़रीबों को बाँटकर क्या अपने पुत्र और पुत्र-वधू को पथ का भिखारी बनाना चाहते हो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मैं तो कहूँगा ही, और अगर तुम्हें मौक़ा मिले, तो तुम भी खरी-खरी सुनाना।"

गंगा ने हँसकर कहा—"मैं उनसे कुछ न कहूँगी।" फिर जोश के साथ कहा—"अगर वह न मानेंगे, तो मैं भी कहने में कुछ उठा न रक्खूँगी। मैं रानी का अनिष्ट किसी तरह नहीं देख सकती।"

डॉक्टर नीलकंठ ने हँसकर कहा—"उन्हें हमारा कहना मानना पड़ेगा। स्वामी गिरिजानंद भी उनके साथ हैं, मुझे विश्वास है, वह भी हमारा पक्ष लेंगे।"

गंगा ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब जाती हूँ। जाने का विचार कब तक है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"कल छुट्टी के लिये लिखूँगा, मंज़ूर होने पर तुरंत चल दूँगा। जहाँ तक समझता हूँ, बड़े दिन की छुट्टी तक हम लोग चल देंगे।"

गंगा ने कहा—"तब तो रास्ते में बड़ी सरदी होगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"नहीं, सरदी की चिंता मत करो। यह

सरदी हमें कलकत्ते तक या और कुछ आगे तक मिलेगी। इसके आगे तो ऐसी गरमी होगी, जैसी यहाँ वैशाख-जेठ में होती है!"

गंगा ने चकित होकर पूछा—"इन दिनों वहाँ ऐसी गरमी!"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, यहाँ से वहाँ की ऋतुएँ विपरीत हैं। जब यहाँ सरदी पड़ती है, तो वहाँ गरमी पड़ती और जब यहाँ गरमी पड़ती है, तो वहाँ घोर शीत-काल होता है।"

गंगा ने हँसकर कहा—"तभी वहाँ के आदमी भी उल्टे विचार के होते हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ हँस पड़े। गंगा भी हँसती हुई कमरे के बाहर चली गई।

डॉक्टर नीलकंठ उस कमरे में टहलने लगे। उनका मुख चिंता-ग्रस्त था। वह धीरे-धीरे टहलते हुए खिड़की के पास आकर खड़े हो गए। बाहर प्रकृति अपने उल्लास में मत्त होकर शीतल वायु के साथ खेल रही थी। उन्होंने अपने मन की वेदना दूर करनी चाही, परंतु वह उत्तरोत्तर बढ़ती रही।

उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"देखूँ, आभा के भाग्य में क्या है?"

सन्-सन् करती हुई वायु ने उनका उपहास करते हुए कहा—"आभा के भाग्य में क्या है?"

वह प्रकृति का यह व्यंग्य सुनकर चकित-दृष्टि से वातायन के बाहर दूर—सुदूर गोमती पर उठते हुए कुहरे के पुंज को देखने लगे।

---

## १२

मालती अपनी मोटर का हॉर्न बारंबार और ज़ोर से बजाती हुई डॉक्टर नीलकंठ के बँगले के सामने आकर खड़ी हो गई। माली ने दौड़कर फाटक खोल दिया। वह मोटर लेकर आगे बढ़ी, लेकिन हॉर्न बराबर बजाती रही। आभा अपने कमरे में बैठी केश-विन्यास करने में संलग्न थी। इतनी आतुरता के साथ हॉर्न बजता हुआ सुनकर वह बिखरे हुए केशों के साथ बाहर की ओर दौड़ी। उसके सामने मालती की लाल रंग की 'ब्यूक' मोटर खड़ी थी, और वह तत्परता से हॉर्न बजा रही थी।

आभा ने मोटर के पास आकर कहा—"ओह, आप हैं! माफ़ कीजिएगा, आपके स्वागत के लिये मैं फाटक पर खड़ी न मिल सकी। मैं ताज्जुब में थी कि कौन एक भूकंप लेकर आया है। कुँवरानी साहबा की सवारी पधारी है, यह अब मालूम हुआ। स्वागत है, पधारिए।"

मालती अभी तक हॉर्न बजा रही थी, अब बंद करके बोली—"तुम्हारी बदतमीज़ी की सज़ा देने के लिये मैं एक व्यक्ति रास्ते से पकड़ लाई हूँ। आओ, अगर बेतों की मार से बचना चाहती हो, तो पिछली सीट का दरवाज़ा खोलो, और उसके आगे सिर नत कर, हाथ जोड़कर पहले प्रणाम करो, और फिर माफ़ी माँगो।"

आभा मुस्किराकर आगे बढ़ते हुए कहा—"कुँवरानी साहबा का जैसा हुक्म होगा, करना ही पड़ेगा। माफ़ी क्या, अगर हुज़ूर के सामने नाक रगड़ना पड़े, तो वह भी स्वीकार है।"

यह कहकर वह मोटर के आगे की सीट का दरवाज़ा खोलने लगी।

मालती ने उसका हाथ झिटकते हुए कहा—"बदतमीज़, हुक्म नहीं मानती। मैं यह दरवाज़ा ख़ुद खोल लूँगी, तुम दूसरा दरवाज़ा खोलो।"

आभा अभी तक मालती के परिहास में इतनी लीन थी कि उसने मोटर के अंदर बैठे हुए व्यक्ति को न देखा था। उसके कहने से वह ज्यों ही झुककर उस बैठे हुए व्यक्ति को देखने लगी, त्यों ही, शीघ्रता से, वह दो क़दम अपने आप पीछे हट गई। मालती ठहाका मार-कर हँस पड़ी, और दूसरे ही क्षण आभा के गले से लिपट गई। अस्त-व्यस्त आभा अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी।

दूसरे ही क्षण मोटर का दरवाज़ा खोलकर भारतेंदु भी उतर पड़े।

मालती ने आभा को उनके सामने लाते हुए कहा—"भारतेंदु बाबू, आप इस भोली लड़की का क़ुसूर माफ़ कर दीजिए। यह पहला अवसर है, आइंदा कभी ऐसी ग़लती न करेगी। आपके आने की राह यह सुबह से शाम तक फाटक पर खड़ी होकर बरा-बर देखा करेगी।"

भारतेंदु भी शरमाकर दूसरी ओर देखने लगे। आभा का क्रोध और शरम से बुरा हाल था। वह बार-बार अपने को मालती से छुड़ाने की कोशिश कर रही थी, और वह उसे छोड़ती न थी।

मालती ने कहा—"आभा, डरने की ज़रूरत नहीं, अब वह नहीं मारेंगे। हाँ, आइंदा ऐसा क़ुसूर न करना। इस मौक़े पर तो मैंने कह-सुनकर तुम्हें बचा दिया, अब अगर ऐसा अपराध करोगी, तो तुम जानो।"

यह कहकर वह वेग से हँस पड़ी।

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"मालती, क्या करती हो, देखो, मैं ठीक से कपड़े वग़ैरह भी नहीं........"

मालती ने बीच ही में हँसकर कहा—"तुमने ठीक से कपड़े नहीं पहने, तो मेरा क्या क़ुसूर। तुमने अपने बाल नहीं बाँधे, तो इसमें मेरा क्या अपराध। अब कहो, कितनी मिठाई खिलाओगी, जो आज मैं घर बैठे गंगा ले आई। इस भगीरथ प्रयत्न के लिये मेरी बड़ाई करना, या मेरा मुँह मीठा करना तो दूर रहा, ऊपर से जली-कटी सुनाती हो। सत्य है, संसार में भलाई कोई नहीं देता। हवन करते हमेशा हाथ जलता आया, यह कोई नई बात नहीं।"

आभा ने सक्रोध अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"मालती, छोड़ो।"

आभा का क्रोध देखकर भारतेंदु शीघ्रता से बँगले के भीतर जाने लगे।

मालती ने उसके रोष की परवा न करके कहा—"इन बँदर-घुड़कियों से मैं डरने की नहीं। देखिए जनाब, डरना उनको है, जो बँगले में छिपने भागे जा रहे हैं। भारतेंदु बाबू, ज़रा ठहरिए तो। अरे, ऐसा मज़ा तो लाखों रुपए ख़र्च करने पर भी देखने को न मिलेगा।"

भारतेंदु ने कुछ ध्यान नहीं दिया, वह शीघ्रता से डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में प्रवेश कर उन दोनो की दृष्टि से ओझल हो गए।

मालती ने आभा को छोड़ दिया। आभा अपने वस्त्र ठीक करने लगी। उसका मुख लाल था, आँखों से पशेमानी टपकी पड़ती थी।

मालती अपनी मोटर की ओर जाने लगी, और खिड़की खोल-कर भीतर बैठने के लिये उद्यत हुई।

आभा ने उसे जाते देखकर कहा—"अब कहाँ जाती हो?"

मालती ने साभिमान कहा—"क्यों, मेरे जाने के लिये क्या कहीं जगह नहीं ? अपने घर जाती हूँ, और कहाँ जाती हूँ।"

यह कहकर मालती सीट पर बैठ गई।

आभा ने उसके पास पहुँचकर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"यह नहीं होने का। मैं किसी तरह तुम्हें न जाने दूँगी। अगर तुम जाओगी, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

मालती ने कहा—"यह भी कोई ज़िद है। मुझे देखकर जब आप इतनी रुष्ट होती हैं, तो जाने में ही कल्याण है। अभी तो झिड़की मिली है, अब आगे कहीं और कुछ न मिल जाय।"

आभा ने लज्जित होते हुए कहा—"मालती, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने सचमुच अन्याय किया है। मैं नहीं जानती, उस वक़्त मुझे क्या हो गया था।"

आभा के स्वर में पश्चात्ताप की मलिनता थी।

मालती ने प्रसन्नता छिपाते हुए कहा—"अब क्या होता है। पहले तो किसी का अपमान कर दो, फिर माफ़ी माँगो, यह कहाँ का न्याय है।"

आभा ने ग्लानि के साथ कहा—"मालती, आज तो तुम्हें मेरा अपराध क्षमा करना ही होगा, चाहे जो कुछ हो।"

उसके स्वर में सत्यता की कोमलता और विनय की नम्रता थी।

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"एक शर्त पर मैं यहाँ ठहर सकती हूँ।"

आभा ने व्यग्रता के साथ पूछा—"वह क्या ?"

मालती ने गंभीरता के साथ कहा—"पहले वचन दो, और मेरी क़सम खाओ।"

आभा ने कहा—"न, मैं सब करूँगी, जो कुछ कहोगी। इतनी छोटी बात के लिये तुम्हारी क़सम खाने की कौन ज़रूरत है।"

मालती ने कहा—"तुम्हारे क़सम खाने से मुझे विश्वास होगा, नहीं तो तुम फिर ......"

आभा ने सहास्य कहा—"नहीं, तुम विश्वास रक्खो।"

मालती ने स्टार्टर दबाते हुए कहा—"बस, अब हो चुका। फ़िज़ूल की बकवाद में कौन समय नष्ट करे। मुझे ज़रूरी काम है। कई एक वोटरों के यहाँ वोट माँगने जाना है। चार बजनेवाला है।"

आभा ने उसे मोटर के बाहर घसीटते हुए कहा—"ज्यों-ज्यों मनाओ, त्यों-त्यों सिर पर चढ़ी जाती हैं। सीधी तरह उतरती हो या नहीं।"

मालती ने हँसकर कहा—"क्या करोगी, मारोगी। अब इतना ही बाक़ी रहा है, वह भी कर गुज़रो, जिसमें कोई अरमान बाक़ी न रह जाय।"

आभा ने फिर संकुचित होकर कहा—"अच्छा भई, मैं तुम्हारी क़सम खाती और यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि जो कुछ आप कहेंगी, वह मै करूँगी। अब तो राज़ी हो?"

मालती ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा—"जो कुछ मैं कहूँगी, वह करोगी?"

आभा ने कहा—जो कुछ कहोगी, करूँगी, झख मारकर करना पड़ेगा।"

मालती ने मोटर से उतरते हुए कहा—"ठीक है, अब वचन-बद्ध हो चुकी हो, किसी समय कहूँगी। अभी कौन ज़रूरत है।"

आभा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"नहीं, जो कुछ कहना हो, अभी कह दो, मैं हमेशा के लिये अपने को तुम्हारे अधीन नहीं

कर सकती। तुम जैसी हो, वह मुझे मालूम है। किसी ऐन मौक़े पर धोखा देकर नाव डुबा दोगी !"

आभा हँसने लगी, और मालती भी हँसने लगी।

मालती ने अभिमान के साथ कहा—"जब तुम्हें विश्वास न था, तब वचन क्यों दिया ? अभी अच्छा है, मेरे-जैसे धोखेबाज़ों के हाथ में अपने को क्यों सौंपती हो ? अच्छा भई, मैं जाती हूँ।"

मालती यह कहकर मोटर की ओर मुड़ी।

थोड़ी देर तक आभा कुछ सोचती रही, फिर उसके पास आकर कहा—"अच्छा भई, मान जाओ, मैं सब स्वीकार करती हूँ। जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

मालती ने मोटर के पास ठहरकर कहा—"अरे, मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि कोई बैठा हुआ तुम्हारी राह देख रहा है, और मैं तुम्हें यहाँ व्यर्थ की बातों में उलझाए हुए हूँ।"

आभा ने लज्जित होकर कहा—"सच कहती हूँ मालती, तुमने सूद-समेत असल रक़म अदा कर दी है।"

मालती ने प्रसन्नता के साथ हँसते हुए कहा—"यह तो ब्याज ही है, मूल तो अभी बाक़ी है। कभी मौक़ा हाथ आने पर वापस करूँगी।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"भई माफ़ करो, मैं आइंदा कोई परिहास तुमसे न करूँगी, मैं अपनी हार स्वीकार करती हूँ।"

मालती ने कहा—"महज़ इतना कहने से छुटकारा नहीं होने का। जब तुम वार करती थीं, तब तो बड़ा आनंद आता था, अब क्यों घबराती हो ?"

आभा ने कहा—"मैं तुमसे कभी जीत नहीं सकती। भला बताओ, न-मालूम कहाँ........"

मालती ने बीच ही में टोककर कहा—"कहो, कहो, रुकती क्यों हो ? न-मालूम कहाँ से बंदर पकड़ लाई, क्यों ?"

यह कहकर वह बड़े वेग से हँस पड़ी। आभा हँसने लगी।

मालती ने कहा—"सखी, बात तो बिलकुल सच है। तुम्हारे मुक़ाबले में भारतेंदु बाबू बिलकुल बंदर मालूम देते हैं।"

आभा ने कुछ उत्तर न दिया, और मालती हँसने लगी।

मालती ने कुछ सोचकर कहा—"अब बहुत हो गया, चलो, अंदर चलें। अकेले बैठे-बैठे भारतेंदु बाबू परेशान होते होंगे।"

आभा ने रूठे हुए स्वर में कहा—"तुम्हीं जाओ, मैं नहीं जाती। मुझे क्या ग़रज़ पड़ी है, तुम्हें होगी, तुम जा सकती हो।"

मालती के मुख का रंग फीका पड़ गया। आभा के श्लेष ने उसके उफनाते हुए उत्साह पर पानी की छींटें छोड़ दीं।

आभा उसका बदला हुआ ढंग देखकर सहम गई। वास्तव में उसके अनजान में अनायास वे शब्द निकल गए थे, जो मालती को दुखी करने के लिये पर्याप्त थे।

आभा ने सप्रेम उसके गले में बाँह डालकर कहा—"आओ, चलें, हम-तुम दोनो चलेंगी।"

मालती अपने मन के उग्र भाव को दमन करने का प्रयत्न करने लगी। आभा मन-ही-मन खेद प्रकाश करने लगी।

मालती और आभा अभी दो-चार क़दम गई होंगी कि डॉक्टर नीलकंठ की मोटर बँगले में प्रविष्ट हुई। मार्ग में मालती की मोटर खड़ी देखकर उन्होंने दूर ठहरा दिया, और उतरकर बँगले की ओर चले।

मालती ने उन्हें देखकर प्रणाम किया।

उन्होंने उसका उत्तर देते हुए उसकी कुशलता का समाचार पूछा, और फिर दोनो सखियों को छोड़कर अपने कमरे में चले गए।

---

# १३

डॉक्टर नीलकंठ ने कमरे में प्रवेश करते ही देखा, भारतेंदु एक पुस्तक खोले सामने बैठे हैं, और उसे ध्यान-पूर्वक पढ़ रहे हैं। भारतेंदु आहट पाकर उठ खड़े हुए, और डॉक्टर नीलकंठ को देखकर प्रणाम किया।

उन्होंने प्रणाम का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"तुम यहाँ कब से बैठे हो ? मालती और आभा तो बाहर घूम रही हैं।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"अभी थोड़ी देर हुई, जब मैं मालती के साथ आया था। फिर यहाँ आकर यह किताब पढ़ने लगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराकर कहा—"आज मुझे कुछ देर हो गई। मेरी छुट्टी मंज़ूर हो गई।"

भारतेंदु ने प्रसन्नता के साथ कहा—"आज पिताजी का भी पत्र आया है। आपके नाम भी एक पत्र है, जिसे देने के लिये मैं आ रहा था। रास्ते में मालतीजी मिल गईं, वह भी यहाँ आ रही थीं, इसलिये उनके साथ मैं भी चला आया।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्सुकता से पूछा—"क्या पंडितजी का पत्र आया है ? वह सकुशल तो हैं ? वह क्या अभी तक फ़िज़ी में हैं या दक्षिणी अमेरिका चले गए ?"

भारतेंदु ने पंडित मनमोहननाथ का पत्र उन्हें देते हुए कहा—"जी हाँ, वह दक्षिणी अमेरिका के लिये रवाना हो गए हैं, और शायद अब तक पहुँच भी गए होंगे। साम्यवाद के सिद्धांतों ने उनके मन में अपना घर बना लिया है, और उन्हीं के अनुकरण में वह अपना छोटा-सा उपनिवेश चिली-देश में स्थापित करेंगे, जहाँ से

उनकी खानें अति निकट हैं। उन्होंने कुछ रुपया चिली-सरकार को, जो एक प्रजातंत्र राष्ट्र है, देकर कई मील पहाड़ी ज़मीन मोल ले ली है, और वहाँ उस उपनिवेश के बसाने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली है। इसका उद्घाटन शायद स्वामी गिरिजानंद के हाथ से होगा—इन्हीं चंद बातों का ज़िक्र मेरे पत्र में है।"

डॉक्टर नीलकंठ गंभीर मुख से अपने नाम का पत्र खोलकर पढ़ने लगे। पत्र इस प्रकार था—

"प्रिय डॉक्टर शर्मा,

मुझे विश्वास है, आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं दक्षिणी अमेरिका में, जहाँ मेरी चाँदी-सोने तथा ताँबे की खानें हैं, एक उपनिवेश स्थापित करना चाहता हूँ, जिसकी नींव साम्य-वाद के सिद्धांतों पर डाली जायगी। मेरा विश्वास है, मनुष्य को मनुष्य के प्रति अन्याय न करना चाहिए, और ईश्वर की दी हुई सब वस्तुओं पर मनुष्य-मात्र का समान अधिकार है। दूसरे साम्य-वादियों की तरह मैं ईश्वर का अस्तित्व उड़ाता नहीं, बल्कि उसकी सत्ता और दृढ़ करता हूँ। यद्यपि मैं आज करोड़ों रुपयों की संपत्ति का एकमात्र स्वामी हूँ, लेकिन क्या वास्तव में वह मेरी या भारतेंदु की संपत्ति है? मेरे विचार से नहीं। इस संपत्ति के अधिकारी वे सब व्यक्ति हैं, जिन्होंने इसे खानों के भीतर से निकाला है। मैं यह विचार करता हूँ कि यह धरोहर अपने पास रखकर क्यों उनका अभिशाप लूँ? अतएव इसे मैं अपने उन्हीं कुलियों, मज़दूरों और श्रमजीवियों में समान-रूप से वितरण करना चाहता हूँ, इस विचार से मैं दक्षिणी अमेरिका में 'वालपेराईज़ो'-नामक बंदर से सैंतीस मील उत्तर-पूर्व के कोण पर, 'ब्यूनिस बोका'-नामक स्थान पर, एक आश्रम स्थापित करना चाहता हूँ, जहाँ साम्यवाद को पूर्ण विकास प्राप्त हो। उस आश्रम के निवासियों में साम्यवाद का सच्चा रूप

देखने को मिलेगा, जो देश-देशांतर में जाकर उसका प्रचार करेंगे। इसका विशेष हाल तो आपको उस समय मालूम होगा, जब आप यहाँ आकर कुछ दिन रहेंगे, और हमें तथा हमारे विचारों को समझने का प्रयत्न करेंगे। मुझे यह भी पूर्ण विश्वास है कि आपकी सहानुभूति तथा शुभेच्छा हमें प्राप्त होगी।

स्वामी गिरिजानंद बड़े आनंद में हैं। उन्होंने कृपा करके उस आश्रम के उद्घाटन करने का भार ग्रहण किया है। यहाँ प्रसंग-वश यह भी कह देना उचित होगा कि मेरी खानों पर काम करनेवालों में अधिकांश वे भारतीय हैं, जिन्हें ग़ुलाम बनाकर इधर के टापुओं में बसाने के लिये लाया गया था, अथवा दूसरे शब्दों में मेरे-जैसे बेघर-बार के मुट्ठी-भर दाने के लिये अपना दीन और ईमान बेच देनेवाले, भूख के शिकार, भारतीय हैं—हमारे देशवासी हैं। उन्हें शिक्षित कर मनुष्य बनाना और उनके अधिकारों का ज्ञान कराना भी हमारा परम धर्म है। मुझे संतोष है, स्वामीजी ने उन्हें शिक्षित करने का भार ग्रहण कर लिया है।

हमारे इस आश्रम का उद्घाटन ३१ जनवरी को होना निश्चय हुआ है। अतएव इस अवसर पर यहाँ आप अपने इष्ट-मित्रों-सहित पधारने की कृपा करें, और अपने साथ भारतेंदु और आभा को भी लेते आवें। मुझे याद है, आभा को संसार-भ्रमण की कैसी उत्कंठा थी। उसे लाकर उसका भावी घर-बार दिखा देना उचित होगा। वह भी अपना कर्म-क्षेत्र देख ले, और उसमें प्रवेश करने के लिये अभी से तैयार हो जाय।

आपके लिये यह प्रदेश बिलकुल नया है, और एक प्रकार से पश्चिमीय सभ्यता से दूर है, अतएव आपको कुछ कष्ट हो सकता है। इस ख़याल से मैं अपना जहाज़ आप लोगों को लेने के वास्ते भेज रहा हूँ, जो १९ दिसंबर को कलकत्ते पहुँच जायगा। उसके कैप्टेन

का नाम मिस्टर ऐल्फ़्रेड जैकब्स है, और वह न्यूज़ीलैंड के रहनेवाले हैं। वह एक विश्वासी सज्जन हैं, आप उन पर पूर्ण रूप से भरोसा कर सकते हैं। भारतेंदु इनसे भली भाँति परिचित है, जो आपका परिचय करा देगा।

अब आप इस पत्र के मिलते ही अपनी यात्रा का इंतज़ाम करना शुरू कर दें। आपको अवश्य इस समारोह में सम्मिलित होना पड़ेगा। इस प्रकार आपकी यात्रा भी हो जायगी, और हमारे कार्य में आप सम्मिलित भी हो जायँगे। भारतेंदु और आभा को अवश्य लाइएगा।

सर रामकृष्ण, डॉक्टर पीतांबरदत्त, मुंशी कालीसहाय, नवाब अनवरअलीख़ाँ-प्रभृति महानुभावों को भी निमंत्रण-पत्र दे दीजिएगा, जो आपको भारतेंदु से मिल जायँगे। आपको अधिकार है कि दूसरे सज्जनों को, जिन्हें आप चाहें, दे दें। और, यदि वे लोग यहाँ पधारने की कृपा करें, तो मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझूँगा।

अंत में मैं फिर नम्रता के साथ निवेदन करता हूँ कि कम-से-कम आप अवश्य ही पधारें।

दर्शनाभिलाषी
मनमोहननाथ"

पत्र समाप्त करके डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"वहाँ तो सब तैयारी हो गई।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"जी हाँ, वह कभी कोई काम कल के लिये उठा नहीं रखते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मालूम तो ऐसा ही होता है। ख़ैर, आज मेरी छुट्टी सात महीने की मंज़ूर हो गई। मैं बड़ी आसानी के साथ चल सकता हूँ। तुम्हारी पुस्तक का क्या हुआ?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"उसे मैंने ख़त्म कर दिया है, किंतु अभी प्रेस में देना नहीं चाहता, पीछे वापस आने पर दूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, अब तो यही करना होगा। जब उन्होंने जहाज़ तक भेज दिया है, तब तो अवश्य ही जाना होगा।"

इसी समय मालती ने आकर पूछा—"कहाँ जाने का परामर्श हो रहा है डॉक्टर साहब?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराकर कहा—"पृथ्वी-पर्यटन करने के लिये विचार हो रहा है। तुम भी चलोगी?"

मालती ने हँसकर कहा—"क्या आभा भी जायगी?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"हाँ, उसे भी ले जाऊँगा। तुम्हारे साथ के लिये वह है, फिर तुम क्यों न चलो। भारतेंदु के पिता पंडित मनमोहननाथ दक्षिणी अमेरिका में चिली-नामक प्रदेश में एक आश्रम स्थापित कर रहे हैं, जिसका उद्घाटन ३१ जनवरी को होगा। सर रामकृष्ण के लिये भी निमंत्रण है। तुम लोग भी चलो। बड़ा आनंद रहेगा। योरप देखने के लिये सब जाते हैं, लेकिन दक्षिणी अमेरिका की ओर कोई नहीं जाता। वहाँ प्राचीन सभ्यता के चिह्न मिलते हैं, जिन्हें देखकर यह अनुमान होता है कि वे कभी सभ्यता के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित थे।"

मालती ने जाते हुए कहा—"आज बाबूजी से पूछूँगी।"

मालती ने सीधे आभा के कमरे में जाकर कहा—"अब सब हाल मालूम हुआ कि सरकार आज इतनी क्यों बिगड़ रही थीं।"

आभा गुलाबी रंग की साड़ी पहनकर उसमें पिन लगा रही थी। उसने विस्मित होकर मालती की ओर देखा—उसका ध्यान हटा और पिन की नोक उसके दूसरे हाथ की उँगली में चुभ गई। आभा ने ग़ुस्से से पिन फेकते हुए कहा—"तुम्हें तो हर वक़्त मज़ाक़ सूझता है, और यहाँ........"

मालती ने हँसकर कहा—"और यहाँ ख़ून हो गया।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"ख़ून हो गया नहीं, ख़ून निकल आया।"

मालती ने उत्तर दिया—"ख़ुशी में ऐसा ही होता है।"

आभा ने पिन उठाकर साड़ी में लगाते हुए कहा—"तुम वहाँ जाकर ऐसी कौन-सी बात जान आईं, जिससे फूली नहीं समातीं?"

मालती ने कहा—"क्या करूँ, अगर जासूसी करके कुछ पता न लगाऊँ, तो मुझसे कौन अपना भेद कहेगा।"

आभा ने चकित होते हुए कहा—"मैंने तो कभी तुमसे कोई भेद नहीं छिपाया, व्यर्थ क्यों दोष देती हो?"

मालती ने मुँह भारी करके कहा—"बहलाने को तो मैं ही मिली हूँ। अच्छा, यह तुमने मुझे बतलाया था कि मैं पृथ्वी-भ्रमण करने के बहाने शादी के पहले ही 'हनीमून' करने जा रही हूँ।"

आभा ने मालती को धक्का देते हुए कहा—"आज तुमने भाँग तो नहीं खाई। कहाँ-कहाँ के पत्थर भिड़ा-भिड़ाकर इमारत बनाना चाहती हो।"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"अभी क्या हुआ, अभी तो भाँग ही खाई है, थोड़ी देर में पागल का सार्टीफ़िकेट भी दिलवा दोगी। मैं क्या झूठ कहती हूँ?"

आभा ने उत्तर दिया—"झूठ है ही। मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती। न मुझसे किसी ने कुछ कहा है।"

मालती ने अविश्वास प्रदर्शित करते हुए कहा—"मैं कुछ नहीं मान सकती। अच्छा, मैं अभी भारतेंदु बाबू को बुलाकर लाती और मुक़ाबला कराती हूँ।"

आभा ने मालती को पकड़ने की कोशिश की, किंतु वह बाहर निकल गई।

मालती ने डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में आकर देखा, भारतेंदु चले गए हैं।

उसने डॉक्टर नीलकंठ से पूछा—"भारतेंदु बाबू कहाँ गए ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मैं नहीं कह सकता, कहाँ गए। मैं इस पत्र को पढ़ने में निमग्न था, इसी दर्म्यान वह कहीं चले गए।"

मालती निराश होकर बाहर निकली। कमरे के बाहर उसने उद्यान में नज़र दौड़ाई। कहीं उनका पता न था।

वह चारो ओर उन्हें ढूँढ़कर वापस लौट रही थी कि आभा के कमरे से उन्हें निकलते देखा। उसने द्विगुणित उत्साह से उसके कमरे में प्रवेश कर भारतेंदु को गिरफ़्तार कर लिया। आभा और भारतेंदु लाज से कट गए।

मालती ने हँसकर कहा—"भई, तुम लोग बड़े चालाक हो, मैं बेवक़ूफ़-सी इधर-उधर ढूँढ़ती रही, और इस बीच में मिला-भेंटी हो गई।"

भारतेंदु ने हँसकर जवाब दिया—"पहरेदार की ग़फ़लत से सब कुछ हो जाता है।"

मालती ने उत्तर दिया—"बिलकुल सत्य है। ख़ैर, पकड़ तो लिया!"

भारतेंदु ने कहा—"यह पकड़ना नहीं कहलाता।"

आभा छिपकर बाहर जाने लगी।

मालती ने उसे पकड़कर कहा—"यह नहीं होने का। अजी सर-कार, आप इस तरह छिपकर कहाँ जायँगी ?"

आभा ने कहा—"शाम हो गई है, आज सिनेमा देखने चलेंगे।" 'ला प्लाजा' में एक अच्छा फ़िल्म आया है। कुछ जल-पान के लिये ले आऊँ।"

मालती ने कहा—"यह बहानेबाज़ी रहने दो। पहले अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।"

आभा ने चकित होकर पूछा—"कौन-सी प्रतिज्ञा ?"

मालती ने उत्तर दिया—"इतनी जल्दी भूल गईं ! अभी तो मुश्किल से आधा घंटा बीता होगा।"

आभा चिंतित मुद्रा से कुछ सोचने लगी।

मालती ने कहा—"अभी-अभी तुमने प्रतिज्ञा की थी कि जो कुछ मैं कहूँगी, वह तुम बिला उज्र करोगी। इसी शर्त पर मैं ठहरने के लिये तैयार हुई थी।"

आभा ने उत्तर दिया—"ठीक है, कहिए, क्या करना पड़ेगा ?"

मालती ने कहा—"मेरे सामने भारतेंदु बाबू के पैर छूकर, फिर हाथ जोडकर माफ़ी माँगो कि आइंदा कभी ऐसी भूल न करोगी।"

आभा ने चिढ़कर कहा—"वाह, यह भी कोई बात है। इसके लिये मैंने प्रतिज्ञा नहीं की थी।"

मालती ने आदेश-पूर्ण स्वर से कहा—"नहीं, तुम्हें मेरा हुक्म मानना पडेगा।"

आभा तेज़ी से बाहर जाने का उद्योग करने लगी।

मालती उसे पकडने के लिये आगे बढ़ी। इसी गड़बड़ में भारतेंदु शीघ्रता से चलकर डॉक्टर नीलकंठ के कमरे में आ गए।

आभा हँसने लगी, मालती शरमा गई।

---

## १४

मालती सिनेमा देखकर लौटी, लेकिन उसका हृदय प्रसन्न नहीं था। वह सीधे अपने कमरे में चली गई, और वहीं भोजन लाने का आदेश दिया। मालती आराम-कुर्सी पर लेटकर दिन-भर की घटनाओं का मनन करने लगी। वह सोचने लगी—

"सुबह होती है, शाम होती है—उम्र यों ही तमाम होती है।" यह सत्य है, बिलकुल सत्य है। वास्तव में सुबह-शाम के चक्कर में तमाम उम्र बीत जाती है, युग बीत जाते हैं, और मन्वंतर बीत जाते हैं। मनुष्य-मात्र को जब से होश हुआ है, या उसका इस धरातल पर प्रादुर्भाव हुआ है, तब से वह सुबह-शाम का चक्र देख रहा है, और उस वक़्त तक देखेगा, जब तक वह रहेगा। इसी चक्र को देखते-देखते मेरे भी अठारह-उन्नीस वर्ष बीत गए हैं।

"इतने वर्ष बीत गए, किंतु क्या मेरा स्त्री-जीवन एक बार भी सफल हुआ है? मैंने क्या एक दिन के लिये भी किसी से प्रेम किया है। आभा कहती है, स्त्री-जीवन की महत्ता है प्रेम करने में और किए जाने में। प्रेम का विनिमय स्त्री-जीवन का श्रृंगार है—उसके स्त्रीत्व का विकास है। ईश्वर ने स्त्री-जाति को केवल प्रेम करने के लिये रचा है, तभी तो वह उसकी कोमल रचना है, सुषमा और सौख्य, श्रृंगार और विलास, शोभा और सौंदर्य-लावण्य और रूप का अटूट भंडार है। इस विश्व में, चराचर में, जो कुछ भव्य है, मनोरम है, कोमल है, श्रृंगारमय है, वह सब हमारे में है। हम पुरुष-जाति पर शासन करती हैं, और उसकी स्वामिनी हैं।

"अरे, मैं कहाँ बहक गई! मेरे लिये यह श्रृंगारमय जीवन

बिलकुल निराशा है, केवल पागल का प्रलाप है। आह! यह विचार वृश्चिक-दंशन से भी अधिक भयंकर और विष की तड़पन से भी अधिक पीड़ाकारी है। मेरा स्त्रीत्व नष्ट हो गया, मेरा जीवन ध्वंस हो गया। यह मेरा सौंदर्य किसके लिये है, मेरा लावण्य किसके लिये है, मेरा श्रृंगार किसके लिये है, और मेरा प्रेम किसके लिये है? इसका उत्तर नहीं मिलता। शायद यह मेरे लिये है कि मैं इसका प्रतिबिंब देखकर कुढ़ूँ, रोऊँ और दग्ध होऊँ। हाय, कैसी विडंबना है!

आभा देखो, कितनी प्रसन्न है, उसकी उमंगें चौकड़ी भर रही हैं, उसकी आशाएँ किलक रही हैं। उसका सौंदर्य उसके भोग की वस्तु है। आज ज़रा केश नहीं बँधे थे, वह कितनी व्याकुल हुई थी। वह साड़ी पहनकर कितनी प्रसन्न हुई थी, वह सिनेमा जाने के लिये कितनी आतुर थी। उसे ज्ञात था कि कोई उसके पहनाव-श्रृंगार, केश-विन्यास को देखनेवाला है, भोगनेवाला है। मैं जो वस्तु पहनूँ, ओढ़ूँ, केवल अपने को सुख देने के लिये, इससे बजाय सुख के कसक होती है, यंत्रणा होती है, और अकथनीय वेदना होती है। मेरा उत्साह मुझे धिक्कारने लगता है, मेरा श्रृंगार मेरा उपहास करने लगता है, मेरा विन्यास मुझे चिढ़ाने लगता है।

"मैं क्यों इतनी वेदना सहन करूँ? किसके लिये सहन करूँ? मैं अभी तक अविवाहित हूँ, कहीं एक स्त्री का विवाह दूसरी स्त्री से होता है। स्त्री और पुरुष के युग्म का नाम विवाह है। तब तो मैं कुमारी हूँ, और दूसरा विवाह कर सकती हूँ—दूसरे से प्रेम कर सकती हूँ। इसमें मैं कोई वैध रुकावट नहीं देखती।

"यह 'दूसरा'-शब्द किस बात का बोधक है? इससे तो यह बोध होता है कि कोई वस्तु पहले है। तब क्या मैं उस विवाह के नाटक को सत्य मानती हूँ। मेरे विचार के परदे में वह भाव तो छिपा हुआ है। तब मेरा प्रथम विवाह अवश्य कुछ सत्यता

लिए है। मैं इस भाव पर विजय प्राप्त करूँगी, और उस पुरानी गुलामी का तौक़ उतारकर फेक दूँगी।

"मैं थोड़े दिनों में एसेंबली की सदस्या होऊँगी, और स्त्री-जाति के हित के लिये कई बिल पेश करूँगी। थोड़े दिनों में मैं संसार में उथल-पुथल मचा दूँगी, स्त्री-जाति पर अत्याचार करना लोग भूल जायँगे। स्त्री-जाति के इतिहास में मेरा नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा।

"अच्छा, जिस वक़्त तलाक़ का क़ानून बन जायगा, और सबसे पहले मैं उससे फ़ायदा उठाने के लिये अग्रसर होऊँगी, उस समय भला 'वह' क्या कहेंगे, क्या विचार करेंगे। मैं जानती हूँ, उन्हें बेहद पीड़ा होगी, और उस आघात को सहन कर सकेंगे या नहीं, कहना मुश्किल है। देखो, मेरा स्वार्थ! मैं अपने लिये इतनी व्याकुल होती हूँ, किंतु उनका विचार तो करती नहीं। क्या उनके भी मेरे-जैसा हृदय नहीं, क्या उनके मन में आशाएँ नहीं, क्या उनके हृदय में उत्साह नहीं, तेज नहीं, उमंगें नहीं? उनकी ओर तो क्षण-भर के लिये दृक्पात नहीं करती, और न किया है। क्या यह मेरा अन्याय नहीं। वह मेरे लिये इतने आकुल हैं, मेरे विरह से इतने संतप्त हैं, और मैं अपनी ख़ुदग़ज़ी लिए बैठी हूँ। प्रेम तो यह करना नहीं सिखाता।

"ऐंद्रिक सुखों की दासता का नाम तो प्रेम नहीं, वह तो विलास है। फिर मैं क्या जिसे प्रेम समझ रही थी, वह विलासिता है, जिसके लिये आतुर हूँ, वह पशुत्व का केवल संस्कृत-रूप है। प्रेम की सत्ता तो इससे भी सूक्ष्म है, इससे भी महत् है। वह संसार का, ईश्वरीय शक्ति का विराट् रूप है। मैं प्रेम की भूखी हूँ या विलास की! प्रेम में विलास तो सन्निहित हो सकता है, किंतु विलास में प्रेम हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता।

"उनका प्रेम शुद्ध सात्त्विक, निःस्वार्थ और विलास-हीन है। उसमें स्वर्गीय ज्योति है—उसमें असीम शांति है, उसमें अविनाशी माधुर्य है। जो कुछ है, वह अप्रतिम है, अद्वितीय है। मैं अब तक अपने विलासी विचारों में अंधी थी, इसलिये उनके दिव्य प्रेम की ज्योति देख न सकी, उनका सदैव निरादर किया और ठुकराया है। मेरा तो यह व्यवहार था, और उनका? सोचकर मेरा मन मुझे धिक्कारने लगता है। उन्होंने मेरे अनादर को अपने सिर पर सादर रक्खा है, मेरे तिरस्कार को मधुर हास्य से सहन किया है। मैं पशुत्व के आवेश में अपनी सुध-बुध खो बैठी थी। एक इच्छा दमन न कर सकी, और उसके आवेश में वह परम रत्न बारंबार ठुकराती रही। मेरा अभाग्य!

"उनके न-मालूम कितने पत्र आए, लेकिन मैंने जवाब एक का भी न दिया। उन्होंने क्या अनुमान किया होगा, और मेरे प्रति उनका क्या विचार हुआ होगा। आभा सत्य कहती थी कि मैं बड़ी हृदय-हीन हो गई हूँ। इस हृदय-हीनता पर मुझे स्वयं रोष आता है। मेरे ये विचार क्यों, और कहाँ छिप गए थे? अब क्या इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं? मैंने अपराध किया है, उसके लिये उनसे क्षमा माँगूँगी।"

मालती आवेश में आकर पत्र लिखने बैठ गई। वह लिखने लगी—

"प्राणेश,

मैं अगर यह लिखूँ कि आपके पत्र मुझे नहीं मिले, तो यह बिलकुल झूठ है; अगर यह लिखूँ कि मिले तो, लेकिन उत्तर देने का अवकाश नहीं मिला, तो यह भी झूठ है; अगर यह लिखूँ कि उन पत्रों को पढ़कर रख दिया, और जान-बूझकर उत्तर न दिया, तो यह अवश्य सत्य होगा। किंतु इस सत्य-भाषण से आपको कष्ट

होगा, और मन में कई प्रकार की भावनाएँ उठेंगी। आपके हृदय में मेरे प्रति जो दुर्भावनाएँ उठें, उन सबको आप सत्य जानें, क्योंकि इसी में मेरे पाप की अपराध की निवृत्ति है, और मेरे लिये पुरस्कार।

"जिसे ईसाई शैतान कहते हैं, उसे हम हिंदू पशुत्व कहते हैं, उन दोनो म भेद कोई नहीं। वे शैतान का रूपक दो सींग लगाकर दिखाते हैं, जो केवल पशुत्व का लक्षण है। वही शैतान इस दुनिया में ईश्वर की तरह शक्तिमान् है। मैं तो उससे भी उसे साहसी और शक्तिशाली जानती हूँ। ईश्वरीय शक्तियों को अपना घर बनाने में वर्षों लग जाते हैं, लेकिन शैतान तो क्षण-मात्र में मनुष्य को पराजित करके उसे अपना ग़ुलाम बना लेता है। कहना न होगा, मैं अभी तक उसी शैतान या पशुत्व के चक्र में फँसी हुई अपने देवता की अवहेलना कर रही थी।

"शायद ये विचार पढ़कर आपको हँसी आवे, और केवल इन्हें झूठ तथा फ़रेब समझें। परंतु मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यह असत्य नहीं। मै अब अपनी असलियत समझने लगी हूँ, और प्रेम का असली तत्त्व भी पहचानने लगी हूँ..... .."

लिखती-लिखती मालती रुक गई। उसके घर में आनंद का कोलाहल होने लगा, और सर्वत्र भागने-दौड़ने के शब्द सुनाई देने लगे। सहसा उसका हृदय वेग से धड़क उठा, और वह उत्सुकता से दरवाज़े की ओर देखने लगी। भागते हुए पद-शब्द उसके कमरे क निकट सुनाई पड़ने लगे। उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। वह इस असमय के हर्ष-रव को जानने के लिये आतुर हो गई। वह उत्सुक नेत्रों से हर्ष से उमगती हुई अपनी छोटी बहन कामिनी की ओर देखने लगी।

कामिनी ने प्रसन्नता के साथ कहा—"बहनजी, जीजाजी अभी-अभी आए हैं।"

मालती उसकी ओर अविश्वास के साथ देखने लगी।

कामिनी ने उसके इस भाव से रुष्ट होकर कहा—"तुम इस तरह क्या देखती हो। मैं झूठ नहीं कहती। वह सचमुच आए हैं, अगर विश्वास न हो, तो चलकर तुम खुद देख आओ। जीजाजी बहुत दुबले हो गए हैं, पहचाने नहीं जाते। जैसे शादी में थे, वैसे नहीं हैं। आँखें गढे में घुस गई हैं, गाल सूखकर चपटे हो गए हैं, और बहुत दुबले हो गए हैं। अरे, बडा मज़ा आया। बाबूजी बैठे हुए हुक़्क़ा पी रहे थे, और कुछ काग़ज़ देख रहे थे। अम्माजी भी पास बैठी हुई पान लगा रही थीं, और मैं सुपारी काट रही थी। इसी समय एक ताँगा बाहर आकर खड़ा हो गया, और वह दरवाज़े पर खड़े होकर दरबान से पूछने लगे कि क्या साहब घर में हैं। दरबान ने उनको अजनबी समझकर कहा—यह वक़्त मिलने का नहीं है, सुबह आना। वह शायद जानेवाले थे कि बाबूजी ने दरबान को पुकारकर पूछा कि कौन आया है। तब उसने नाम पूछा, तो उन्होंने बतलाया—कामेश्वरप्रसादसिंह। बस, यह सुनते ही दरबान के भी होश ठिकाने आ गए, और बाबूजी ने भी उसे सुन लिया, वह भी दौड़ते हुए बाहर गए। फिर उन्हें पहचानकर लिवा लाए। अम्माजी बड़े वेग से इंतज़ाम करने के लिये भागीं, और मैं तुम्हें ख़बर देने चली आई। वह इस समय कानपुर से आ रहे हैं, और इसके पहले कलकत्ते गए थे। क्यों बहनजी, उन्होंने क्या तुम्हें लिखा था कि वह इस तरह विना इत्तिला दिए आवेंगे। आज तो नहीं, कल ज़रूर उन्हें अच्छी तरह बनाऊँगी।"

कामिनी अपनी बकवास में मस्त थी, और मालती अपने विचारों में मग्न थी। उसने कामिनी की बातें सुनीं या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता।

कामिनी के लिये दूसरा बहुत काम था। वह हर्ष से नाचती हुई कोई दूसरा प्रबंध करने के लिये चली गई। मालती दूसरे विचारों में मग्न हो गई।

---

१५

मालती के सामने एक नई समस्या उपस्थित हो गई। कल्पना के आँगन से निकलकर उसे वास्तविकता के मैदान में आना पड़ा। मस्तिष्क के विचारों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये उसका मन उत्साहित करने लगा, किंतु महीनों से संचित विद्रोह अपने पूर्ण बल से उठकर उसका मुक़ाबला करने लगा। जब कुँवर कामेश्वर-प्रसादसिंह मालती के सामने ससंकोच आकर खड़े हुए, तो मालती के मुख की मुस्किराहट गंभीरता में परिणत हो गई, किंतु उसका हृदय बड़े वेग से स्पंदित हो रहा था।

मालती उनको बैठने के लिये कहना भी भूल गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने उसकी ओर भय-विह्वल दृष्टि से देखते हुए कहा—"मेरे असमय आने से आपको कष्ट हुआ, इसकी क्षमा चाहता हूँ।"

मालती का हृदय उत्फुल्ल तो हुआ, लेकिन वह कुछ उत्तर न दे सकी।

उन्होंने फिर किंचित् साहस-पूर्वक कहा—"मैं तो न आता, किंतु आपके देखने की लालसा ज़बरदस्ती घसीट लाई। जो कुछ हो, मैं हर तरह से अपराधी हूँ। कृपा करके क्षमा करें।"

मालती कुछ उत्तर न दे सकी। उसके हृदय में तूफ़ान उठने लगा।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा—"क्या मेरे अपराध की क्षमा नहीं? अच्छा, मैं कल सुबह की गाड़ी से चला जाऊँगा। अगर आपको.... ..."

मालती ने बीच ही में बात काटकर कहा—"क्या यही कहने के लिये आप आए हैं ?"

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह का मन-मयूर नाच उठा।

उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा—"अपनी आराध्य देवी की भर्त्सना में भी सम्मान प्राप्त होता है। नहीं, मैं यह कहने के लिये नहीं आया। कहने को तो बहुत कुछ है।"

मालती ने उत्सुक दृष्टि से देखा, किंतु कुछ उत्तर नहीं दिया। वह सोचने लगी, आज का दिन न-मालूम कितनी घटनाएँ अपने उर में छिपाए है।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने धीमे कंठ से कहा—"आजकल मेरे, नहीं आपके घर में अनेकानेक उपद्रव उठ रहे हैं, जिनका जानना आपके लिये उचित है।"

मालती ने कुछ क्षुब्ध कंठ से कहा—"यह 'आप'-शब्द किसके लिये इस्तेमाल करते हैं ?"

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"अपनी आराध्य देवी के लिये, और किसके लिये !"

मालती ने रोष के साथ कहा—"व्यंग्य तो प्रेम का नाशक है।"

कुँवर कामेश्वर ने संकुचित होकर कहा—"यदि सत्य का कथन व्यंग्य है, तो फिर सत्य किस तरह कहा जायगा। तुम मेरे प्रेम के रूप को नहीं जानतीं, और न शायद उसे जान ही सकती हो। तुम्हारे पास वह हृदय नहीं। यह मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हें पूर्ण रूप से सुखी नहीं कर सकता, किंतु मैं तुम्हारे लिये प्रेम का अगाध, असीम, अटूट भंडार लिए हुए हूँ। तुम्हारे आने के बाद यदि मैं बयान करूँ कि कैसे मैंने दिन काटे हैं, तो शायद तुम्हें विश्वास न होगा। एक तरफ़ तो घर की कलह, और दूसरी ओर तुम्हारा वियोग। ईश्वर ही जानता है, कैसे दिन व्यतीत हुए।

अम्माजी ने मुझे घर में ज़हर खिलाने के भय से बाहर जाने का आदेश दिया, और वह आजकल अपने भाई, यानी मेरे मामा के यहाँ हमारी दोनो बहनों को लेकर चली गई हैं। एक भयानक युद्ध उनमें और पिताजी में छिड़ गया है। पिताजी मुझे गद्दी की हक़दारी से अलाहिदा करने की तजवीज़ कर रहे हैं, और मुझे ज़हर देने का षड्यंत्र हो रहा है। पृथ्वीसिंह को, जो अनूपकुमारी का लड़का है, गद्दी पर बैठाने का चक्र रचा जा रहा है। इसलिये पिताजी एसेंबली के लिये खड़े हुए हैं, और उनके कामयाब होने की भी पूरी उम्मीद है। एसेंबली में जाकर वह अंतरजातीय विवाह को जायज़ कराने का क़ानून बनाने की चेष्टा करेंगे, और दूसरा दल इस बात का पेश करेंगे कि जो संतान ऐसे विवाह से पहले या पीछे उत्पन्न हुई हो, वह जायज़ संतान समझी जाय। इस प्रकार पृथ्वीसिंह को अधिकार दिलाने की चेष्टा की जा रही है। अम्माजी का विश्वास है कि जिस रोग से मैं ग्रस्त हूँ, वह अनूप-कुमारी और बाबू मातादीनसहाय के किसी षड्यंत्र का फल है। वह एक दिन अनूपकुमारी के घर गई थीं। अचानक उन्हें काग़ज़ों का एक बंडल और कुछ दवाइयों की शीशियाँ मिल गईं। उन काग़ज़ों में अनूपकुमारी के पिछले जीवन का कुछ हाल है।"

यह कहकर वह ठहर गए। मालती बड़ी उत्सुकता से सुन रही थी। उसने एक गंभीर निःश्वास लेकर कहा—"इतने थोड़े समय में इतनी घटनाएँ हो गईं, और मुझे आपने कुछ लिखा नहीं।"

कुँवर कामेश्वर ने मुस्किराकर कहा—"और अच्छा, तुम मुझे 'आप' क्यों कहती हो?"

मालती ने लजाकर अपना सिर नत कर लिया।

कुँवर कामेश्वर ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"बोलो,

अब क्यों नहीं बोलतीं। क्या तुम्हें यह अधिकार है कि मुझे 'आप' कहकर संबोधन करो?"

मालती ने अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया। उसके शरीर में तड़ित्प्रवाह दौड़कर कंपन और बेसुधी पैदा करने लगा।

कुँवर कामेश्वर ने उसे अपनी ओर घसीटते हुए प्रेम के नवीन आवेश से कहा—"बोलो, प्रियतमे! तुम्हारे एक प्रेम-शब्द से मेरे मन का इतने दिनों का उत्ताप गलकर बह जायगा।"

मालती ने कोई आपत्ति नहीं की, वह उठकर उनके पास सोफ़े पर बैठ गई। विद्युत् का प्रकाश मुस्किराने लगा।

मालती की कुछ घंटे पहले लिखी हुई पत्रिका मेज़ पर उसी तरह रक्खी थी। वह इतनी विस्मय-सागर में डूब गई थी कि उसे उठाकर रखने का ध्यान बिलकुल न रह गया था। कुँवर कामेश्वर की दृष्टि सहसा उस पर पड़ी, और उन्होंने उसे उठा लिया। मालती ने झपटकर उसे छीनने का प्रयत्न किया। उनकी उत्सुकता विशेष जाग्रत् हुई, और उसे पढ़ने के लिये आतुर हो उठे।

मालती जब किसी प्रकार उसे न छीन सकी, तो उसने कहा—"आप उसे न पढ़ें, वह मैंने अपने एक प्रेमी को लिखा है।"

यह कहकर वह मुस्किराई।

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"आपका यह कथन तो मुझे पढ़ने के लिये और विवश करता है; किसी ईर्ष्या के ख़याल से नहीं, केवल उसके प्रेम की गहराई जानने के लिये।"

मालती ने हँसकर कुछ लज्जित स्वर में कहा—"अगर उसका प्रेम आपके प्रेम से ज़्यादा गहरा हो, तो आप क्या करेंगे?"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"उसका चेला हो जाऊँगा।"

यह कहकर वह हँसने लगे, और मालती भी नीची दृष्टि करके हँसने लगी। कुँवर कामेश्वर पत्र पढ़ने लगे। मालती का हृदय वेग

से स्पंदित होने लगा, और उसके कपोलों की रक्ताभा गहरी होने लगी।

कुँवर कामेश्वर के हृदय की एक-एक कली प्रस्फुटित हो रही थी, जिससे अनंत प्रेम की उज्ज्वल धारा मालती को चारो ओर से प्लावित कर रही थी, जिसमें कामुकता की कालिमा न थी, क्षणिक आवेश का नशा न था। पत्र समाप्त कर उन्होंने मालती को हृदय से लगाने का प्रयत्न किया, लेकिन वह छिटककर दूर खड़ी हो गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर कहा—"यह छलना कैसी, गुड़ दिखाकर पत्थर मारना!"

मालती ने कहा—"आप अपनी अधिकार-परिधि से बाहर क्यों जाते हैं? आपने कहा था, मुझे अपना मित्र मानो, मैं उसी दृष्टि से आपको मानती हूँ।"

यह आघात इस समय सहन करने के लिये वह तैयार न थे। उन्होंने असहाय दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—"मुझे स्मरण है, मैं इतने से ही संतुष्ट हो जाऊँगा। ख़ैर।"

उनकी आँखों से वेदना का मलिन प्रकाश निकलकर मालती के हृदय में दया का संचार करने लगा।

मालती ने मधुर मुस्कान-सहित कहा—"यह तो आपका ही निर्णय है।"

कुँवर कामेश्वर ने म्लान मुख से कहा—"फिर यह पत्र क्यों लिखा?"

मालती ने हँसकर उत्तर दिया—"अपने मन को संतुष्ट करने के लिये। कवि जो कुछ लिखता है, वह अपने को सुखी करने के लिये। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरित-मानस की रचना 'स्वान्तः सुखाय' के भाव से प्रेरित होकर की थी।"

उसकी आँखों से कौतुक और परिहास निकलकर उन्हें चिढ़ाने लगे।

कुँवर कामेश्वर ने वह पत्र अपनी जेब में रखते हुए कहा—"ख़ैर, यह अधूरा पत्र कभी, अवसर आने पर, प्रमाण में पेश किया जायगा।"

मालती ने हँसकर कहा—"बिना हस्ताक्षरों के कोई दस्तावेज़ आजकल की अदालतों में प्रमाण नहीं माना जाता।"

कुँवर कामेश्वर ने हँसते हुए कहा—"मेरे प्रेम की अदालत में ऐसा अन्याय नहीं होता, वहाँ संकेत और भावों पर ही फ़ैसला मिलता है।"

मालती ने उत्तर दिया—"इशारों पर फ़ैसला देनेवाली अदालतों के फ़ैसले इजराय में नहीं आते। वे रद्दी की टोकरी की शोभा बढ़ावेंगे।"

कुँवर कामेश्वर ने मालती को पकड़कर सोफ़े पर बैठाते हुए कहा—"फ़ैसल भले ही रद्दी की टोकरी में फेंके जायँ, किंतु प्रेम की अदालत का न्यायाधीश तो मेरे हृदय-सिंहासन पर सदैव आसीन रहेगा।"

मालती ने लज्जित होते हुए कहा—"यह तो ज़बरदस्ती है। मित्रता का बंधन प्रेम के बंधन से उच्च नहीं।"

उसके स्वर में व्यंग्य का आभास था।

कुँवर कामेश्वर ने कुंठित होकर कहा—"इतना व्यंग्य क्यों, मैं अपने अपराध की क्षमा माँगता हूँ।"

मालती ने प्रसन्न होकर कहा—"तब यह लिखकर मेरी सखी से मेरा अपमान क्यों कराया?"

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर कहा—"अच्छा, इसीलिये इतने दिनों तक चुप रहीं, एक पत्र भी न लिखा।"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुँवर कामेश्वर ने उसे अपने पास सप्रेम घसीटते हुए कहा—

"प्रेमी का स्वत्व तो अपराध-पर-अपराध करने में ही प्रकट होता है।"

यह कहकर उन्होंने उसके अरुण कपोलों पर अपने गंभीर प्रेम का चिह्न अंकित कर दिया।

मालती ने लज्जित होकर उनके वक्षःस्थल में अपना मुख छिपा लिया। विद्युत् का प्रकाश अपने नेत्र बंद करने के लिये उत्कंठित हो उठा।

---

१६

आभा बड़ी उमंग से मालती के कमरे में प्रविष्ट हुई, किंतु कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह को बैठे देखकर, स्तब्ध होकर खड़ी हो गई। उनसे उसका परिचय न था, और न वह उन्हें पहचानती थी। मालती और कुँवर कामेश्वर सोफ़े पर बैठे हुए आलाप कर रहे थे। आभा को ठिठकते देखकर मालती ने सोफ़े से उठते हुए कहा—"ख़ुश आमदीद! आइए, जिनकी आप वकालत किया करती थीं, आपके वही मुअक्किल आपका मेहनताना देने के लिये घंटों से बैठे हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

आभा अप्रतिभ होकर मालती की ओर देखने लगी। वह जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही। उसने कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह की ओर दृष्टि-पात तक न किया।

मालती ने हँसकर कहा—"अरे, आप तो लाज की पुतली बन गईं। वह वकालत कहाँ गई। आज तक मैंने किसी वकील को अपने मुअक्किल से शरमाते और अपने मेहनताने के प्रति इस प्रकार उदासीन होकर संकुचित होते नहीं देखा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह भी विस्मित दृष्टि से आभा और मालती की ओर देखने लगे।

मालती ने उन दोनो की ओर देखते हुए कहा—"क्या दृष्टि-विनिमय हो रहा है?"

आभा वापस लौटने लगी।

मालती ने उसे पकड़ते हुए कहा—"यह क्या बात है और कौन-सी तहज़ीब है। मैं तुम्हें किसी प्रकार नहीं जाने दे सकती।"

आभा ने ठहरकर मृदु स्वर में कहा—"मुझे जाने दो मालती, मैं तुम्हारे सुख में विघ्न होकर नहीं ठहरना चाहती।"

मालती ने हँसकर उत्तर दिया—"इसकी चिंता आपको न करनी होगी। आइए, आपका परिचय तो करा दूँ।"

मालती ने आभा को घसीटकर कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह के सामने खड़ा करते हुए कहा—"आपको इनका विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि बिना किसी मेहनताने के आपकी तरफ़ से वकालत करती थीं। आपका शुभ नाम है आभाकुमारी। आप मेरे प्रोफ़ेसर और डीन डॉक्टर नीलकंठ शुक्ल की पुत्री हैं। बड़ी प्रतिभा-संपन्न हैं, बी० ए० और एम्० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया है, और गोल्ड-मेडलिस्ट भी हैं। आपका विवाह फ़िजी के प्रसिद्ध धन-कुबेर पंडित मनमोहननाथ के एकमात्र पुत्र भारतेंदुकुमारजी से, जो हमारे सहपाठी थे, होना निश्चित हुआ है। आप पूर्वजन्म के प्रेम में विश्वास ....... । उफ़् यह क्या? क्या यह पुरस्कार है?"

कुँवर कामेश्वर ने पूछा—"क्या हुआ, कहते-कहते आप रुक क से गईं?"

मालती ने उत्तर दिया—"मेरी सखी अपनी तारीफ़ सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं, जिससे मुझे पुरस्कार मिला है।"

यह कहकर उसने अपने हाथ का क्षत स्थान दिखाया, जो आभा के चुटकी काटने से हुआ था।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद मुस्किराने लगे, और आभा लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगी। मालती अपने क्षत स्थान को मलने लगी।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"अपना वाक्य तो पूरा करें। पूर्वजन्म में मैं विश्वास करता हूँ। मेरा कोई साथी तो मिला, यह जानकर मुझे पूर्ण संतोष हुआ।"

मालती ने उत्तर दिया—"आपको तो संतोष हुआ, लेकिन मेरा तो काफ़ी नुक़सान हुआ। इतनी ज़ोर से चुटकी काटी, जिसका दाग़ जन्म-भर रहेगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"अनधिकार चेष्टा का यही फल होता है।"

मालती ने उत्तर में कहा—"अब आपके वकालत करने का मौक़ा आया है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने आभा को नमस्कार करते हुए कहा—"आपकी सखी कभी सीधी तरह कोई बात नहीं कहेंगी, यह मुझे मालूम है। आप डॉक्टर नीलकंठ की पुत्री हैं, जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

आभा ने नमस्कार करते हुए कहा—"आपके दर्शन कर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई।"

मालती ने हँसकर कहा—"अब ठीक हुआ। अब मेरा यहाँ क्या काम। जब एक दूसरे से मिलकर आप लोगों को इतनी प्रसन्नता हुई, तब मेरे रहने से तो उसमें विघ्न होगा, अतएव मैं जाती हूँ।"

यह कहकर वह जाने लगी।

आभा ने उसे पकड़ते हुए कहा—"यह मेरे जाने के लिये संकेत है। मैं तो पहले ही जाती थी, आपने परिचय देने के बहाने व्यर्थ मुझे रोक लिया। आप कष्ट न करें, मैं जाती हूँ। यही नहीं कि यहाँ से जाती हूँ, बल्कि आपके शहर और आपके देश से जाती हूँ। दो दिन से आपके दर्शन नहीं मिले। मिलते कैसे। ख़ैर, मुझे क्या मालूम था, आप इतनी व्यस्त हैं, नहीं तो परसों या कल आकर आप लोगों के दर्शन करती।"

मालती ने आभा को बैठाते हुए कहा—"कहाँ जा रही हो? विवाह होने के पहले ही क्या ससुराल जा रही हो?"

आभा के कपोल लाल हो गए, उसने कहा—"जिस बात की कोई बिना नहीं, उसे बार-बार कहकर सत्य नहीं बताया जा सकता।"

मालती ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"क्या भारतेंदु बाबू के साथ आपका विवाह तय नहीं हुआ? क्या मैं झूठ कहती हूँ?"

आभा ने उत्तर दिया—"ख़ैर, इन बातों को जाने दीजिए। मैं पापा के साथ संसार-भ्रमण के लिये जा रही हूँ। पापा भी तो यहाँ मेरे साथ आए हैं, बड़े बाबू से पूछने के लिये कि क्या वह भी चलेंगे।"

मालती ने चकित होकर कहा—"क्या बाबूजी भी जायँगे? उन्होंने तो इसका कोई ज़िक्र नहीं किया। हाँ, याद आया, उस दिन तुम्हारे यहाँ डॉक्टर साहब ने कहा था कि तुम्हारे ससुर कोई आश्रम उद्घाटन करनेवाले हैं, उसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण आया है। मुझसे भी चलने को कह रहे थे। क्या बताऊँ, अगर इलेक्शन का झगड़ा न होता, तो मैं यह सुअवसर हाथ से कभी न जाने देती।"

आभा ने कुँवर कामेश्वरप्रसाद से कहा—"आपने कुछ सुना है। मेरी सखी शीघ्र ही एम्० एल्० ए० होने जा रही हैं!"

उन्होंने मुस्कान-सहित कहा—"जी हाँ, आज कामिनी से सुना है, उसने मौक़ा मिलने पर यह भेद प्रकट कर दिया।"

आभा ने पूछा—"क्या आपको मालूम है, यह नाटक क्यों रचा गया है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने सिर हिलाकर अपनी अनभिज्ञता प्रकट की।

आभा ने कहा—"पुरुष-जाति के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करने के लिये। पुरुष-जाति हर प्रकार स्त्री-जाति को कुचल रही है, उसे अपनी दासी नहीं, ग़ुलाम बनाए हुए है, उससे छुटकारा दिलाने के लिये, स्त्री-जाति के अधिकार सुरक्षित करने के लिये।"

मालती ने तुरंत कहा—"और पुरुष को अपना ग़ुलाम बनाने के लिये।"

आभा ने हँसकर कहा—"और तलाक़ का क़ानून बनाने के लिये।"

आभा के अंतिम शब्दों ने कुँवर कामेश्वरप्रसाद को चौंका दिया। उन्होंने आहत दृष्टि से मालती और आभा की ओर देखा। उनके मुख का रंग फीका पड़ गया और मालती भी लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगी।

आभा को अपनी ग़लती तुरंत मालूम हुई, और वह भी म्लान दृष्टि से उन दोनो की ओर देखकर चुप हो गई।

उस कमरे में भयानक निस्तब्धता छा गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उस निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा—"मुझे प्रसन्नता है कि सुधार का श्रीगणेश पहले मेरे घर से होने जा रहा है। उधर पिताजी भी एम्० एल्० ए० होने जा रहे हैं, और इधर श्रीमतीजी भी। उन दोनो का मूल-कारण मैं ही हूँ।"

यह कहकर उन्होंने हँसने की चेष्टा की, किंतु उनके कंठ की कर्कशता उनको मानसिक पीड़ा का परिचय देने लगी, जिससे आभा सत्य ही आकुल होकर पश्चात्ताप करने लगी। मालती निष्प्रभ मुख से दृष्टि नीची करके पृथ्वी की ओर देखने लगी।

इसी समय कामिनी ने सहर्ष उस कमरे में आकर कहा—"बाबू-जी दक्षिणी अमेरिका जा रहे हैं। मैं भी उनके साथ जाऊँगी।"

मालती, जो बहुत देर से उद्विग्न हो रही थी, इस अवसर को पाकर धन्य हो गई। उसने कामिनी से कहा—"क्या सचमुच बाबू-जी जायँगे?"

कामिनी ने उत्तर दिया—"क्या मैं झूठ कहती हूँ? अगर तुम्हें विश्वास न हो, तो जाकर पूछ आओ। आभा जीजी तो जायँगी। प्रोफ़ेसर साहब भी जा रहे हैं।"

मालती ने उठते हुए कहा—"अच्छा, मैं जाकर पूछती हूँ। अगर बाबूजी ने जाने से इनकार किया, तो याद रखना।"

कामिनी ने भोलेपन से कहा—"हाँ, अगर वह न जा रहे हों, तो मुझे मारना।"

यह कहकर मालती इसी बहाने कमरे के बाहर चो गई।

कामिनी ने कहा—"आभा जीजी, कहो, तो उस दिनवाली बात कह दूँ?"

आभा ने चकित होकर कहा—"कौन-सी बात कामिनी?"

कामिनी ने हँसकर कहा—"उस दिनवाली बात, जब तुम जीजाजी को जीजा कहते शरमाती थीं।"

यह कहकर वह हँसने लगी। आभा लज्जा से लाल हो गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कामिनी से आदर के साथ पूछा—"क्या बात है, कामिनी? मेरी बात मुझसे न छिपाओ।"

आभा ने आँखों से कामिनी को कहने के लिये मना किया।

कामिनी ने उत्तर दिया—"नहीं, आभा जीजी की बात मै नहीं कहूँगी। वह मुझे बहुत प्यार करती हैं, और जब बडी जीजी मुझे मारती हैं, तो वह बचाती हैं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं तुम्हारे लिये बहुत-से खिलौने ला दूँगा। एक ऐसा हवाई जहाज़ ले दूँगा, जिस पर तुम बैठकर अपने घर में उड़ती हुई घूमो।"

कामिनी ने हँसकर कहा—"जाइए, कहीं ऐसा हवाई जहाज़ होता भी है। मै सब जानती हूँ। मैं किसी तरह आभा जीजी की बात नहीं कहूँगी। हाँ, बडी जीजी की बात पूछो, सब बता दूँगी, चाहे हवाई जहाज़ ले दो, चाहे न ले दो।"

मालती ने लौटकर कहा—"हाँ, बड़ी जीजी तो तुम्हारी दुश्मन हैं। आभा से तुम्हारी बडी मित्रता है?"

कामिनी ने कमरे के बाहर दौड़कर जाते हुए कहा—"तुम मुझे मारती क्यों हो, मैं जीजा से तुम्हारी शिकायत करूँगी।"

मालती, आभा और कुँवर कामेश्वर हँसने लगे। कामिनी प्रसन्नता में मग्न चली गई।

मालती ने पूछा—"आभा, तुम कब जा रही हो?"

आभा ने उत्तर दिया—"कल शाम को हम लोग रवाना हो जायँगे, और दो दिन कलकत्ते ठहरकर फिर जहाज़ में रवाना होंगे। क्या तुम्हारा चलने का इरादा नहीं होता?"

मालती ने कहा—"बाबूजी नहीं जा रहे हैं। कामिनी को बहलाने के लिये उन्होंने कह दिया था। इस अवसर पर मैं कैसे देश छोड़ सकती हूँ।"

फिर धीरे से उसके कान के समीप कहा—"मेरे जाने से तुम्हारे 'हनी-मून' में विघ्न पड़ेगा।"

आभा ने उसे धक्का देते हुए कहा—"तुम्हें हमेशा मज़ाक ही सूझता है।"

मालती ने गंभीर होकर कहा—"जीवन क्या है? वह कुछ हँसी, कुछ रंज, कुछ शोक, कुछ चिंता, कुछ आनंद, कुछ सोहाग, कुछ आशा, कुछ निराशा का समूह-मात्र है।"

आभा ने हँसकर कहा—"वाह, कितना स्पष्ट वर्णन है।"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"बेशक, जीवन मृत्यु की भूमिका है।"

आभा ने हँसकर कहा—"अथवा ईश्वर की शक्तियों के संघर्षण की रणभूमि है।"

मालती ने हँसकर कहा—"अथवा पूर्व-जन्म का परिशिष्ट है।"

यह कहकर वह हँस पड़ी। आभा कुछ लज्जित हो गई।

आभा ने उठते हुए कहा—"अब तो आपके दर्शन नहीं होंगे, इसलिये अभी से विदा माँग लेना उचित है।"

मालती ने उसे बैठाते हुए कहा—"वाह, अभी से चल दीं। पहले तो पत्र देने पर मिठाई माँगती थीं, अब आज जब वह स्वयं आ गए हैं, तो मुँह भी मीठा न करोगी।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"विना जल-पान किए हुए आप कैसे जा सकती हैं। आज यहाँ ठहरिए। थोड़ी देर में शाम होनेवाली है, हम लोग टेनिस खेलेंगे।"

फिर मालती से कहा—"आप कृपा करके भारतेंदु बाबू को बुला लें, और उनसे भी मेरा परिचय करा दें।"

मालती की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। उसने उत्साह-पूर्वक कहा—"उफ़्, मैं बड़ी बेवक़ूफ़ हूँ। यह मुझे अब तक क्यों याद नहीं आया। मैं अभी मोटर पर जाती हूँ, और उन्हें अपने साथ लेकर आती हूँ। नौकर भेजूँ, तो वह उसे टाल देंगे। मुझे ही जाना पड़ेगा।"

आभा ने आपत्ति-पूर्ण दृष्टि से मालती की ओर देखा।

मालती ने उस पर किंचित् ध्यान नहीं दिया, और कहा—"जनाब, मैं आपसे डरती नहीं, जो आप मुझे आँखें दिखाती हैं। आपको अगर जाना है, तो अपने मुअक्किल से पूछ लें। मेरे ऊपर आपका कोई ज़ोर नहीं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"मेरा इतना अनुरोध नहीं टालेंगी, यह मुझे विश्वास है। कल तो आप चली जायँगी, आज ही मौक़ा है कि कुछ देर तक खेल लिया जाय।"

मालती ने उत्साह से उठते हुए कहा—"आभा को आप अगर जाने देंगे, तो याद रखिए, भारतेंदु बाबू आपको कभी क्षमा न करेंगे। मैं पंद्रह या बीस मिनट में उन्हें लेकर आती हूँ।"

यह कहकर वह सवेग कमरे के बाहर हो गई।

आभा और कुँवर कामेश्वर अन्य विषयों पर बातें करने लगे।

---

# चतुर्थ खंड

## १

'सुमित्रा'-नामक जहाज़ कलकत्ते से आभा, भारतेंदु, डॉक्टर नीलकंठ और गंगा को लेकर जब रवाना हुआ, तब दिन के बारह बज चुके थे। कैप्टेन जैकब्स ने उन लोगों का खुले हृदय से स्वागत किया, और उनके ठहरने के लिये सब प्रकार की सुविधाएँ कर दीं। अनंत जल-राशि देखकर आभा को कौतूहल हुआ और गंगा को भय। गंगा डेक पर न खड़ी हो सकती और न नील रत्नाकर की ओर देख सकती थी। उसे उन लोगों के साथ आने का पछतावा होने लगा।

आभा को इतनी प्रसन्नता थी कि एक स्थान पर स्थिर होकर खड़े रहना उसके लिये असंभव था। वह एक नवीन वायु-मंडल में थी, जहाँ पृथ्वी की सरसता का सर्वथा अभाव था और मनुष्य बिलकुल निरुपाय। वह उतना स्वतंत्र न था, जितना पृथ्वीतल पर होता है। उसके उत्साह ने उसके भय को विजित कर दिया था। वह कैप्टेन जैकब्स से जहाज़ के कल पुर्ज़ों के बारे में पूछती फिरती थी। कप्तान भी उसकी उत्सुकता देखकर बड़ी प्रसन्नता से उसे उस जहाज़ की प्रत्येक वस्तु दिखा और समझा रहा था।

भारतेंदु के लिये समुद्र अपनी नवीनता खो चुका था। उन्होंने बहुत बार समुद्र-यात्रा की थी। वह अत्यंत चाव के साथ आभा की उत्सुकता देख रहे थे, किंतु उनके हृदय में शांति न थी। अमीलिया और आभा के बीच में पड़कर उनकी बुरी दशा हो रही थी। एक ओर कर्तव्य का आह्वान था और दूसरी ओर आकर्षण, मोह और प्रेम का। वह अभी तक अपना कर्तव्य निर्धारित नहीं कर पाए थे।

अमीलिया के सम्मुख जाने का उनमें साहस न था, और न आभा को आशा छोड़ने का। आभा और अमीलिया का सम्मिलन अवश्यंभावी देख पड़ता था, परंतु उसका परिणाम क्या होगा, वह न सोच सकते थे। परिणाम सोचने का जब अवसर आता, वह सिहरकर उस विचार को अपने हृदय से दूर करने का प्रयत्न करते।

डॉक्टर नीलकंठ जीवन की जटिलताओं में इतने आबद्ध थे कि उन्हें किसी ओर ध्यान देने का अवसर न मिलता था। उनके सामने केवल एक चिंता थी, वह थी आभा को सुखी करने की। जब आभा तितली की तरह जहाज़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक मँडराती, घूमती, उनकी आँखों से वात्सल्य उमड़कर उसकी रक्षा करता हुआ पीछे-पीछे घूमता। वह मुग्ध चित्त होकर देखते रह जाते।

सूर्य अपनी लालिमा पीछे छोड़कर पश्चिम में अस्त हो चुका था, और वह भी शब्द की प्रतिध्वनि की भाँति शनैः-शनैः कम हो रही थी। आभा ललचाई हुई आँखों से उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही थी। भारतेंदु उसके पास जाकर खड़े हो गए। आभा उन्हें पास खड़े देखकर कुछ संकुचित हो गई।

भारतेंदु ने कहा—"समुद्र में सूर्यास्त की शोभा एक अद्भुत सौंदर्य धारण करती है। यहाँ वह वृक्षों या पर्वतों की आड़ में अस्त नहीं होता। जल से उदय होता और जल में ही अस्त होता है।"

आभा ने उत्तर दिया—"प्रकृति की शोभा का आगार समुद्र है। हिमाच्छादित पर्वत-माला का सौंदर्य भी निराला है, किंतु ऐसा नहीं, जैसा यहाँ देखने को मिलता है।"

भारतेंदु ने कहा—"यहाँ प्रकृति का सौंदर्य अपने साथ कुछ भय का आभास लिए रहता है। अथाह जल-राशि से मनुष्य का प्रीति-संबंध नहीं।"

आभा ने उत्तर में कहा—"सौंदर्य किसी स्थान या काल की संपत्ति नहीं। वह हर जगह व्याप्त है, केवल देखने के लिये आँखें और समझने के लिये बुद्धि चाहिए।"

भारतेंदु ने हँसकर कहा—"यह दूसरी बात है।"

आभा ने कहा—"होगी, किंतु जो मैं कहती हूँ, वह सत्य है या नह ?"

भारतेंदु ने मुग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"यह मैं कब अस्वीकार करता हूँ।"

आभा आत्मसंतुष्टि से मुस्किराकर चुप हो गई।

भारतेंदु ने बातों का सिलसिला बदलते हुए कहा—"मालती ने उस दिन आपको बहुत विरक्त किया था ?"

आभा ने सलज्ज कंठ से कहा—"उसका शुरू से यही हाल है। वह विनोदी जीव है, और उसका यही व्यवसाय है। किंतु........"

भारतेंदु ने पूछा—"किंतु क्या ?"

आभा ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, यही कि भगवान् को उसका हँसना नहीं सुहाया।"

भारतेंदु ने चकित होते हुए कहा—"आख़िर वह क्या ? भगवान् को क्यों नहीं सुहाया ?"

आभा ने कुछ उत्तर नही दिया।

आभा को चुप देखकर भारतेंदु की उत्सुकता बढ़ गई। उन्होंने पूछा—"मैं आपका मतलब नहीं समझा। ईश्वर की कृपा से मैं उसे सब प्रकार से संतुष्ट देखता हूँ। इस पृथ्वी पर जिस-जिस वस्तु की कामना की जा सकती है, वह सब उसे प्राप्त है, फिर दुखी होने का क्या कारण ?"

आभा का ध्यान आकाश के पश्चिमीय खंड में देदीप्यमान शुक्र की ओर था, जो चंद्रमा की प्रतिद्वंद्विता कर रहा था। उसने भारतेंदु की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

भारतेंदु ने पुनः पूछा—"आपने कुछ नहीं बतलाया। क्या मुझसे कहने योग्य नहीं ?"

आभा ने अन्यमनस्क की भाँति कहा—"ऐसी कोई विशेष बात नहीं।"

भारतेंदु चुप हो गए।

आभा ने थोडी देर बाद कहा—"पुरुषों ने स्त्रियों का जीवन एक खिलौना बना रक्खा है।"

भारतेंदु कुछ अप्रतिभ हो गए।

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"वह युग गया, जब स्त्रियाँ पुरुषों की ग़ुलामी करती थीं।"

भारतेंदु ने मुस्किराकर कहा—"बेशक, इस समय पुरुष स्त्रियों की ग़ुलामी करेंगे।"

उनके स्वर में कुछ व्यंग्य की कर्कशता थी, जिसने आभा के स्वाभिमान को कोंच दिया।

उसने तीव्र स्वर में कहा—"हम स्त्रियाँ यह कदापि नहीं कहतीं कि पुरुष हमारी ग़ुलामी करें, हम लोग तो अपने अधिकार-मात्र माँगती हैं। हम केवल यह कहती हैं कि हम भी मनुष्य हैं, और इस पृथ्वी पर जैसे पुरुष को अधिकार प्राप्त हैं; वैसे हमको भी मिलना वाजिब है। एक शब्द में हम केवल समानता चाहती हैं।"

भारतेंदु ने कुछ हँसकर कहा—"हमारे हिंदू-समाज में उनको पुरुषों से श्रेष्ठ स्थान दिया गया है।"

आभा ने सव्यंग्य कहा—"हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखलाने के और। इस विषय में जो कुछ न कहा जाय, वह अच्छा है।"

भारतेंदु ने लज्जित होकर कहा—"व्यावहारिक रीति से चाहे जो कुछ हो, किंतु आदर्श रूप से तो उनका स्थान अवश्य उच्च है।"

आभा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"यह पोल तो यहीं देखने को मिलती है। सुनहले सिद्धांतों की ओट में लोहे की ज़ंजीरें इसी हिंदू-समाज में हैं। दुनिया के सामने ढोल पीटने को तो हमारे शास्त्रकार, क़ानून बनानेवाले कहेंगे—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।' परंतु साथ ही दूसरे टीकाकार कहेंगे—'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' यह द्वैतवाद तो इसी हिंदू-धर्म में देखने को मिलता है।"

आभा के स्वर में तीव्र कटुता थी। भारतेंदु को उत्तर देने का साहस न हुआ।

आभा ने जोश के साथ कहा—"इस हिंदू-समाज में यह देखने को मिलेगा कि पुरुष एक स्त्री को परित्यक्त कर दूसरा विवाह कर सकता है, एक स्त्री का सर्वस्व नष्ट कर उसे दूध की मक्खी की तरह दूर फेक सकता है। यही नहीं, संतान के नाम पर सैकड़ों विवाह कर सकता और उन विवाहिता स्त्रियों को पदाघात द्वारा गृहस्थी के समानाधिकार से वंचित कर सकता है। यह उच्चता का रूप इस समाज में देखने को मिलेगा! कहिए, या इससे अधिक कुछ और।"

भारतेंदु से कोई उत्तर देते न बन पड़ा। अमीलिया के साथ उनका व्यवहार उनके मानस-पटल में जाग्रत् होकर उन्हें धिक्कारने लगा। वह मलीन दृष्टि से सागर के ऊपर कालिमा का प्रसार देख अपने हृदय की कालिमा का मिलान करने लगे।

---

# २

सम्भवतः राजा सूरजबख़्शसिंह के राज्य-काल में, यह पहला अवसर था, जब दरिद्रों को भोजन मिला हो। दरिद्रनारायण के लाड़ले पुत्र सकुटुंब अनूपगढ़ के राजमहल के सामने एकत्र होकर उनका जयजयकार मनाने लगे। पूड़ी और शहर के लिये निर्वस्त्र, अर्द्धनग्न गाँवों के ग़रीब एक दूसरे पर कौवों-कुत्तों की तरह टूट पड़ने लगे, और राजा के सिपाहियों के डंडे भी अपना नृत्य निरंकुशता के साथ दिखाने लगे। एक तुमुल कोलाहल उमड़कर अनूपकुमारी को झरोखों पर लाने के लिये आह्वान करने लगा। दरिद्रों ने अपनी फ़रियाद की, और अनूपकुमारी की दासी ने आकर तुरंत आज्ञा प्रचारित कर दी। दरिद्र जयजयकार कर उसे आशीर्वाद देने लगे। क्षण-मात्र में रानी श्यामकुँवरि के प्रति जो सहानुभूति थी, अंतर्हित होकर अनूप-कुमारी के प्रति श्रद्धा में परिवर्तित हो गई। उस दिन दरिद्रों ने उसे अपनी रानी स्वीकार कर लिया, और अनूपकुमारी हर्ष में मग्न हो गई। जनता का जयजयकार धीरे-से-धीरे मनुष्य का दिमाग़ फिरा देने का बल रखता है।

उत्तप्त मदिरा के आवेश ने अनूपकुमारी के हृदय की फ़ैयाज़ी का द्वार खोल दिया, जिसे उन दरिद्रों के जयजयकार ने उसमें और सहायता प्रदान की। उसने दासियों को पैसों की थैलियाँ लाने की आज्ञा दी। बात-की-बात में वे सरकारी ख़ज़ाने से आ गईं, जिन्हें लुटा देने का आदेश दिया। बिखरती हुई दरिद्रों की भीड़ घनी होने लगी, और कोलाहल पहले से भी अधिक होकर उसके हृदय में अनुपम आनंद भरने लगा। उनका जयजयकार भी उच्च होने लगा।

अनूपकुमारी की आँखों से कौतूहल का स्रोत उमड़कर राजा सूरज-बख़्शसिंह को बुलाने के लिये आतुर हो उठा। वह दौड़ती हुई उनके पास गई। वह इस समय मदिरा के आवेश में बेसुध लेटे हुए थे।

अनूपकुमारी ने उन्हें जगाते हुए कहा—"ज़रा उठकर देखो तो, जिस जनता ने तुम्हें एसेंबली का मेंबर चुना है, वही किस तरह तुम्हारा गुण-गान कर रही है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह की तंद्रा न टूटी।

उसने एक गिलास में ठंडा जल लेकर, अलमारी से एक शीशी निकालकर दो बूँदें उस जल में डालीं, और उन्हें पिला दिया। थोड़ा-सा शीतल जल आँखों पर लगाकर पंखा झलने लगी। शीतल जल और दवा उनकी चेतना जागरित करने लगी। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने नेत्र खोल दिए, और प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

अनूपकुमारी ने कहा—"आपके मेंबर होने की ख़ुशी में जनता आपका जयजयकार कर रही है, और आप यहाँ बेहोश पड़े हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने म्लान हास्य के साथ कहा—"तुम तो मौजूद हो, मेरी क्या ज़रूरत?"

अनूपकुमारी ने हँसकर उत्तर दिया—"कल आप कहेंगे कि दिल्ली जाकर एसेंबली में मेरे स्थान पर बैठकर क़ानून बनाओ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह का नशा अभी उतरा नहीं था, उन्होंने आवेश के साथ कहा—"मैं वह भी करके दिखा दूँगा। अगले चुनाव में तुमको भी किसी ज़िले से खड़ा कर निर्वाचित करवाऊँगा, और अपने साथ, एसेंबली में बैठाकर क़ानून बनाने में तुम्हारा मत दिलवाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराकर कहा—"मालूम होता है, अभी तक

कुछ नशा बाक़ी है।" यह कहकर, वह गिलास में जल डालकर दूसरी ख़ूराक बनाने लगी।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध वह गिलास उठाकर दूर फेक दिया। चाँदी का गिलास ज़ोर से गिरने से विकृतांग हो गया। अनूपकुमारी विस्मय से उनकी ओर देखने लगी।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"मैं नशे में हूँ, यह तुमने कैसे कहा। जो मैं कहता हूँ, सत्य कहता हूँ, इसमें किसी प्रकार का शक या शुबहा न समझो। मैं यह करके तुम्हें दिखा दूँगा। तुम भी लेजिस्लेटिव एसेंबली की सदस्या होगी, यह मैं कहे देता हूँ।"

अनूपकुमारी ने उठते हुए कहा—"अच्छी सनक सवार हुई। परदे में तो जकड़े हुए हैं, घर से बाहर पैर रखना आफ़त है, कहीं सूरज की किरण पड़ गई, तो राजा की मर्यादा नष्ट हो गई, हाल तो यह है, उस पर भी कहते हैं कि मैं लेजिस्लेटिव एसेंबली का मेंबर बनवाऊँगा। वहाँ तो सैकड़ों-हज़ारों आदमियों के साथ बैठना पड़ेगा, बहस वग़ैरह करना और व्याख्यान देना पड़ेगा। यह तो कहिए, वहाँ राजघराने का परदा कैसे चलेगा। राजवंश की मर्यादा की नाक न कट जायगी!"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सरोष कहा—"ठीक है, आज से मैं अपने घर से परदा-प्रथा को बिदा करता हूँ। पुरानी लकीर पीटते-पीटते वर्षों गुज़र गए, अब ज़माना उसे नहीं चाहता। मै भी अपना पुरानापन छोड़ दूँगा। तुम्हें भी नई वेष-भूषा में सजाऊँगा, अपनी और तुम्हारी काया-पलट करूँगा।"

अनूपकुमारी ने साभिमान कहा—"अभी तो ऐसा कहते हो, और जब मै ज़रा चिक के बाहर सिर निकालकर झाँक लूँगी, तो मेरी गरदन नापने के लिये तैयार हो जाओगे। जब तक नशा है, तब तक ये बातें है।"

राज सूरजबख़्शसिंह ने अधीर होकर कहा—"मुझे परेशान मत करो। जो कुछ मैंने कहा है, वह किया है, और आगे भी करूँगा। कह दिया कि मैंने आज से परदा-प्रथा उठा दी। अब तुम्हारे साथ मैं खुल्लमखुल्ला सर्वत्र जाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"तब बड़ा अच्छा लगेगा। लोग उँगली उठाएँगे, और कहेंगे कि यह राजा को 'रखैल' है, उस व़क्त मारे शरम के मैं मर जाऊँगी। अभी तो ठीक है, न कोई देखता है, और न कहता है। मैं अपने क़ैदख़ाने ही में मस्त हूँ। क्षमा कीजिए, मैं परदे के बाहर निकलना नहीं चाहती।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सँभलकर कहा—"मैं अब समझा। आपको इस बात का रंज है कि दशहरे के दिन तुम्हें राजरानी बनाने का वचन दिया था, और अब तक बनाया नहीं। क्यों, यही बात है न?"

अनूपकुमारी ने अपनी आँखें पोछते हुए कहा—"नहीं, इसका रंज क्यों होगा? दुनिया में आज तक 'रखैल' कहीं 'परिणीता' हुई है, जो होऊँगी।"

उसके स्वर में व्यंग्य की तीव्रता थी, और वेदना का आभास था।

राजा सूरजबख़्शसिंह तिलमिला उठे। उन्होंने कहा—"यह तुम न समझना कि मैं उस बात को भूल गया हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है। मैं केवल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इधर लाल साहब और उसकी मा से बड़ी मुश्किलों से छुट्टी मिली है। यह तो तुम जानती ही हो कि मैं उनके झगड़े में किस तरह मशग़ूल था। चार-पाँच बार गवर्नर साहब से मिलने जाना पड़ा, और कई सवालों का जवाब देना पड़ा। अभी तक वह झगड़ा चल ही रहा है। लड़कियों की शादी के लिये हुक्काम ज़ोर दे रहे हैं, जान बड़े

आज़ाब में फँसी है। मेरे साले राजा किशोरसिंह का भी हुक्कामों में ख़ासा चलन और असर है। मैं अपनी सब शक्तियाँ उनसे लड़ने में लगा रहा हूँ। दम लेने को भी फ़ुरसत नहीं मिलती। अगर कहीं मेरे दुश्मनों की चल गई, तो बड़ी हँसी होगी। दूसरे, एसेंबली के लिये खड़े होने से उसमें भी काफ़ी वक़्त सर्फ़ करना पड़ता था। यह सब तुम्हें मालूम ही है, कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। इसी गड़बड़ की वजह से मैंने तुम्हारे साथ विवाह की रस्म अदा नहीं की। सब काम मुझको स्वयं करना पड़ता है। बाबू मातादीनसहाय दीवान तो हैं, लेकिन उनमें काम करने की तमीज़ नहीं। गवर्नर साहब से मिलते, बात करते घबराते हैं। फिर तुम्हीं बताओ, कैसे काम चल सकता है। हाँ, उनसे दवाएँ चाहे जितनी बनवा लो, और इससे ज़्यादा उनसे कुछ नहीं होने का। तुम्हारे लिहाज़ से उनको ऐसी ज़िम्मेदारीवाली जगह पर रखना पड़ता है।"

अनूपकुमारी ने रुष्ट होकर कहा—"यह ख़ूब, मैंने कब आपसे सिफ़ारिश की थी कि मातादीन को दीवान बनाइए। मैं क्यों कहूँगी? आपने ही उनको अपनी ख़ुशी से इस पद पर तैनात किया है। दवाएँ खाने की ख़्वाहिश मुझे थी या आपको। मेरे ऊपर नाहक़ एहसान का बोझ रखते हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पूछा—"तो फिर मैं मातादीन को हटाकर किसी दूसरे चतुर व्यक्ति को नौकर रख लूँ? पीछे फिर मुझे कोई दोष न देना।"

अनूपकुमारी ने चिढ़कर कहा—"मातादीन मेरा कौन है, जो आपको दोष दूँगी। जब वह इस काम के लायक़ नहीं, तो उनको हटा देने में कोई हर्ज नहीं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"बस, तो ठीक, कल ही उनको

दीवान के पद से अलाहिदा करता हूँ, और किसी पढ़े-लिखे होशियार आदमी को रक्खूँगा, जिसका हुक्काम में असर हो।"

अनूपकुमारी ने उत्तर दिया—"बेशक, जैसी ज़रूरत हो, वैसा करना चाहिए। राजनीति यह सिखलाती है कि राजा को कभी किसी पुरुष के अधीन न रहना चाहिए। आप मातादीन की मुट्ठी में हैं। वह जैसा चाहता है, वैसा आपसे करा लेता है। आप भी आँखें बंद कर उसके कहने के माफ़िक़ कर देते हैं। आपके ख़र्च के लिये सरकारी ख़ज़ाने में पैसा नहीं और इधर वह ज़मींदारी-पर-ज़मींदारी ख़रीदता जाता है! क्या आपने कभी सोचा कि यह धन उसके पास आया कहाँ से? उसे सिर्फ़ डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन मिलता है। क्या इतनी कम तनख़्वाहवाला व्यक्ति ज़मींदारियाँ ख़रीद सकता है? यह सब आपका धन है, जो उसके बाल-बच्चों के लिये इकट्ठा हो रहा है। मेरे सिर्फ़ एक लड़का है, उसके लिये सिवा एक मकान के दूसरी, सुई की नोंक बराबर भी, ज़मीन नहीं ख़रीदी गई। उसने आपके साथ-साथ मुझे भी अंधा कर रक्खा है। मैंने भी अभी तक न आपका ख़याल किया न अपना। मैं समझती थी, आप उसकी चतुराई के लिये उसकी क़द्र करते हैं। यहाँ मेरे पास तो वह अपनी तारीफ़ की बड़ी डींग मारता है। वह तो आपको बिलकुल मूर्ख साबित किया करता है। मैं क्या जानूँ, उसमें अफ़-सरों से बोलने की भी तमीज़ नहीं। मैं ख़ुद कई साल से उससे परेशान हूँ, किंतु आपके डर से कुछ कहती न थी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सक्रोध कहा—"अच्छा, अपनी अक़्ल-मंदी की बड़ाई तुम्हारे पास करता है, यह मुझे नहीं मालूम था। यह मैं देख रहा हूँ कि कैसे वह मेरी प्रजा को लूट रहा है। मगर मुझे सिर्फ़ तुम्हारा लिहाज़ था। तुम्हारा भाई होने से मैं उसके

ख़िलाफ़ कोई शिकायत न सुनता था। अब कल ही कान पकड़कर बाहर निकाल दूँगा।"

अनूपकुमारी ने शांत होकर कहा—"किसी तरह का अपमान करके निकालने में मेरी और आपकी बुराई होगी, और वह भी हमारा दुश्मन होकर हमारे शत्रुओं की सहायता करेगा। कहावत मशहूर है—'घर का भेदी लंका ढाही।' पुराने ज़माने में राजा लोग अपने किसी दीवान को ख़ुद नहीं मारते थे, बल्कि किसी को उसके विरुद्ध खड़ा कर देते थे, और न्याय करते हुए या न्याय की ओट में उसे मारते थे, जिसमें वह उनके विरुद्ध कुछ कह न सके। यह ठीक है कि आपके हाथ में न्याय करने की सत्ता यानी अख़्तियार-अदालत नहीं है, किंतु किसी षड्यंत्र में आप उसे सहज ही फँसा सकते है। ग़बन, हत्या, जालसाज़ी, डकैती, चोरी, ऐसे कई जुर्म हैं, जिनमें आप उसकी साज़िश दिखा सकते हैं। आजकल का न्याय तो सिर्फ़ शहादत पर है। एक राजा को झूठी शहादत खड़ी करने में कितनी-देर लगती है। रुपयों का ज़ोर सब कुछ करा सकता है। शत्रु को इस तरह मारना चाहिए कि वह फिर न उठ सके, और कोई उसका पक्ष भी न ग्रहण कर सके, न लोगों की सहानुभूति ही पैदा हो।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने प्रसन्न मन से कहा—"तुम्हारी-जैसी चतुर मंत्रिणी की सहायता से मै सबसे एक साथ लोहा ले सकता हूँ। तुम पृथ्वीसिंह की चिंता न करो। उसे मैं चाहे जैसे हो, इसी गद्दी का मालिक बनाऊँगा, उसके लिये ज़मींदारी ख़रीदने की क्या ज़रूरत। अगर ईश्वर के कोप से मै अपनी कोशिश में कामयाब न हुआ, तो उसे अनूपगढ़ का पुराना ख़ज़ाना, जिसका भेद मेरे सिवा कोई नहीं जानता, दे जाऊँगा, जिसमें इतना धन है कि उससे अनूपगढ़-जैसे दस राज्य ख़रीदे जा सकते हैं। मेरे परदादा

महाराजा महीपतिसिंह रुहेलों से लूटकर लाए थे। अभी तक उसमें से किसी ने एक पैसा नहीं छुआ। ज्यों-का-त्यों रक्खा हुआ है।"

अनूपकुमारी की आँखें विस्मय से चमक उठीं।

राजा सूरजबख़्शसिंह संतोष के साथ मुस्किराने लगे।

---

## ३

उसी दिन शाम को जब दीवान साहब अपने हस्बमामूल तरीक़े पर हाज़िरी देने के लिये अनूपकुमारी के महल में आए, तब उनके चेहरे पर प्रसन्नता और विजय की एक झलक थी, जिससे उनकी प्रौढ़ावस्था की ख़सख़सी दाढ़ी बहुत ख़ूबसूरत देख पड़ती थी। वह कुछ ऊँचे क़द के, शरीर से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति थे। उनका चेहरा रोबीला था, और कंठ-स्वर गंभीर। इधर वर्षों से दीवानी करते-करते उनका स्वभाव कुछ दबंग और कुछ क्रोधी हो गया था। उनके किए हुए के विरुद्ध कहीं शिकायत-फ़रियाद न थी, जिसके कारण वह निरंकुश और स्वाभिमानी हो गए थे। उनके शरीर का वर्ण गेहुआँ था, और आँखें कंजी तथा मस्तक छोटा। भृकुटियों के केश असंयत और टूटे हुए थे; जिनके देखने से कुछ अमानुषिकता मालूम होती थी। उनकी मूछें लंबी थीं, और पुराने ढंग के होने से गलमूछें भी रखते थे। ख़सख़सी दाढ़ी भी थी, जिसको थोड़े दिनों से रखने का शौक़ पैदा हुआ था। वह पढ़े-लिखे ज़्यादा न थे, थोड़ी हिंदी और उर्दू जानते थे, अँगरेज़ी के अक्षर तथा गिनती छोड़कर वह कुछ न जानते थे। किंतु चालाकी, जालसाज़ी, मक्कारी और फ़रेब में उनका सानी दूसरा न था। वह दूर की सोचनेवाले थे, और हमेशा हरएक काम का जाल वर्षों आगे से बिछाया करते थे।

उनके पास गुप्त रूप से कई ऐसे नौकर और नौकरानियाँ थीं, जो तमाम राजमहल और बाहर के गुप्त भेद उनसे कहा करते थे। इनकी वह विशेष ख़ातिर करते और इन्हें वेतन भी देते थे।

उनके आतंक का सिक्का जमा हुआ था, जिससे सब लोग उनकी ख़ुशामद करते थे, और कभी-कभी तो सिर्फ़ उनका कृपापात्र होने के लिये बहुत-सी गुप्त बातें बतला जाया करते थे। अनूपकुमारी का महल भी उनके गुप्तचरों से बचा न था। वे नियमित रूप से वहाँ की घटनाएँ, जो उनके परोक्ष में घटा करती थीं, सूचित करते रहते थे।

जिस समय दीवान साहब अनूपकुमारी के कमरे में प्रविष्ट हुए, वह बैठी हुई अपने विचारों में मग्न थी। उनको देखकर उसकी भृकुटियों में बल पड़ गया, जिसे उनकी तेज़ आँखों ने तुरंत देख लिया। अनूपकुमारी के मुख पर दूसरे ही क्षण मृदुल हास्यरेखा थी। उसने बड़े ही आदर से उन्हें बुलाते हुए कहा—"पधारिए।"

दीवान साहब बड़ी शांति से कुर्सी पर बैठ गए।

अनूपकुमारी ने कहा—"आज राजा साहब किसी विशेष कार्य से, अभी कुछ देर पहले, शहर चले गए हैं। आप उनके साथ नहीं गए?"

उसे मालूम था कि वह अकेले गए हैं। लेकिन फिर भी उसने यह प्रश्न उनसे किया।

दीवान साहब ने अपने मन के उदित भाव को बड़ी सतर्कता से दबाते हुए कहा—"मुझे ले जाने की अब कोई आवश्यकता नहीं, और न होगी।"

उत्तर सुनकर, अनूपकुमारी ने एक बार चौंककर त्रस्त दृष्टि से उनकी ओर देखा, किंतु उनका चेहरा संगमरमर की तरह भावहीन था।

अनूपकुमारी ने धीमे स्वर में कहा—"मैं आपका मतलब नहीं समझी।"

दीवान साहब ने मुस्किराकर कहा—"मैं अपने कथन में कठिन शब्द इस्तेमाल नहीं करता, और न शायद कोई अर्थ-हीन या व्यर्थ।"

अनूपकुमारी ने कहा—"यह तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

दीवान साहब ने मंद मुस्किराहट के साथ कहा—"मैं इस राज्य का आजकल दीवान हूँ, और शायद अपने जीवन के अंत तक रहूँगा।"

अनूपकुमारी मन-ही-मन मुस्किराई। उसे मालूम था कि वह कितनी जल्दी उस जगह से जानेवाले हैं।

दीवान साहब कहने लगे—"शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं बिलकुल झूठ कह रहा हूँ, जब कि राजा साहब एक चतुर व्यक्ति को खोजने शहर गए हुए हैं।"

अनूपकुमारी चुप होकर बेचैनी के साथ उस अद्भुत क्षमतावाले पुरुष की ओर देखने लगी। उसके विस्मय ने उसका कंठ अवरुद्ध कर लिया।

दीवान साहब बड़ी गंभीरता से कहने लगे—"जिस मनुष्य के भाग्य में विधाता राजगद्दी पर बैठने का अंक नहीं लिखता है, वह कभी-कभी उसको इतनी क्षमता देता है, जो राजाओं को ग़ुलाम बनाकर रखता है।"

अहंकार के आवेश ने उन्हें अधिक बोलने नहीं दिया।

अनूपकुमारी ने कुछ चिढ़कर कहा—"आप न-मालूम क्यों ये बातें मुझे सुना रहे हैं?"

दीवान साहब ने सहास्य कहा—"मैं तो सिर्फ़ आपकी तारीफ़ में कुछ कह रहा था। आपके भाग्य में राजगद्दी पर बैठने का सुख नहीं लिखा था, लेकिन राजा को अपना ग़ुलाम बनाने का लेख था। देख लीजिए, क्या इसमें किसी तरह का झूठ है।"

अनूपकुमारी ने श्लेष समझकर भी न समझने का भाव धारण किया।

दीवान साहब ने हँसकर कहा—"क्या मैंने झूठ कहा है?"

अनूपकुमारी को उत्तर देना पड़ा—"नहीं, सत्य है। परंतु यह भी तो हुआ है आपकी कृपा से।"

दीवान साहब ने गंभीरता के साथ कहा—"यह सत्य है; किंतु मनुष्य के जीवन में एक अवसर आता है, जब वह अकृतज्ञ हो जाता है, और अपने साथ भलाई करनेवाले का अहित करने पर उतारू होता है, परंतु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो मनुष्य किसी को बड़ा बनाने की क्षमता रखता है, वह उसे उस पद से गिरा देने का भी कौशल जानता है।"

अनूपकुमारी के मुख से भय के चिह्न-प्रस्फुटित होने लगे, जिन्हें वह छिपाने का प्रयत्न करने लगी।

दीवान साहब ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"मैं तुमको एक कहानी सुनाऊँगा। सुनोगी।"

अनूपकुमारी ने सरोष कहा—"मेरे पास तुम्हारी कहानी सुनने के लिये समय नहीं।"

दीवान साहब की भृकुटियाँ चढ़ गईं। उन्होंने उस भाव को दबाते हुए कहा—"ठीक है, मैं भूल गया था कि आप शीघ्र ही अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजनेवाली और उसकी रानी होनेवाली हैं।"

इस व्यंग्य ने अनूपकुमारी के मर्म-स्थान पर आघात किया। वह तड़प उठी। उसकी आँखों में खून उतर आया। उसने सक्रोध कहा—"सत्य ही वह दिन दूर नहीं। जो अभी आपका व्यंग्य है, वह सत्य में परिणत हो जायगा।"

दीवान साहब ने पूछा—"वह भी किसकी कृपा से?"

अनूपकुमारी ने सक्रोध कहा—"अपने भाग्य और अपने कौशल से।"

दीवान साहब ने कहा—"हूँ।"

दीवान साहब के 'हूँ' ने अनूपकुमारी के रोष को प्रज्वलित कर दिया, जो शांत हो रहा था।

उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—"अब जब आप मेरे साथ इस तरह व्यवहार करते हैं, तब मुझको भी साफ़-साफ़ कह देना पड़ता है। अगर मैं आज अनूपगढ़ की सर्वेसर्वा होकर बैठी हूँ, तो इसमें आपकी कोई बहादुरी नहीं, और न आपका कोई एहसान है। मेरा भाग्य मुझको यहाँ लाया, और उसके निमित्त केवल आप हुए। आपने मेरे साथ जो किया है, अगर उसे सोचती हूँ, तो आपके प्रति विद्वेष से मन ओत-प्रोत हो जाता है। आपने मेरा जीवन इस प्रकार नष्ट किया है, जिसे सुधारने का अब कोई उपाय नहीं। अब तो मेरी निष्कृति इसी पाप में है, और मैं पाप-वासना में और गहरे डूबना चाहती हूँ। मै एक गृहस्थ की आदरणीय स्त्री थी। झूठा भाई का संबंध स्थापित करके मेरे हृदय में विलास और ऐश्वर्य का प्रेम उत्पन्न किया। यही नहीं, पहले मेरा सतीत्व भ्रष्ट करके भाईपन की मर्यादा बढ़ाई, फिर मेरे हाथ से मेरे पति की हत्या कराई, और फिर अपने स्वार्थ साधन के लिये मुझे यहाँ लाकर बेच दिया। इतना करने पर भी क्या एहसान का बोझ मेरे ऊपर बाक़ी है। 'मेरे ऊपर ऐसा शासन करते हो, जैसे मैं तुम्हारी ग़ुलाम होऊँ। यह नहीं जानते कि अगर मैं आज इशारा कर दूँ, तो तुम्हारी सारी इज़्ज़त-आबरू पर पानी पड़ जाय, और शायद ज़िंदगी के भी लाले पड़ जायँ।"

कहते-कहते अनूपकुमारी भयंकर हो उठी। उसके ओष्ठ फड़कने लगे, और आँखें रक्त-रंजित हो गईं।

दीवान साहब पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। वह वैसे ही भाव-विहीन चेहरे से उसकी रोष-भरी धमकी सुनते रहे।

उन्होंने व्यंग्य-भरी मुस्किराहट के साथ कहा—"मेंढकी को भी ज़ुकाम पैदा होने लगा !"

यह कहकर वह बड़े ज़ोर से हँस पड़े। उनकी हास्य की प्रतिध्वनि उसका विद्रूप करने लगी।

उसने क्रुद्ध नागिन की भाँति फुफकारकर कहा—"अब मैं तुम्हें बहुत जल्द इसका प्रतिफल भी दिखा दूँगी, और प्रतिशोध लेकर अपनी पुरानी अग्नि शांत करूँगी। तेरी शक्ति से मैं लड़ूँगी, और दिखा दूँगी कि मैं क्या कर सकती हूँ। तेरे घर की ईंट-ईंट निकलवाकर फेंकवा दूँगी, और अगर तुझे आजन्म कारावास न कराऊँ, या फाँसी पर न लटकवाऊँ, तो मेरा नाम अनूपकुमारी नहीं।"

अनूपकुमारी अधीरता से उठ खड़ी हुई। भावावेश ने उसका मुख बंद कर दिया। वह भयंकर दृष्टि से दीवान साहब की ओर देखने लगी।

दीवान साहब वैसे ही निश्चल बैठे रहे। थोड़ी देर बाद शांति-पूर्वक कहा—"कह लिया कि अभी कुछ और कहना बाक़ी है ?"

अनूपकुमारी ने क्रोध से अधीर होते हुए कहा—"मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती। अगर आज से अपने महल में तुम्हें देखा, तो मारे जूतों के सिर गंजा करवा दूँगी।"

दीवान साहब ने बड़ी गंभीरता से कहा—"यह सौभाग्य तुम्हारे भाग्य में नहीं है। अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी, मुझे इसका बड़ा अफ़सोस है। और, न मेरे लिये फाँसी का फंदा या आजन्म कारा-वास है। जो-जो सज़ाएँ तुमने मेरे लिये तजवीज़ की हैं, मुझे भय है कि कहीं वे तुम्हें न भुगतनी पड़ें। तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि मातादीन कच्चा खिलाड़ी नहीं। अगर वह कच्चा होता, तो उसे लोग कभी ग़ारत कर दिए होते, आज उसकी एक हड्डी भी ढूँढ़े न

मिलती। मैं जो भी काम करता हूँ, उसकी चाभी अपने पास रखता हूँ। तुमने आज तक यही समझा है कि तुम्हारा पति मर गया है; नहीं-नहीं, तुमने उसकी हत्या करके उससे अपना पीछा छुड़ा लिया है। किंतु अहल्या, मुझे सख़्त अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि दरअसल ऐसी बात नहीं। तुम्हारा पति अभी तक ज़िंदा है, जिसे तुम मृत समझती हो।"

अनूपकुमारी भय-विह्वल आँखों से मातादीन की ओर देखने लगी। उसने आकुल कंठ से कहा—"झूठ, बिलकुल झूठ। तुमने ख़ुद उन्हें ज़हर दिलवाया था। तुम्हारी दी हुई औषधि खिलाने से उनकी क्षण-भर में मृत्यु हो गई थी। और, उसी काली अँधेरी रात में, जब बादल घिरे हुए थे, और बिजली बार-बार कौंधती थी, जिनकी गड़गड़ाहट से हृदय में आतंक पैदा होता था, उन्हें श्मशान ले जाकर जला आए थे। तुम उस दिन मेरे पति से छिपे हुए सब षड्यंत्र रचा रहे थे। मैं ज्ञान-शून्य होकर, तुम्हारी पिशाचिनी मोह-शक्ति में पड़कर मंत्र-चालित पुतली की भाँति तुम्हारे इशारों के मुताबिक़ नाच रही थी। अब अगर मैं पकड़ा भी जाऊँ, तो अपने साथ तुम्हें भी ले डूबूँगी।"

दीवान साहब ने हँसकर कहा—"मातादीन इतना भोला नहीं कि वह तुम्हें इतने सहज में पकड़ाई देगा। लोगों ने तुम्हारे पति को जलाया नहीं था, मैंने उन्हें जलाने का अवसर नहीं दिया। वे उसे श्मशान में छोड़कर चले आए थे, और मैंने गेरुए वस्त्र पहनकर उसे पुनर्जीवित किया था। दरअसल वह मरा न था, केवल बेहोश हो गया था। यही उस दवा का गुण था। उस दवा के प्रभाव से मनुष्य दो हफ़्ते तक मृतक-जैसी अवस्था में रक्खा जा सकता है। अगर दो हफ़्ते तक उसे चैतन्य न किया जाय, तो अवश्य वह मर जायगा। किंतु वह मरेगा उस

वक़्त भूख और प्यास से, उस दवा से नहीं। मैंने उसे मरने नहीं दिया, वह अभी तक सकुशल है, और उसे ऐसा कर दिया था, जिसमें वह तुम्हारा पीछा छोड़ दे। उसके आराम होते ही मैं तुम्हें यहाँ अनूपगढ़ ले आया, और यहाँ क़ैद करवा दिया, जहाँ सूर्य को भी तुम्हारे दर्शन न मिल सकें। वह अच्छा होने पर पहले अपने घर गया, और जब वहाँ तुम्हारा कोई नाम-निशान न मिला, तो तुम्हारी ओर से निराश होकर फिर संसार से भी निराश हो गया। अभी तक कभी-कभी उससे मुलाक़ात हो जाती है। और, उसे यह विश्वास है कि तुम्हीं ने उसकी हत्या का षड्यंत्र रचा था। वह आज भी तुम्हारे पापों का दंड देने के लिये आतुर है। अगर मैं आज कह दूँ कि तुम्हारी हत्याकारिणी अनूपगढ़ के राजा की 'रखैल' है, तो वह तुम्हारा और राजा साहब का सत्यानास करने में ज़रा संकुचित न होगा। तुम्हें अभी मेरी ताक़त का विश्वास नहीं, और शायद परिचय भी नहीं मिला। अच्छा अहल्या, कहो, तुम क्या करोगी; अगर वह आज तुम्हारे सामने आकर जीता-जागता खड़ा हो जाय ?"

अनूपकुमारी की आँखें भय से विस्फारित होकर दीवान साहब की ओर देख रही थीं। उसने आवेश के साथ कहा—"नर-पिशाच, नराधम, मैं तेरा ख़ून पी जाऊँगी। तेरा कल्याण इसी में है कि तू यहाँ से अभी चला जा।"

उसके मुख से थूक का फेना निकलने लगा। वह आगे न कह सकी।

दीवान साहब ने बड़ी शांति के साथ मुस्किराते हुए कहा—"जो हुक्म। मैं आपके महल से नहीं, अनूपगढ़ से जाता हूँ। आज दोपहर को जो परामर्श आप और राजा साहब में हो चुका है, वह शब्दशः मेरे गुप्तचरों ने मुझे बता दिया है। राजा साहब एक

चतुर दीवान की खोज में गए हैं, और मेरे ऊपर कोई झूठा मुक़द्दमा दायर करने की कोशिश की जायगी। मैं स्वयं इस्तीफ़ा देकर जा रहा हूँ, जिसमें आप लोगों को कोई कष्ट न करना पड़े। मैं इस्तीफ़ा लेकर आया हूँ, आप मेहरबानी करके राजा साहब को दे दीजिएगा। मैं अपने बाल-बच्चे लेकर जाता हूँ। गाड़ियाँ तैयार होकर, सामान से लदकर स्टेशन पहुँच गई हैं। मैं अब जा रहा हूँ। केवल यही कहने के लिये आया था कि अब आप लोग सतर्क हो जायँ। मातादीन अपने शत्रुओं को धोके में कभी नहीं मारता, चेतावनी देकर उन पर वार करता है। यही हमारे बैसवाड़े की रीति है।"

यह कहकर उन्होंने अनूपकुमारी के पास इस्तीफ़ा फेंक दिया, और दूसरे क्षण कमरे के बाहर हो गए।

अनूपकुमारी भय तथा विस्मय से देखती रही।

---

४

अनूपकुमारी थोड़ी देर तक उसी निश्चेत अवस्था में बैठी रही। गैस-बत्ती का तीव्र प्रकाश उसकी आँखों को दुख पहुँचा रहा था। उसने कर्कश कंठ से दासी को पुकारकर सामने से रोशनी हटाने का आदेश दिया। दूसरे क्षण कमरे में अंधकार छा गया। उसने कमरे के दरवाज़े भी बंद करने की आज्ञा दी।

दरवाज़े बंद कर दासी ने हाथ जोड़कर कहा—"आप लेट जायँ, तो आपका सिर दाब दूँ।"

अनूपकुमारी ने तीव्र कंठ से कहा—"जा, हट, मेरे सामने से दूर हो। तुम सब लोग मेरी तनख़्वाह उड़ाती हो, और यहाँ की ख़बरें उस मातादीन को जाकर सुनाती हो। आने दो राजा साहब को, मैं सबकी ख़बर लूँगी।"

दासी थर-थर काँपने लगी। उसे मालूम था कि अनूपकुमारी का ग़ुस्सा कैसा है।

थोड़ी देर बाद अनूपकुमारी ने कहा—"जा, बाहर से दरबान को बुला ला।"

दासी आज्ञा पालन के लिये तेज़ी से चल दी।

दरबान ने आकर, झुककर प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़े आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

अनूपकुमारी ने कहा—"देखो, आज रात को कोई नौकर महल के बाहर न जाने पाए, मेरा एक क़ीमती गहना खो गया है।"

दरबान ने उत्तर दिया—"जो हुक्म सरकार। मैं एक चींटी तक को बाहर न जाने दूँगा।"

अनूपकुमारी ने उसे जाने का आदेश दिया। उसके जाने के बाद उसने अपने कमरे का दरवाज़ा स्वयं भीतर से बंद कर लिया। कमरे का अंधकार घनीभूत होकर उसकी चिंताओं को उद्वेलित करने लगा। वह सोचने लगी—"मैं जब अपने सारे जीवन पर दृष्टि-पात करती हूँ, तो स्वयं विस्मय से चकित हो जाती हूँ। मेरे माता-पिता थोड़ी वयस में काल-कवलित हो गए। मेरा पालन-पोषण मेरे मामा और मामी ने किया। उनके पास रहकर उनकी गृहस्थी का सारा काम करने लगी। ज्यों-त्यों दिन बीतने लगे। मेरी एक सखी का विवाह शहर में, एक धनी आदमी से, हुआ था। वह जब ससुराल से लौटी, तो अपने साथ तरह-तरह के कपड़े और गहने लेकर आई। एक दिन दोपहर को उसने मुझे अपने घर ले जाकर वे सब चीज़ें दिखलाईं। उन्हें देखकर मेरे मन में एक इच्छा जागरित हुई, जिसने ग़रीबी के प्रति घृणा पैदा कर दी। मेरी महत्त्वाकांक्षा का वह पहला दिन था।

"हाँ, मैं उस दिन शाम को लौटी। घर आते ही मामी, देर में आने के कारण, मारने-पीटने के लिये आमादा हुईं, और कई तरह की अकथ्य बातें भी सुनाईं। उन्हें सुनकर मेरे मन में तीव्र ज्वाला उत्पन्न हुई। मैं सोचने लगी, जब वह अपराध लगाती है, तो कर गुज़रने में क्या हर्ज है। उस दिन रात को शीशे में अपना प्रति-बिंब देखने के लिये आतुर हो गई, और उनका शीशा उठाकर देखने लगी। मुझे पहलेपहल उस दिन ज्ञात हुआ कि मैं सुंदरी हूँ। उस मंद प्रकाश में अपना रूप देखकर अपने आप मोहित हो गई। मेरे सामने तुरंत यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि रूप-जैसी संपत्ति होते मैं अनाथ किस तरह हूँ? हाय, वही दिन मेरे पतन का था!

"यौवन का विकास आरंभ हो गया था। हालाँकि मैं ग़रीबी में पल रही थी, और भर पेट सूखा अन्न भी नहीं मिलता था, तो

भी मेरे शरीर के सारे अंग और अवयव यौवन के प्रवाह से सराबोर हो रहे थे। चारों ओर मेरे रूप और यौवन का बखान होने लगा। मेरी सखियाँ मुझसे कहतीं—'तेरा पति तुझको अपने गले का हार बनाकर रक्खेगा, क्योंकि तू ग़ज़ब की रूपसी है।' मैं प्रसन्नता से मुस्किरा उठती, और एकांत में आकर मन-तुरंग बेलगाम दौड़ाने लगती।

"एक दिन सहसा मेरी सखी ने मेरे पास आकर कहा—'चलो, आज तुम्हें उनके दर्शन करा दूँ, जिन्हें देखने के लिये तुम लालायित रहती थीं।' बात यह थी कि मेरी उस सखी का जो शहर में विवाहित थी, पति आया हुआ था। मैं कौतूहल का बोझ लेकर, मामाजी की साफ़ धोती पहनकर अपनी सखी का पति देखने के लिये चल दी।

"गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय था, घर के सब लोग खा-पीकर सो गए थे। मुहल्ले-भर में सन्नाटा छाया हुआ था। मेरी मामीजी भी सो रही थीं। उनका सारा दिन सोते ही गुज़रता था, क्योंकि घर का सब काम मैं ही करती थी। घर से बाहर निकलते वक़्त सोचा कि उन्हें जगाकर पूछ लूँ। यह बात मैंने अपनी सखी से भी कही, लेकिन उसने जवाब दिया—'अगर उन्होंने मना कर दिया, तो फिर किसी तरह जाना न होगा। दो मिनट बैठकर अभी चली आना। वह शाम के पहले कभी न जागी हैं, और न जागेंगी।' उसका कहना मुझे ठीक मालूम हुआ, और मैं घर के बाहर हो गई।

"मेरी सखी के घर के सारे लोग सो गए थे, और वह अपने पति के पास बातचीत करने के लिये भेज दी गई थी। घर में चारों ओर सन्नाटा था। वह मुझे चोरों की तरह अपने पति के कमरे में ले गई। उसका पति नई उम्र का सुंदर युवक था, और शहर के किसी कॉलेज में पढ़ता था। गर्मी की छुट्टियों में ससुराल आया

था। वह मुझे चकित दृष्टि से देखने लगा। मैं भी लाज में अवगुंठित होकर एक कोने में खड़ी हो गई। पर-पुरुष के सामने जाने का वह मेरा पहला अवसर था।

"धीरे-धीरे मैं उससे बातें करने लगी, और मेरी लज्जा भी दूर होने लगी। मेरे मन में तो बहुत दिनों से उमंग थी, आज सहसा प्रकट होने के लिये मचल उठी। मैंने भी अपने ज्ञान को तिलांजलि दे दी, और उससे ख़ूब खुलकर बातें करने लगी। मेरी सखी मेरे पास बैठी हुई मेरी लाज के बंधन क्रमशः तोड़ रही थी। उसे इसमें आनंद आ रहा था, और मुझे भी कोई आपत्ति न मालूम होती थी। हम तीनो बातों में विभोर थे।

"इतने ही में कमरे के बाहर मेरी सखी की मा ने पुकारकर उसे बुलाया। मुझे होश आया, और मैं भी उसके साथ-साथ बाहर निकलने लगी। मेरी सखी ने मुझे रोककर कहा—'अभी ठहर जाओ, मैं अम्मा को यहाँ से हटाकर लिए जाती हूँ, फिर आकर बातें करूँगी।' मैं ठहर गई। दरअसल वहाँ से जाने की मेरी क़तई इच्छा नहीं थी। मैं सहज ही में उसकी बात मानकर ठहर गई। मेरी सखी कमरे के बाहर चली गई। अब मैं और उसका पति, दोनो अकेले उस कमरे में रह गए।

"हालाँकि मेरी इच्छा उसके साथ बात करने की होती थी, किंतु मेरा हृदय बड़े ज़ोर से धड़क रहा था, और मुख लाल हुआ जा रहा था। सहसा मेरी सखी के पति ने मेरे पास आकर एक सोने की माला मेरे गले में पहना दी, और दस-दस रुपए के चार नोट मेरे हाथ में ज़बरदस्ती दे दिए। मेरे मन ने मुझे धिक्कारा, परंतु लोभ और लालसा मुदित होकर उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य करने लगे। फिर भी उन्हें वापस करने लगी। उसने वे चीज़ें मुझे ज़बरदस्ती देते हुए विनय-पूर्ण स्वर में कहा—'इन्हें

ले जाओ, मैं तुम्हें भेंट करता हूँ। इन्हें लेकर चली जाओ, और घर में रख आओ, नहीं तो तुम्हारी सखी आ जायगी, और फिर हमारी और तुम्हारी, दोनो की हँसी होगी।' मैं अपनी लालसा न दबा सकी, और उन्हें लेकर चोरों की तरह अपनी सखी के घर से भाग आई।

"घर में आकर देखा, मेरी मामीजी अभी तक सो रही थीं। मेरे काँपते हुए हाथ-पैर कुछ शांत हुए। अब उन रुपयों और गहने को छिपाकर रखने की समस्या सामने आ गई। मैं उन्हें एक कपड़े में बाँधकर भंडार-घर के बर्तनों में, जिनमें खाने का सामान रहता था, छिपा आई, क्योंकि यही एक ऐसी जगह थी, जहाँ मामीजी कभी न जाती थीं, और उसकी मालकिन मैं थी। इस तरह प्रथम प्रेम-भेंट को मिट्टी के बर्तनों में दफ़नाकर रखना पड़ा।

"उस सखी के पति से मेरी घनिष्ठता बढ़ने लगी, और एक दिन दोपहर को मैंने अपने को उसके समर्पण कर दिया। पाप का द्वार एक बार खुल जाने से फिर मुश्किल से बंद होता है। मेरे मन में भी उमंग थी, और वासना तथा लालसा बड़े वेग से मेरे ऊप र हावी हो रही थीं। मैं अंधी होकर उसके प्रेम में फँस गई। अब हम लोग व.क्त-बेव.क्त मिलकर अपना काम-वासना तृप्त करने लगे।

"धीरे-धीरे मेरी सखी को यह हाल मालूम हो गया। उसने एक दिन देख भी लिया। बस, उस दिन मेरे और उसके प्रेम का बंधन टूट गया, और वह दूसरे ही दिन अपनी मा से सब हाल कहकर अपने पति के साथ शहर चली गई। मेरे मुख पर कालिख पोती जाने लगी। मामा और मामी ने भी सब हाल सुना, और मुझे बहुत मारा-पीटा। एक दिन घर से भी बाहर निकाल दिया,

किंतु फिर न-मालूम क्या सोचकर मामीजी ने घर में बुला लिया।

"ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती। मैं इंद्रिय-सुख को जान गई थी, और उसे किसी तरह पुनः प्राप्त करने के लिये आकुल थी। मामा और मामी की मार-पीट सब भूल गई, और किसी प्रकार उनसे छुटकारा पाने के लिये आकुल हो उठी। मामा अब बड़ी तत्परता से मेरे योग्य किसी पात्र को ढूँढ़ रहे थे, किंतु कोई मिलता न दिखलाई देता था। ज्यों-ज्यों वह परेशान होते, त्यों-त्यों उनका क्रोध मेरे प्रति बढ़ता था।

"आख़िर एक दिन अनायास मेरे विवाह की बातचीत तय हो गई। बात यह थी कि मेरे मामा के एक मित्र के मित्र अपना विवाह करना चाहते थे। यह उनका दूसरा विवाह था। उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, अब दूसरा विवाह करना चाहते थे। वह दहेज़ वग़ैरह कुछ न चाहते थे, सिर्फ़ सच्चरित्र कन्या चाहते थे। मेरे मामा ने यह अवसर हाथ से नहीं जाने दिया, और विवाह की बातचीत पक्की हो गई।

"एक दिन मेरी मामी ने मुझे बहुत समझाया, और पति-सेवा तथा सती-धर्म पर बहुत उपदेश दिया। मेरे मन में सचमुच बड़ी ग्लानि पैदा हुई, और आगे से सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की। मामी को मेरी प्रतिज्ञा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं उसी दिन शाम को, जब पानी भरने जा रही थी, अपनी सखी के पति के उपहार और आभूषण पोटली में बाँधकर लेती गई। उन्हें कुएँ में डालना चाहा, लेकिन डाल न सकी। मेरा लोभ मुझे पुनः अपने वश में करने लगा। मैं उसे दमन न कर सकी, और उन्हें लेकर पुनः वापस आई। उन्हें फिर उसी जगह छिपाकर रख दिया, जहाँ वे अब तक पड़े हुए थे। लोभ और लालसा की पुनः विजय हुई।

"विवाह होने के बाद मैं अपने पति के घर आई। मेरे विवाह में कोई आडंबर नहीं किया गया था। दोनो पक्षवाले ग़रीब थे, और मेरे पति की आर्थिक स्थिति तो बड़ी ही ख़राब थी। यहाँ आकर मालूम हुआ कि वह बड़े क्रोधी स्वभाव के हैं। उन्होंने अपनी पहली स्त्री को त्याग दिया था, जिसका कहीं पता न था। लोगों का अनुमान था कि उसने आत्महत्या कर ली। उसे त्यागने का कारण बहुत साधारण था। एक दिन मेरे पति ने उसे एक युवक से बातें करते देख लिया था। वह युवक उसके मायके का था, और अचानक उसके घर के सामने से निकलते हुए, उसे द्वार पर खड़ी देख बातें करने लगा था। मेरी सौत उसे बिदा कर रही थी कि सहसा मेरे पतिदेव आ गए, जिससे दोनो घबरा गए। मेरे पति को कुछ शक पैदा हो गया, और उन्होंने तुरंत ही क्रोध में आकर उसे उसी क्षण घर से निकाल दिया। पहले तो उसने बड़ी विनय की, तरह-तरह की क़समें खाकर अपनी निर्दोषिता साबित करनी चाही, परंतु जब वह किसी तरह न माने, तो उसे जाना पड़ा। वह उसी युवक के साथ अपने मायके चली गई, जिस दिन मैं उनके घर में गई, उन्होंने बड़ी शेख़ी से सब हाल कहकर मुझे बाक़ायदे चलने की चेतावनी दी। मैं सचमुच भय से काँपने और सोचने लगी कि यह पुरुष कहीं राक्षस तो नहीं।

"मेरा विवाहित जीवन सुख के साथ बीतने लगा। मेरे पति पचीस रुपए मासिक पर रेलवे में नौकर थे। उनकी आर्थिक दशा ठीक न थी, और उन पर क़र्ज़ भी था, जो उन्होंने अपनी बहन के विवाह में लिया था। उनकी बहन तो इस वक़्त मर गई थी, लेकिन क़र्ज़ बजाय घटने के बढ़ता गया था। महाजनों ने दावा कर दिया, और मकान वग़ैरह सब नीलाम हो गया। हम लोग

किराए के मकान में रहने लगे। क़र्ज़ अब भी बेबाक़ न हुआ था। इस थोड़े-से वेतन में अपना गुज़र करना पड़ता था।

इसी समय दीवान साहब पुच्छल तारा की भाँति उदय हुए। वह मेरी सौत के दूर के रिश्ते के भाई थे। उन्होंने आते ही मेरे पति को एक हज़ार रुपए उधार दिए, और सारा कर्ज़ अदा कराने का वचन दिया। मेरे पति का उन पर विश्वास जम गया, और वह अबाध रूप से आने-जाने लगे। मै अभी तक ग़रीबी के आनंद में मस्त थी। अभी तक प्रलोभनों को रोके हुए अपनी इच्छाएँ दमन कर रही थी। यह नर-पिशाच मेरे सामने सुनहले जाल बिछाने लगा, और जब कभी आता, तब नए-नए उपहार लेकर आता। एक ही दो महीने में उसने मेरे हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया, और एक दिन, जब मेरी आत्मा शिथिल पड़ गई थी, उसने उससे लाभ उठाकर अपने भाईपने के संबंध पर कालिख पोत दी। मैंने उसकी दवा के वशीभूत होकर उसको आत्मसमर्पण कर दिया।

"इसके बाद? इसके बाद मेरा पतन शुरू हुआ। इस धूर्त की दवाओं ने मेरी वासनाओं का द्वार उन्मुक्त कर दिया था, और मैं धीरे-धीरे पतन के गह्वर में प्रवेश होने लगी। वह मुझे राजा की रानी बनाने का प्रस्ताव करने लगा। पहले मैंने इनकार किया, किंतु विलास की भावना ज़ोर पकड़ रही थी। आख़िर हम लोग अपने पति से निष्कृति पाने का विचार करने लगे।

"एक दिन इसी दुष्ट ने मुझे एक दवा देकर कहा कि इसे आज सुबह के खाने में मिलाकर खिला देना, इससे हैज़ा-जैसा रोग उत्पन्न हो जायगा, और बारह घंटे बाद वह मर जायँगे। चतुर-से-चतुर डॉक्टर उन्हें हैज़े का रोगी बतलाएगा। इस तरह किसी को शक न होगा कि उन्हें ज़हर दिया गया है। वह दवा लेकर मैं

बहुत दिनों तक अपने पास रक्खे रही, उसे देने का साहस न होता था।

"आख़िर एक दिन उसी दुष्ट ने वह दवा अपने हाथ से उनके खाने में मिला दी। मैं इस तरह उसके वश हो गई थी कि 'ना' न कर सका। दोपहर को जब वह लौटे, तो उन्हें हैज़ा हो गया था। तमाम डॉक्टरों और हकीमों ने अपनी-अपनी दवाएँ दीं, लेकिन वह अच्छे न हुए। मेरे मन में उस दिन कैसी ग्लानि उत्पन्न हुई थी। बारंबार यही विचार उठता कि सब हाल खोल दूँ, किंतु भय और लोभ ने मेरा मुँह बंद कर दिया था। हाय, मैं कितनी नीच-हृदय हूँ! मेरे पाप का प्रायश्चित्त नहीं।"

"पश्चात्ताप के आँसू उमड़कर उसके हृदय की अग्नि शांत करने की जगह प्रज्वलित करने लगे। अतीत के चित्र क्रमशः आकर अपने-अपने डंकों के दंशन का आनंद देने लगे, जिसकी पीड़ा से वह अपनी शय्या पर तड़पने लगा। पश्चात्ताप और परिताप हृदय की असलियत के चिह्न हैं।

अनूपकुमारी पुनः सोचने लगी—"इसके बाद मैं यहाँ आ गई। मातादीन ने मशहूर किया कि मैं उसकी बहन हूँ। इसमें मेरी कोई हानि न थी, मैंने कोई आपत्ति नहीं की। वह दीवान हो गया, और मैं उसकी शक्ति होकर उसकी सहायता करने लगी। वह राजा साहब को दवाएँ खिलाकर वश में करने लगा, और मैं भी उस खेल में मस्त होकर स्वयं खेल हो गई। वास्तव में मातादीन हम दोनो को खिला रहा था। उसने मुझे अपनी स्वार्थ-पूर्ति का साधन बना रक्खा था। मैं चेती, लेकिन बहुत देर में, जब सब नाश हो गया।

"यह ठीक है कि मैंने उसी के कौशल से रानी श्यामकुँवरि के साथ वैर किया, और उन्हें परास्त किया, और अब मैं अपने चातुर्य

से अनूपगढ़ की गद्दी पर बैठूँगी। जब इतना पाप किया है, तब अच्छी तरह क्यों न कर लूँ, जिसमें कोई अरमान बाक़ी न रहे। दरअसल यह मेरे पथ में काँटा था, इसे हटा देना उचित हुआ है। वह मेरे पृथ्वीसिंह को राजगद्दी दिलाने को तैयार न था। यह ठीक है कि उसने कभी प्रकट रूप से 'नहीं' नहीं कहा, किंतु शायद उसकी हार्दिक इच्छा नहीं थी। यह मैं मानने को तैयार नहीं कि उसमें अँगरेज़ अफ़सरान से मिलने और बातचीत करने की तमीज़ नहीं। यह उसकी धूर्तता है। आज कई महीनों से, जब से राजा साहब एसेंबली के लिये खड़े हुए हैं, उसका भाव हमारी ओर से कुछ विरुद्ध हो गया है।

"अच्छा, मेरी अलमारी से वे गुप्त चिट्ठियाँ और दवाइयाँ कौन उठाकर ले गया। उस दिन रानी श्यामकुँवरि आई थीं, बस, उसके बाद उनका पता नहीं मिलता। रानी श्यामकुँवरि ऐसा काम नहीं कर सकतीं, और उन्हें कैसे मालूम होगा कि वे अमुक अलमारी में रक्खी हैं। उनकी-जैसी उच्च-हृदय रमणी मुश्किल से देखने को मिलेगी। यह ठीक है कि मैंने उनका अपमान किया है, किंतु अपनी इच्छा से नहीं। ख़र्च इत्यादि का जो कुछ कष्ट उन्हें हुआ है, वह सब नीच मातादीन की बदौलत, किंतु हुआ है सब मेरे नाम पर। बदनामी का टीका मुझे कढ़वाना पड़ा, और रुपया गया मातादीन के ख़ज़ाने में। आज उनकी लड़कियों की शादी नहीं हुई, उसके लिये उत्तरदायी मैं ठहराई जाती हूँ, किंतु दरअसल रुपया नहीं दिलाया मातादीन ने। वह मेरे द्वारा यह काम कराता था। हाय! मुझे उसने कितना नीच-हृदय बना दिया, कितनी बदनामी का गट्ठर सिर पर लदवा दिया। ख़ैर, अब तो इसे भोगना ही पड़ेगा। अगर अब राजा साहब शादी का रुपया देते हैं, जब कि बात सरकार तक चली गई, तो उनकी और मेरी बदनामी होती

है, जिससे हमारी शान किरकिरी हो जायगी। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

"मुझे सिर्फ़ पृथ्वीसिंह की चिंता है। मेरे बाद उस अभागे का कोई नहीं। वह जारज पुत्र है, जिसका हिंदू-समाज में कोई स्थान नहीं। वह अभी दस वर्ष का बालक है। बड़ी कोशिशों के बाद पैदा हुआ, लेकिन उसका भविष्य कितने गहन अंधकार में है। उसकी कैसी शोचनीय अवस्था है। उसे अपनी मा का परिचय देने में संकुचित होना पड़ेगा। उसकी मा का स्थान वेश्याओं की श्रेणी में ही नहीं, वरन् उससे भी हीन है। वेश्याओं का एक समाज तो है, जिसमें उनकी संतान आराम के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकती है, किंतु उसके लिये तो समाज के द्वार बंद हैं। आज मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने क्यों उसके पैदा होने की इतनी कोशिश की, इतना परिश्रम किया।

"उसका जीवन सुधारने का क्या उपाय है? बस, एक उपाय है कि राजा साहब मेरा पाणि-ग्रहण करें, और उसे जायज़ वारिस बनाया जाय। राजा साहब उसके लिये कटिबद्ध हैं, और अथक परिश्रम कर रहे हैं। इसी में उसका और मेरा कल्याण है।"

अनूपकुमारी की आँखों के आँसू सूख गए, और हृदय में आशा का दीपक प्रज्वलित होकर अपने धूमिल प्रकाश से उसके हृदय की ग्लानि, वेदना, क्षोभ और परिताप को नष्ट करने लगा।

थोड़ी देर बाद मातादीन का फिर ख़याल आया, और उसकी विचार-धारा ने ज़ोर पकड़ा। वह सोचने लगी—"मातादीन बड़ी क्षमता का पुरुष था। देखो, उसके जासूस चारों ओर मौजूद थे। आज मैंने जो परामर्श किया, वह ज्यों-का-त्यों उसे विदित हो गया, और वह कितनी शीघ्रता से मेरे हाथ से निकल गया। मैं अपना प्रतिशोध न ले सकी, अपनी ज्वाला शांत न कर सकी। मेरा सारा

कौशल व्यर्थ गया। अब वह न-मालूम कहाँ जाकर क्या करेगा। अगर वह मेरे शत्रुओं से मिल गया, तो अवश्य मुझे हानि पहुँचा सकता है। किंतु वे इस पर क्या विश्वास करेंगे? नहीं, असंभव है। वे लोग भी तो इसे अपना शत्रु—परम शत्रु जानते थे। मेरी अपेक्षा किसी तरह कम नहीं। नहीं, वह चाहे सोने का बन जाय, तब भी वे इस पर कभी विश्वास नहीं करेंगे।

"मेरे जो पत्र खोए हैं, उनसे इसका घनिष्ठ संबंध है। हमारे और उसके पहले के पत्र हैं, जिनमें मेरे पति की हत्या करने के उपदेश लिखे हुए हैं। हाँ, उसके हस्ताक्षर नहीं हैं, किंतु उसके लिखे हुए हैं, इसमें कोई शक नहीं। मैं उन्हें उसके ख़िलाफ़ सुबूत में पेश कर सकती थी। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने उन्हें अपने जासूसों-द्वारा चुरवा लिया है, और यह काम कस्तूरी का है। जिस दिन से उसे मारा है, उसका भाव मेरे प्रति विद्वेष-पूर्ण रहता है। वह अपने भाव को छिपाने का बहुत प्रयत्न करती है, किंतु मेरी तेज़ निगाहों से वह अपने को छिपा नहीं सकती। मैं इसका उपाय शीघ्र करूँगी। इस मर्तबे उसकी खाल निकाल लूँगी, और उसे चुग़ली खाने का मज़ा चखाऊँगी। बाक़ी दूसरी दासियाँ तो विश्वासपात्र हैं, मैंने उन्हें कभी महल से बाहर या किसी से बात करते नहीं देखा। एक यही कुछ मेरे मुँह लगी थी, और शायद सब इसी का कर्म है। उस दिन इसी ने उस अलमारी से मेरे काग़ज़ चुराए, और उस अपराध से बचने के लिये कितनी ख़ूबसूरती से रानी श्यामकुँवरि को ले आई, जिसमें अगर किसी प्रकार का शक हो, तो बेचारी रानी पर हो। आख़िर हुआ भी वही। वह तो साफ़ निकल गई, और मैंने रानी श्यामकुँवरि को ही अपराधी ठहराया। उफ़्! उस दिन मैंने उनका कितना अपमान किया। वह कितना आज़िज़ी से अपनी लड़कियों के लिये

विवाह करा देने की दरख़्वास्त लेकर आई थीं। वह मेरी कितनी बड़ी विजय थी, किंतु मैंने कितनी नादानी से अपने हाथ से उस स्वर्ण अवसर को खो दिया। ज़रा-से इशारे से मैं उसे अपना मित्र बना लेती। अब पछताने से क्या होता है। वह अवसर हाथ से निकल गया।"

अनूपकुमारी उठकर बैठ गई। अंधकार उसका विद्रूप करने लगा। उसने दासी को आवाज़ दी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके कमरे के पास से कोई हट गया है। वह तड़प उठी, और एक ही छलाँग में दरवाज़े के पास पहुँचकर उसे ज़ोर से खोल दिया। उसने देखा, कोई सत्य ही वहाँ से अभी-अभी गया है, क्योंकि बरामदे के दूसरी ओर एक छाया शीघ्रता से अदृश्य हो गई। वह तेज़ी से उसे पकड़ने के लिये दौड़ी, किंतु वहाँ पहुँचकर किसी को नहीं देखा। उसने बड़े तीव्र स्वर से दासियों का नाम लेकर पुकारा। क्षण-भर में उसके सामने कई दासियाँ भय और शीत से काँपती हुई आकर खड़ी हो गईं। उसने देखा, उनमें कस्तूरी नहीं है।

उसने तीव्र कंठ से पूछा—"कस्तूरी कहाँ है?"

एक दासी ने डरते-डरते उत्तर दिया—"वह आज तीसरे पहर से सिर-दर्द से व्याकुल लेटी हुई है। अभी शाम को कुछ दर्द कम हुआ, तब सो गई, और मैं उसे सोती हुई छोड़कर आई हूँ।"

अनूपकुमारी ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

यह दासी अपना सिर नत किए चुपचाप खड़ी रही।

अनूपकुमारी ने उसे आदेश दिया कि कस्तूरी को सामने हाज़िर करो।

वह दासी जाने लगी। उसे रोककर कहा—"तू ठहर जा, तेरे जाने की ज़रूरत नहीं। मेरी दूसरी दासियों को उसका कमरा मालूम है। वे जाकर बुला लाएँगी।"

वह दासी ठहर गई।

अनूपकुमारी ने दूसरी दासी को बुलाने का आदेश दिया।

थोड़ी देर में कस्तूरी अपनी आँखें मलती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

अनूपकुमारी ने उसे अपने सामने खड़े होने का आदेश दिया। उसकी आँखों की ओर बड़ी तीक्ष्णता से देखने लगी।

वह भी भय से थर-थर काँपने लगी।

अनूपकुमारी ने उसकी ओर देखकर सोचा—इसके लक्षणों से तो यही मालूम होता है कि यह सत्य सो रही थी।

फिर उसने प्रत्येक की उसी भाँति परीक्षा ली। उसे किसी पर संदेह करने का कारण नहीं दिखाई पड़ा।

वह अपना क्रोध अपने साथ लिए अपने कमरे में चली आई।

दासियों का झुंड भी उसके पीछे-पीछे आ गया।

उसने उन्हें जाने का आदेश दिया। वे सब जाने लगीं।

अनूपकुमारी ने एक दासी को गैस लाने का आदेश दिया। गैस के तेज़ प्रकाश से कमरा जगमगाने लगा। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से पुनः अपने कमरे को देखा, और फिर उस दासी को जाने का आदेश दिया।

उसके जाने के बाद उसने कहा—"क्या कारण है कि आज एक प्रकार की आशंका से मैं व्याकुल हो रही हूँ।"

फिर थोड़ी देर बाद कहा—"यह मेरा भ्रम है। आज क्या मैं कुछ पागल हो गई हूँ।"

अनूपकुमारी बड़े वेग से हँस पड़ी। उसकी प्रतिध्वनि उसके कथन का अनुमोदन करने लगी।

---

## ५

दक्षिणी अमेरिका के चाइल अथवा चिली-नामक देश में वालपेराइज़ो-नामक बंदर ३३°० दक्षिणी अक्षांश और ७१°३० पूर्वीय देशांतर पर स्थित है। यह देश का मुख्य बंदर है, जहाँ से आस्ट्रेलिया आदि देशों से व्यापार होता है। यह उसकी राजधानी सेंटियागो से थोड़ी दूर पर आबाद है। इसकी जन-संख्या लगभग डेढ़ लाख है और जल-वायु स्वास्थ्यकर।

चाइल-प्रदेश को अगर पहाड़ी प्रदेश कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उत्तर से दक्षिण तक आंडीज़-पर्वत कई समानांतर रेखाओं की भाँति केवल पश्चिमीय तट में फैला हुआ, समुद्र-तट को चुंबन करने का प्रयत्न करता हुआ चला गया है। चाइल में वह कुछ पूर्वीय तट की ओर झुकता है, और ३० से ३५ मील का मैदान चाइल-निवासियों के विहार के लिये छोड़ देता है। वालपेराइज़ो से पूर्व आंडीज़-पर्वत का सर्वोच्च शिखर अकांकागुआ है, जिसके समीप एक ज्वालामुखी है, जिससे अभी तक कभी-कभी धुआँ निकलता देखा जाता है।

वालपेराइज़ो और अकांकागुआ के मध्य में, आंडीज़ की तलहटी में, एक छोटी-सी झील है। इसी के समीप पंडित मनमोहननाथ का आश्रम स्थित है, जिसका उद्घाटन स्वामी गिरिजानंद के द्वारा होने की बातचीत थी। इस झील का नाम था ब्यूनेसबोका, जिसका अर्थ है स्वास्थ्यप्रद जलाशय। वास्तव में उस झील का जल ऐसा ही था।

स्वामी गिरिजानंद को वह स्थान विशेषकर सुंदर प्रतीत हुआ,

और वह ऐसे लुब्ध हुए कि उन्होंने एक दिन पंडित मनमोहननाथ से कहा—"पंडितजी, आपने इस स्थान को आश्रम के लिये चुना है, यह बहुत अच्छा है। इसे देखने से यही मालूम होता है कि वास्तव में प्रकृति ने इस स्थान को आपके आश्रम के लिये बनाया है।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता के साथ कहा—"जी हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है। प्रकृति का इतना सुंदर दृश्य सिवा हिमालय पर्वत के और कहीं न मिलेगा। वहाँ भी एक बात की कमी है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्सुकता से पूछा—"वह क्या ?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"उस धूम-पुंज का, जो निरंतर अविराम रूप से निकल रहा और पृथ्वी के गर्भ की ज्वाला निकाल रहा है, वहाँ सर्वथा अभाव है।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराते हुए कहा—"किंतु यह धूम-पुंज अपने उदर में मनुष्य का भीषण अंत भी तो छिपाए हुए है।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"इसी अंत में तो मनुष्य और मनुष्यत्व का रहस्य छिपा हुआ है। मनुष्य कहाँ नहीं मरता ? वह मरने क लिये पैदा हुआ है, आप उससे मृत्यु को दूर नहीं कर सकते।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"आप तो दार्शनिक भाव से कह रहे हैं। जिस दिन इस ज्वालामुखी का विस्फोटन होगा, क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मनुष्यों का अंत कितनी भीषणता और बीभत्सता के साथ होगा। चारो ओर त्राहि-त्राहि का रव होगा, और पिघले हुए शोलों की नदी उमड़कर उनका अंत करेगी। वह दृश्य किसी रौरव के दृश्य से कम न होगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराते हुए कहा—"आप घबराएँ

नहीं, वह दिन अभी दूर है। यह ज्वालामुखी सदियों से बुझा है, केवल कभी धरातल की अग्नि को धूम-रूप में निकाल देता है। अभी तक इसका प्रलयकारी प्रभाव चाइल देश में नहीं, उस पार अर्जेंटाइन देश पर अवश्य पड़ा है। आंडीज़ में सोने और चाँदी की खानें बहुतायत से हैं। न-मालूम इनमें कितना सोना छिपा हुआ है। हमारे देशवासी सूखी रोटी से गुज़र कर लेना पसंद करते हैं, भाई के प्रति मुक़द्दमेबाज़ी करने में अपना साहस, शौर्य प्रकट करते हैं, परंतु घर से बाहर निकलकर लक्ष्मी की खोज करना उचित नहीं समझते।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह ध्रुव सत्य है। हमारे देश का जाति-विचार, धर्म के प्रति अंध-विश्वास हमारे पतन का कारण हुआ है। हम धर्म का असली तत्त्व न समझकर केवल परंपरा के आचार को ही धर्म मान बैठे हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं धर्म को हृदय की वस्तु मानता हूँ, शरीर की नहीं। शरीर की शुद्धता का नाम धर्म नहीं, हृदय की शुद्धता अथवा आत्मा के ज्ञान का नाम धर्म है। हमारे आने-जाने, खाने-पीने, मिलन-सहवास से धर्म का नाश नहीं होता।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्फुल्ल कंठ से कहा—"हाँ, यही बात है। किंतु पुरानी परिपाटी की लकीर पीटनेवालों की समझ में यह कहाँ आता है!"

पंडित मनमोहननाथ ने जोश के साथ कहा—"मनुष्य का यह जन्म-जात स्वभाव है कि वह अपने को अपराधी नहीं मानता। वह अप-राध का बोझ किसी अन्य के सिर पर लादकर स्वयं उससे मुक्त होना चाहता है। हम पुराने विचारवालों को इसका अपराधी ठहराकर स्वयं बरी-उल-ज़िम्मा होते हैं। आप उन्हें क्यों व्यर्थ दोष देते हैं, आप स्वयं नहीं करना चाहते। अगर दल-के-दल यानी नवयुवकों की

मंडली कटिबद्ध होकर, जीविका की खोज में स्वदेश का मोह छोड़कर परदेश में आने-जाने लगे, तो कितने दिनों तक उसका विरोध रहेगा। बात दरअसल यह है कि हमारा ख़ून ठंढा हो गया है, और हममें वह स्फूर्ति नहीं रही, जो आज पश्चिम के नवयुवकों में देखने को मिलती है।"

स्वामी गिरिजानद ने उत्तर में केवल "हूँ" कहा।

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—'जिस देश के नवयुवक केवल उदर-पूर्ति करने में अपने जीवन की सफलता समझते हैं, उनसे कोई दूसरी आशा करना व्यर्थ है। कहावत है—"मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।' वे बहुत करेंगे, तः ग़ुलामी, जिसन उनके पेट की समस्या हल हो जाय। इसके अतिरिक्त उन पर कोई दूसरी ज़िम्मेवारी नहीं।"

इसी समय अमीलिया ने आकर कहा—"पंडितजी, आपको माधवी बुला रही है।"

पंडित म ामाहननाथ ने पूछा—"अब उसकी कैसी तबियत है ?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"तबियत तो उसकी वैसी ही है, जैसी फ़िज़ी में थी। यहाँ आने से दा-एक दिन परिवर्तन रहा, और अब फिर वैसी हो हो गई है। अब वह फिर किसी से नहीं बोलती। डॉक्टर साहब भी परेशान हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"डॉक्टर हुसैनभाई की योग्यता के विषय में कोई संदेह नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त ऐसे स्वभाव का आदमी मिलना मुश्किल है। उनके विचारों का सादृश्य बहुत कुछ हमारे विचारों से है, और इस आश्रम के प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति है। किंतु माधवी की दशा दिन-ब-दिन ख़राब होती ज ाती है, यही चिंता सतत मुझको सताती है।"

पंडित मनमोहननाथ इस प्रकार कह रहे थे, मानो स्वयं अपने से कह रहे हों। कहने लगे—"मैं इस अनाथ लड़की के बारे में जब सोचता हूँ, तब मेरा हृदय करुणा और दया से द्रवीभूत हो जाता है। उसका भोला मुख देखकर बार-बार यही विचार उठता है कि यह कोई स्वर्ग की देवी है, जो कर्म-वश इस लोक की नरक-यंत्रणा भोगने के लिये अवतीर्ण हुई है। इसका अतीत क्या है, कोई नहीं जानता। आश्चर्य है, उसे स्वयं नहीं मालूम।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"उसका अतीत तो उसकी बातों में छिपा हुआ है। वह किसी सद्गृहस्थ की गृहिणी है, जो इन डीपो-वालों द्वारा भगा लाई गई है।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"नहीं स्वामीजी, आपका यह विचार बिलकुल ग़लत है। मैंने डॉक्टर के परामर्श से उनके बताए हुए चिह्नों से परीक्षा की है, उससे मैं निर्भयता-पूर्वक कह सकती हूँ कि वह अभी तक कुमारी और अविवाहित है।"

पंडित मनमोहननाथ ने विचार-लीन मुद्रा से कहा—"यही तो आश्चर्य-जनक बात है। उसकी अवस्था पंद्रह-सोलह वर्ष से अधिक नहीं मालूम होती, और प्रलाप में कहती है कि वह एक लड़की की मा है। कभी चाची-चाची कहकर पुकारती है, और उस लड़की को लाने को कहती है, जिसके लिये वह रात-दिन रोया करती है। अपने पति के लिये भी इतनी व्याकुल रहती है कि किसी तरह समझाने से नहीं मानती। यह एक अद्भुत समस्या है. मैं इसे कितने दिनों तक ऐसी अवस्था में रख सकूँगा।"

अमीलिया ने कहा—"डॉक्टर हुसैनभाई की यह धारणा है कि वह पागल हो गई है, और मस्तिष्क विकृत हो जाने से ऐसा प्रलाप करती है।"

इसी समय डॉक्टर हुसैनभाई भी आ गए।

अमीलिया ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"क्यों डॉक्टर साहब, माधवी को आप किस प्रकार का पागल समझते हैं ?"

डॉक्टर हुसैनभाई, जो सबके साथ इस नवीन आश्रम में आए थे, माधवी का इलाज पहले की तरह कर रहे थे। वह तरह-तरह की अनेकों दवाएँ उसे खिला चुके थे, परंतु उनका कोई असर होता न दिखाई पड़ता था। उसका पागलपन घटने की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। वह अपनी दवाओं स निराश हो चुके थे, और किसी अन्य डॉक्टर की सहायता लेने का विचार कर रहे थे। आज उसी विचार को प्रकट करने के लिये वह आए थे।

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"मैं उसे कैसा पागल समझता हूँ, यह कहना मेरे लिये अत्यंत कठिन है। मैंने ग्लासगो, एडिन-बरा, लंदन, बंबई, सिंगापुर आदि कई अस्पतालों में एक-से-एक विकट पागल देखे हैं; किंतु ऐसा रोगी तो मुझे कहीं भी देखने को नहीं मिला ! उसकी परीक्षा करके कोई उसे पागल या विक्षिप्त नहीं कह सकता, किंतु वह पागल है। इसी भ्रम के वश होकर मैंने मिस जैकब्स से उसकी परीक्षा कराई, तो मालूम हुआ कि वह सर्वथा कुमारी है, उसका कौमार्य अभी तक नष्ट नहीं हुआ है। अब समझ में नहीं आता कि पति और पुत्री के विचारों का उद्गम कहाँ से हुआ ? यदि यह कहा जाय कि उसे सनक है, तो भी ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि सनक-जैसी बातें मालूम नहीं होतीं। उसके प्रलाप में किसी क़दर सचाई मालूम होती है, और उसका विश्वास भी अपने कथन पर रहता है—यानी उसकी बातों से मुस्तक़िल-मिज़ाजी ज़ाहिर होती है। मैं इस केस को लेकर स्वयं हैरान हो गया हूँ, और समझ में मुतलक़ नहीं आता कि क्या करूँ ?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यही तो विस्मय-जनक है। क्या किसी अन्य डॉक्टर की सहायता लेनी पड़ेगी ?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"जी हाँ, अगर आपको कुछ आपत्ति न हो, तो सहायता अवश्य लेनी चाहिए। दरहक़ीक़त यही कहने के लिये मैं आया भी हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तब तो वालपेराइज़ो में ही अच्छे डॉक्टर मिल सकेंगे। या चिली-गवर्नमेंट को लिखकर कोई चतुर डॉक्टर बुलवाना पड़ेगा। यहाँ के प्रेसीडेंट पर मेरे कई ऐसे एहसान हैं, जिनके कारण वह हमें अच्छी तरह सहायता दे सकता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने प्रसन्न होकर कहा—"तब तो आप ज़रूर उन्हें लिखकर किसी विशेषज्ञ को बुलावें।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"साथ में किसी नर्स को भी बुला लें, तो ठीक रहेगा। अकेले अमीलिया पर सब भार छोड़ देना ठीक नहीं। पहले फ़िज़ी में तो राधा थी, जो उसकी सहायता करती थी, परंतु जब से वह अपनी मा से मिलने गई, तब से वापस नहीं आई, और उस वक़्त से सारा बोझ अमीलिया पर आ पड़ा है।"

अमीलिया ने प्रसन्न चित्त से कहा—"मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं मालूम होता, बल्कि एक प्रकार का आनंद मिलता है। इसके अतिरिक्त मेरे पास कोई काम भी तो नहीं, जिससे मेरा मन बहल सके।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"राधा की कोई ख़बर नहीं। मुझे विश्वास था, वह अपना पुराना जीवन छोड़कर नवीन, धर्म-विहित पथ पर चलेगी, और उसने इसका वचन भी दिया था, किंतु अब ऐसा मालूम होता है कि वह उसी पुराने भ्रष्ट पथ पर चलकर पापमय जीवन व्यतीत करेगी।"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"मुझे तो यह विश्वास नहीं होता। उसकी मा की तबियत पहले ख़राब थी, जिससे वह हम लोगों के

साथ यहाँ ( चाइल ) नहीं आ सकी। मैंने आपको उसका पत्र दिखलाया था, क्या आप भूल गए?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यहाँ आए तो हम लोगों को लगभग दो सप्ताह हो गए, अभी तक उसका कोई पता नहीं।"

अमीलिया ने कहा—"मैंने पिताजी से कह दिया था कि जब वह कलकत्ते से यहाँ आवें, तो राधा और उसकी मा को अपने साथ लेते आवें। वह उन लोगों के साथ अवश्य आवेगी। इसी आशय का पत्र भी मैंने उसे लिख दिया है। वह हमारा जहाज़ आने की राह देखेगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हारी कार्य-कुशलता देखकर ही मैंने तुम्हें इस आश्रम का प्रबंधक बनाने का निश्चय किया है। तुम्हारी दृष्टि सब ओर रहती है, और तुम उसे सुचारु रूप से कर सकती हो।"

अमीलिया की चिर-सहचरी मलिनता किंचित् क्षणों के लिये दूर हो गई।

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"डॉक्टर नीलकंठ, आभा और भारतेंदु के आ जाने से यह स्थान वास्तव में आनंद से मुखरित हो उठेगा।"

आभा और भारतेंदु के नाम ने अमीलिया का क्षणिक हर्षावेग फिर मलिन कर दिया। वह अपने मन का भाव छिपाने के लिये त्वरित पदों से वहाँ से चली गई।

डॉक्टर हुसैनभाई के साथ पंडित मनमोहननाथ भी माधवी को देखने के लिये चले गए। अकेले स्वामी गिरिजानंद सुदूर ज्वालामुखी के धूम को शून्य दृष्टि से देखने लगे।

---

## ६

माधवी ने शून्य दृष्टि से पंडित मनमोहननाथ की ओर देखा, जैसे किसी को पहचानने या अपनी बिखरी हुई स्मृति को एकत्र करने का उद्योग करती हो। वह उसकी ओर दयार्द्र भाव से देखने लगे।

माधवी ने धीमे स्वर में पूछा—"तुम कौन हो? मुझे स्मरण नहीं होता कि मैंने कभी तुम्हें देखा है। हाँ, याद आया, तुम्हीं ने मेरी लड़की और स्वामी को मुझसे छीन लिया है, और मुझे बाँधकर यहाँ ले आए हो। अच्छा, बोलो, मैंने तुम्हारा कौन अपराध किया है?"

उसके स्वर में विनय की परा काष्ठा का दिग्दर्शन था। पंडित मनमोहननाथ काँप उठे। उनकी हृत्तंत्री का एक-एक तार हिल उठा। वह अधीरता से कमरे में टहलने लगे, जिससे साफ़ ज़ाहिर था कि वह अपने हृदय की पीड़ा सहन करने में असमर्थ हैं।

माधवी कुछ देर बाद फिर कहने लगी—"वे मेरे कैसे सुख के दिन थे! स्वामी के सुहाग को लेकर मैं विभोर थ, मेरे सामने कोई दूसरी वस्तु न थी, जिसका आकर्षण हो। मुझे सबने त्याग दिया था। मा-बाप, भाई-भतीजे, सखी-सहेलियाँ, सबने मुझसे अपना संबंध विच्छेद कर लिया था—एक ने किया था उन्होंने और चाची ने। दोनो का पूर्ण सुख मुझे प्राप्त था, और उसी में मेरे जीवन की शांति केंद्रित थी। दोनो मेरे बिना क्षण-भर न रह सकते थे। अब नहीं मालूम, वे लोग कैसे हैं, और उन पर क्या बीती। इन दुष्टों ने मुझे उनसे छीन लिया, उनकी प्रेम-छाया मेरे ऊपर से हटा दी। मैंने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया, सदा दूसरों का हित साधन

करने का प्रयत्न किया है, फिर भी मुझे यह दंड भोगना पड़ा है। हे दैव ! इसका कोई प्रतिकार नहीं ?"

माधवी कहते-कहते चुप होकर शून्य दृष्टि से कमरे के बाहर पर्वत-शृंग-माला की ओर देखने लगी। पंडित मनमोहननाथ उसके सिरहाने बैठकर उसकी ओर वात्सल्य-भरी दृष्टि से देखने लगे।

माधवी ने उनकी ओर किंचित् ध्यान नहीं दिया। वह पुनः कहने लगी—"दोपहर होने आई, अभी तक मैंने उनके लिये भोजन नहीं तैयार किया। वह क्या खाकर जायँगे? चाची का भी कहीं पता नहीं। मैंने उनसे कई मर्तबे कह दिया है कि उन्हें ठीक व़क्त पर खाना दे दिया करो, परंतु न तो वह कुछ ख़याल करते हैं, और न चाची ही। मैं आज चाची से अच्छी तरह कह दूँगी ; वह चाहे बुरा मानें, चाहे भला। उनकी ऐसी बेपरवाही मुझे अच्छी नहीं मालूम होती। उन्हें भी कुछ खाने-पीने की फ़िक्र नहीं। दिन-रात मेरी दवा के लिये परेशान घूमा करते हैं। उनसे कई मर्तबे कह दिया कि मैं मरूँगी नहीं, तुम इतना परेशान मत हो, मगर वह मेरी कब सुनते हैं। मेरे पास जब तक बैठे रहते हैं, तब तक तो अपने अश्रुओं का वेग रोके रहते हैं, परंतु यहाँ से जाते ही जी खोल-कर रोते हैं। वह अपनी वेदना छिपाने का यत्न करते हैं ; किंतु छिपा नहीं सकते। मैं सब जानती हूँ। देखो, उनकी आँखें रोते-रोते लाल हो गई हैं, और मुख की श्री उतर गई है। हाय, मैं क्या करूँ ? उन्हें देखकर मेरा रुदन साक्षात् रूप से प्रकट होने के लिये आकुल होता है। मैं उनके सामने रोती नहीं। जिस दिन वह मुझे रोते देख लेंगे, उन्हें भयानक यंत्रणा होगी। यह कैसी चोरी है, हम दोनों अपने-अपने भाव हृदय में छिपाए हुए हैं, हालाँकि हम लोग इतने निकट हैं। उनका प्रेम आकाश से भी ऊँचा है, सागर से भी गंभीर है, वायु से भी प्रबल है, अग्नि से भी प्रदीप्त है, और जल

से भी तरल है। पंचतत्त्वों से भी सूक्ष्म हैं, निर्मल हैं, सत्य हैं, शिव हैं और सुंदर है। वह मेरे लिये भगवान् से भी महान् हैं। उनके सामने भगवान् का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं।"

माधवी पुनः चुप हो गई। प्रलाप बंद होते ही वह उठ खड़ी हुई, और आतुरता तथा विह्वलता से चारो ओर देखने लगी। पंडित मनमोहननाथ ने उसे पकड़कर बैठाने की चेष्टा की। माधवी अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। जब वह अकृत-कार्य हुई, तो अग्नि-प्रदीप्त नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने सप्रेम कहा—"बेटी, अधीर क्यों होती हो? बोलो, तुम कहाँ जाना चाहती हो?"

माधवी ने सरोष कहा—"तुम मुझे रोकनेवाले कौन हो? मैं अपने पति के पास जाना चाहती हूँ। जहाँ से तुम लाए हो, वहाँ जाऊँगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अच्छा, बताओ, मैं तुम्हें कहाँ से लाया हूँ?"

माधवी सोचने लगी, और शांत होकर पुनः शय्या पर लेट गई। परिश्रम करने से उसका शरीर काँप रहा था, और हृदय का स्पंदन बड़े वेग से हो रहा था।

पंडित मनमोहननाथ ने उसके रूक्ष केशों को सस्नेह सुलझाते हुए कहा—"माधवी, मेरी बेटी, तुम किसी बात की चिंता न कर अपने को दुखी मत करो। मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

माधवी ने विस्फारित नयनों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"असंभव है। तुम मेरे पिता नहीं हो, उनका नाम था पंडित लक्ष्मी-कांत। उनके विशाल दाढ़ी थी, और वह बहुत गोरे रंग के थे, उनका रंग तुम्हारी तरह गेहुआँ न था। वाह, क्या मैं अपने पिता को नहीं पहचानती? तुम तो कोई चोर हो, ठग हो, जो

मेरे स्वामी के पास से छीन लाए हो। मैं बीमार थी, मेरे एक छोटी लड़की थी, वह फूल की तरह सुंदर थी, ओस की तरह निर्मल थी, दूर्वा की तरह पवित्र थी। वह हमारी प्रेम-लता का मनोहर, अभिराम फल थी। मैं उसे अपने हृदय से लगाए थी, इसी समय बेहोश हो गई, और तुम डाकू की तरह मुझे लूट लाए। मेरे स्वामी ने मेरी लड़की को छीन लिया होगा, तभी तुम उसे नहीं ले आ सके, नहीं तो उसे भला कब छोड़ते। तुम कपटी हो, कपटमय प्रेम दिखाकर मुझे ठगते हो। याद रखना, मैं प्राण दे दूँगी, किंतु........"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, अपने पति का नाम तो बताओ। उन्हें भी यहाँ बुला लूँ।"

माधवी ने उलटकर तेज़ी के साथ कहा—"नहीं बताऊँगी, नहीं बताऊँगी। चाहे प्राण भले ही चले जायँ, मैं कदापि न बताऊँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हारा यह प्रलोभन है। तुम उनका नाम पूछकर जैसा मुझे दुख दिया है, वैसा ही उन्हें दोगे। तुम उनका अनिष्ट करोगे, और मेरी रानी को, मेरी लड़की को हानि पहुँचाओगे। मैं सब जानती हूँ। तुम मुझे घर से बाहर नहीं निकलने देते, और कहते हो कि मैं तुम्हारा पिता हूँ। पिता का कर्तव्य ख़ूब पालन करते हो। तुम मुझे जहाज़ पर बिठाकर ले आए हो। न-मालूम मैं कहाँ हूँ? अपने स्वामी और लड़की से कितनी दूर हूँ। मैं जानती हूँ, तड़प-तड़पकर मुझे अपने प्राण विसर्जन करने पड़ेंगे। शायद यही मेरे भाग्य में है।"

माधवी अपना शोकावेग न रोक सकी, उसका प्रतिबंध टूट गया, और वह फूट-फूटकर रोने लगी। पंडित मनमोहननाथ भी व्याकुल होकर उठ खड़े हुए। उन्हें साहस न हुआ कि उसे सांत्वना दें।

माधवी रोकर कहने लगी—"हाय ! तुम उन्हें भी दुःख देने जाते हो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। पहले मेरा वध कर डालो, फिर उन पर अपना हाथ उठाना। उनकी पीड़ा देखने की शक्ति मुझमें नहीं। मान लो, मेरी विनती मान लो। मेरी लड़की बहुत छोटी है, दूध पीती बच्ची है, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? जान-बूझकर मैंने कभी कोई तुम्हारा या किसी का अपराध तो नहीं किया, फिर भी मैं अपना क़ुसूर स्वीकार करती हूँ। जो कुछ दंड देना हो, मुझे दे लो, लेकिन उन्हें न छुओ। मैं स्त्री हूँ, मैं पीड़ा सहन कर सकती हूँ, पति और पुत्री के लिये हँसते-हँसते मर सकती हूँ। मैं हिंदू-रमणी हूँ। हिंदू रमणी का पति और संतान के लिये जीवन उत्सर्ग करना महान् यज्ञ है, यही उसका कर्तव्य है। मैं उस धर्म को जानती हूँ। लो, मैं तुम्हारे सामने सहर्ष अपना मस्तक नत करती हूँ। मेरे प्राणों की बलि देकर मेरे स्वामी और मेरी पुत्री की रक्षा करो।"

कहते-कहते माधवी ने अपना सिर उनके सामने नत कर दिया।

पंडित मनमोहननाथ किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर उसकी ओर करुणा-दृष्टि से देखने लगे।

माधवी ने विनय-पूर्ण स्वर में कहा—"देखते क्या हो ? क्या तुम्हें मेरे ऊपर दया आती है ? हाँ, तुम्हारी दृष्टि यही कह रही है, तुम्हारे मुख के भाव मेरे मन में यह विश्वास पैदा करते हैं कि तुम उनकी हत्या न करोगे।"

पंडित मनमोहननाथ की आँखों से अश्रु-धारा बहने लगी। भावावेश ने उनका कंठ अवरुद्ध कर लिया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने को सँभालकर कहा—"कौन कहता है कि यह पागल है ?"

माधवी ने तुरंत विस्मित स्वर में कहा—"क्या तुम मुझे पागल समझते हो ?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"दूसरा तुम्हें भले ही पागल समझे, किंतु मैं तो नहीं समझता।"

माधवी ने प्रसन्न कंठ से उत्तर दिया—"यह ठीक है। मैं बिलकुल पागल नहीं हूँ। मै अपने होश-हवास में हूँ। इसी तरह कभी वह भी मेरी ज़िद देखकर प्रेम के साथ पागल कहा करते थे, तो इससे क्या मैं पागल हो गई थी। मैं एक बच्ची की मा हूँ। मेरे स्वामी विद्वान् पुरुष हैं, और उनका यश चारो ओर फैला हुआ है। मै तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं पागल नहीं हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने स्नेह से आर्द्र स्वर में कहा—"तुम्हारे पति का क्या नाम है, क्या तुम बतला सकती हो ?"

माधवी ने गंभीरता के साथ सोचते हुए कहा—"मैं उनका नाम भूल गई। मैं नहीं बतला सकती। मेरा तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, तुम मेरे ऊपर विश्वास क्यों नहीं करतीं ?"

माधवी ने हँसकर कहा—"यह भी कोई कहने की बात है। तुम अपने मन से स्वयं पूछो। क्या तुमने मेरे साथ कोई भलाई की है ! मुझे उनके पास से हर लाए हो, और यहाँ छिपा रक्खा है, जैसे रावण ने सीता का हरण कर लंका में छिपा रक्खा था। यह भली भाँति जान लो कि भगवान् रामचंद्र की भाँति मेरे पति भी यहाँ आकर मुझे ले जायँगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

माधवी चुप हो गई। पंडित मनमोहननाथ कुछ विचारने लगे। माधवी ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हारी मुद्रा देखने से मालूम होता है कि तुम्हारे मन में भय उत्पन्न हुआ। मैं फिर

कहती हूँ कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि मुझे मेरे स्वामी और कन्या के पास भेज दो, नहीं तो इसमें तुम्हारा अकल्याण होने के अलावा कोई दूसरा शुभ परिणाम न होगा। तुम चाहे मुझे कितने समंदर पार ले जाकर छिपा रक्खो, वह मेरा पता लगा लेंगे।"

इसी समय डॉक्टर हुसैनभाई ओषधि लेकर उस कमरे में आए। उन्हें देखते ही माधवी ने चिल्लाकर कहा—"मेरे लिये तुम विष लाए हो। मैं नहीं पिऊँगी। मैं अभी नहीं मरना चाहती। मुझे एक बार उन्हें और अपनी बच्ची को देख लेने दो। एक बार—केवल एक बार उन्हें दिखला दो, और फिर चाहे मेरी हत्या कर डालो, मुझे कोई उज़्र न होगा।"

वह भय-विह्वल दृष्टि से भीत हरिणी की भाँति उनकी ओर देखने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"डॉक्टर साहब, दवा पिलाने से कोई विशेष लाभ नहीं। इसके लक्षणों से यह नहीं मालूम होता कि इसका मस्तिष्क विकृत है। मुझे तो इसके कथन में सत्यता का आभास मिलता है, और मन कहता है कि विश्वास करो।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"मैं आपको क्या बतलाऊँ, मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं देती। मैंने ऐसी विलक्षण बीमारी आज तक नहीं देखी।"

पंडित मनमोहननाथ ने भ्रू कुंचित करके पूछा—"आप इसे बीमार किस तरह कहते हैं?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"अप्रासंगिक बातों से यही निश्चय होता है। कभी-कभी ऐसे विकृत मस्तिष्कवाले देखने में आते हैं, जो बाह्य लक्षणों से तो पागल नहीं मालूम होते, किंतु दरअसल होते हैं पागल।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"माधवी की बातों से मैं यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि इसका कथन अक्षरशः सत्य है। यह एक बच्चे की मा है। विना माता हुए कोई स्त्री अपनी संतान से मिलने के लिये इतनी आतुर नहीं हो सकती। मातृत्व की वेदना विना संतान प्रसव किए किसी स्त्री को नहीं हो सकती। मैं आपकी परीक्षा पर विश्वास नहीं करता। कभी-कभी परीक्षाएँ ग़लत भी हो जाया करती हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि डीपोवालों ने इस पर बहुत अत्याचार किया है। इसे कोई दवा खिलाकर बेहोश कर दिया गया है, और फिर किसी तरह वे लोग उठा लाए हैं। राधा की कहानी से मुझे मालूम हुआ है कि वे लोग कैसे-कैसे उपायों का अवलंबन करते हैं, और किस प्रकार साध्वी नारियों को बहका-कर, प्रलोभन देकर दग़ा-फ़रेब से निकाल लाते और उन्हें अपने अड्डों अथवा सुदृढ़ व्यूह-मंडलों में छिपा रखते हैं, फिर उन्हें कौशल से जहाज़ में उठा लाते हैं। इन बुर्दाफ़रोशों का व्यापार अभी तक इस सभ्य संसार में प्रचलित है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य कितना अत्याचार अपने भाई पर करता है! इस व्यापार के सरक्षक हम पूँजी-पति लोग हैं, जो इन्हें 'शर्तबंदी मज़दूर' के संरक्षित नाम से ख़रीद लेते हैं, और नाम-मात्र मज़दूरी देकर उनसे पशुओं से भी ज़्यादा काम लेते हैं!"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आपका कथन सत्य है। जितना अत्याचार क़ानून की ओट लेकर होता है, उतना असभ्य और बर्बर जातियों में नहीं होता। मैंने पूर्वीय द्वीप-समूहों में भ्रमण किया है, और कई जंगली जातियों के साथ रहकर उनके रीति-रस्म का अध्ययन किया है। मैं यह भली भाँति कह सकता हूँ कि सभ्य संसार में जितना अंधेर होता है, उसका शतांश भी उनमें देखने को नहीं मिलता।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हमारी सभ्यता का आवरण अपने नीचे मदांधता और पशुत्व छिपाए हुए है। मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने को सभ्य बनाता है, वह कृत्रिमता के समीप और प्राकृतिक बंधनों से दूर होता जाता है। वास्तव में कृत्रिमता का नाम ही सभ्यता है।"

पंडित मनमोहननाथ डॉक्टर हुसैनभाई के साथ इतनी तल्लीनता से बात कर रहे थे कि उन्होंने माधवी को उस कमरे के बाहर जाते नहीं देखा। अब जो उनकी दृष्टि उस ओर गई, तो उसे वहाँ न देखकर बड़े व्याकुल हुए, और कमरे के बाहर बड़े वेग से दौड़े।

घर से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा, स्वामी गिरिजानंद माधवी को पकड़कर ला रहे हैं। उन्होंने पास आकर कहा—"भाग्य-वश मैं झील के किनारे टहल रहा था, नहीं तो आज अनर्थ हो जाता। हमें माधवी से हाथ धोना पड़ता। अगर मैं ठीक समय पर पहुँचकर पकड़ न लेता, तो यह उसमें कूदकर प्राण दे देती।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आज ईश्वर ने ही रक्षा की। हम लोग बातों में इतने मशग़ूल हो रहे थे कि इसका निकल भागना नहीं देख पाए, और इसी दर्म्यान न-मालूम कब निकल भागी। अब तो मुझे विश्वास करना पड़ता है कि दरअसल यह विक्षिप्त है।"

डॉक्टर हुसैनभाई विजय-दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे।

माधवी ने कहा—"मैं डूबने नहीं जा रही थी। हाँ, तुम्हारी क़ैद से निकलने की ज़रूर कोशिश कर रही थी।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अब बिना एक नर्स के काम नहीं चलेगा। डॉक्टर साहब, आप विशेष रूप से इसका उपचार करें।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने पुनः विजय-गर्व से उनकी ओर देखा, और माधवी के साथ-साथ वह भी अपनी प्रयोगशाला में चले गए तथा दूसरी ओषधि बनाने में संलग्न हो गए।

७

ब्यूनेसबोका-नामक झील की परिधि लगभग पाँच मील होगी। उसे चारो ओर से पत्थर की शिलाएँ इस प्रकार घेरे हुए थीं, मानो किसी ने उसे पक्का बँधाया हो। उसका जल इतना निर्मल था कि नीचे की चट्टानें साफ़ दिखाई पड़ती थीं, जिससे उसकी गहराई का बोध नहीं होता था। उसमें जल-जंतु भी बहुतायत से रहते थे—मगर और घड़ियालों की कमी न थी। पंडित मनमोहननाथ ने उसके एक कोने को लोहे की मोटी जालियों से बँधवा दिया था, जिसमें स्नान करनेवालों पर वे जल-जंतु आक्रमण न कर सकें।

उस दिन दोपहर को असह्य गरमी थी। अमीलिया उससे व्याकुल होकर उस झील के पास घूमती-घूमती चली गई। शीतल जल की लहरें उसे स्नान करने का निमंत्रण देने लगीं। वह उसमें कूद पड़ी। उसने यह ध्यान नहीं दिया कि यह वह सुरक्षित घाट नहीं, जिसे पंडित मनमोहननाथ ने बनवाया है। वह अपनी व्याकुलता में उनका आदेश भी भूल गई कि उन्होंने उसे घाट के अतिरिक्त अन्य सब स्थानों में स्नान करने से मना किया है। हिम की तरह शीतल जल उसकी व्याप्त ऊष्मा को कम करने लगा।

उसका मस्तिष्क शीतल होते ही उसे याद आया कि वह उस घाट से दूर है। एक प्रकार के भय का तड़िद्वेग उसके शरीर में व्याप्त हो गया। वह किनारे निकलने का प्रयत्न करने लगी, किंतु चिकने पत्थरों की कगारें उसे पैर रखने का स्थान नहीं देने लगीं। वह तैरकर जाने लगी, जहाँ का तट कुछ छिछला था।

जंगली जंतुओं की प्राण-शक्ति बहुत तीव्र होती है, और विशेष-

कर अपने आहार का ज्ञान उन्हें सुगमता और बहुत दूर से हो जाता है। बुभुक्षित मगर अपने आहार की सुगंध पाकर बड़े वेग से अमीलिया की ओर झपटे। अमीलिया उन्हें आते देखकर बड़ी शीघ्रता से उस छिछले तट की ओर संतरण करने लगी। अपना शिकार भागते देखकर एक मगर द्विगुणित उत्साह से उसका पीछा करने लगा। अमीलिया प्राणों की बाज़ी जीतने के लिये अपनी संपूर्ण शक्ति से उस तट की ओर अग्रसर होने लगी।

अमीलिया तट पर पहुँच गई। जल उसके घुटने तक आ गया, वह खड़ी होकर भागनेवाली थी कि एक घड़ियाल उसके समीप पहुँच गया, और उसे पकड़ने के लिये झपटा। अमीलिया भय से चिल्ला उठी। उसकी भय-विह्वल चीख़ उस अरण्य में गूँजकर किसी सुदूर पर्वत की श्रेणी में जाकर विलीन हो गई। अमीलिया भय से मूर्च्छित-सी होकर अवश हो गई।

डॉक्टर हुसैनभाई भी अमीलिया की भाँति गरमी से व्याकुल होकर झील के तट की शीतल हवा में विचरण करते हुए पक्षियों का शिकार करने के लिये आ रहे थे। उन्होंने अमीलिया का चीत्कार सुना। वह उसकी रक्षा करने के लिये दौड़े।

दूसरे क्षण तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि अमीलिया का जीवन ख़तरे में है।

डॉक्टर हुसैनभाई ने बड़ी तत्परता से बंदूक़ का निशाना साधा। दूसरे क्षण गगनभेदी शब्द हुआ, और चारो ओर पानी की बौछारें आकाश को स्पर्श करने के लिये फैल गईं। डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया को पकड़कर जल्दी से खींचा, किंतु वह उसका वेग न सँभाल सके, और गिर पड़े। उनके ऊपर बेहोश अमीलिया भी गिर पड़ी। वे जल-जंतु प्राण लेकर, अपनी भूख भूलकर भागे, और सुदूर जल में जाकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

बंदूक़ के शब्द ने आश्रम-वासियों को आकृष्ट किया। वे उसका रहस्य जानने के लिये दौड़ पड़े। उनमें पंडित मनमोहननाथ भी थे।

उन्होंने आकर देखा, डॉक्टर हुसैनभाई और अमोलिया, दोनो बेहोश पड़े हैं, एवं उनके सिर और शरीर के कई स्थानों से रक्त निकलकर पानी में मिल रहा है। उन्होंने उन दोनो को आश्रम में पहुँचाने का आदेश दिया। मोटर द्वारा वालपेराइज़ो से एक अन्य चतुर डॉक्टर लाने का प्रबंध करने लगे।

* * *

थोड़ी देर के परिश्रम से डॉक्टर हुसैनभाई को होश आ गया, और वह पंडित मनमोहननाथ की ओर देखने लगे।

पंडित मनमोहननाथ ने आकुल स्वर से पूछा—"डॉक्टर, यह घटना कैसे घटित हुई ?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"मैं मगर का शिकार करने के लिये बाहर निकला था कि मिस जैकब्स का चीत्कार सुनाई पड़ा। शायद वह भी गरमी से घबराकर झील के किनारे घूमने आई थीं, और स्नान करने लगीं। इसी अवसर में एक मगर ने उनका पीछा किया। वह उन पर झपट ही रहा था कि मैं पहुँच गया, और उस पर बंदूक़ का निशाना साधा। ईश्वर की कृपा से गोली निशाने पर बैठी, और ज्यों ही मैंने उन्हें अपनी ओर घसीटा, मेरा पैर फिसल गया, और मैं गिर पड़ा। इसके आगे मुझे याद नहीं, क्या हुआ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"अमीलिया की जीवन-रक्षा हुई, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। कुछ गहरी चोटें उसके अवश्य लगी हैं, लेकिन वे सब शीघ्र अच्छी हो जायँगी। वह अभी तक बेहोश है। वालपेराइज़ो से मैंने डॉक्टर बुलाया है, जो आज संध्या तक आ जायगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"आप

चिंतित न होइए, मैं अभी मिस जैकब्स को ठीक कर दूँगा। मेरे तो मामूली चोट लगी है। अब मैं अच्छा हूँ। सिर्फ़ थोड़ी-सी चोट है, जो दो-एक दिन मलहम लगाने से अच्छी हो जायगी। अब देखूँ कि मिस जैकब्स की तबियत कैसी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"स्वामी गिरिजानंद उसकी देख-भाल कर रहे हैं। अगर आपकी तबियत अच्छी है, तो अमीलिया को होश में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं तो आजकल बड़ी विपद् में फँसा जा रहा हूँ। अभी तक माधवी की फ़िक्र थी, और अब अमीलिया भी बुरी तरह घायल हो गई है। अब इसकी देख-रेख कौन करेगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आप इसकी चिंता न करें। मैं सब देख-भाल लूँगा। माधवी की ज़रूर कुछ फ़िक्र है, क्योंकि वह अपने होश में नहीं। अच्छाई केवल यही है कि सिवा बकने के और कोई उपद्रव नहीं करती। मैं उसे भी सँभाल लूँगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"माधवी के लिये मैंने सेंटियागो से नर्स बुलाई है, जो कल या आज शाम तक आ जायगी। जब तक नर्स न आवे, तब तक तो आपको देखना होगा।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—"मैं सब प्रबंध कर लूँगा। केवल कठिनता यही है कि दोनो रोगी स्त्रियाँ हैं।"

यह कहकर वह अमीलिया को देखने के लिये शीघ्रता से चले गए।

---

## ८

तीन दिन की बीमारी में अमीलिया के सौंदर्य में बहुत कुछ कमी हो गई थी। शरीर का रक्त अधिक मात्रा में निकल जाने से कमज़ोरी के साथ उसके शरीर का वर्ण भी पीला पड़ गया था। सहज सुचिक्कण, आलुलायित केश-राशि रुक्ष हो गई थी, और इस समय उसने अपना स्वाभाविक रंग छोड़कर कुछ भूरापन धारण करना शुरू किया था। अधरों की लालिमा परिवर्तित होकर कुछ श्वेतता-मिश्रित भूरे रंग की हो गई थी। उनके चिकनेपन का सर्वथा नाश हो गया था, वे सूखकर पपड़ियों से आवृत हो गए थे। आँखों की ज्योति निष्प्रभ हो गई थी। उसे देखकर पहचानना मुश्किल था।

डॉक्टर हुसैनभाई तीन दिन से निरंतर परिश्रम कर रहे थे। उसे अकेले छोड़कर कभी क्षण-भर के लिये न जाते थे। भोजन भी वह उसी कमरे में करते थे। इतनी तन्मयता और मनोयोग से उन्होंने किसी दूसरे रोगी की परिचर्या की थी या नहीं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता।

वालपेराइज़ो से डॉक्टर आने के पहले-पहल अमीलिया को होश आ गया था, इसलिये पंडित मनमोहननाथ उसे माधवी के कमरे में ले गए। माधवी का समस्त वृत्तांत सुनकर वह भी चकित रह गया, और परीक्षा करके उसने यही स्थिर किया कि वह किसी हद तक ज़रूर विक्षिप्त है। डॉक्टर स्पेन का रहनेवाला था, और अभी हाल में ही चिली आकर अपने व्यवसाय का प्रसार किया था। डॉक्टर हुसैनभाई से मिलाप होने पर वह प्रसन्न हुआ, और उसने उनके उपचार का अनुमोदन कर उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

डॉक्टर डान फ़रडीनेंड को अँगरेज़ी का बहुत थोड़ा ज्ञान था, परंतु फिर भी दोनो डॉक्टरों ने अपने विचारों का विनिमय बड़ी सुगमता से कर लिया। वह साथ में एक नर्स भी लाया था, जिसे माधवी की परिचर्या के लिये नियुक्त कर दिया गया। अमीलिया का भार तो डॉक्टर हुसैनभाई ने स्वयं अपने ऊपर रक्खा।

आज अमीलिया को उस दुर्घटना से बचे हुए चौथा दिन था। तीन दिनों तक वह चुपचाप लेटी रही, किसी के पुकारने से आँख खोलकर देख लेती, और पुनः नेत्र बंद करके विचार-निद्रा में डूब जाती। डॉक्टर हुसैनभाई ने एक दिन भी उसे बुलाकर विरक्त नहीं किया था, वह शांत मन से उसकी सेवा में दत्तचित्त थे। रात्रि का मध्यकाल था, चतुर्दिक् निस्तब्धता छाई हुई थी। आश्रम-प्रवासी निद्रा में मग्न होकर स्वप्न-लोक में विचरण कर रहे थे। बाहर पूर्व दिशा में चंद्रमा उदय हो रहा था, जिसकी किरणों ने पूर्व के वातायन से आकर, अमीलिया के शुष्क मुख-मंडल पर पड़कर उसे जगा दिया। उसने अपने नेत्र धीरे-धीरे खोल दिए। सामने चंद्रमा मुस्किरा रहा था। वह उसका हास्य सहन न कर सकी, और उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए। टूटी हुई नींद उसकी आँखों से तिराहित होकर थोड़ी दूर बैठे हुए डॉक्टर हुसैनभाई को वशीभूत करने के लिये आतुर हो रही थी।

अमीलिया उन्हें ऊँघते देखकर बोली—"डॉक्टर साहब, आप सो जाइए।"

डॉक्टर हुसैनभाई चौक पड़े। वह चकित होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्हें विश्वास न हुआ कि उनसे कहनेवाली अमीलिया है। आज के पहले उसने अभी एक शब्द भी उनसे न कहा था।

उन्हें इस प्रकार चकित होते देखकर अमीलिया अपनी हँसी न रोक सकी। वह सुमधुर शब्द से हँस पड़ी।

डॉक्टर हुसैनभाई पहले से भी अधिक विस्मित होकर चारो ओर देखने लगे। उन्हें यह अनुमान न हुआ कि अमीलिया हँस रही है। भ्रांति का दूसरा नाम भय है। वह कुछ भयाकुल होकर कमरे के बाहर सुदूर आकाश में नवोदित चंद्र की ओर देखने लगे।

अमीलिया ने शय्या से उठते हुए मधुर कंठ से कहा—"डॉक्टर साहब, आप उधर क्या देख रहे हैं। मैं आपसे कह रही हूँ कि आप कई दिनों से परेशान हो रहे हैं, आज मेरी तबियत अच्छी है, आप विश्राम कीजिए।"

डॉक्टर हुसैनभाई का विस्मय दूर हुआ। उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा—"आप फ़रमा रही हैं! मैं ताज्जुब में था कि कौन मुझे सोने का आदेश दे रहा है!"

अमीलिया के उठने से उसके घावों पर ज़ोर पड़ा, वह कराहकर पुनः लेट गई। डॉक्टर हुसैनभाई एक ही छलाँग में उसके पास पहुँच गए, और कहा—"आप यह क्या करती हैं! मैंने आपको हिलने-डुलने के लिये कई बार मना किया, किंतु आप मेरे कहने पर ज़रा ध्यान नहीं देतीं।"

उनके स्वर में गुप्त वेदना का आभास था।

अमीलिया ने उनकी पीड़ा अनुभव करते हुए कहा—"सुनूँगी। आपका कहना न सुनूँगी, तो किसका सुनूँगी!"

यह कहकर उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए।

डॉक्टर हुसैनभाई की सुप्त आशा सजग होकर, उसका मुख देखकर उसके हृदय का भेद जानने का प्रयत्न करने लगी।

अमीलिया ने आँखें बंद किए हुए कहा—"आइए, मेरे समीप बैठ जाइए। आज मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। कल से मैं अपने हृदय का भेद आप पर प्रकट करना चाहती हूँ, लेकिन साहस नहीं होता।"

डॉक्टर हुसैनभाई सहस्र-सहस्र उत्कंठाओं को लेकर उसके समीप, कुर्सी पर, बैठ गए। उनके हृदय का स्पंदन बड़े वेग से होने लगा।

अमीलिया ने एक बार उनकी ओर देखा, फिर अपने नेत्र बंद कर कहा—"आप जानने के लिये व्यग्र हैं कि मैं आपसे क्या कहना चाहती हूँ। यह मैं जानती हूँ कि आपका प्रेम मेरे प्रति अगाध और असीम है। आपने एक दिन फ़िज़ी में मुझसे प्रेम-प्रतिदान माँगा था, किंतु मैंने आपके प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उस दिन से आज तक मैं बराबर अपनी आत्मा से युद्ध कर रही हूँ, और वह युद्ध इधर तीन दिनों से कुछ ज़्यादा उग्र हो उठा है, जब से आपने मुझे मृत्यु के मुख से घसीट लिया है......."

डॉक्टर हुसैनभाई ने बात काटकर कहा—"यह आपका भ्रम है; मैंने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है।"

अमीलिया ने मंद स्वर में कहना आरंभ किया—"कृपा करके आप मेरे विचारों को सुनते जाइए, पीछे बहस कीजिएगा।"

यह कहकर वह मुस्किराई। मलिन हास्य-श्री उसे अपूर्व सुंदरी कहकर परिचय देने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अमीलिया कहने लगी—"कर्तव्य पालन करने के लिये मनुष्य का जन्म हुआ है। यदि आपने अपना कर्तव्य पालन किया है, तो मुझे भी उचित है कि मैं भी अपना कर्तव्य पालन करूँ। यह विषय तो निर्विवाद है।

थोड़ी देर बाद अमीलिया पुनः कहने लगी—"हाँ, मैं तीन दिन से बराबर अपनी आत्मा से युद्ध कर रही हूँ। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे हृदय का युद्ध कर्तव्य को लेकर ही हो रहा है। अभी तक मैं किसी के प्रति अपना कर्तव्य पालन करती थी, हालांकि उसने निष्ठुर पुरुष-जाति के स्वभावानुसार

मुझे त्याग दिया था, फिर भी मैं उसके प्रति अपना कर्तव्य निबाहे जाती थी। क्या मुझमें संसार के सुख भोगने की लालसा नहीं, क्या मैं किसी से प्रेम किए जाने के लिये लालायित नहीं, क्या मैं नारी-जीवन को सार्थक बनाने के लिये आतुर नहीं। स्त्री का स्त्रीत्व तो प्रेम में निहित है। उसकी आत्मा प्रेम है, उसका जीवन सोहाग है, उसका शरीर शृंगार है। स्त्री का जन्म केवल प्रेम करने और प्रेम किए जाने के लिये हुआ है। मैंने भी किसी से प्रेम किया था, और अब भी करती हूँ; किंतु प्रेम के साथ कर्तव्य भी तो है। उसने दूध की मक्खी की भाँति मेरा तिरस्कार किया, किंतु मैंने उसे अपने हृदय से लगा रक्खा और प्यार करती रही।"

वह ठहरकर विश्राम लेने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई बड़ी मुश्किल से, अपने मनोगत भावों को रोके हुए, उसकी कहानी सुन रहे थे।

थोड़ी देर बाद अमीलिया फिर कहने लगी—"किंतु अब मेरी अवस्था में कुछ परिवर्तन हो गया है। उस दिन की घटना के बाद मेरा पुनर्जन्म हुआ है। ब्यूनेसबोका की उस घटना ने मेरे उस जीवन का अंत कर दिया। यदि इस जीवन की रक्षा हुई है, तो इसका श्रेय आपको है, और इसके स्वामी भी आप ही हैं।"

डॉक्टर हुसैनभाई के एक-एक अवयव पुलकित हो उठे। उनकी आँखों से प्रकाश निकलकर उसके मुख का मालिन्य दूर करने का प्रयास करने लगा।

उन्होंने अधीर होकर उसका हाथ सप्रेम अपने हाथ में ले लिया, और उस पर अपने हृदय के अगाध उद्गार की छाप अंकित करने लगे। उन दोनों के शरीर में तड़ित्प्रवाह प्रवाहित होकर उन्हें अचेत करने लगा। अमीलिया की विरोध-शक्ति प्रेमावेश से मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट हो गई। उसने कोई आपत्ति नहीं की, वरन् अपना हाथ और ढीला कर दिया।

थोड़ी देर बाद आवेश का उफान शांत होने पर अमीलिया ने अपना हाथ धीरे-धीरे खींच लिया, और बोली—"उस दिन से मेरे सामने एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ है कि मुझे मेरे पुराने संबंध के साथ आबद्ध रहना कहाँ तक न्याय-संगत है? मुझे उस ओर से सिवा उपेक्षा के और कुछ नहीं मिला। मैं उसी को लेकर संतुष्ट थी, किंतु इधर आपके प्रेम ने मेरे सामने एक नया विचार रक्खा है। आपके प्रेम की गहराई मुझसे छिपी नहीं, और मुझे विश्वास है कि........"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसे आगे बोलने नहीं दिया। वह अपने प्रेमावेग को दमन करने में कृतकार्य नहीं हुए। उनके धैर्य का बाँध टूट गया, और उन्होंने उसके हाथ को अधीरता के साथ चुंबन करते हुए कहा—"हाँ, अमीलिया, मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। अपने हृदय का प्रेम व्यक्त करने के लिये मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं। आज मेरा जीवन, मेरी तपस्या सार्थक हुई।"

वह आनंद में मग्न होकर पुनः उसका हाथ तप्त चुंबनों से अंकित करने लगे। प्रेमदेव अपने शिकार को अचेत करने का आयोजन करने लगे।

अमीलिया कहने लगी—"जब इस शरीर की रक्षा तुमने की है, तो मेरा कर्तव्य कहता है कि मैं इसे तुम्हारे हाथ में समर्पण कर दूँ। परंतु........"

डॉक्टर हुसैनभाई ने अधीरता के साथ कहा—"परंतु, परंतु इसमें अब क्या परंतु है, प्रिये!"

अमीलिया ने बड़ी कठिनता से अपने मन का भाव दमन करते हुए कहा—"अभी मेरे अतीत जीवन की बातें तुम्हें कहाँ मालूम हैं, उन्हें जान लेना आवश्यक है, जिसमें कभी तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने बड़ी अधीरता के साथ कहा—"तुम्हारा अतीत जीवन सुनने की मुझे इच्छा नहीं। मैं अतीत पर विश्वास नहीं करता। मेरे सामने केवल वर्तमान है। मेरे लिये यही यथेष्ट है कि तुम मुझे प्यार करती हो। बस, इतना ही मुझे संतुष्ट करने के लिये पर्याप्त है—मेरे जीवन को सुखी करने के लिये काफ़ी है।"

इसके आगे वह न कह सके। उन्होंने उसके हाथ को अपने हृदय से लगा लिया। उनका हृदय वेग से स्पंदित हो रहा था।

अमीलिया ने अपना हाथ खींचते हुए कहा—"नहीं, अतीत का संबंध वर्तमान से सदैव रहता है। वर्तमान बिना अतीत के असंभव है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"होगा, मैं उसे नहीं सुनना चाहता। अतीत में तुम चाहे कोई हो, इस समय मेरे लिये प्रेम की देवी हो।"

अमीलिया ने दृढ़ कंठ से कहा—"नहीं, तुम्हें सुनना होगा। प्रेम की मदिरा के उत्ताप में विवेक-शून्य होना उचित नहीं। इससे हमेशा दुष्परिणाम निकलते हैं। मैंने एक बार यही भूल की थी, जिसका परिणाम मुझे आज तक भोगना पड़ रहा है। पहले प्रेम अंधा होता है, किंतु जब उसकी आँखें, नशा ख़त्म होने पर, खुलती हैं, तब आदमी पश्चात्ताप करता है। मेरा अतीत भयानक है, संभव है, उसे जानकर आपका प्रेम घृणा में परिवर्तित हो जाय।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने दृढ़ता से कहा—"यह बिलकुल असंभव है। अमीलिया, अब भी तुम्हें मेरे प्रेम का विश्वास नहीं?"

उनका स्वर तिरस्कार-रंजित था।

अमीलिया ने सप्रेम कहा—"यदि यह न मालूम होता, तो क्या मैं आत्मसमर्पण करती?"

डॉक्टर हुसैनभाई चुप हो गए।

अमीलिया कहने लगी—"मेरा अतीत बड़ा भयानक है। मैं किसी व्यक्ति से प्रेम करती थी। मेरी नई उम्र थी, यौवन का आगम था, किसी के प्रेम-जाल में फँस गई, और उसके छलना-भरे शब्दों को सत्य मान लिया। मैंने उस पर विश्वास किया, और अपने स्त्री-जीवन का अमूल्य रत्न भी उसके चरणों पर चढ़ा दिया। मेरे कौमार्य की पवित्रता नष्ट-भ्रष्ट हो गई। मैं गर्भवती हो गई, और उस दुष्ट ने उस कठिन समय में मुझे त्याग दिया। मैं अपनी शर्म छिपाने के लिये आकुल थी। उसे पत्र द्वारा सूचित किया कि वह उस बच्चे का पिता होकर उसके जीवन की रक्षा करे, किंतु उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अंत में अपनी लाज बचाने के लिये मुझे उसकी हत्या करनी पड़ी। मैं हत्यारिनी हूँ। क्या तुम हत्यारिनी को......"

अमीलिया की आँखों से अश्रु-प्रवाह होने लगा, जिसने उसका गला दबा दिया। कंठ का स्वर कंठ में रह गया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने सांत्वना-पूर्ण स्वर में कहा—"प्रियतमे, अधीर न हो। तुम हत्यारिनी नहीं हो, वरन् अपराधी वह है, जिसने ऐसा अधम और गर्हित काम किया। मैंने तुमसे कह दिया कि मुझे तुम्हारे अतीत से संबंध नहीं। मैं उसकी बिलकुल परवा नहीं करता। वह दुष्ट और नराधम कौन था, जिसने तुम्हारे साथ ऐसा नीच व्यवहार किया। मैं उसे दंड दूँगा, और द्वंद्व-युद्ध के लिये आह्वान करूँगा।"

अमीलिया ने रुदन करते हुए कहा—"उसका नाम मैं तुम्हें नहीं बता सकती। मैं अभी तक उसे प्यार करती हूँ, और कभी उसे भूल सकूँगी, यह नहीं कह सकती। उसने मेरा अनिष्ट किया है, किंतु मैं उसका एक बाल बाँका नहीं कर सकती। तुम्हें उसे क्षमा करना पड़ेगा।"

वह अधीरता के साथ डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"उसे क्षमा करना उचित नहीं। अमीलिया, मेरी प्राणोपम अमीलिया, तुम्हारा कितना महान् हृदय है। मैं सचमुच धन्य हो गया!"

अमीलिया उनका हाथ आवेग के साथ पकड़कर बोली—"कहो, मेरे सामने शपथ-पूर्वक कहो, अगर कभी उसका नाम तुम्हें मालूम हो गया, तो उसे क्षमा कर दोगे, और उसके साथ प्रतिशोध लेने का विचार स्वप्न में भी न करोगे।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा की।

अमीलिया ने उनका हाथ अपने तृप्त ओष्ठों से लगाकर, उस पर अपने प्रेम की छाप अंकित कर प्रेम के दस्तावेज़ को सही कर दिया। सुदूर आकाश में चंद्रदेव ने अपनी मंद मुस्कान-रूपी चंद्रिका से उस पर साक्षी होने के हस्ताक्षर कर दिए। वातायन से शीतल समीर आकर उनकी प्रेम-लीला देखकर मुस्किराने लगा।

---

## ६

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने मलिन हास्य से कहा—"आज मैं जाऊँगा।"

मालती ने उनकी ओर देखा, फिर पूछा—"कहाँ जाने का विचार है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद एक चित्र की ओर देखने लगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

मालती ने उनके समीप आकर आदर-सहित पूछा—"यह तो कहिए, कहाँ जाने का इरादा है? यदि कहीं घूमने का विचार हो, तो मैं भी चलूँगी।"

कुँवर कामेश्वर ने उत्तर दिया—"कहाँ बताऊँ, कहाँ जाऊँगा। मेरा जीवन मेरे लिये भार हो रहा है। मैं किसी तरह इससे छुटकारा पाना चाहता हूँ।"

मालती ने उनके पास आकर, सप्रेम उनका हाथ पकड़कर उनके नेत्रों की ओर देखते हुए कहा—"आज यह वैराग्य कैसा? मुझसे क्या अपराध हुआ है?"

कुँवर कामेश्वर ने मलिन स्वर में उत्तर दिया—"तुम्हारा क्या अपराध है? अपराधी तो मैं हूँ, जिसने तुम्हें इस प्रकार कुढ़ाने के लिये मजबूर किया है। जब मैं इस विषय को सोचने लगता हूँ, तब मेरा हृदय ग्लानि से भर जाता है, और बार-बार आत्महत्या करने की इच्छा होती है। इससे कम-से-कम तुम्हारी तो निष्कृति हो जायगी। आजकल के ज़माने में विधवा-विवाह……"

मालती ने सरोष कहा—"देखो, मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। क्या मैंने कभी इसकी शिकायत तुमसे की है?"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"नहीं, जीवन-भर कैसे निर्वाह हो सकता है। मैंने विचारकर देखा है कि सारी आपत्तियों का मूल मैं हूँ। पिताजी मुझसे निष्कृति पाने के लिये न-मालूम कौन-कौन उपाय अवलंबन कर रहे हैं, और इधर मेरे ही कारण तुम्हें भी दुःख भोगना पड़ता है।"

मालती ने उनका हाथ सप्रेम पकड़ते हुए कहा—"ऐसा दुःख करने का क्या कारण है? आप क्यों दुखी होते हैं? यह सब समय के प्रभाव से होता है। समय ही प्रकट करता है, और समय ही उसका नाश करता है। यदि राजा साहब की इच्छा हम लोगों को अपने प्राप्य अधिकारों से वंचित करने की है, तो हम लोग क़ानून की शरण ले सकते हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने कहा—"यही तो मैं नहीं चाहता। मैं एक तुच्छ राज्य के लिये पिता से युद्ध नहीं करना चाहता।"

मालती ने प्रसन्न वदन से कहा—"यदि आपकी यही इच्छा है, तो मुझे इसी में आनंद है। हमारे गुज़ारे लायक़ मेरे माता-पिता ने काफ़ी प्रबंध कर दिया है, और अगर वह भी न हो, तो हम अपने पैरों खड़े हो सकते हैं। पिताजी आपके लिये कोई अच्छी नौकरी दिलाने का विचार कर रहे हैं, और अम्मा भी ज़ोर दे रही हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने मलिन मुख से उत्तर दिया—"जीविका का प्रश्न तो हल हुआ, किंतु......"

मालती ने लापरवाही से कहा—"किंतु क्या? हिंदू-स्त्रियाँ अपनी इच्छाओं का दमन करना भली भाँति जानती हैं। इसके विषय में उन्हें किसी से उपदेश या शिक्षा लेने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

इसी समय कांति ने आकर कहा—"जीजाजी, आपको बाहर बाबूजी बुला रहे हैं।"

कुँवर कामेश्वर ने बाहर जाते हुए कहा—"अच्छा, मैं तो अभी बाहर जाता हूँ, और उनसे भी बिदा माँगे लेता हूँ। आज मैं अवश्य जाऊँगा।"

मालती ने उत्तर दिया—"यह मैं कहे देती हूँ कि आपका जाना किसी भाँति न होगा। आप इसके लिये बेकार कोशिश मत करें।"

उनके चले जाने के बाद मालती सोचने लगी—"वह जाना चाहते हैं, मुझसे दूर भागकर शांति की खोज में जाना चाहते हैं। यह उनकी भूल है। आज कई दिनों से मैं उन्हें मलिन-मुख और उत्साह-हीन देखती हूँ। यह क्या कारण है? वह अपने हृदय की वेदना मुझसे छिपाते हैं। मेरे ही कारण वह बहुत दुखी हैं। उनकी वेदना और ग्लानि मिटाने के लिये ही मैंने एसेंबली की मेंबरी से इस्तीफ़ा दे दिया। इससे बाबूजी को बहुत कष्ट हुआ, किंतु मैंने कुछ ख़याल नहीं किया। फिर भी वह संतुष्ट नहीं होते।

"अम्मा से भी सब भेद कहना पड़ेगा। वह सुनकर स्तंभित रह जायँगी, और उन्हें असह्य वेदना होगी। यह भेद कब तक छिपाकर रखना पड़ेगा। उधर सब कुछ नष्ट होनेवाला है। मेरी सासजी अपने मायके चली गई हैं, और वहाँ अनूपकुमारी की तूती बोलती है। गद्दी छीनने की भी कोशिश हो रही है। इधर यह अपने पिता के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहते, और विना इसके काम नहीं चलता दिखाई देता। उधर मेरी ननदें भी अभी तक अविवाहित बैठी हैं। उनका भी तो कोई-न-कोई उपाय करना पड़ेगा।

"वह जाकर कहीं आत्महत्या न कर लें? मैं इस विचार-मात्र से सिहर उठती हूँ। मेरा उस समय क्या होगा? नहीं, मैं उन्हें

कहीं न जाने दूँगी। चाहे जैसे हो, उन्हें यहीं रोककर रखना होगा। जब मनुष्य चारो ओर से आपत्तियों से घिर जाता है, तब वह उससे मुक्ति पाने का द्वार ढूँढ़ता है। उस समय सब आपत्तियों से निष्कृति का उपाय केवल एक होता है, और वह आत्मघात है। यह निराशा की चरम सीमा में पहुँचकर होता है। शायद वे ही भाव आजकल उनके हैं। मैं उन्हें सदैव चिंताओं से दुःखित देखती हूँ। उनका वह प्रेमावेग अब मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। उस आवेग के ऊपर पश्चात्ताप और चिंताओं की छाया देखने को मिलती है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उसके कमरे में आकर पूछा—"क्या कुँवर साहब आज जाने के लिये कह रहे थे?"

मालती की विचार-धारा भंग हुई, और उसने उठकर कहा—"मुझे नहीं मालूम।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"तुम मेरे पास बैठो, मैं कुछ बात करना चाहती हूँ।"

मालती उनके पास कुर्सी पर बैठ गई।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मैंने रामसुख को गुप्त रूप से अनूपगढ़ का समाचार जानने के लिये भेजा था। आज वह आया है, और जो-जो हाल उसने बताए हैं, उनसे तो मुझे बड़ी आशंका होती है।"

मालती ने उत्कंठित हृदय से पूछा—"उसने क्या-क्या बातें बतलाई हैं?"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"अनूपकुमारी नाम की क्या कोई स्त्री है, जिसे तुम्हारे ससुर ने घर में डाल लिया है?"

मालती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"हाँ, वह तो बहुत दिनों से है। उसे आए हुए लगभग पंद्रह-बीस वर्ष हो गए।"

लेडी चंद्रप्रभा ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"तुमने अब तक वह भेद मुझे क्यों नहीं बतलाया ?"

मालती ने सिर झुकाकर कहा—"मैं समझती थी, शायद आपको मालूम है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"अगर मैं यह सब हाल जानती होती, तो तुम्हारा जीवन इस तरह नष्ट न करती। मैं क्या कहूँ, मुझे कहते शर्म मालूम होती है। कुँवर साहब के बारे में भी मैंने पूरा धोखा खाया। लोग सच कहते हैं, जितना अंधेर बड़े आदमियों के यहाँ होता है, उतना ग़रीबों के यहाँ नहीं। तुमने भी यह भेद अपनी मा से छिपा रक्खा।"

मालती उनका आशय समझ गई। उसका मुख लज्जा से लाल हो गया।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मालती, तूने यह बड़ा अन्याय किया, और मुझे बड़ी विपद् में डाल दिया। क्या यह रोग कुँवर साहब को जन्म से है ?"

मालती ने रक्तिम मुख से कहा—"नहीं।"

लेडी चंद्रप्रभा उत्तर सुनकर कुछ संतुष्ट हुईं। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"इस विवाह के लिये तुम्हारे बाबूजी का ज़रा भी मन न था। वह तो किसी ग़रीब के लड़के से विवाह करना चाहते थे। मेरी ही अक़्ल पर पत्थर पड गए थे, जो अपनी ज़िद से यह संबंध स्थिर किया। इसका फल अगर मुझे भोगना पड़ता, तो कोई बात न थी, मगर उसका दंड तो तुझे सहन करना पड़ेगा। अब इसका क्या उपाय है ?"

मालती ने शांत स्वर में कहा—"धैर्य के साथ अपने कर्म का भोग भोगना।"

लेडी चंद्रप्रभा चुप रहीं। फिर थोड़ी देर बाद सोचकर कहा—

"और, इसका उपाय अभी हो सकता है। तुम्हारे बाबूजी से कहकर उनका इलाज कराऊँगी। एक और बुरी ख़बर है।"

मालती ने जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—"वह क्या?"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"तुम्हारे ससुर कुँवर साहब को गद्दी के अधिकार से वंचित करना चाहते हैं, और उस अनूपकुमारी के लड़के को, जो यहाँ कालविन स्कूल में पढ़ता है, अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं।"

मालती ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, यह भी सत्य है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने रुष्ट होकर कहा—"ये सब बातें तो तुम्हें मालूम थीं, फिर आज तक कहा क्यों नहीं। तुम्हारा विवाह हुए तो लगभग एक साल हो गया। अगर सब बातें पहले से मालूम होतीं, तो अब तक कुछ-न-कुछ उपाय किया जाता। मालूम होता है, मा से प्रतिशोध लेने के लिये तूने अपना भेद नहीं बताया।" कहते-कहते उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

आँसुओं को पोंछकर उन्होंने कहा—"इधर मैंने तुम दोनो में कोई वैसा उत्साह नहीं देखा, जैसा ऐसी अवस्था में देखने को मिलता है। मैं इसका कारण जानने के लिये चिंतित थी। इन्हीं दिनों मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया, जिसमें इन सब बातों का ज़िक्र था, जो मैंने अभी तुमको बतलाई हैं। मैंने उन बातों की सत्यता जानने के लिये गुप्त रूप से रामसुख ड्योढ़ीदार को भेजा है। वही एक विश्वासी और चतुर व्यक्ति है। वह अनूपगढ़ गया, और वहाँ से सब बातों का पता लगाकर आया है। जब उस गुमनाम पत्र की सब बातें सत्य हो गईं, तो तुम्हारे पास आई हूँ। अभी तक मैंने तुम्हारे बाबूजी से कोई बात नहीं कही। तुम्हारा परामर्श लेकर मैं इस काम में हाथ डालना चाहती हूँ। समस्या बड़ी विकट है।"

मालती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लेडी चंद्रप्रभा कहने लगीं—"मालती, जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ किया है, उसका मुझे अफ़सोस है।"

मालती ने कहा—"आप वह पत्र तो दिखाइए, जो आपके पास आया था।"

लेडी चंद्रप्रभा ने एक लिफ़ाफ़ा मालती को दे दिया। वह उत्सुकता से उसे खोलकर पत्र पढ़ने लगी। पत्र इस प्रकार था—

"श्रीमतीजी,

आपने अपनी आयुष्मती पुत्री का विवाह-संबंध अनूपगढ़ के राजकुमार कामेश्वरप्रसादसिंह से किया है, किंतु अगर आप बुरा न मानें, तो मैं यह कहूँगा कि आपने उसका जीवन नष्ट कर दिया। प्रथम तो राजकुमार नपुंसक हैं, दूसरे वह शीघ्र ही गद्दी के अधिकार से वंचित कर दिए जायँगे। और उनके स्थान पर अनूपगढ़ के राज-सिंहासन पर वर्तमान राजा सूरजबख़्शसिंह की रखैल (अनूप-कुमारी) का पुत्र पृथ्वीसिंह आसीन होगा। अब आप ही कहिए, आपकी लड़की का जन्म नष्ट हुआ या नहीं?

"आप इन बातों की खोज करा लें। पहली बात की सत्यता तो आपको अपनी पुत्री से दरयाफ़्त करने पर प्रकट हो जायगी। दूसरी बात के निर्णय के लिये आप कोई चतुर व्यक्ति अनूपगढ़ भेज दें, वह आपको सत्य हाल बता देगा।

"जब आपको सब बातें सत्य प्रमाणित हो जायँ, और आपकी इच्छा हो कि अपनी पुत्री को सुखी करें, तो कृपया मुझे निम्न-लिखित पते पर लिखें, मैं सेवा में उपस्थित होऊँगा। मैं इन दोनो त्रुटियों को दूर करने की शक्ति रखता हूँ। राजकुमार कामेश्वरप्रसादसिंह का रोग एक दिन में नष्ट कर सकता हूँ, और उन्हें गद्दी पर आसीन

करा सकता हूँ। विचार तथा परामर्श करने के पश्चात् लिखें।

आपका एक तुच्छ सेवक

पत्र-व्यवहार का पता—

रामलाल, केयर ऑफ़ पोस्टमास्टर लखनऊ"

मालती ने विचारते हुए कहा—"इस व्यक्ति को सब बातें मालूम हैं, यह अवश्य कोई क्षमताशाली व्यक्ति मालूम होता है। कहीं यह कोई जाल न हो। वह कह रहे थे कि उन्हें विष खिलाने का प्रयत्न हो रहा है, इसी भय से भागकर वह यहाँ आए थे। इस रामलाल-नामक व्यक्ति को तो बुलाना होगा। अम्मा, आप बाबूजी से सब हाल कहकर उनका भी परामर्श ले लें। आजकल ऐसे-ऐसे अनेक ठग भी मिलते हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"मैं भी इसी हैस-बैस में पड़ी हूँ। अभी जाकर तुम्हारे बाबूजी से सब हाल सविस्तर कहती हूँ, और वह जैसा कहेंगे, करूँगी।"

यह कहकर वह शीघ्रता से मालती के कमरे से चली गई।

मालती अनेकानेक विचारों में मग्न हो गई। उसके सामने एक नवीन आशा का प्रदीप प्रज्वलित हो उठा, जिसमें पुरानी मलिनता का अंधकार अपने आप धीरे-धीरे नष्ट होने लगा। उसने ठंडी निःश्वास के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र की ओर देखा। आज उसे उस चित्र में एक मनोमोहकता मालूम हुई। वह आश्चर्य से मुग्ध होकर उस चित्र की ओर देखने लगी। उसे नहीं मालूम हुआ कि यह परिवर्तन चित्र का नहीं, बल्कि उसके हृदय का है, जो आशा की क्षीण रेखा से घटित हुआ है। आशाओं और निराशाओं के बवंडर में थपेड़े खाता हुआ, हाय रे कमज़ोर मनुष्य! तेरी समग्र शक्तियों का विकास इसी निर्बलता में सन्निहित है।

मालती अपना भविष्य सोचने लगी।

१०

उस दिन मालती बड़ी प्रसन्न थी। डूबते हुए को एक तिनका मिल जाने से कुछ सहारा हो ही जाता है, और उसे तो अपने दोनो महान् रोगों की ओषधि मिलने की आशा बँध गई थी। जब उसे अपनी मा लेडी चंद्रप्रभा से मालूम हुआ कि उसके पिता ने उसी समय रामलाल-नामक व्यक्ति को बुलाने के लिये पत्र लिख दिया है, वह प्रसन्नता से फूली न समाई। उसने वह हाल कुँवर कामेश्वरप्रसाद से भी न कहा, क्योंकि वह अकस्मात्, सब ठीक हो जाने पर, उसका भेद प्रकट करना चाहती थी। शाम को उसने अपनी दोनो बहनों से सिनेमा चलने को कहा। उन्होंने कुँवर कामेश्वरप्रसाद से चलने की बहुत ज़िद की, परतु वह किसी प्रकार राज़ी नहीं हुए। उनके हृदय में कहीं जाने का उत्साह न था। मालती ने भी विशेष आग्रह नहीं किया, क्योकि वह आज अपना आनंद भंग करना नहीं चाहती थी। इसके अतिरिक्त वह, उनसे कुछ देर के लिये दूर रहकर, अपनी सुखमय कल्पना की ऊँची उड़ान में विहार करने के लिये लालायित थी। वह मन-ही-मन उस दिन की सुखद कल्पना में विभोर था, जब उसके पति पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजेंगे। एक चीण आशा को ज्योति ने उसकी तथा उसके विचारों की कायापलट कर दी थी। कुँवर कामेश्वरप्रसाद अपने को एकांत में पाकर अपना कर्तव्य विचारने लगे। वह सोचने लगे—"संसार में जब मेरा जन्म हुआ था, तब मेरे शुभागमन में अनूपगढ़ में घर-घर मंगलाचार हुआ

था, और उस दिन अनूपगढ़ का भावी स्वामी जानकर मेरा स्वागत हुआ था। मेरे दोनो हाथों की मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं। लोग अनुमान करते थे कि वे वैभव और ऐश्वर्य को दबाए हुए हैं। मेरे पिता इतना प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने पहलेपहल ख़बर देनेवाले को अमूल्य मोतियों की माला पुरस्कार में दी थी। न-मालूम कितने समारोह से कई दिनों तक उत्सव हुआ था।

"इसके बाद मैं ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा, त्यों-त्यों मेरे आदर और सम्मान में वृद्धि होती गई। मैं पिता की आँखों की ज्योति था, वह मुझे पल-भर के लिये अपने पास से जुदा न करते थे। वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब मै पढ़ने के लिये पहलेपहल स्कूल भेजा गया था। वह कई दिनों तक ख़ुद मोटर में मुझे बैठाकर स्कूल ले गए थे, और फिर अपने साथ ले आए थे। उन्हें किसी पर विश्वास न था। मेरे खाने-पीने का प्रबंध सदा अपने सामने कराते थे, और रात्रि में अपने साथ लेकर सोते थे। हाय! वे कैसे सुख और आनंद के दिन थे।

"न-मालूम कहाँ से पुच्छल तारा की भाँति अनूपकुमारी का उदय हुआ। मेरे सुखों का अंत हो गया, मेरे आदर की इतिश्री हो गई। जब उन्होंने मुझे कालविन स्कूल में भेजा था, तब उनके हृदय में उतना प्रेम नहीं था, जितना मैंने पहलेपहल उस दिन देखा था, जब मैं अपने शहर के स्कूल में भेजा गया था। इस बार तो केवल कर्तव्य पालन था, और वह भी दूर रहने से उत्तरोत्तर घटता ही गया। किंतु मा के प्रेम और सत्कार ने वह कमी किसी तरह पूरी कर दी थी। अम्मा ख़ुद उसी दुख से दुखी थीं, जिससे मैं था। पिताजी ने पुराने महल में आना बिलकुल बंद कर दिया था। मै छुट्टियों में घर जाता, किंतु उनके दर्शन न होते थे। अम्मा मुझे किसी भय से अनूपकुमारी के महल में जाने नहीं देती थीं। यदि

किसी दिन भाग्य-वश उनके दर्शन हो गए, तो केवल दो-एक प्रश्न पूछकर फिर चुप हो जाते थे, जैसे मैं कोई बेगाना होऊँ। मैं वह पीड़ा मन-ही-मन बरदाश्त करता।

"मैं इस निरादर सहने का अभ्यस्त हो गया था। अम्मा भी अनेक प्रकार से मेरे उद्विग्न मन को शांत करतीं, और सदैव पितृ-भक्त रहने का उपदेश देतीं। पृथ्वीसिंह के जन्म के पश्चात् वह मेरा अनादर तक करने लगे। अब असह्य हो उठा, किंतु चुप होकर सब सहना पड़ा। मेरे ख़र्च वग़ैरह में भी कमी होने लगी। मेरे साथी सभी ताल्लुक़ेदारों के लड़के थे, जिन्हें घर से ख़र्च करने के लिये अच्छी रक़में मिलती थीं। मैं उनमें सबसे बड़े ताल्लुक़ेदार का एकमात्र पुत्र था, किंतु उनके बराबर ख़र्च करने के लिये मेरे पास पैसा न था। इस विषय को लेकर वे मेरा मज़ाक़ उड़ाते, और मुझे सब सहन करना पड़ता था।

"जैसे-तैसे कालविन स्कूल से छुटकारा मिला। कॉलेज में प्रवेश किया। यहाँ की दुनिया निराली थी, किंतु यहाँ कुछ दम लेने का मौक़ा मिला। किसी तरह लस्टम-पस्टम मेरे दिन व्यतीत होने लगे। पिताजी का व्यवहार दिन-पर-दिन रूक्ष होता गया। अम्मा कभी-कभी मुझे सांत्वना देने के लिये कहतीं—"तू क्यों घबराता है, अनूपगढ़ की गद्दी पर तू ही एक दिन बैठेगा, और मैं राजमाता कहलाऊँगी। उस अधिकार से न कोई तुझे और न मुझे वंचित कर सकता है। एकमात्र इसी आशा की क्षीण रेखा उनके धैर्य का बाँध रोके रहती थी।

"इसी आशा को हृदय से लगाए हमारे दिन व्यतीत होने लगे। यौवन का आगम होने लगा, और हृदय में अनेक स्वर्ण-आशाएँ उदय होकर मेरे मन की कातरता हरने लगीं। मैं उमंगों के बोझ से दबा हुआ अपने दूसरे कष्टों को भूल गया। मेरे अवयवों में नए

जीवन का संचार होने लगा, और अंग-प्रत्यंग प्रदीप्त होकर, आकांक्षाओं के साथ हास्य-परिहास में लिप्त होकर विनोद करने लगे। मेरे विवाह के संबंध भी चारो ओर से आने लगे। मैं उनके समाचार सुनकर प्रसन्नता के साथ आशाओं के क़िले बनाने लगा। इसी समय मालती के साथ विवाह-संबध स्थिर हुआ। मैं इन्हें पहले ही से जानता था। मेरा प्रत्येक अवयव स्फूर्ति से उमँग उठा। मैं इससे प्रेम करने लगा, और तिलक आदि हो जाने पर तो मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जब मालती का अपना कहकर पुकार सकूँगा।

"यही समय था, जब अचानक यह वज्रपात मेरे ऊपर हुआ। एक दिन मुझे सहसा मालूम हुआ कि मैं पुरुषत्व-हीन हूँ। जिस शक्ति से मैं अभी तक ओत-प्रोत था, उसका सहसा अभाव कैसे हो गया। मैं ज्ञान-शून्य होकर इसका कारण विचारने लगा। यह भयानक शर्म की बात थी। किससे कहूँ? इधर कर्तव्य की पुकार, और उधर मालती का आकर्षण, उसके प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा! मैं कुछ स्थिर न कर सका। जीवन का वह काल कितना भयानक था।

"परंतु कर्तव्य की विजय हुई। मैंने पत्र द्वारा पिताजी को सब समाचार स्पष्ट लिख दिया, और मालती का जीवन नष्ट न करने का संकल्प किया। किंतु उनकी समझ में यह बात न आई, और मुझे नपुंसक कहने में अपनी मान-हानि समझने लगे। उन्होंने तो वही कहा और किया, जो अनूपकुमारी और बाबू मातादीन ने आदेश दिया। इस समय वह पूर्णतया उनके हाथ के खिलौने थे। मालती का जीवन बलिप्रदान करने के लिये वह सन्नद्ध हो गए। मुझमें इतना नैतिक साहस न था कि मैं उनका विरोध करूँ। इसके अतिरिक्त मालती के प्राप्त करने का लोभ इतना प्रबल था कि उसे संवरण करना मेरे लिये असंभव हो गया था। उस प्रतिरोध में

मेरा मन मुझे वारंवार डावाँडोल कर रहा था, यद्यपि मुझे यह विश्वास था कि मेरा रोग अधिक दिनों तक न रहेगा। मैं मालती को हाथ से खोने के लिये तैयार न था। अंत में मालती के साथ मेरा पाणिग्रहण हो गया।

पिताजी ने अपनी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये उसे भय-प्रदर्शन किया, और मेरा भेद प्रकट न करने की प्रतिज्ञा करवाई। इसमें अनूपकुमारी तथा बाबू मातादीन का स्वार्थ-साधन था, क्योंकि मेरा भेद मेरे ससुर पर प्रकट हो जाने से वह मेरा कुछ उपचार या कोई दूसरा उपाय करते। उनको उलटा-सीधा समझाकर वह मार्ग भी बंद कर दिया। यह कहावत कितनी सत्य है कि 'आपदाएँ कभी अकेले नहीं आतीं।'

"मालती ने मुझे अपराधी ठहराया, और मुझे उसका मौन तिरस्कार, मूक घृणा, तीव्र उपेक्षा सब सहन करना पड़ा। मैंने वह काम किया है, जिससे उसे जन्म-भर पछताना पड़ेगा। मैंने उसका स्त्रीत्व नष्ट कर दिया, उसके जीवन की आशाओं और उमंगों को पद-दलित कर दिया। उसका जीवन ही निरर्थक हो गया है। यह सब मेरे अपराध से घटित हुआ है। मैं ही इसका उत्तरदायी हूँ।

"मालती के सामने जब मैं आता हूँ, तो मेरा मस्तक शर्म से नीचा हो जाता है। मैं उससे प्रेम-प्रतिदान की आशा करता हूँ, और उसके लिये लालायित भी हूँ, मैं क्या इसके योग्य हूँ? उत्तर मिलेगा—नहीं। पुरुषत्व से हीन होकर मुझे क्या अधिकार था कि उसका मैं जीवन नष्ट करूँ। उसके संसार के समस्त सुखों पर मैंने पानी डाल दिया है, और फिर भी बेहयाई के साथ कहता हूँ कि मुझे प्यार करो। मैं कितना नीच हूँ, कितना स्वार्थी हूँ, कितना लोलुप हूँ, कितना बड़ा पिशाच हूँ।

"फिर भी उसके हृदय की महत्ता देखो। वह कितनी उच्च और

कितनी सहृदय है। उसने विना उफ़् के मेरे सब अत्याचारों को मौन होकर सहन किया है, और प्रतिदान में क्या दिया, अपना प्रेम, अपना आदर! जितनी उच्चता हृदय में उसका है, उतनी ही मेरे हृदय में पशुता। देवी और पिशाच का मिलन क्या इस जगत् में संभव है? मैं उसकी सहृदयता का अनुचित लाभ उठा रहा हूँ, जो मेरे मनुष्यत्व से बाहर है।

"अच्छा, यदि पश्चिम में ऐसी घटना घटित होती, तो क्या होता? इस भेद का पता चलने के दूसरे दिन ही अदालत में तलाक़ मिलने का दावा दायर हो जाता। वहाँ पति मेरी तरह यह प्रत्याशा कदापि न करता कि उसकी स्त्री उससे प्रेम करे। यह धींगाधींगी इसी हिंदू-समाज में देखने को मिलती है, जहाँ स्त्रियाँ ग़ुलाम हैं। मालती की निष्कृति का क्या उपाय है? आजन्म उसे अपनी दासता में बाँध रखना सर्वथा अन्याय है। इतने दिनों तक उसे कुढ़ाया, यही बहुत है। जैसे उसने मेरे प्रति अपना कर्तव्य-पालन किया और करती है, उसी प्रकार मेरा भी उसके प्रति कुछ कर्तव्य है।

"मैं जब उसे देखता हूँ, तब मेरे हृदय में एक हूक उठती है। उसके हास्य के पीछे एक करुण विषाद की छाया दिखाई पड़ती है, जो उसकी मूक वेदना का दूत बनकर मुझे परिताप की भीषण ज्वाला में निरंतर दग्ध करती रहती है।

"अपने वैवाहिक बंधन से उसे मुक्त करने का क्या उपाय है? तलाक़ के संबंध में कुछ विचार करना असंभव है। वह हमारे हिंदू-क़ानून में विहित नहीं माना गया है। तब केवल एक उपाय है, वह है आत्महत्या। अपने जीवन का अंत कर उसके जीवन का प्रारंभ करूँ। आजकल इस हिंदू-समाज में विधवा-विवाह धर्म-विहित हो गया है, और यत्र-तत्र होने भी लगे हैं। मालती का दूसरा विवाह इसी दशा में हो सकता है, और इसी उपाय द्वारा वह सुखी भी हो

सकती है। मैंने जब कभी इस समस्या पर विचार किया है, तो सदैव इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। आत्मघात के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय उसके छुटकारे का नहीं। तब मैं क्यों न आत्महत्या कर लूँ!

"इस संसार में मेरे लिये अब कौन-सा आकर्षण अवशेष है। पिता का सुख नहीं, राज्य की आशा नहीं, केवल एक माता का आकर्षण है। उस अभागिनी का मेरे मरने से सर्वस्व नष्ट हो जायगा। परंतु क्या करूँ, मेरे साथ उन्हें भी यह दुख भोगना पड़ेगा। मेरे-जैसे पापी को अपने गर्भ में रखने का प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद की आँखों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी।

थोड़ी देर बाद वह फिर कहने लगे—"क्या मालती मेरे मरण से सुखी होगी? हृदय को विश्वास तो नहीं होता। मैंने जब आज जाने को कहा, तो उसके नेत्रों में आँसू भर आए थे। वह मुझे अवश्य प्राणों से अधिक प्यार करती है। क्या वह मेरा वियोग सहन कर सकेगी? समय सब घावों को भरनेवाला है। कालांतर में यह घाव भी भर जायगा। यों तो कोई मनुष्य यदि शुक पालता है, और जब वह मरता है, तो उसे दुख होता है। इतने दिनों तक साथ रहने का कुछ प्रभाव तो पड़ेगा ही। किंतु इससे उसकी निष्कृति तो हो जायगी। उसे दुबारा विवाह करने का अवसर तो प्राप्त होगा, उसका नारी-जीवन तो सफल होगा। बस, अब इसी अंतिम उपाय का आज अवलंब करूँगा। अब यह दुख मुझसे सहन नहीं होता।

"मनुष्य एक क्षणिक आवेश में आत्मघात करता है। आवेश समाप्त हो जाने पर उस घातक इच्छा का भी अंत स्वतः हो जाता है। मैं इस समय उसी आवेश में हूँ। यदि विचार करूँगा, तो मन में कायरता उत्पन्न होगी, और ये विचार तिरोहित हो जायँगे,

साहस जवाब दे देगा। नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं अवश्य ही आज वह अपकर्म साधन करूँगा। मेरी मृत्यु से मेरे पिता का हर्ष होगा, उनकी एक बड़ी भारी आपदा टल जायगी, और मेरी प्राणोपम मालती भी सर्वथा सुखी होगी। मेरे पास इस समय उग्र विष है, जो अम्माजी अनूपकुमारी की ख़ास अलमारी से लाई थीं, और शायद जो मुझे ही देने के लिये तैयार हुआ था। इस समय भी वह मेरे पास मौजूद है। अंतिम अवलंब निश्चित करके इसे अपने पास छिपा रक्खा है। भगवान् की यही इच्छा है, उनकी इच्छा पूर्ण हो। अंतिम समय मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि वह मालती को सुखी करें।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अपना सूट-केस खोलकर वह शीशी निकाली, जिसे रानी श्यामकुँवरि अनूपकुमारी की अलमारी से निकाल लाई थीं। उन्होंने शीशे के गिलास में उसकी पाँच बूँदें डालकर पानी मिलाया, जिससे गिलास का सारा जल लाल हो गया। वह उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे। कुछ विचारकर उन्होंने शीघ्रता से एक काग़ज़ पर लिखा कि वह जान-बूझकर अपने होश-हवास में आत्मघात कर रहे हैं, जिसके लिये वही उत्तरदायी हैं, दूसरा नहीं। इस आशय की एक विज्ञप्ति लिखकर उसके नीचे अपना हस्ताक्षर कर दिया, और दूसरे क्षण वह गिलास उठाकर पी गए।

पीते ही उनकी नाड़ियों में तीव्र गति से रक्त-संचालन होने लगा। मस्तिष्क घूमने लगा। शरीर के तंतु खिंचने लगे। वह अपनी मृत्यु समीप जानकर पलँग पर लेट गए। उनकी आँखें बंद होने लगीं, और सिर बड़े वेग से चक्कर खाने लगा। वह ईश्वर का स्मरण करने लगे। दैव का विधान मुस्किराने लगा। वह अपने प्राण निकलने की प्रतीक्षा करने लगे।

---

## ११

मालती बड़े उत्साह से सिनेमा देखने गई थी, और वहाँ दूसरी सखियों से मिलाप हो जाने से वह शाम बड़े ही आनंद से व्यतीत हुई थी। उसी से संलग्न 'रेटोराँ' में एक छोटे भोज का प्रबंध हो गया था। हास्य तथा आमोद-प्रमोद से उत्फुल्ल वह लगभग दस बजे घर वापस आई।

उसकी बहनों ने आकर, लेडी चंद्रप्रभा को घेरकर सिनेमा का सब हाल विस्तार-पूर्वक कहना शुरू किया। मालती प्रसन्नता से उमँगती हुई अपने कमरे की ओर चली, और यह कहती गई कि वह भोजन नहीं करेगी।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"कुँवर साहब ने आज शाम को ही कहला दिया था कि वह भोजन नहीं करेंगे। अब फिर पूछ लेना, शायद अब तबियत अच्छी हो गई हो।"

कामिनी ने पूछा—"देख आऊँ, अब जीजा साहब की कैसी तबियत है?"

लेडी चंद्रप्रभा ने भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"नहीं, तुम्हारे जाने की ज़रूरत नहीं। मालती आप पूछ लेगी। तुम लोग अब जाकर सो जाओ।"

मालती ने कमरे का द्वार बंद पाया। वह ज़रा ठहरकर सुनने लगी कि भीतर क्या हो रहा है। उसे कुछ सुनाई न दिया, केवल घोर निस्तब्धता छाई हुई थी।

मालती द्वार खोलकर अंदर प्रविष्ट हुई। सामने शय्या पर

कुँवर कामेश्वरप्रसाद सिर से पैर तक ओढ़े हुए लेटे थे। उसने भीतर से द्वार बंद कर लिया।

उन्हें असमय सोते देखकर उसका हास्य-स्रोत स्तंभित हो गया। वह धीमे पदों से आगे बढ़कर उनके सिरहाने खड़ी होकर उनकी निःश्वासों का शब्द सुनने लगी।

उसने मधुर कंठ से पुकारा—"क्या सो गए?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मालती ने उनके सिर से शाल हटाते हुए कहा—"आज अभी कैसे सो गए। कैसी तबियत है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद की आँखें अंगारों की भाँति लाल थीं, और चेहरा भी रक्त-वर्ण था। मालती को देखते ही वह उन्मत्त की भाँति उठकर बैठ गए, और मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

मालती उनके गले से लिपट गई, और पूछा—"क्यों, कैसी तबियत है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उस आवेश के साथ, जो कामुक पुरुष में होता है, जब वह अतृप्त वासना और लालसा से सराबोर होता है, मालती को अपने हृदय से लगा लिया। इसके पहले मालती ने वैसा आवेश कभी नहीं अनुभव किया था। वह बड़ी अधीरता से उसे हृदय से लगाकर उसके कपोलों पर तप्त प्रेम-चिह्न अंकित करने लगे। मालती उनमें यह परिवर्तन देखकर चकित रह गई।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अधीरता से कहा—"प्रियतमे, आज मेरा नवजन्म हुआ है। मैं आज सहसा अपनी खोई हुई शक्ति पा गया। आज तुम मुझे कितनी सुंदरी, कितनी आकर्षक देख पड़ती हो। मेरे मन में भावों का सिंधु उमड़ रहा है। मैं उसी में बहा जा रहा हूँ। प्राणेश्वरी, मालती, मेरे हृदय की पूज्य देवी!"

यह कहकर उन्होंने उत्कट काम-वासना से पीड़ित होकर उसे

अपने हृदय से लगा लिया। वह भी सिमिटकर उनके हृदय से लग गई। स्त्री को पुरुष की वासनाओं की असलियत समझने में देर नहीं लगती। वह आनंद से उमँगकर उनके प्रेम-चिह्नों का प्रत्युत्तर देने लगी। वास्तव में यही उसकी सुहाग-रात था।

उसे यह ध्यान न रहा कि वह इस परिवर्तन का कारण पूछे। वह तो स्वयं अधीर होकर, उनके प्रवाह में अपनी सुध-बुध खोकर बहने लगी। उसकी आँखों से अदम्य वासना की मलिनता निकलने लगी।

* * *

मालती और कुँवर कामेश्वरप्रसाद को जब होश आया, तो उस समय रात्रि ज़्यादा बीत गई थी। कमरे की दीवार-घड़ी मधुर गति के साथ दो बजा रही थी। मालती की आँखें, जो आज के पहले कुँवर कामेश्वरप्रसाद के सामने संकुचित न होती थीं, आज अपने आप उनकी ज्योति से छिपने का प्रयत्न करती दिखलाई देती थीं। उन्होंने उसे पुनः आलिंगन-पाश में बद्ध करते हुए कहा—"प्रियतमे, आज ईश्वर मुझ पर सदय हुआ है। भगवान् जब प्रसन्न होता है, तब विष भी अमृत हो जाता है।"

मालती ने लज्जा से उनके वक्षःस्थल में मुख छिपाते हुए कहा—"यह कैसे ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं क्या बताऊँ, मैं स्वयं हैरान हूँ। दरअसल बात यह है कि तुम्हारे प्रेम ने मुझे मरने नहीं दिया।"

मालती ने चकित होते हुए कहा—"आत्महत्या ! यह क्या कह रहे हो ?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"हाँ, मैंने आज शाम को विष-पान किया था।"

मालती उसी अस्त-व्यस्त अवस्था में उठकर बैठ गई, और विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

उन्होंने हँसते हुए कहा—"हाँ, प्रिये, यह सत्य है।"

मालती ने क्रुद्ध होकर पूछा—"यह क्यों?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने उत्तर दिया—"हिंदू-समाज में तलाक़ की प्रथा न होने से तुम्हारी निष्कृति का द्वार न था। उसका केवल एक उपाय था कि मैं आत्मघात करके तुम्हें मुक्त कर दूँ।"

मालती ने आवेग के साथ उनका मुख पकड़ते हुए कहा—"तुम्हें मेरी क़सम है, ऐसी बातें मत कहो।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"मैं तो पिछली घटना वर्णन करता हूँ। आज एकांत पाकर कई प्रकार के विचार उठने लगे, और अंत में ऊबकर मैंने आत्मघात करना ही निश्चित किया। मैं तुम्हें बतला चुका हूँ कि अम्माजी एक दिन अनूपकुमारी के महल में गई थीं, तो उन्हें कुछ पुराने पत्र और एक छोटी शीशी मिली थी, जिसमें लाल रंग की कोई दवा थी। हमने उस दवा की परीक्षा की थी, आधा बूँद एक दिन कुत्ते को खिलाया था। कुत्ता बड़ी देर तक छटपटाया, और फिर पागल हो गया, किंतु मरा नहीं। पागल होने पर उसे मरवा डाला गया था। वही दवा मेरे पास थी। मैंने उसकी पाँच बूँदें पानी के साथ पी लीं, और उस मेज़ पर इसी मज़मून का एक पत्र भी लिखकर रख दिया, जिसमें कोई दूसरा विपद् में न पड़े। वह दवा खाकर मैं लेट गया। मेरी नाड़ियों में अपूर्व शक्ति दौड़ने लगी—स्फूर्ति से मैं व्याकुल होने लगा। अवश होकर लेट गया, और तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगा।"

मालती ने मधुर मुस्कान-सहित उनके हृदय में अपना मुख छिपाते हुए कहा—"यह भगवान् की कृपा है। वास्तव में आज का दिन

मेरे परम सौभाग्य का था। आज सुबह अम्माजी को तुम्हारा सब भेद अनायास प्रकट हो गया था।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने भय-विह्वल स्वर में पूछा—"उन्हें कैसे मालूम हुआ?"

मालती ने उनके पास खिसकते हुए कहा—"उनके पास एक गुमनाम पत्र आया था, जिसमें अनूपगढ़ के सब रहस्यों का विस्तार-पूर्वक वर्णन था, और यह भी लिखा था कि रामलाल-नामक व्यक्ति तुम्हारा रोग नष्ट कर सकता और अनूपगढ़ का राज्य भी दिला सकता है। आज बाबूजी ने उसे बुलाने के लिये पत्र लिख दिया है। शायद कल वह किसी समय आ जाय।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"तो क्या बाबूजी को भी सब हाल मालूम हो गया?"

मालती ने ससंकोच कहा—"हाँ, किंतु अब कोई हर्ज नहीं। इसी भय से मैंने तुमसे इसका कोई ज़िक्र नहीं किया था। उस पत्र से मुझे यह आशा हो गई थी कि तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे, क्योंकि उसके लिखनेवाले की क्षमता का पता चलता था। मैं आनंद में विभोर सिनेमा देखने गई, और जब वापस आई, तो........"

इसके आगे वह न कह सकी। उसने उनके वक्षःस्थल में अपना मुख छिपा लिया।

कुँवर कामेश्वर ने हँसकर पूछा—"कहो, रुकती क्यों हो?"

मालती की तप्त निःश्वासें उनके हृदय में पहुँचकर उनकी वासना को प्रदीप्त कर रही थीं। प्रेम का सहचर मीनकेतन अपने पुष्प-धन्वा में फूलों का बाण चढ़ाने लगा। उन्होंने व्याकुल होकर, उसे पूर्ण शक्ति से दबाकर हृदय से लगा लिया। कामदेव अपने

दो शिकारों को असहाय देखकर विजय से मुस्किराने लगा। उसके हृदय में दया का संचार नहीं हुआ, वह लक्ष्य साधन करके पुनः उनकी ओर देखने लगा।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने अस्फुट स्वर में कहा—"अच्छा, यह तो कहो कि तुम मुझे कितना प्यार करती हो?"

मालती ने अर्ध-प्रस्फुटित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"अपने हृदय से पूछो, वही इसका उत्तर देगा।"

उन्होंने हँसकर पुनः उसे हृदय से लगा लिया, और उसके सिर को सप्रेम सूँघने लगे।

कामदेव पुनः मुस्किराने लगा।

मालती ने प्रत्युत्तर में प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"अच्छा, तुम बतलाओ कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने जड़ित कंठ से कहा—"अपनी अम्मा से पूछो।"

दोनो हँसकर पुनः एक दूसरे से आबद्ध हो गए।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने पूछा—"जैसे मैंने विष-पान तो कर ही लिया था, अगर कदाचित् मर जाता, तो तुम क्या करतीं?"

मालती ने अभिमान से दूर हटते हुए कहा—"जाओ, फिर तुम वैसी हृदय-विदारक बातें करते हो।"

उन्होंने उसे अपनी ओर घसीटते हुए कहा—"नहीं, तुम्हें बत-लाना होगा।"

मालती ने रुक्ष स्वर में कहा—"मैं भी आत्मघात कर लेती। क्या तुम समझते हो कि मैं दूसरा विवाह करती। असंभव; नितांत असंभव। हिंदू-रमणियाँ कभी दुबारा पाणिग्रहण नहीं करतीं। उनका विवाह जन्म में केवल एक बार होता है। हिंदू-धर्म की

पवित्रता कभी नष्ट नहीं होगी। जब तक संसार में एक भी हिंदू-स्त्री जीवित है, तब तक उसकी उच्चता नष्ट नहीं होगी।"

उसके मुख पर दैवी ज्योति की छाया पड़कर उसे भुवनमोहन सौंदर्य प्रदान करने लगी। कुँवर कामेश्वरप्रसाद उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखने लगे।

---

## १२

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से आगंतुक की ओर देखते हुए कहा—"मुझे याद आता है, मैंने आपको कहीं देखा है।"

नवागंतुक व्यक्ति ने उत्तर दिया—"जी हाँ, कमतरीन पहले अनूपगढ़ का दीवान था।

सर रामकृष्ण अपनी कुर्सी से उछल पड़े—"क्या आपका नाम बाबू मातादीनसहाय है?"

बाबू मातादीनसहाय ने उत्तर दिया—"जी हाँ, कमतरीन को इसी नाम से पुकारते हैं।'

सर रामकृष्ण ने कर्कश कंठ से कहा—"आपके आने का क्या कारण है?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"आपने मुझे स्मरण किया था, इसलिये हाज़िर हुआ हूँ। इसके अतिरिक्त मैं हुज़ूर के घराने का नमकहलाल नौकर हूँ।"

सर रामकृष्ण ने अपने मन का भाव दबाते हुए कहा—"यह तो आपको मालूम होगा, मैं ख़ुशामद-पसंद नहीं हूँ। मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने कब आपको बुलाया है।"

बाबू मातादीन ने उनका पत्र, जो उन्होंने रामलाल-नामक व्यक्ति को लिखा था, उनके सामने रखते हुए कहा—"यह देखिए, आज अभी दो घंटे पहले मुझे मिला है। यह आपके हस्ताक्षर हैं। हाँ, यदि मेरी आवश्यकता हुज़ूर को न हो, तो मैं माफ़ी चाहता और वापस जाता हूँ।"

यह कहकर वह चलने के लिये उद्यत हुए।

सर रामकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा—"ठहरिए। यह क्या मामला है। मैंने रामलाल-नामक व्यक्ति को बुलाया था, न कि आपको। उसके नाम का पत्र आपको कैसे मिल गया?"

बाबू मातादीन ने आत्मसंतुष्टि से हँसते हुए कहा—"यदि कमतरीन का नाम ही रामलाल हो, तब तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मनुष्य कभी-कभी अपने उपनाम रख लिया करते हैं।"

यह कहकर उन्होंने हँसती हुई आँखों से उनकी ओर देखा।

सर रामकृष्ण की भृकुटियाँ चढ़ गईं। वह किसी मनुष्य को अपने ऊपर हावी होते नहीं देख सकते थे। उनकी आत्मा इसके विरुद्ध आंदोलन करने लगती। बाबू मातादीन के अलाप का तरीक़ा किसी क़दर बे-अदब और बे-तकल्लुफ़ाना था, जिसे वह बरदाश्त न कर सके।

उन्होंने भ्रू कुंचित करके कहा—"तो इसके यह अर्थ हैं कि आप ही ने वह पत्र लिखा था, जो लेडी साहब के पते से भेजा था?"

बाबू मातादीन ने अपना सिर नत करके उत्तर दिया—"जी हाँ, वह गुस्ताख़ी तो इसी कमतरीन ने की है, और महज़ पुराने नमक का ख़याल करके।"

सर रामकृष्ण ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा—"आप बार-बार किस नमक का ज़िक्र करते हैं। जहाँ तक मुझे याद है, आप कभी मेरे पास नौकर नहीं रहे।"

बाबू मातादीन ने कहा—"हुज़ूर का फ़रमाना दुरुस्त है। यह सौभाग्य तो कभी इस हक़ीर को नहीं मिला, लेकिन हुज़ूर की साहबज़ादी का तो पुश्तैनी नौकर हूँ। जब उनकी शादी अनूपगढ़ के राजघराने में हुई है, तो मैं उनका नौकर हो चुका।"

सर रामकृष्ण ने कुछ सोचते हुए कहा—"हूँ।"

उन्हें न बोलते देखकर बाबू मातादीन ने कहा—"इधर कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनसे हुज़ूर को मेरे ऊपर सहसा विश्वास नहीं हो सकता, क्योंकि उसका संबंध मुझसे जोड़ा जाता है। कई लोगों का और विशेषकर कुँवर साहब का यह यक़ीन है कि मेरी साज़िश से चंद घटनाएँ अनूपगढ़ में घटी हैं, मसलन् अनूपकुमारी-नामक एक रखैल स्त्री के पुत्र पृथ्वीसिंह को गद्दी पर बैठाने का यत्न करना और रानी साहबा को वहाँ से हटा देना तथा उनकी साहबज़ादियों का विवाह न कराना; परंतु मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मेरा उनसे अणु-मात्र संबंध न था। वह सब अनूपकुमारी की करामात है। मैं अपनी क्षीण आवाज़ से बराबर इसका प्रतिरोध करता था, मगर मेरी कभी सुनी नहीं गई। यह तो आप जानते ही हैं कि नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। मैंने जब इसका बहुत विरोध किया, और राजा साहब ने मेरी बात पर कुछ ध्यान न दिया, तो मेरे पास केवल एक उपाय था, वह था इस्तीफ़ा पेश करना। मैंने अपना इस्तीफ़ा पेश कर दिया, और लखनऊ आकर रहने लगा। लेकिन पुराने नमक ने जोश मारा, और पुश्तैनी नौकर होने से अपने मालिक का अमंगल न देख सका, इसलिये हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर हुआ कि मेरे योग्य यदि कोई सेवा हो, तो उसे अंजाम दूँ।"

सर रामकृष्ण उनका निःस्वार्थ भाव देखकर विचार में पड़ गए।

बाबू मातादीन उन्हें मौन देखकर, कुछ विह्वल होकर उनकी ओर देखने लगे। उनकी बातों का क्या असर हुआ, यह उनका चेहरा देखकर वह न जान सके। उनका मुख भाव-हीन और शांत था।

थोड़ी देर बाद बाबू मातादीन ने कहा—"हुज़ूर, इतमीनान रक्खें कि कमतरीन कभी धोखा न देगा। मैं केवल अपने मालिकों की

ख़िदमत करने के लिये हाज़िर हुआ हूँ। मेरा इस समय अनूपगढ़ से कोई संबंध नहीं। मुझे इस्तीफ़ा दिए हुए लगभग एक महीना हो गया। अगर यक़ीन न हो, तो आप दरियाफ़्त करा लें। यदि हुज़ूर को मेरी सहायता लेने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, तो मैं जाने की इजाज़त चाहता हूँ। नाहक़ आपको परेशान किया, इसके लिये माफ़ी चाहता हूँ। जब ज़रूरत हो, याद फ़रमावें। मैं हमेशा सेवा के लिये तैयार हूँ।"

यह कह, बाबू मातादीन उठकर जाने के लिये उद्यत हुए।

सर रामकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा—"जो शख़्स नमक-अदाएगी के भाव से कोई सेवा करने आता है, वह कभी इतनी शीघ्रता से विदा होने के लिये उत्सुक नहीं होता।"

उनके तीव्र कटाक्ष ने बाबू मातादीन को बैठने के लिये बाध्य कर दिया। वह चुपचाप उनकी ओर देखने लगे।

सर रामकृष्ण ने कहा—"आपसे मिलकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। आप-जैसे नमकहलाल नौकरों के भरोसे ही हम लोगों का काम चलता है, और ऐसे व्यक्ति कितने होंगे?"

बाबू मातादीन विचार में पड़ गए कि उनके कथन में व्यंग्य कितने परिमाण में मिश्रित है।

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपने कब इस्तीफ़ा दिया था?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"पहले अर्ज़ कर चुका हूँ कि लगभग एक महीना हुआ।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"हाँ, याद आया। आपका पत्र मिलने पर लेडी साहबा ने अपना कोई ख़ास ख़िदमतगार भेजकर कुछ बातों का पता लगाया था। हाँ, उसमें यह ज़िक्र आया था कि आपको अनूपकुमारी ने हटा दिया है।"

उन्होंने इतने सहज भाव से कहा था कि बाबू मातादीन गिरफ़्त

में आ गए। वह चौंक पड़े, कुछ शंकित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। फिर कहा—"जी नहीं, यह सत्य नहीं, वह मुझे क्या निकालेगी, मैंने खुद छोड़ दिया था। मैं अपने मालिकों पर अत्याचार होते कभी न देख सकता था, इसलिये इस्तीफ़ा पेश किया था। दूसरे, असली बात तो यह है कि मैं पगड़ी की नौकरी कर सकता हूँ, लहँगे की नहीं।"

सर रामकृष्ण ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप दरअसल जवाँमर्द हैं।"

बाबू मातादीन पुनः सोचने लगे कि यह कहीं व्यंग्य तो

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आजकल रानी साहबा कहाँ हैं?"

बाबू मातादीन ने कहा—"वह अपने मायके गई हैं। राजा किशोरसिंह, कुँवर साहब के मामा साहब, उनकी ओर से साहबज़ादियों की शादी के लिये पैरवी कर रहे हैं, यह तो आपको मालूम ही होगा?"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"हाँ, उसकी निस्बत काग़ज़ात चल रहे हैं। क्या आप इन दिनों उनसे मिलने गए थे?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं नहीं गया। उनके विचार मेरी तरफ़ से अच्छे नहीं।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"क्यों? आप तो उनके ख़ैरख़्वाह हैं।"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"मैंने प्रथम ही अर्ज़ कर दिया है कि लोगों ने, ख़ासकर मेरे दुश्मनों ने, मेरे संबंध में अनूपकुमारी से कहकर उनकी तरफ़ से बदगुमानी पैदा करा दी है, जिसे अभी हाल में दूर करने का मेरे पास कोई साधन न था।"

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से पूछा—"वही बदगुमानी तो

कुँवर साहब के दिल में भी हो सकती है, और शायद आपने उसका ज़िक्र भी किया था ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"बेशक, मगर मेरे पास अपनी नेकनीयती का सुबूत देने का मसाला है। मैं आपको यक़ीन दिला सकता हूँ कि मेरी नीयत साफ़ है, और मैं वास्तव में उनका नमक-हलाल नौकर हूँ।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आख़िर वह किस तरह ?"

बाबू मातादीन ने मुस्किराते हुए कहा—"कुँवर साहब की बीमारी दूर करके।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपको उनकी बीमारी के बारे में वाक़फ़ियत है ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी हाँ, अच्छी तरह। मैं उस वक़्त तो अनूपगढ़ का दीवान ही था।"

सर रामकृष्ण ने उनकी बात पूरी करते हुए कहा—"जब वह बीमार पड़े थे। क्यों ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी हाँ।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"तब तो इसके यह अर्थ हैं कि वह पैदा-यशी बीमार नहीं।"

बाबू मातादीन ने सरलता-पूर्वक कहा—"जी नहीं, वह पैदायशी बीमार नहीं। वह तो अचानक ऐसे हो गए थे।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"इसकी आपको अच्छी तरह वाक़फ़ियत है ?"

बाबू मातादीन ने ज़ोर देकर कहा—"जी हाँ, अच्छी तरह।"

उन्होंने तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए पूछा—"तब तो यह अनुमान किया जा सकता है कि किसी के कुचक्र ने उन्हें ऐसा बना दिया है। मुमकिन है, अनूपकुमारी का इसमें हाथ हो ?"

वह बाबू मातादीन के हृदय का हाल जानने के लिये प्रयत्न करने लगे।

क्षण-मात्र के लिये उनके मुख पर कुछ परिवर्तन के चिह्न प्रस्फुटित हुए, जो पुनः उनकी खसखसी दाढ़ी की ओट में छिप गए।

बाबू मातादीन ने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—"यह मैं ठीक से नहीं कह सकता। अनूपकुमारी का इसमें शायद ही हाथ हो।" फिर थोड़ी देर बाद कहा—"हो भी सकता है। कौन जाने।"

सर रामकृष्ण ने सरलता से कहा—"नहीं, ज़रूर उसका हाथ है, आपको मालूम न होगा।"

बाबू मातादीन प्रतिवाद न कर सके। उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा—"होगा। जानि न जाय निसाचर-माया।"

कहते-कहते उनकी आँखें कुछ नत हो गईं।

सर रामकृष्ण ने कहा—"अच्छा, आपके पास कुँवर साहब को अच्छा करने के लिये कौन इलाज है। क्या मैं उसे जान सकता हूँ?"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न होकर कहा—"बेशक, मैं वह दवा बनाकर पहले ख़ुद खाकर आपको दिखा दूँगा, बाद में कुँवर साहब को खिलाऊँगा। यदि आप कहेंगे, तो किसी दूसरे जानवर को खिलाकर उसका असर दिखा दूँगा। वह दवा इस क़दर तेज़ है कि अगर उसको किसी छोटे जानवर, मसलन् कुत्ता वग़ैरह, को खिलाई जाय, तो वह पागल हो जायगा, और यदि बड़े जानवर, बैल-गाय वग़ैरह, को खिलाई जाय, तो उस पर पूरा असर होगा।"

सर रामकृष्ण ने विस्मित स्वर में पूछा—"वह दवा इस क़दर तेज़ है?"

बाबू मातादीन ने सगर्व कहा—"जी हाँ, उसकी सिर्फ़ एक ख़ूराक उन्हें हमेशा के लिये अच्छा करने को काफ़ी होगी।"

सर रामकृष्ण ने और चकित होते हुए कहा—"सिर्फ़ एक ख़ूराक़ !"

बाबू मातादीन ने उत्साह-पूर्वक हँसते हुए कहा—"जी हाँ, केवल एक ख़ूराक़ उनका रोग जड़ से नाश कर देने में समर्थ है। यदि ऐसा न होता, तो मैं हरगिज़ हुज़ूर की क़दमबोसी के लिये हाज़िर न होता।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आपने पहले भी यह दवा बनाकर किसी को खाने के लिये दी है, या इसकी आजमाइश की है ?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी नहीं, यह तो अभी-अभी मैंने तैयार की है। इसका नुसख़ा अभी हाल में मुझे मिला है। मेरे पास बुज़ुर्गों की हस्त-लिखित किताबें हैं, जिन्हें पढ़ते-पढ़ते अचानक मिल गया।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"जब आपने आज़माया नहीं, तब इसकी तारीफ़ कैसे करते हैं ?"

बाबू मातादीन ने कुछ सोचते हुए कहा—"उसी किताब में इसके गुण लिखे हुए हैं। अभी जो दवा बनाई है, उसे एक कुत्ते और बैल को खिलाकर उसका प्रभाव देखा था। वह उस किताब के अनुसार मिल गया है।"

सर रामकृष्ण ने मंद मुस्कान-सहित पूछा—"क्या मैं भी उसे खा सकता हूँ ?"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न मुख से कहा—"जी हाँ, आप भी खा सकते हैं। यदि कोई वृद्ध पुरुष या स्त्री खाय, तो वे इतने कामोन्मत्त हो जायँगे कि उन्हें अपना यौवन याद आ जायगा। यह वह चीज़ है, जिसे दिल्ली के बादशाह और लखनऊ के नवाब खाया करते थे। यह नुसख़ा मेरे बुज़ुर्गों को शाही हकीमों से मिला है। वह कायापलट करनेवाली चीज़ है।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"यदि ऐसी है, तो ज़रूर नायाब है। क्या उसे अपने साथ लाए हैं?"

बाबू मातादीन ने अपनी जेब से दवा की शीशी निकालते हुए कहा—"जी हाँ, लाया हूँ। आप पहले इसकी किसी पर आज़-माइश कर लें, तब कुँवर साहब को खिलाएँ, ताकि किसी तरह का अंदेशा आपके मन में न रहे। क्या बताऊँ, अगर उस वक्त यह नुसख़ा हाथ लग गया होता, जब कुँवर साहब अनूपगढ़ में थे, तो यह नौबत ही क्यों आती।"

सर रामकृष्ण ने शीशी अपनी मेज़ की दराज़ में रखते हुए कहा—"आज़माइश करने की क्या ज़रूरत है, जब आप कहते हैं, तब ठीक ही होगा। आप अनूपगढ़ के नमकहलाल नौकर हैं, कुछ छल न करेंगे। और, अगर छल-कपट भी करेंगे, तो मेरे पास वह शक्ति है, जो आपको इस पृथ्वी पर कहीं छिपने न देगी।"

बाबू मातादीन ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता के साथ कहा—"हुज़ूर का इक़बाल ऐसा ही है। मैं बचकर कहाँ जाऊँगा। हुज़ूर के हाथ लंबे हैं। यह सब जान-बूझकर ही मैं दवा दे रहा हूँ। शक और शुबहा की गुंजाइश क्यों रक्खें, पहले किसी पर आज़माकर देख लें। इसे हर कोई खा सकता है।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"अच्छा, आप इसका पुरस्कार क्या चाहते हैं?"

बाबू मातादीन ने संतोष के साथ मुस्किराकर कहा—"इसका क्या पुरस्कार है। यह तो मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने स्वामी की यथाशक्ति सेवा करूँ। हाँ, जब यह अनूपगढ़ की गद्दी पर विराजें, उस समय जो हुक्म फ़रमाएँगे, उसकी तामील बसरोचश्म करूँगा।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"अरे हाँ, तो वह बात बिलकुल भूल गया था। आप अनूपगढ़ की गद्दी बहाल रखने में क्या सहायता दे

सकते हैं ?" क़ानूनन् तो अभी तक कुँवर साहब ही गद्दी के मालिक हैं, और उस वक़्त तक रहेंगे, जब तक ऐसा कोई क़ानून न बन जाय कि रखैल के लड़के भी गद्दी के हक़दार हो सकते हैं, और उन्हें किसी कुचक्र में फँसाकर मरवा न डाला जाय। आज तक गद्दी का हक़दार बड़ा पुत्र होता आया है, और होगा। न राजा साहब में यह ताक़त देखता हूँ कि वह अपने प्रभाव से ऐसा क़ानून बनवा सकें। हाँ, ज़नानख़ाने में वह डींग ज़रूर मार सकते हैं। मुझे उसकी तनिक चिंता नहीं। मेरे एक इशारे से उनका बना-बनाया खेल चौपट हो जायगा। मैं अभी इंतज़ार कर रहा हूँ; जब पर बहुत फैलने लगेंगे, तो काटना पड़ेगा। जब तक फुदकते हैं, तब तक मेरी कोई हानि नहीं। उन्हें ख़ुश हो लेने दो, और स्त्रियों को ख़ुश कर लेने दो।"

बाबू मातादीन ने ख़ुशामद से हँसते हुए कहा—"हुज़ूर का फ़रमाना बहुत दुरुस्त है। ये तो हवाई क़िले हैं। मैं भी सब जानता हूँ। इसी तरह मैंने भी एक दिन कहा था, तो वह बहुत नाराज़ हुए थे। ख़ैर मैं अनूपकुमारी को पामाल करने में सहायता दे सकता हूँ। मुझे कुछ ऐसी बातें मालूम हैं, जिनसे अनूपकुमारी का गर्व खंडन हो सकता है।"

सर रामकृष्ण ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"मेरे सुनने में तो ऐसा आया है कि अनूपकुमारी आपकी बहन है। माफ़ कीजिएगा।"

बाबू मातादीन ने हँसकर कहा—"दुनिया यही कहती है, किंतु दरअसल यह बात नहीं। आपने भी विश्वास कर लिया ? मैं क्या इतना बेइज़्ज़त-आबरू का हूँ, जो अपनी बहन को उनकी नज़र करूँगा। वह तो एक बदमाश औरत है, जिसने अपने पति का ख़ून किया है। सौभाग्य से उसके पति की जीवन-रक्षा करने में मैं समर्थ हो गया हूँ। उसका पति अभी तक जीवित है। इधर कई साल से

उसे देखा नहीं, किंतु मुझे विश्वास है, वह अभी तक जीवित है, और मैं उसे खोज निकालूँगा। इसमें आपकी सहायता की आवश्यकता है। आप पुलिस द्वारा उसकी तलाश करावें, और पता लग जाने पर अनूपकुमारी के ख़िलाफ़ हत्या के प्रयत्न में गिरफ़्तार कराकर, मुक़द्दमा चलावें। उसके ख़िलाफ़ मैं अकाट्य प्रमाण दूँगा।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"आप जो कुछ सहायता चाहेंगे, दूँगा। आप उसके पति का हुलिया वग़ैरह लिखा दें। मैं ख़ास तौर पर उसकी तलाश कराने का प्रबंध करा दूँगा। समय पर पुलिस द्वारा अनूपकुमारी की गिरफ़्तारी का वारंट भी निकल जायगा, और मुक़द्दमा भी दायर हो जायगा।"

बाबू मातादीन ने अपनी प्रसन्नता छिपाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु उनकी आँखों की ज्योति ने उसे प्रकट कर ही दिया।

दूसरे दिन हाज़िर होने के लिये कहकर वह बिदा हो गए।

उनके जाने के बाद सर रामकृष्ण ने उस शीशी को मेज़ की दराज़ से निकालते हुए कहा—"आदमी बहुत चालाक मालूम होता है। इसे अभी हाथ में रखना ठीक होगा। 'कण्टकेनैवकण्टकम्'-वाली नीति चरितार्थ करना होगा।"

वह पुनः विचार में निमग्न हो गए।

---

## १३

पंडित मनमोहननाथ का जलयान प्रशांत महासागर के दक्षिणी भाग को बड़ी शीघ्रता से पार करने का प्रयत्न कर रहा था। कैप्टेन अल्फ्रेड जैकब्स शीघ्रातिशीघ्र वालपेराइज़ो पहुँचने की चेष्टा में निरत थे। फ़िज़ी-द्वीप-समूह के सुवा-नामक बंदर पर वह केवल उतनी देर ठहरे, जितनी देर में राधा अपनी मा को लेकर उस जहाज़ पर सवार हुई।

आभा और गंगा को समवयस्क मित्र मिल जाने से अति प्रसन्नता हुई, और दोनो का सूनापन मिट गया। डॉक्टर नील-कंठ को बार-बार वे दिन याद आ रहे थे, जब उन्होंने आभा की मा के जीवित काल में इँगलैंड की यात्रा की थी। वह रह-रहकर उन दिनों की तुलना आजकल के समय से करते थे। यद्यपि उन दिनों वियोग का असह्य दुख भोगना पड़ा था, किंतु उनमें मिलन की आशा थी, उसका उत्साह था, और तृप्ति थी, किंतु इस समय परिस्थिति बिलकुल प्रतिकूल थी। अब जन्म-भर के लिये वियोग था, जिसमें केवल नैराश्य की कातरता के अतिरिक्त हृदय को मुग्ध रखनेवाला कोई दूसरा सूत्र न था। आजकल आभा की मा की स्मृति इतनी सजग हो गई थी कि वह ज्यों-ज्यों उसके भूलने का यत्न करते, त्यों-त्यों वह परिष्कृत होकर उनके विचारों को अपने भावों से ओतप्रोत करती। वह अक्सर एकांत में ही अपने दिन व्यतीत करते थे।

भारतेंदु की दिनचर्या भी एक प्रकार से एकांत में ही संपन्न होती थी। आभा और अमीलिया को लेकर वह सदैव अपने विचारों से तर्क-वितर्क करते रहते। कर्तव्य और मोह उनके हृदय-प्रांगण में

नंगी तलवारें लेकर एक दूसरे का गला काटने के लिये अविराम गति से युद्ध कर रहे थे। वह अपने कमरे से बहुत कम निकलते। और, अगर कभी बाहर आते, तो कैप्टेन जेकब्स के पास जाकर अमीलिया के विषय में बातें करते, या डॉक्टर नीलकंठ के समीप बैठकर समुद्री ज्ञान के विषय में आलोचना करते। किंतु न तो डॉक्टर नीलकंठ को कुछ उत्साह था, और न भारतेंदु को। दो-एक बात होने के बाद वह विषय स्वतः बंद हो जाया करता था।

आभा और गंगा कुछ दिनों तक तो समुद्री बीमारी से रुग्ण रहीं। पीछे अच्छी होने पर उनके विचार-विनिमय का कोई रुचिकर विषय न मिलता था। गंगा के लिये समुद्र-यात्रा बिलकुल नई थी, फिर भी उसका मन निरंतर जल-ही-जल देखते देखते ऊब गया था। जब कभी जहाज़ किसी बंदर पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये ठहरता, तो उसका मन पृथ्वी और हरे वृक्ष देखकर उत्फुल्ल हो जाता। वहाँ वह कुछ दिन ठहरकर उस हरियाली को देखना चाहती, किंतु कैप्टेन जेकब्स, आवश्यकता पूरी हो जाने पर, एक क्षण अधिक न ठहरते थे। पंडित मनमोहननाथ का आदेश था कि उन लोगों को बहुत शीघ्र वालपेराइज़ो पहुँचावें। गंगा मन-ही-मन उनकी जल्दबाज़ी पर कुढ़कर रह जाती, और उन लोगों के साथ-साथ इस बुढ़ापे में जल-यात्रा का शौक़ उठने के लिये अपने को बारंबार धिक्कारती।

आभा के सोचने के लिये कुछ न था। वह अनेक सुखमय कल्पनाओं में ऊँची उड़ रही थी। कभी-कभी मालती के लिये वह व्याकुल हो उठती। उसे उसने कई स्थान से पत्र डाले, और उनमें यह संकेत बराबर रहता था कि उसका क्या कर्तव्य है। भारतेंदु से मिलने तथा बातचीत करने में उसे कुछ लज्जा लगती थी। हिंदू-घरों का संस्कार उसकी प्रत्येक तंतुओं में समाविष्ट था, जो

पश्चिमीय शिक्षा तथा वैसी स्वतंत्रता पाकर भी अपनी असलियत क़ायम किए था। यद्यपि डॉक्टर नीलकंठ स्वतंत्र विचारों के पुरुष थे, और न उन्हें उन दोनो के हास्य-विनोद में कुछ आपत्ति थी, परंतु आभा स्वयं लज्जा से संकुचित रहती, और खुल्लमखुल्ला भारतेंदु से मिलना तथा आलाप करना पसंद न करती थी।

जब फ़िज़ी में राधा और उसकी मा यशोदा से मिलाप हुआ, तो आभा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। राधा भी उसे पाकर प्रसन्न हुई। कैप्टेन जैकब्स ने राधा के बारे में सब हाल संक्षेप में सबसे कह दिया। माधवी के संबंध में कुछ बातें आभा और भारतेंदु को मालूम हुईं। उसका पूर्व इतिहास आभा और राधा के आलाप के लिये एक रोचक विषय हो गया।

राधा की मा यशोदा एक प्रौढ़ रमणी थी, जिसकी आयु लगभग पैंतालीस वर्ष की थी। उसका रूप-लावण्य तो अवश्य नष्ट हो चुका था, किंतु अब भी उसके ध्वंसावशेष बाक़ी थे, जिन्हें देखकर कोई भी कह सकता था कि वह कभी एक निर्दोष सुंदरी होगी। उसका जीवन उत्कर्ष और पतन, सफलता और विफलता, आशा और निराशा की करुण कहानी थी, और इनके सब चिह्न उसके मुरझाए, मलिन मुख पर वर्तमान थे। क्रूर विधाता ने उसे परिस्थितियों के बीच में डालकर क्या-क्या अद्भुत खेल दिखाए थे, जिनका इतिहास एक अकथनीय वेदना की पीड़ा था। उन सबके आघात-चिह्न उसके शरीर की झुर्रियों से स्पष्ट मालूम होते थे। आँखों की ज्योति, जो कभी उमंगों के प्रवाह से आवृत्त होगी, अब निष्प्रभ होकर कोटरों में घुसी जा रही थी। गंगा के हृदय में यशोदा को देखकर अपने आप दया और करुणा का भाव जग उठा, जिसने उसे उसके समीप कुछ विशेष रूप से कर दिया। सहृदयता और सहानुभूति घनिष्ठता की जननी है।

दोपहर का समय था। मकर का सूर्य पृथ्वी के उस विभाग को बड़ी प्रखरता से प्रकाशित कर रहा था, जैसे उत्तरीय भाग में वृष या मिथुन-राशि पर स्थित होकर पृथ्वी को दग्ध करता है। यद्यपि प्रशांत सागर कभी उष्ण नहीं रहता, किंतु उस दिन कुछ विशेष रूप से गरम था। समुद्र का जल उबल रहा था, और जहाज़ उत्तुंग लहरों के ऊपर ऐसी शीघ्रता से जा रहा था, जैसे कोई अग्नि की ज्वाला से बचने के लिये आतुर होकर भाग रहा हो। आभा अपने कैबिन में बैठी हुई मालती को पत्र लिख रही थी, किंतु उष्णता से उसके विचार उसके हृदय में भ्रमित होकर रह जाते थे। उसने ऊबकर क़लम रख दी, और कुछ लिखने के लिये सोचने लगी।

राधा ने आकर झाँका। आभा ने उसकी छाया देखकर कहा—"कौन, राधा! अंदर क्यों नहीं आती?"

राधा ने कमरे के अंदर आकर कहा—"आप कुछ काम कर रही थीं, इसलिये उसमें दख़ल देना अच्छा नहीं मालूम हुआ। मैं अभी जाकर अम्मा और चाचीजी के पास बैठती हूँ, आप पत्र लिख लें। लिखने के बाद आवाज़ दे लीजिएगा।

हिंदू रीति के अनुसार राधा भी गंगा को चाची कहती थी।

आभा ने मुस्किराकर कहा—"मैं लिख चुकी। अब लिखने में मन नहीं लगता। कल लिख दूँगी। अभी तक तो मैं मालती को कई पत्र लिख चुकी हूँ, लेकिन उत्तर एक का भी नहीं मिला।"

राधा ने हँसकर कहा—"वह आपको उत्तर किस पते से भेजें? वालपेराइज़ो में आपको उनके पत्र मिलेंगे। आपने उन्हें कहाँ का पता दिया है?"

आभा ने कहा—"सिंगापुर में मैंने कैप्टेन से पूछकर वालपेराइज़ो का पता दिया है। तुमने कभी इधर के समुद्र में यात्रा की है?"

राधा ने उत्तर दिया—"इधर दक्षिणी अमेरिका में मैं कभी नहीं

गई। हाँ, फ़िज़ी के आस-पास जो छोटे-छोटे द्वीप हैं, सब देखे हुए हैं। इन टापुओं का जल-वायु अत्यंत बलवर्धक और स्वास्थ्य-प्रद है। इधर आपको भारतीय मज़दूर और ग़ुलाम बहुतायत से देखने को मिलेंगे।"

आभा ने करुण स्वर में कहा—"हमारे देश के भाग्य में ग़ुलामी करना लिखा है। हम देश के अंदर भी ग़ुलाम हैं और बाहर भी। न-मालूम कब इस ग़ुलामी का अंत होगा।"

राधा ने कुछ संकोच के साथ कहा—"जब भाई भाई के प्रति स्नेह करेगा, और एकता में आबद्ध होकर ग़ुलामी की ज़ंजीर तोड़ने का प्रयत्न होगा।"

आभा ने मलिन स्वर में कहा—"यह कोई नई बात तो नहीं है।"

राधा ने क्षीण मुस्किराहट के साथ कहा—"जब तक साम्यवाद का प्रचार न होगा, तब तक भारत की क्या, संसार को ग़ुलामी का अंत न होगा।"

आभा ने संतुष्ट होकर कहा—"हाँ, अब अवश्य कुछ सत्य मालूम होता है।"

राधा ने हँसती हुई आँखों से कहा—"आपके ससुरजी तो पूर्ण साम्यवादी हैं।"

आभा के नेत्र नत हो गए, और कपोल रक्तिम।

राधा मंद-मंद मुस्किराने लगी। थोड़ी देर बाद कहा—"उन्होंने तो अपनी सब संपत्ति इसी विचार में पड़कर साम्यवादी संस्था को दान करने का विचार किया है। उनका-जैसा महापुरुष होना असंभव है।"

आभा का हृदय गौरव से विकंपित होने लगा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

राधा फिर कहने लगी—"इधर उनका नाम बहुत विख्यात है। वह पहले इस देश में मज़दूर होकर आए थे, और भाग्य से उन्होंने इतनी अगाध संपत्ति उपार्जन की कि इधर के प्रदेशों में धन-कुबेर कहे जाते हैं। आपने फ़िज़ी में उनका मकान नहीं देखा। ऐसा विशाल भवन तो राजा-महाराजाओं का भी नहीं होता। उन्होंने इधर भारतीय मज़दूरों की दशा में अनेक सुधार कराए हैं, और अधिकार भी दिलाए हैं। इतना सब होने पर वह बड़े दयालु भी हैं। मेरी कहानी सुनकर इतने दुखी हुए थे, जैसे कोई पिता होता है, और माधवी को तो उन्होंने अपनी संतान ही समझ रक्खा है।"

आभा ने पूछा—"माधवी की कितनी आयु होगी?"

राधा ने उत्तर दिया—"यही कोई सोलह-सत्रह वर्ष की। उस बेचारी को बड़ी-बड़ी मुसीबतें सहनी पड़ी है, किंतु है वह भाग्यशालिनी। एकमात्र उसी के भाग्य से मेरी रक्षा हुई है। उस दिन तूफ़ान में डीपोवाले जहाज़ के सारे आरोही डूब गए, जहाज़ भी टुकड़े-टुकड़े होकर समुद्र-तल में डूब गया। आख़ीर में हम पाँच आदमी किसी प्रकार निकल भागे, किंतु उसमें से तीन फिर भी डूब गए, और बच गईं केवल हम दो। दूसरे दिन पंडितजी ने हमारी रक्षा की। वह भारत से फ़िज़ी जा रहे थे, रास्ते में माधवी के भाग्य से मिल गए। मैं तो अपनी रक्षा का कारण उसी को समझती हूँ। उसे देखकर जिनकी-जिनकी नीयत ख़राब हुई, वे सब डूब गए। केवल मैंने उसकी कुछ थोड़ी-सी सहायता की थी, इसलिये मैं बच गई। किंतु विधाता ने उसे भी पागल कर रक्खा है। दैव का विधान कुछ समझ में नहीं आता।"

आभा ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या माधवी पागल हो गई?"

राधा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, डॉक्टर तो उसे पागल ही कहते हैं।"

आभा ने उत्सुकता से पूछा—"यह कैसे ?"

राधा कहने लगी—"माधवी अद्भुत सुंदरी है। उसे डीपोवाले न-मालूम कैसे बहकाकर ले आए। उनकी ज़बानी सुना था कि वे उसे कानपुर के पास किसी स्टेशन से लाए थे। मैं उन दिनों कानपुर के डीपो में काम करती थी। उसकी संसार से अनभिज्ञता देखकर मेरे मन में बड़ी दया उत्पन्न हुई, और उन डीपोवालों के हाथ से उसकी रक्षा की। जहाज़ में आकर कप्तान और हमारे दल के मुखिया (एडमंड हिक्स) ने उसे भ्रष्ट करने का विचार किया। उसका नतीजा यह हुआ कि जहाज़ डूब गया, वह डूब गया और उसका द " डूब गया। डीपोवाले जहाज़ में माधवी के न-मालूम किस तरह चोट लगी कि वह तीन-चार दिन तक बेहोश रही। सिंगापुर का एक मुसलमान डॉक्टर उसे होश में तो लाया, लेकिन उसका कहना है कि वह पागल हो गई है। मुझे भी कुछ ऐसा ही मालूम होता है। वह मुझे भी नहीं पहचानती, और पिछली बातें सब भूल गई है।"

आभा अति विस्मय के साथ उसकी कहानी सुन रही थी। उसने पूछा—"क्या माधवी भी दक्षिणी अमेरिका चली गई है, या फ़िज़ी में है ?"

राधा ने जवाब दिया—"अमीलिया ने तो मुझे यही लिखा था कि माधवी भी उनके साथ जा रही थी। पंडितजी ज़रूर उसे अपने साथ ले गए होंगे। उसे वह बहुत स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। यह विश्वास नहीं होता कि वह उसे अकेले छोड़ गए हैं। मैं तो अपने घर चली गई थी, क्योंकि अम्मा बहुत बीमार थीं, इसलिये उनके साथ नहीं गई। जहाँ तक ख़याल है, वह ज़रूर गई होंगी।"

आभा ने पूछा—"यह अमीलिया कौन है ?"

राधा ने प्रश्न-भरी दृष्टि से कहा—"क्या आप अमीलिया को नहीं जानतीं ?"

आभा ने उत्तर दिया—"नहीं। मैंने आज के पहले उसका कभी नाम नहीं सुना।"

राधा ने जवाब दिया—"अमीलिया इसी जहाज़ के कप्तान की कन्या है।"

आभा ने पूछा—"क्या मिस्टर अल्फ्रेड जैकब्स की लड़की है? वह कितनी बड़ी है?"

राधा ने उत्तर दिया—"हाँ, मिस्टर जैकब्स की लड़की है। वह होगी लगभग बाईस वर्ष की। बड़ी सुंदर और दयालु चित्त की है। उसके मन में बड़ाई-छुटाई का कोई भाव नहीं। यहाँ के द्वीप-समूह में जितने अँगरेज़ हैं, वे सब अपने को लाट साहब समझते हैं, कालों की कोई क़दर नहीं करते, किंतु उसका दिल दूध की तरह निर्मल है। वह कालों को गोरों से ज़्यादा चाहती है। वह विशुद्ध हिंदी बोलती है। पहले बहुत दिनों तक वह पंडितजी के यहाँ रही। वह सेवा-शुश्रूषा करने में बड़ी चतुर है। पहले एक बार तुम्हारे भावी पति को अपने सेवा-बल से मौत के मुँह से बचा चुकी है। तब से पंडितजी उसकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं, और उसे साम्यवादी-आश्रम का प्रबंधक बनाया है। वह इतनी सरल स्वभाव की है कि जब आप उससे मिलेंगी, तो आपको मालूम होगा, और आप उसे अपनी बहन की तरह प्यार करेंगी।"

आभा ने पूछा—"उसकी माता क्या जीवित नहीं?"

राधा ने कहा—"एक बार मैंने उससे पूछा था, तो उसने यही कहा था कि उसकी माता का देहांत लड़कपन में हो गया था। भाई वग़ैरह कोई भी नहीं। वह अपने पिता की अकेली संतान है। मा के मरने के बाद वह कुछ दिनों तक आस्ट्रेलिया में पढ़ती रही। बाद में पंडितजी के पास आकर रहने लगी, और कुछ दिनों तक वहीं रही, फिर आस्ट्रेलिया चली गई। बाद में आज कई साल से

वह अपने पिता के साथ जहाज़ पर ही रहती है। अब जब से माधवी बीमार है, तब से उसकी सेवा का भार उठा लिया है, और पंडितजी के साथ रहती है।"

आभा ने सुनकर एक दीर्घ निःश्वास ली, और फिर उसने उठते हुए राधा से कहा—"आओ, चाची के पास चलकर उनकी बातें सुनें।"

राधा के साथ वह भी गंगा की कैबिन की ओर गई।

---

## १४

सांध्य दिवाकर की लाल रश्मियाँ पश्चिम के आकाश में शेष रह गई थीं, जिनकी लालिमा नील रत्नाकर के हरित जल की आभा से मिश्रित होकर भारतेंदु को मोहित करने का प्रयत्न करने लगी, किंतु उनके हृदय की मलिनता तथा उद्वेग किसी तरह कम न हुआ। वह डेक पर खड़े होकर सूर्यास्त देख रहे थे, किंतु जब उन्हें शांति न मिली, तो वह वहीं एक कुर्सी पर बैठ गए। पूर्व दिशा की कालिमा की तरह उनकी चिंताएँ भी घनीभूत होकर उनके मन में उथल-पुथल मचाने लगीं।

वह सोचने लगे—"मेरा कर्तव्य मुझे पुकारकर बारंबार कह रहा है कि अपने किए हुए पाप का प्रायश्चित्त करो। मैं इस समय तक एक पुत्र का पिता होता, और वह भी आज पाँच या छ वर्ष का होता, परंतु उसे मैंने ही मरवा डाला। उसकी हत्या का उत्तरदायी तो मैं ही हूँ, अमीलिया नहीं। अमीलिया को जो कष्ट हुआ, उसका ज़िम्मेवार भी मैं हूँ। मैंने जो यह महान् पाप किया है, उसके भार से बराबर दबा जा रहा हूँ। मेरी आत्मा को बड़ी वेदना मिल रही है, और ज्यों-ज्यों उसे दबाने का प्रयत्न करता हूँ, वह बढ़ती जाती है। आज कई महीनों से अपनी अंतरात्मा से युद्ध कर रहा हूँ, मगर अभी तक किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता।

"एक तरफ़ तो आभा है, और एक ओर अमीलिया। आभा कितनी सरल-हृदय है, और उसका प्रेम मनुष्य के लिये आशीर्वाद है। उसे छोड़ने की कल्पना-मात्र से मेरा मन व्याकुल होकर रुदन करने लगता है, और इधर कर्तव्य की पुकार हृदय में वृश्चिक-दंश

की पीड़ा करती है। इसका न तो कोई उपाय दिखाई देता है, और न इसका कभी अंत ही मिलता है।

"आभा के प्रति मेरा क्या कर्तव्य हो सकता है? जब उसे मेरी प्रवंचना का सब हाल मालूम होगा, तो उसके मन में मेरे प्रति क्या भाव उत्पन्न होंगे। उसका मन मेरे प्रति घृणा से भर जायगा। अभी उसी दिन वह पुरुष-जाति की कुटिलता के बारे में अपने उद्गार प्रकट कर रही थी। जब उसे मेरे पापमय जीवन का वृत्तांत सविस्तर मालूम होगा, तो वे उद्गार दृढ़ हो जायँगे।

"क्या अमीलिया उससे सब हाल कह देगी? विश्वास तो नहीं होता। उसकी सहन-शक्ति देखकर विचार तो यही होता है कि वह वे सब बातें अपने ही तक रक्खेगी। यदि कदाचित् कह भी दे, तो निस्संदेह मैं आभा के सामने उज्ज्वल मुख से नहीं आ सकता। उसके साथ विवाह की इच्छा भी नहीं कर सकता। अमीलिया मुझे क्षमा करेगी, और मेरा जीवन नष्ट न करेगी।

"हाय! मैं कितना स्वार्थी और लोलुप हो गया हूँ। मैं यह कहता हूँ कि अमीलिया मेरा जीवन नष्ट न करेगी, किंतु मैंने उसके साथ क्या किया है। उसके मन की आशाओं को, उसके स्वर्गीय प्रेम को कुचल दिया है, और अपना स्वार्थ-साधन कर उसे ठुकरा दिया है। क्या यह मेरा मनुष्योचित कर्म है। पिताजी को अगर यह मालूम हो, तो वह मेरा मुँह भी देखना पसंद न करेंगे। मैं कितना नीच और स्वार्थी हो गया हूँ।

"मुझे आभा की आशा त्यागनी पड़ेगी। मुझे उचित है कि मैं अमीलिया के प्रति अपना कर्तव्य पालन करूँ। वह हिंदू होने के लिये तैयार थी, और अगर अभी कहूँगा, तो वह तुरंत तैयार हो जायगी। कैप्टेन जैकब्स भी कोई आपत्ति न करेंगे। उस दिन बात-बात में उन्होंने कहा था कि वह उसके किसी काम में

हस्तक्षेप करके दुखी नहीं करना चाहते। यदि अमीलिया कहेगी कि वह हिंदू होना चाहती है, तो वह कहेंगे—'तेरी मर्ज़ी, हो जा।' वह कोई रुकावट नहीं डालेंगे। तब मुझे वही करना उचित है। अमीलिया के साथ विवाह करके उसे सुखी करने में ही मेरे पाप का प्रायश्चित्त होगा, और उसी समय यह वृश्चिक-दंशन की अविराम पीड़ा नष्ट होगी। इस सुख-स्वप्न के मोह का अंत करना पड़ेगा, नहीं तो यह मेरा अंत कर देगा।

"आभा को सुनकर बड़ी पीड़ा होगी। वह कल्पनाओं के प्रासाद बना रही है, मेरे इनकार करने से वे सब भूमिसात् हो जायँगे। उसका जीवन ही शायद विपद् में पड़ जाय, क्योंकि उसका कोमल हृदय इतना विकट धक्का बरदाश्त न कर सकेगा। अमीलिया द्वारा सुनने से तो यही अच्छा है कि मैं स्वयं सब हाल कहकर उसका सुख-स्वप्न भंग कर दूँ। मैंने डॉक्टर साहब से कहा था कि पिताजी सब संपत्ति साम्यवादी आश्रम को दे देंगे, तो उनका भाव देखकर कुछ आशा हुई थी कि शायद वह आभा की रुचि दूसरी ओर मोड़ने का प्रयत्न करेंगे। परंतु आभा का प्रेम मेरे प्रति घटने की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है, और मैं भी उसकी ओर आकर्षित होता जाता हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे यह समस्या सुलझाऊँ?

"वालपेराइज़ो दिन-पर-दिन समीप आता जा रहा है। कल रात को या परसों सुबह हम लोग पहुँच जायँगे। पिताजी ने हमारे ब्यूनेसबोका तक पहुँचने का प्रबंध कर रक्खा होगा, और शायद वह वालपेराइज़ो में स्वयं आएँ। उनके साथ अमीलिया भी निश्चय आएगी। अमीलिया और आभा से परिचय होगा ही। उस समय अगर उसने सब हाल कहकर वैसी चेतावनी दी, जैसे मुझे पत्र में लिखकर दी थी, तो तुरंत ही सर्वनाश हो जायगा। मैं क्या उसके सामने अपने अपराध से इनकार कर सकता हूँ?

"आभा से सब हाल कहने में ही मेरा कल्याण है। वहाँ पहुँच-कर ऐसी भीषण चोट हृदय में लगने की अपेक्षा यहीं सब हाल कह देना उचित है। अमीलिया को ग्रहण करने में मेरा और आभा का कल्याण है। मैं आभा को यद्यपि प्राणों से अधिक चाहता हूँ, फिर भी उसकी आशा छोड़ने में उसका और मेरा कल्याण है।"

इसी समय घूमती-घूमती आभा भी आकर उनके पास खड़ी हो गई। संध्या की श्यामली छटा प्रस्फुटित होकर संसार को अंधकार में निमज्जित करने का प्रयत्न कर रही थी। आभा की चिंतित मुद्रा देख-कर भारतेंदु आशंका से काँप उठे। उन्होंने उठकर आभा का स्वा-गत किया, और कहा—"आप आज चिंतित क्यों दिखाई देतीहैं ?"

आभा ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं, मैं चिंतित तो नहीं हूँ। आपका भ्रम है।"

भारतेंदु ने धड़कते हुए हृदय से कहा—"यदि मेरा भ्रम है, तो ठीक है। परंतु...."

आभा ने पूछा—"परंतु क्या ?"

भारतेंदु ने जवाब दिया—"परंतु मुझे विश्वास नहीं होता।"

आभा ने मुस्किराते हुए पूछा—"क्यों विश्वास नहीं होता ? मैं आपसे क्यों झूठ बोलूँगी।"

भारतेंदु ने उत्तर में कहा—"हृदय का घाव हृदय को तुरंत मालूम हो जाता है।"

आभा ने हँसकर कहा—"मुझे नहीं मालूम था कि आप हृदय के विचारों को पढ़ सकते हैं।"

भारतेंदु ने संकुचित होते हुए कहा—"आप विश्वास नहीं करतीं।"

आभा ने उत्तर दिया—"यह तो मैंने कभी नहीं कहा कि मैं आपके कथन पर अविश्वास करती हूँ।"

भारतेंदु चुप होकर आकाश में उदय होते हुए तारों की ओर देखने लगे।

भारतेंदु ने थोड़ी देर बाद पूछा—"मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।"

आभा ने सरलता-पूर्वक कहा—"पूछिए, मैं उसका उत्तर दूँगी। विश्वास रखिए, मैं आपको सत्य उत्तर दूँगी।"

भारतेंदु को पूछने का साहस न हुआ। वह कुछ सोचने लगे।

आभा ने मुस्किराकर कहा—"मैं भी आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ।"

भारतेंदु ने धड़कते हुए हृदय से कहा—"पूछिए।"

आभा ने कहा—"पहले आप पूछिए, फिर मैं प्रश्न करूँगी। जब आपने पहले मुझसे प्रश्न किया है, तो वस्तुतः मैं पहले उसका जवाब दूँगी। आपके प्रश्न का उत्तर देने के बाद मैं प्रश्न करूँगी।"

भारतेंदु ने कहा—"अच्छा, मैं कोई प्रश्न नहीं करना चाहता।"

आभा ने कहा—"यह तो ठीक नहीं। छलने का प्रयत्न अच्छा नहीं।"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"आपको ही प्रथम प्रश्न करना होगा।"

आभा ने कहा—"अच्छा, यदि आपकी यही इच्छा है, तो बतलाइए, अमीलिया कौन है?"

भारतेंदु सत्य ही सिहर उठे। उनके मुख का वर्ण श्वेत, चूने की भाँति, हो गया, किंतु निशा की कालिमा ने उसे छिपा लिया। वह भय-विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

आभा ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"आपने शायद मेरा प्रश्न समझा नहीं। मैंने पूछा है, अमीलिया कौन है? आज बात-चीत में राधा ने बताया कि वह माधवी की सेवा करती है, और

महत् हृदय की अनुपम सुंदरी है। क्या आप उसे जानते हैं?"

भारतेंदु ने बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"हाँ, मैं उसे जानता हूँ, और अच्छी तरह जानता हूँ। राधा का कहना वास्तव में सत्य है। वह सत्य ही एक देवी है, जो इस पृथ्वी पर कर्म-वश अवतीर्ण हुई है। वह कैप्टेन जैकब्स की पुत्री है, और एक विदुषी रमणी-रत्न है।"

आभा ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"आपने कभी उसका ज़िक्र नहीं किया।"

भारतेंदु ने साहस एकत्र करते हुए कहा—"समय आने पर उसका ज़िक्र करता।"

आभा को उनके स्वर में कुछ विषाद की झंकार दिखाई दी। उसने भयभीत होकर पूछा—"क्या आपकी तबियत कुछ ख़राब है?"

भारतेंदु ने कहा—"नहीं। अब मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

आभा ने कहा—"अच्छा, कहिए।"

भारतेंदु ने अत्यंत उत्सुकता से कहा—"यह तो आपको मालूम है कि हम दोनो विवाह-सूत्र में शीघ्र ही बँधनेवाले हैं, किंतु इसके पूर्व यह आवश्यक है कि एक दूसरे की कमज़ोरियाँ जान लें, जिसमें जीवन में आगे चलकर लज्जित न होना पड़े।"

आभा ने शंकित हृदय से कहा—"मैं नहीं जानती कि हमारे जीवन में ऐसी कौन बात है, जिसे हम लोग नहीं जानते!"

भारतेंदु ने कहा—"यह ठीक है, किंतु फिर भी मुझे बहुत कुछ कहना है।"

आभा ने विह्वलता के साथ कहा—"कहिए। मै सब सुनने को तैयार हूँ।"

भारतेंदु ने पूछा—"पहले बतलाइए, आप मुझसे कितना प्रेम करती हैं?"

आभा ने रुक्ष स्वर में कहा—"हिंदू-स्त्रियाँ विवाह के पहले प्रेम करना नहीं जानतीं। उनका प्रेम तो विवाह होने के बाद आरंभ होता है।"

भारतेंदु के हृदय में उसकी रुक्षता ने शीघ्र वेदना पैदा कर दी। आशा के विपरीत उत्तर मिलना अवश्य दुःखदायी होता है।

भारतेंदु ने उस पीडा को दबाते हुए कहा—"यह ठीक है। मैं आपसे स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि मैं आपके योग्य नहीं। आप-जैसे उच्च-हृदय रमणी को मैं अपने साथ पाप-पंक में घसीटकर आपका जीवन नष्ट करना नहीं चाहता। हमारे वाल्दैन ने यह बड़ी भारी भूल की है, जो हम दोनो को विवाह-सूत्र में बाँधना चाहते हैं। मैं आपसे विवाह नहीं कर सकता। इससे ज़्यादा मैं कुछ कह भी नहीं सकता।"

वह वहाँ अधिक न ठहर सके। वेग से अपने कैबिन की ओर चलकर अदृश्य हो गए। आभा स्तंभित होकर उनकी ओर देखती रह गई।

रजनी की कालिमा फैलकर अवनि और अंबर को ढकती हुई नील-रत्नाकर के उस पार जा रही थी, जहाँ से प्रकाश बिदा हो रहा था।

---

# १५

अनूपकुमारी का दबदबा, बाबू मातादीन के जाने के साथ ही, ऐसा जमा कि राज्य के सभी नौकर भय से शंकित हो गए। रियासतें कुचक्र, षड्यंत्र, चुग़ली, दग़ाबाज़ी, जालसाज़ी आदि सभी दुर्गुणों की जन्मदात्री होती हैं। एक दूसरे की बुराई कर, नौकर, अहलकार, कारकुन, सभो प्रधान व्यक्ति के प्रिय बनकर अपना घर भरने के लिये उत्सुक होते हैं। सब लोग राजा के ख़ैरख़्वाह बनकर अपना-अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश करते हैं, और यदि उन्हें सफलता नहीं मिलती, तो राजा की बुराई करके अपना गुबार निकालते है। इसीलिये देशी राजा हमेशा नौकरों के आश्रित रहते हैं, और उनकी बुराई तथा बदनामी भी बड़ी जल्दी फैल जाती है। पारस्परिक द्वेष के कारण वे कभी आंतरिक सद्भाव से नहीं रह सकते, और विद्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित कर प्रजा और राजा दोनो का अकल्याण साधन करने में निरत रहते हैं।

बाबू मातादीन के हट जाने से कितनों के घर में घृत के दीपक जलाए गए, और कितनों के घर में अंधकार ही रक्खा गया। नए दीवान ठाकुर कुशलपालसिंह अभी हाल ही में इँगलैंड से वापस आए थे, और रियासतों के कुचक्र से सर्वथा अनभिज्ञ थे। राजा के अहलकारों ने उन्हें बहुत जल्द बेवक़ूफ़ बना दिया, और अपना घर द्विगुणित उत्साह से भरने लगे। राजा सूरजबख़्शसिंह ने उन्हें केवल इस गुण पर अपना दीवान नियत किया था कि वह अँगरेज़ अफ़सरों से मिलने में भयभीत न होते थे, क्योंकि कई वर्षों तक

इँगलैंड में रहने से उनकी हिम्मत खुल गई थी। बाक़ी दूसरे काम करने की चतुरता उनमें न थी।

इधर राज-संचालन की बागडोर पूर्ण रूप से अनूपकुमारी के हाथ में आ गई थी। सरकारी ख़ज़ाना भी उसके पास आ गया था, और कुल अमला का वेतन उसी के आदेशानुसार दिया जाता था। कितने ही नौकर हटा दिए गए थे, और सब ओर से ख़र्च कम करने का प्रयत्न हो रहा था। हाथियों तथा घोड़ों का ख़र्च फ़िज़ूल समझकर क़तई हटा दिया गया, और सवारी के लिये तीन मोटरें ले ली गईं, जिनमें से दो तो अनूपकुमारी के ख़ास इस्तेमाल के लिये थीं, बाक़ी एक कभी दीवान साहब तथा कभी राजा साहब के काम आती थी।

अनूपकुमारी ने पृथ्वीसिंह को कालविन स्कूल से बुला लिया था। उसे पढ़ाने के लिये अनूपगढ़ में ही प्रबंध किया गया। वह उसे अपने पास, अपनी आँखों के समक्ष, रखने में अपनी भलाई समझती थी, जिससे राजा सूरजबख़्शसिंह का प्रेम उस पर कम न होने पाए। कस्तूरी आदि अनेक पुरानी दासियाँ निकाल दी गईं थीं, और दो-तीन नई रक्खी गई थीं। पहले रानी श्यामकुँवरि की प्रतिस्पर्द्धा से, इतनी अनावश्यक दासियाँ थीं, किंतु अब उनके चले जाने से जो कुछ ख़र्च होता था, वह अनूपकुमारी का था, इससे ज़नाने और मरदाने नौकरों में बहुत काट-छाँट हुई थी। दीवान मातादीन के हट जाने से अनूपगढ़ की कायापलट हो गई थी।

राजा सूरजबख़्शसिंह को इस ओर ध्यान देने का समय नहीं मिलता था। वह एसेंबली के नए-नए मेंबर हुए थे, उसी का ताज़ा नशा चढ़ा हुआ था। मदिरा के आवेश में विभोर अपने महल में बैठे हुए अनेक हवाई क़िले बनाया करते थे। उनके हृदय में इस विजय से कुछ ऐसा साहस उत्पन्न हुआ था कि वह अपने को एसेंबली

का विधाता समझने लगे। किसी क़ानून को बना देना अपनी बाईं उँगली का संकेत-मात्र समझते थे। रुपयों की ताक़त पर भी उन्हें बेहद विश्वास हो गया था। उनका यही विचार था कि जहाँ प्रत्येक सदस्य को एक-एक हज़ार की थैली भेंट की, वहाँ मेरा प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हो जायगा। वह यह बाज़ी केवल एक या डेढ़ लाख रुपयों में ही जीत लेने के मनसूबे बाँध रहे थे। उन्होंने नए दीवान साहब को 'अंतरजातीय विधवा-विवाह-बिल' का मसविदा बनाने का आदेश दे दिया था। नए दीवान ठाकुर कुशलपालसिंह उसे बनाने में दत्तचित्त थे। उन्हें भी आशा थी कि फूल के साथ तुच्छ रुई का सूत्र भी देवताओं के सिर पर चढ़ता है।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अपनी ज़िद पूरी की, और अनूपकुमारी का परदा हटा दिया गया। वह भी स्वतंत्र वायु-मंडल में एक नवीन आनंद से भरकर पक्षियों की भाँति नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में लिप्त रहने लगी। राजमहल की चहारदीवारी के बाहर आकर उसने एक अनुपम आनंद अनुभव किया, और अपनी रूप-माधुरी सबको पान कराकर उत्सुक पुरुषों की लालसा तृप्त करने लगी। जिस समय राजा सूरजबख़्शसिंह उसे अपनी बग़ल में बैठाकर हवा खाने निकलते, और सड़क के किनारे मनुष्यों की क़तार-की-क़तार खड़ी होकर, उन्हें झुककर प्रणाम करती, उस वक्त अनूपकुमारी की रोमावलि अभिमान से उत्फुल्ल होकर खड़ी हो जाती, और वह सगर्व उनकी ओर देख तथा मुस्किराकर उन्हें उत्साहित करती। राजा सूरजबख़्शसिंह प्रसन्नता से कहते कि इसी प्रकार प्रजा में भक्तिभाव उत्पन्न होता है।

रात्रि का प्रथम प्रहर अभी व्यतीत नहीं हुआ था। कुँवर पृथ्वीसिंह अभी पढ़कर आए और अपनी मा के पास बैठे ही थे कि राजा सूरजबख़्शसिंह अपने हाथ में नए दीवान साहब का

बनाया हुआ 'अंतरजातीय विधवा-विवाह बिल' का मसविदा लिए प्रहृष्ट मन से वहाँ आ गए।

अनूपकुमारी ने भुवनमोहन कटाक्ष से कहा—"यह क्या है?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने मुस्किराते हुए कहा—"क्यों बतलाऊँ। कुछ पुरस्कार देने को कहो, तो बतला दूँ।"

अनूपकुमारी ने हँसकर कहा—"इस अभागिनी के पास क्या है, जो आपको पुरस्कार दे; जो कुछ था, वह कभी श्रीचरणों में अर्पण कर दिया। जो कुछ है, वह सब आपका ही है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने गद्दी पर बैठते हुए कहा—"जब मैंने सब तुम्हें भेंट कर दिया है, तब तो तुम्हारा ही हो चुका। इस पर मेरा अब कोई अधिकार नहीं।"

अनूपकुमारी ने सिर नत कर कृतज्ञता के भार से दबते हुए कहा—"यह सब आपकी कृपा है, जो एक पथ की भिखारिनी को राजसिंहासन पर बैठा दिया है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—यह तुम ग़लत कहती हो। अभी तक राजसिंहासन पर बैठाया नहीं। हाँ, अब बैठाऊँगा।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"जब आपकी कृपा है, तो राजसिंहासन पर न भी बैठी, तो क्या हुआ। मुझे अपनी चिंता नहीं, अगर कुछ है, तो आपके पृथ्वीसिंह की। इसका कोई प्रबंध हो जाय, तो मैं निश्चिंत हो जाऊँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"बग़ैर तुम्हें अधिकार दिलाए तो हमारा पृथ्वीसिंह जायज़ वारिस नहीं हो सकता। इसीलिये पहले तुम्हारे साथ विवाह की रीति अदा करना है। उस विवाह को भी क़ानून द्वारा विहित बनाना है।"

अनूपकुमारी ने अपने हर्षावेग को दबाते हुए कहा—"मैं ये बातें कुछ नहीं समझती। आपकी जैसी इच्छा हो, करें, मैं कुछ दख़ल

देना नहीं चाहती। बस इतनी प्रार्थना है कि इस दासी पर हमेशा ऐसा ही प्रेम भाव बना रहे, जैसा आज है।"

अनूपकुमारी की नम्रता और विनय ने राजा सूरजबख़्शसिंह को नितांत वशीभूत कर लिया। उनकी एक-एक रग उसके प्रेम से भर गई।

उन्होंने पृथ्वीसिंह के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्यों घबराती हो, अनूपगढ की गद्दी पर पृथ्वीसिंह ही बैठेगा। लाल साहब का मुँह काला हो ही गया है। अब मुझे उम्मेद नहीं कि वह पुनः अनूपगढ़ लौटने का साहस करेगा। सुनने में आया है कि आजकल वह अपनी ससुराल में है। मैंने न-मालूम क्यों उसका भेद छिपा रखने के लिये उसकी दुलहिन को क़सम खा दी थी, नहीं तो हज़रत अब तक ससुराल से भी निकाल दिए गए होते। कभी-न-कभी भेद तो खुलेगा ही, तब दूध की मक्खी की तरह निकाले जायँगे। सर रामकृष्ण की तरफ़ से कुछ थोड़ा-सा खटका है, मगर जब उन्हें मालूम होगा कि हज़रत ने जान-बूझकर उनकी लड़की का सत्यानास किया है, तो वह जल-भुनकर उसकी सहायता से इनकार कर देंगे। अकेले राजा किशोरसिंह मेरा क्या कर सकते हैं। मैंने पहले से ही सब मोरचे बाँध दिए हैं।"

यह कहकर वह प्रसन्नता से उमँग उठे। अनूपकुमारी भी उनकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी। पृथ्वीसिंह चकित होकर अपने माता-पिता का मुख देखने लगा।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पृथ्वीसिंह से कहा—"जाओ, अब तुम सो जाओ।"

अनूपकुमारी ने उसके नौकर को बुलाकर उसे सुला देने का आदेश दिया।

पृथ्वीसिंह के जाने के बाद राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"नए

दीवान बड़े चतुर और विद्वान् पुरुष मालूम होते हैं। जैसा उनका नाम है, वैसे ही उनके गुण हैं।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्नता के साथ कहा—"कुशल क्यों न होंगे। वह इँगलैंड में कई वर्ष तक रहे हैं। हमारे बाबू मातादीन से तो हज़ारगुना अच्छे हैं।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने ज़ोर से हँसकर कहा—"उस बेदुम के गधे से हज़ार नहीं, करोड़गुना अच्छे हैं। वह तो महज़ दवाइयाँ बनाना जानता था, और मेरा ख़ज़ाना लूटकर अपना घर भरना। क्या बताऊँ, वह यहाँ से निकल गया, नहीं तो उसे ठीक करता।"

अनूपकुमारी ने कहा—"देखिए, इधर दो महीने में चार लाख की बचत हुई, और अगले महीने तक दस लाख आपके ख़ज़ाने में दिखा दूँगी। वह इतने नौकर सिर्फ़ इसलिये रक्खे थे, जिसमें उसका रुआब चारो ओर रहे, और अपना घर भरने का मौक़ा मिले। आपने कभी उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"जितना मेरा क़ुसूर है, उतना ही तुम्हारा भी तो है। तुमने कब इस ओर ध्यान दिया।"

अनूपकुमारी ने अँगड़ाई लेते हुए कहा—"उसकी चाल ही ऐसी थी कि हम लोग उसके चक्र में सदैव फँसे रहे, और कभी इस ओर ध्यान देने का मौक़ा ही न मिला। वह सदा अपनी लच्छेदार बातों में उलझाए रहता था।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"चलो, अब उससे जन्म-भर को पिंड छूट गया। अब वह भी हमें अपना काला मुख नहीं दिखाएगा। हमारे नए दीवान अपनी चतुरता से सब काम पूरा कर लेंगे। उन्होंने आज अंतरजातीय बिल का मसविदा बनाकर तैयार कर दिया है। इतनी कुशलता के साथ बनाया है कि मैं दंग रह गया। उसे पढ़ने से मालूम होता है कि वह ज़रूर क़ानून बन जायगा।

अगर मैं कोई अड़चन देखूँगा, तो रुपयों से सबका मुँह बंद कर दूँगा। अगर इस काम में दो-तीन लाख रुपए ख़र्च भी हो जायँ, तो क्या हर्ज ?"

अनूपकुमारी ने कहा—"कोई परवा की बात नहीं। अगर ज़्यादा भी ख़र्च करना पड़े, तो कर देना। मैं बिला किसी ख़शख़शे के इतनी रक़म आपको दे सकूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने पुलकित होकर उसके कपोल पर सादर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"मुझे सच्ची ख़ुशी तो उस दिन होगी, जब तुम्हें राजरानी बनाऊँगा, और लाल साहब और उसकी मा को सदा के लिये हटाकर तुम्हारा और पृथ्वीसिंह का मार्ग साफ़ कर सकूँगा।"

अनूपकुमारी ने उनके वक्ष पर लेटते हुए कहा—"जब आपने विचार लिया है, तो वह होगा ही। आप जो विचारते हैं, वह कर दिखाते हैं। आजकल के समय में आप-जैसा बात का धनी मिलना असंभव है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह उसकी प्रशंसा से बड़े प्रसन्न हुए, और उसे आदर के साथ अपने आलिंगन-पाश में बद्ध करके अपने प्रेम के उद्गार उसके कपोलों पर अंकित करने लगे।

थोड़ी देर बाद राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"जाओ, केशर की शराब लाओ।"

इन दिनों अनूपकुमारी उन्हें मदिरा पीने को बहुत कम देती थी, किंतु आज उसने कोई आपत्ति नहीं की। अलमारी से केशर की शराब निकाल लाई।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"यह क्या, तुम तो एक ही प्याला लाई हो। क्या तुम नहीं पिओगी। अगर तुम्हें नहीं पीना है, तो फिर मेरे ही लिये क्यों लाई ?"

उनका स्वर अभिमान-मिश्रित था, जिसकी वेदना ने अनूपकुमारी के हृदय की कली-कली प्रस्फुटित कर दी।

अनूपकुमारी ने वंकिम कटाक्ष सहित पूछा—"क्या एक प्याले से हम-तुम नहीं पी सकते ? या साथ पीने में ज़ात चली जाने का डर है ?"

यह कहकर वह हँस पड़ी, और वह भी प्रसन्नता से किलक उठे। उनके मन का अभिमान बह गया।

अनूपकुमारी ने प्याला भरते हुए कहा—"लीजिए, हाज़िर है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे लेकर अनूपकुमारी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"पहले तुम पिओ, तब मैं पिऊँगा।"

अनूपकुमारी ने वंकिम भ्रू-क्षेप करके कहा—"दासी तो हमेशा आपका प्रसाद ही पाती है। पहले आप पी लीजिए।"

राजा सूरजबख़्शसिंह किसी प्रकार पहले पीने को सहमत नहीं हुए। अंत में दोनो का एक-एक घूँट पीना तय हुआ।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने दो-तीन प्याले पीने के बाद आवेश में आकर कहा—"अनूप, तुम्हारा रूप दिन-पर-दिन निखरा पड़ता है। लोग कहते हैं, ज्यों-ज्यों बुढ़ापा समीप आता है, त्यों-त्यों आदमी का रूप भागता है, किंतु तुम्हारे संबंध में यह बात लागू नहीं होती। मालूम ऐसा होता है कि तुम्हारा रूप दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है, जो कभी कम होना जानता ही नहीं।"

अनूपकुमारी ने लज्जावती नारी की भाँति शरमाकर कहा—"यह आपका प्रेम है। आपका ज्यों-ज्यों प्रेम बढता जाता है, त्यों-त्यों मैं भी आपको सुंदर दिखाई पड़ती हूँ।"

अनूपकुमारी नवोढ़ा की भाँति लज्जा से संकुचित होकर उनके वक्षःस्थल से लिपट गई। उन्होंने उसे आवेश के साथ अपने हृदय से लगा लिया। मदिरा का आवेश दोनो को बेसुध करने लगा।

अनूपकुमारी ने उठने का प्रयत्न किया, किंतु राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसे पकड़ते हुए कहा—"मैं इस समय तुम्हें अपने से दूर ज़रा देर के लिये भी नहीं हटने दूँगा।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्नता से कहा—"आज वह दवा तुम्हें खिलाना चाहती हूँ, जो बाबू मातादीन आपको बनाकर दिया करते थे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—"क्या तुम्हारे पास है? हाँ, तो लाओ। आज अपने 'बिल' का मसविदा बन जाने की ख़ुशी में उसे ज़रूर खाऊँगा। क्या बताऊँ, वह मेरे आने से पहले चला गया, नहीं तो उसे निकालने से पहले कई शीशियाँ बनवाकर ले लेता।"

अनूपकुमारी ने कहा—"अभी मेरे पास एक पूरी शीशी तैयार है। मैंने उससे लेकर पहले ही रख ली थी। उसकी दो बूँदें ही काफ़ी होती हैं। उसमें कम-से-कम पाँच सौ बूँद दवा होगी। जब ख़त्म होगी, तब देखा जायगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उठते हुए कहा—"जाओ, उसे शीघ्र लाओ।"

अनूपकुमारी अपनी अलमारी से एक छोटी शीशी निकाल लाई, और जल के साथ दो बूँद मिलाकर राजा सूरजबख़्शसिंह को पीने के लिये दी। उन्होंने आतुरता के साथ उसके हाथ से वह शीशी छीन ली, और उसके मना करते रहने पर भी उस गिलास में तीन-चार बूँदें और टपका लीं।

अनूपकुमारी ने उनके हाथ से शीशी छीनते हुए कहा—"अच्छा, अब पी जाओ। तुम तो सब एक ही दिन में ख़त्म कर डालोगे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह उसे एक ही साँस में पी गए। अनूपकुमारी उस दवा को बंद करने चली गई।

उसके आने पर राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"तुमने तो वह दवा पी ही नहीं, अकेले मुझे पिला दी।"

अनूपकुमारी ने मलिन हास्य के साथ कहा—"मेरे हिस्से की तो तुमने ही पी ली। आज न सही, फिर कभी पिऊँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के उदर में दवा पहुँचते ही अत्यंत सुखद शीतलता उत्पन्न होने लगी। उनकी नाड़ियों में कंपन होने लगा, और केशरी मदिरा का नशा बड़े वेग से उतरने लगा।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने भयभीत होकर कहा—"अरे, आज क्या हुआ। इसमें पहले का-सा गुण नहीं दिखाई देता। आवेश के स्थान पर शीतलता उत्पन्न हो रही है, और नाड़ी-तंतुओं की शक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। यह क्या, केशरी शराब की उग्रता भी नष्ट हो रही है। अनूप, तुमने आज मुझे क्या पिला दिया। मालूम होता है, मेरी दशा भी लाल साहब की भाँति हो जायगी। हो जायगी नहीं, हो गई।"

यह कहकर वह भय-विह्वल दृष्टि से अनूपकुमारी की ओर देखने लगे। अनूपकुमारी ने भय-विस्फारिता नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह क्या हुआ। मैंने तो कई दिनों पहले उससे यह दवा ली थी, जब उसके निकलने की बात भी नहीं थी। मालूम होता है, उसने जाते-जाते अपने जासूसों द्वारा कोई छल किया है, और असली शीशी निकलवाकर वैसी ही दूसरी शीशी रखवा दी है। इस शीशी में उसने वह दवा रख दी है, जो मनुष्य को नपुंसक बना देती है। जिस दिन वह बिदा हुआ था, उसने बड़ी तेज़ निगाहों से मेरी ओर देखा था, और कहा था कि मातादीन अपने शत्रुओं को कभी धोखे में नहीं मारता, चेतावनी देकर वार करता है। हमारे बैसवाड़े की यही रीति है। उसकी ही सारी साज़िश मालूम होती है। चलते-चलते भी वह अपना दाँव खेल ही गया। आज न-मालूम

मेरी बुद्धि में यह बात कैसे समा गई कि वह दवा खाई जाय। आज दो महीने से तो कभी यह बात मेरे मन में नहीं आई। हाय, आज सर्वनाश हो गया! मैं भी वह दवा पिए लेती हूँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने विह्वल स्वर में कहा—"नहीं, अब तुम्हारे पीने की ज़रूरत नहीं। मैंने ही पीकर अपना सर्वनाश किया, वही मेरे कुढ़ाने के लिये बहुत है। अब क्या फिर उसके पैर पड़ना पड़ेगा। चाहे जो कुछ हो, यह मैं नहीं करने का। दूसरी तरह इलाज करूँगा। लाल साहब को शायद इसी दुष्ट ने यही दवा पिलाकर पुरुषत्वहीन कर दिया है। ऐसा नर-पिशाच जो न करे, वह थोड़ा। मैंने लाल साहब की दवा नहीं की, उसका प्रतिफल भगवान् ने दिया है।"

यह कहकर वह दोनो हाथ से अपना मुख छिपाकर रोने लगे। अनूपकुमारी भी अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी। उसके हृदय में साहस न था कि उन्हें सांत्वना दे।

विधाता का विधान सहज स्वभाव से मुस्किराने लगा।

---

# पंचम खंड

## १

वालपेराइज़ो का बंदर प्राकृतिक है। उसके तट तक बड़े-बड़े जहाज़ अनायास जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वह इतना सुरक्षित है कि तूफ़ान में भी जलयानों को कुछ हानि नहीं पहुँच सकती। चिली का सबसे बड़ा और मुख्य बंदर होने के कारण वहाँ की सरकार ने उसे सुंदर बनाने के लिये बहुत प्रयत्न किया है। साल में करोड़ों रुपए का माल आता-जाता है।

पंडित मनमोहननाथ, तार द्वारा समाचार पाकर, डॉक्टर नीलकंठ आदि को लेने स्वयं आ गए थे। प्रभात-काल में उनके जहाज़ ने वालपेराइज़ो के डाक्स में आकर लंगर डाला। जहाज़ डाक्स के समीप लगते ही वह प्रसन्नता के साथ डॉक्टर नीलकंठ को ढूँढ़ते हुए उनकी कैबिन की ओर चले।

डॉक्टर नीलकंठ अपना सामान दुरुस्त कर चुके थे, और कपड़े पहन रहे थे कि पंडित मनमोहननाथ ने उत्फुल्ल कंठ से कहा—"स्वागत है! आपको बहुत कष्ट दिया। आप आ गए, यह मेरे परम सौभाग्य की बात है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने हर्षोद्रेक से उनसे हाथ मिलाते हुए कहा—"इतनी बड़ी पृथ्वी का अर्धखंड देखने का सौभाग्य आपकी ही कृपा से हुआ। इसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ!"

पंडित मनमोहननाथ मुस्किराने लगे। इसके बाद दोनो ने एक दूसरे का कुशल-समाचार पूछा।

पंडित मनमोहननाथ ने उनके कमरे से बाहर आते हुए पूछा—"आभा सकुशल है, उसे कोई असुविधा तो नहीं हुई?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"कल से आभा की तबियत बहुत ख़राब हो गई है। ज्वर के वेग से वह भयानक कष्ट पा रही है। अभी तक उसे होश नहीं आया।"

पंडित मनमोहननाथ की प्रसन्नता तिरोहित हो गई। उन्होंने चिंतित स्वर में पूछा—"सहसा यह कैसे हो गया। इधर का जल-वायु तो बहुत स्वास्थ्य-प्रद है, फिर समुद्री हवा तो आजकल बहुत लाभकारी है। इसका कारण क्या है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने दुःखित स्वर में कहा—"कारण मेरी समझ में कुछ नहीं आता। हाँ, परसों रात को वह लगभग दस बजे तक बाहर डेक पर बैठी रही। मुमकिन है, उस वक्त कुछ ठंडक लग गई हो। उस रात को उससे खाया नहीं गया, और सुबह से बड़ा तेज़ ज्वर चढ़ आया। वह किसी से बातचीत भी नहीं करती, चुप-चाप लेटी रहती है।"

पंडित मनमोहननाथ ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"आप घबराएँ नहीं, हमारे आश्रम के डॉक्टर हुसैनभाई चतुर तथा कुशल व्यक्ति हैं, उनकी दवा से सब ठीक हो जायगा। आजकल आश्रम छोटा-सा अस्पताल हो रहा है। वहाँ अभी तक दो लड़कियाँ बीमार थीं। उनमें से एक तो अच्छी हो गई है, और एक अभी तक बीमार पड़ी है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"वे दो लड़कियाँ कौन है?"

पंडित मनमोहननाथ ने जवाब दिया—"एक तो कैप्टेन जैकब्स की लड़की अमीलिया है, और दूसरी एक अभागिनी अज्ञात कुल की, जिसका ठीक-ठीक नाम-पता कुछ नहीं मालूम। राधा कहती है, उसका नाम माधवी है, और वह इसी नाम से हम लोगों में विख्यात है। राधा को तो अब आप जान गए होंगे, वह तो आपके साथ आई है। उसकी कहानी तो आप सुन ही चुके होंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"हाँ, सब सुन चुका हूँ।"

इसी समय भारतेंदु ने आकर पंडित मनमोहननाथ को प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए उसकी ओर ग़ौर से देखा। भारतेंदु के शरीर की कृशता देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने सस्नेह पूछा—"क्या तुम बीमार रहे?"

भारतेंदु ने सिर झुकाए हुए मलिन स्वर से कहा—"जी नहीं, मैं बीमार तो नहीं था।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इनकी बीमारी के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, इधर एक पुस्तक लिखने में इन्होंने बहुत परिश्रम किया है, इसी से कुछ स्वास्थ्य में ख़राबी आ गई है।"

भारतेंदु ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"अब सब ठीक हो जायगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आप लोग चलें, मैं आभा और चाची को लेकर आता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"चाची कौन?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"आभा की मा के मरने के बाद उसकी एक रिश्तेदारिन ने, जो मेरे यहाँ रहती थीं, उनका पालन किया है, उनका आभा पर इतना स्नेह है कि वह उसे छोड़कर क्षण-भर भी नहीं रह सकती। आभा के आने से उन्हें आना ही पड़ा। हालाँकि उन्हें बेहद तकलीफ़ और असुविधा हुई है। वह पुराने ख़यालात की हैं। समुद्र-यात्रा पाप समझती हैं, किंतु स्नेह ने उनसे वह भी करवा लिया। आभा की मा उसे चाची कहती थीं, इसलिये मैं भी उन्हें वही कहता हूँ।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"उनके आने से ठीक ही हुआ। आपकी भी चिंता दूर हो गई, नहीं तो वहाँ वह अकेले कैसे रहतीं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"देख लीजिए, कल से आभा बीमार

है, वह खाना-पीना भूलकर उसके पास बैठी है, और बार-बार यही कहती है कि वह अच्छी हो जाय, और उसकी पीड़ा उनके शरीर पर आ जाय।"

पंडित मनमोहननाथ ने गद्गद स्वर से कहा—"ऐसे स्नेह के चित्र तो भारतीय नारियों में ही देखने को मिलते हैं, जिनसे आज तक भी उसका सिर ऊँचा है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उनकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—"भारतीय स्त्रियों की आत्मा प्रेम और स्नेह से सराबोर है। उनका जीवन त्याग और बलिदान की कहानी है।"

इसी समय राधा ने आकर उन्हें प्रणाम किया।

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"क्या तुम अपनी मा को भी साथ लाई हो।"

राधा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, उन्हें वहाँ किसके भरोसे छोड़ आती।"

पंडित मनमोहननाथ ने संतुष्ट होकर कहा—"बड़ा अच्छा हुआ। अब हमारा आश्रम आप लोगों के हर्ष-नाद से मुखरित हो उठेगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"स्वामीजी कहाँ हैं? वह नहीं दिखलाई देते।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह आश्रम में हैं। उन्हें प्रबंध करने के लिये छोड़ आया हूँ। वह तो आने के लिये बहुत छटपटा रहे थे, किंतु मैं ही उन्हें नहीं लाया।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"यहाँ से आश्रम कितनी दूर होगा?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"लगभग तीस मील। मोटर से अधिक-से-अधिक दो घंटे का सफ़र है। बीस मील तक तो पक्की सड़क है, और आगे कुछ ख़राब होने से धीरे-

धीरे जाना होता है। मैंने सड़क बनाने का काम शुरू करा दिया है। दो-तीन महीने में बनकर तैयार हो जायगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तब तो आभा के ले जाने में बड़ी असुविधा होगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने मुस्किराहट के साथ कहा—"नहीं, असुविधा कुछ न होगी। मैं यहाँ के अस्पताल से 'एंबुलेंस कार' मँगवा लूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"तब तो ठीक है। काम चल जायगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"चलिए, आभा को तो देख आवें।"

डॉक्टर नीलकंठ और राधा के साथ वह आभा की कैबिन की ओर चले गए।

---

## २

स्वामी गिरिजानंद माधवी के कमरे में बैठे थे, जब डॉक्टर नील-कंठ-प्रभृति आश्रम में पहुँचे। मध्याह्न-काल था, और सब लोग गरमी से परेशान थे। डॉक्टर नीलकंठ और स्वामी गिरिजानंद मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, किंतु आभा की बीमारी से उन्हें कुछ कष्ट हुआ।

आभा और गंगा के ठहरने के लिये अलग प्रबंध किया गया, तथा राधा अपनी मा यशोदा के साथ एक दूसरे कमरे में ठहराई गई। स्वामी गिरिजानंद ने उनकी ओर ध्यान तक नहीं दिया, और न उन्हें देखा ही। वह डॉक्टर नीलकंठ से बातें करते रहे। यथासमय डॉक्टर हुसैनभाई और अमीलिया का भी परिचय कराया गया।

भारतेंदु को देखकर अमीलिया का हर्ष स्रोत स्तंभित हो गया। उसने उनकी ओर क्षण-भर देखा, और ज्यों ही वह उससे मिलने के लिये आगे बढ़े, वह तेज़ी से अदृश्य हो गई। भारतेंदु लज्जा, भय और आशंका से सिहरकर अपने कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद अमीलिया माधवी के कमरे में चली गई।

तीसरा पहर था। दिवाकर की मयूखों की ज्वाला कुछ शांत हो गई थी। क्यूनेसबोक़ा से शीतल पवन आकर मन प्रफुल्लित करने का प्रयत्न कर रहा था।

डॉक्टर नीलकंठ, पंडित मनमोहननाथ और स्वामी गिरिजानंद बैठे हुए आश्रम के संबंध में अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इस आश्रम का स्थान-निर्वाचन करने में आपने अत्यंत बुद्धिमत्ता का काम किया है, क्योंकि यहाँ प्रकृति का पूर्ण सौंदर्य निखरा पड़ता है।"

स्वामी गिरिजानंद ने उनकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—"बेशक, ये ही शब्द मैंने भी कहे थे, जब पहलेपहल मैं यहाँ आया था। प्राकृतिक सौंदर्य का विकास यहाँ पूर्णरूप से हुआ है, उसी प्रकार साम्य-भाव का विकास यहाँ से आरंभ होकर संसार में फैलेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने प्रसन्नता के साथ कहा—"ईश्वर करे, आपका कहना सत्य हो। मेरी आत्मा को शांति उसी दिन मिलेगी, जब मनुष्यों की दासता मिट जायगी, समता के भाव से संसार ओत-प्रोत हो जायगा। हम सब गुलामी के बंधन में आबद्ध हैं, उसका नाश करना परमावश्यक है। हम संसार में केवल अपने स्वार्थ-साधन के लिये नहीं अवतीर्ण हुए, वरन् सबका—मनुष्य-मात्र का—हित करने के लिये। जब तक हम भिन्न भाव रक्खेंगे, तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता। हम एक हैं मनुष्य के नाते एक हैं, और हमारा कर्तव्य है कि हम उस एकता को निबाहें।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"किंतु सब मनुष्य बराबर नहीं हो सकते, अतएव समता होना असंभव है। अपने संबंधियों का ध्यान मनुष्य को रहता ही है, क्योंकि उनका संबंध रक्त-मांस से होता है। पिता-पुत्र और भाई-भाई का स्नेह भुला देने की चीज़ नहीं। उनके हितों का ध्यान तो रखना ही पड़ता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह सब स्वभाव और रूढ़ि के कारण है। चूँकि हमारे पिता ने हमारे लिये पूँजी इकट्ठा करके सौंपी है, इसलिये हम भी अपने पुत्र को पूँजी देने के लिये लालायित रहते हैं। यदि हम उस रूढ़ि को त्याग दें, तो इसका विचार स्वयं नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त हमें अभी तक केवल अपनी क्षमता के ऊपर विश्वास है, और हम अपने को उस व्यापक मनुष्य-समाज से भिन्न समझकर अपना एक छोटा घर बनाते हैं, जिसमें

दूसरों के प्रवेश करने की मनाही है, इस कारण हम इतने क्षुद्र और संकीर्ण स्वभाव के हो गए हैं। यदि हम अपने समाज को उस रूप में ढालें कि किसी के भी स्वार्थ का ध्यान न रहे, केवल सामूहिक स्वार्थ का विचार हो—"और सुविधाएँ भी समान रूप से सबको प्राप्त हों, तो हमारे विचारों की संकीर्णता स्वयं नष्ट हो जायगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इससे आप मनुष्य-मात्र के भावों, विचारों और बुद्धि की विभिन्नता को कैसे दूर करेंगे। इस विभिन्नता का नाश असंभव है, क्योंकि वह हमारे वश की बात नहीं, और वास्तव में इसी विभिन्नता का नाम ही मानवता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आपके हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं, क्या वे बराबर हैं, किंतु फिर भी वे आपके हाथ में हैं, और उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोगिता है। उसी प्रकार मनुष्य-समाज में विभिन्नता क़ायम रहेगी, और हम सबको बराबर नहीं बनाना चाहते, न बराबर बना ही सकते हैं। आपकी किसी उँगली में दर्द पैदा होता है, तो उसका असर कुल हाथ पर पड़ता है, और आप कभी दूसरी उँगली में वैसा दर्द पैदा होने देना नहीं चाहते। अथवा, दूसरे शब्दों में, आप यही चाहते हैं कि समान रूप से पाँचों उँगलियों को अपनी-अपनी सुविधाएँ प्राप्त रहें; ठीक उसी प्रकार हम इस समाज में चाहते हैं कि जीवन की सब सुविधाएँ मनुष्य-मात्र को प्राप्त रहें। देखिए, आप लिखने का काम केवल तीन उँगलियों से करते हैं, और सबसे ज़्यादा अँगूठे से, किंतु दूसरी उँगलियाँ भी उसमें सहायता प्रदान करती हैं। कान खुजलाने, किसी को संकेत करने अथवा भय-प्रदर्शन में आप तर्जनी से काम लेते हैं। इसी प्रकार समाज के भिन्न-भिन्न भाव, विचार और बुद्धिवाले पुरुषों को तद्रूप काम करना चाहिए, क्योंकि समाज में भी तो भिन्न-भिन्न अवस्था के

काम हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि इस सृष्टि में उतने ही भावों, बुद्धियों और विचारों के मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जिनकी आवश्यकता होती है। वे समाज के किसी विशेष कार्य को संपादित करते हैं, जो दूसरा न करता है, और न कर सकता है। हम किसी मनुष्य की अवहेलना नहीं कर सकते, क्योंकि वह हमारे समाज का एक आवश्यक अंग है। शरीर के सब अवयवों को यह अधिकार समान भाव से प्राप्त है कि वे दुखी न हों, तथा समान रूप से पुष्ट हों। और, प्रकृति भी हमारे शरीर में वैसा ही व्यवहार करती है। रक्त का संचालन हमारी प्रत्येक नस में होता है, वहाँ तो हृदय यह विचार नहीं करता कि पैर की उँगलियों में, जो सदैव हमसे इतनी दूर और निम्न हैं, क्यों रक्त पहुँचाऊँ? वह तो मस्तिष्क या हाथ के लिये अधिक मात्रा में रक्त संचित करके या दूसरी नाड़ियों से बचाकर उन्हें नहीं देता, तब हम क्यों मनुष्य-समाज-रूपी शरीर में पूँजी का एक हिस्सा दूसरे के अधिकार से दग़ा, फ़रेब, जालसाज़ी, शक्ति और चातुर्य से छीनकर अपने पुत्र या अन्य किसी व्यक्ति-विशेष को दें। हमारा यह काम सर्वथा अन्याय-पूर्ण है, और इसीलिये युद्ध, कलह, द्वेष और ईर्ष्या के भाव हैं। जहाँ समान रूप से सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ ये नीच भाव आपको देखने को न मिलेंगे। आपके हाथ की आपके पैर से ईर्ष्या तो नहीं होती, वरन् इससे विपरीत सहानुभूति है। यदि आपकी भुजाएँ बलिष्ठ हैं, तो आप अपने पैरों को भी वैसा बनाना चाहते हैं। साम्यवाद का प्रचार होने से ही संसार की ईर्ष्या, द्वेष, और कलह सब मिटेंगे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आपकी उपमा और उपमेय में विभिन्नता है, इसलिये यह शुद्ध नहीं। हम शरीर के पैराए पर बहुत-से मनुष्यों के समाज की तुलना नहीं कर सकते।"

पंडित मनमोहननाथ इसका उत्तर देने ही वाले थे कि दौड़ती

हुई अमीलिया ने आकर कहा—"आप लोग माधवी के कमरे में जल्दी चलें, एक दुर्घटना हो गई है।"

अमीलिया ने उनके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, वह तुरंत चली गई। पंडित मनमोहननाथ को वह प्रसंग छोड़कर जाने की इच्छा नहीं था, किंतु अमीलिया का उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना चला जाना यह सूचित कर रहा था कि अवश्य कोई दुर्घटना हुई है।

पंडित मनमोहननाथ शीघ्रता से माधवी को देखने चल दिए।

स्वामी गिरिजानंद और डॉक्टर नीलकंठ बैठे रहे।

थोड़ी देर बाद स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"माधवी की दशा पागलों-जैसी अवश्य है, किंतु मुझे विश्वास नहीं होता।"

डॉक्टर नीलकंठ ने पूछा—"वह पागल कैसे हो गई?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"वह कई दिनों तक बेहोश पड़ी रही। जब उसे होश हुआ, तो पुरानी स्मृति एकदम लोप हो गई। अब वह अपने पति और एक-दो वर्ष की लड़की के बारे में प्रलाप करती रहती है। डॉक्टर ने अमीलिया द्वारा उसकी जाँच कराई, तो वह अविवाहित साबित हुई। अब समझ में नहीं आता कि जब वह कुमारी है, तो एक बच्चे की मा कैसे हो गई? इसी अनुमान के आधार पर डॉक्टर उसे पागल कहते हैं। उसकी बातचीत सुनो, तो यह मालूम होता है कि वह अपने पूरे होश में है। उसका प्रलाप सुनकर वास्तव में हृदय में बड़ी वेदना होती है।"

डॉक्टर नीलकंठ की उत्सुकता जाग्रत् हो गई। उन्होंने पूछा—"क्या मैं भी उसे देख सकता हूँ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"क्यों नहीं। चलिए, आप भी देख लीजिए। उसकी हालत बड़ी शोचनीय है। वह कहती है कि पंडितजी उसे उसके पति और पुत्री के पास से हरण कर लाए

हैं। वह उन्हें बेतरह गालियाँ सुनाती है। एक दिन वह झील में डूबने जा रही थी, भाग्य-वश मैं वहाँ पर उपस्थित था, उसे पकड़ लिया, नहीं तो वह ज़रूर मर जाती, क्योंकि उसमें घड़ियाल और मगर बहुतायत से हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"चलिए, उसे हम लोग भी देख आवें।"

यह कहकर वह उठकर चलने को उद्यत हुए।

स्वामी गिरिजानंद उन्हें माधवी के कमरे की ओर ले गए।

इस समय उस कमरे में राधा, अमालिया, पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर हुसैनभाई थे। माधवी आँखें बंद किए हुए लेटी थी। डॉक्टर हुसैनभाई उसकी नाड़ी की परीक्षा कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ माधवी के सिरहाने, पंडित मनमोहननाथ की बग़ल में, खड़े हो गए।

डॉक्टर हुसैनभाई ने नाड़ी-परीक्षा करके कहा—"अभी तो कोई भय नहीं मालूम होता। कमज़ोरी के कारण उत्तेजना अधिक है।"

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"इस लड़की को लेकर मैं बड़े संकट में पड़ गया हूँ। जब इसकी असहाय दशा की ओर ध्यान जाता है, तो हृदय दया से परिपूर्ण हो जाता है, और मन को बहुत कष्ट होता है। मैंने इसका बहुत इलाज किया, किंतु सुधार के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। डॉक्टर हुसैनभाई भी हार गए हैं। एक बार झील में डूबने चली गई थी, भाग्य-वश स्वामीजी ने इसकी रक्षा की। तब से मैं इसे अकेला नहीं छोड़ता। आज आप लोगों के आने से एक नया भाव उठ खड़ा हुआ है।"

स्वामी गिरिजानंद ने पूछा—"वह क्या?"

पंडित मनमोहननाथ कहने लगे—"बहुत से लोगों के कंठ-स्वर सुनकर यह कहती है, 'मेरा पति मुझे लेने आ गया है, मैं अब जाऊँगी।' यह कहकर वह जाने लगी, तो अमीलिया ने उसे पकड़ा।

वह अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। इस धर-पकड़ में उसके कुछ चोट आ गई है। इस वक़्त कमज़ोरी के कारण शिथिल होकर पड़ी है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने एक उत्तेजक दवा खिलाते हुए कहा—"इस दवा से उसकी शिथिलता दूर हो जायगी।"

माधवी विना किसी आपत्ति के दवा पी गई।

---

## ३

दवा पीने के थोड़ी देर बाद माधवी की शिथिलता दूर हो गई। उसने अपने नेत्र खोलकर क्षण-भर डॉक्टर हुसैनभाई की ओर देखा, और फिर बंद कर लिए।

पंडित मनमोहननाथ ने उसकी बग़ल में आकर पूछा—"माधवी, अब कैसी तबियत है?"

उनका स्वर स्नेह से आर्द्र था।

माधवी ने उनकी ओर पुनः देखकर कहा—"मैंने तुमसे कहा था कि मेरे स्वामी तुम्हारा पता अवश्य लगा लेंगे, चाहे तुम मुझे पाताल में छिपा आओ। मैंने आज उनका कंठ-स्वर सुना है। वह अवश्य आए हैं, और अब तुम मुझे रोक नहीं सकते। वह भगवान् रामचंद्र की तरह आए हैं, और तुम्हें रावण की भाँति पराजित कर मुझे ले जायँगे। मैं अब बहुत दिनों तक तुम्हारी क़ैद में नहीं रह सकती।"

यह कहकर वह चुप हो गई, और सोचने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"बस, इसी तरह का प्रलाप है।"

वह विस्मय के साथ विचारने लगे।

माधवी पुनः कहने लगी—"मुझे वे दिन याद पड़ते हैं, जब वह हमेशा मुझे चिढ़ाया करते थे, और एक दिन मैंने खीझकर कहा था—अगर बहुत तंग करोगे, तो मैं कहीं चली जाऊँगी, और फिर कभी नहीं आऊँगी। उन्होंने कहा था, अगर तुम्हें यमराज भी उठा

ले जायगा, तो मैं उसके पास से छीन लाऊँगा। उनका मेरे ऊपर असीम प्रेम है, और प्रेम-शक्ति के आगे सब शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। वह अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। समझ में नहीं आता कि इतने दिनों तक वह कैसे अकेले रहे। जब वह कॉलेज में चार घंटे मुश्किल से रहते थे, तब इतने दिन उनके किस प्रकार व्यतीत हुए। एक दिन की बात और याद पड़ती है; उन्होंने एक दिन कहा था कि मैं तुम्हारा फ़ोटो खिंचवाना चाहता हूँ। मैं फ़ोटो खिंचाना अपशकुन मानती थी। मेरी अम्मा कहा करती थीं कि जो फ़ोटो खिंचवाता है, वह जल्दी मर जाता है। मैं इसी भय से फ़ोटो खिंचाने के लिये तैयार न होती थी, और उनकी ज़िद थी कि चाहे जो हो, फ़ोटो खिंचाया जायगा। हम दोनो का झगड़ा हमेशा चाची ही निपटाया करती थीं। चाची ने भी उन्हें बहुत समझाया, लेकिन वह माने नहीं। तब मैंने उनसे ग़ुस्से में कहा कि तुम मुझे जल्दी मारना चाहते हो। उस दिन भी उन्होंने कहा था कि मैं सावित्री की तरह तुम्हें पुनर्जीवित कर लूँगा, क्योंकि मेरा प्रेम छल-रहित और निश्चल है; इसकी अवहेलना यमराज भी नहीं कर सकते। मैंने उनसे कहा कि सावित्री तो मेरा नाम है, वह प्रभाव तो मेरे ही पास है। तब उन्होंने कहा कि वह तो सत्ययुग की बात है, अब कलिकाल में उलटा हो गया है। अंत में हारकर मुझे फ़ोटो खिंचवाना पड़ा। जब फ़ोटो बनकर आया, तो मैंने कहा था कि जब मैं मर जाऊँगी, तो इसी को देखकर मेरी याद कर लिया करना। उन्होंने इसके जवाब में कहा था—ठीक है, जब मरोगी, तब देखकर याद करूँगा, और अभी तो रोज़ पूजा करने में कोई हर्ज नहीं। मेरे जीवित रहते तुम कभी नहीं मर सकतीं। मेरे प्रेम-कवच से आवृत तुम्हारे शरीर को यमराज भी स्पर्श करने में शंकित होंगे।"

माधवी चुप हो गई। डॉक्टर नीलकंठ के मुख की श्री अंतर्हित हो गई थी। वह बड़े ध्यान से माधवी की ओर देख रहे थे।

पंडित मनमोहननाथ की दृष्टि सहसा उन पर पड़ी। उन्होंने भय-भीत होकर कहा—"डॉक्टर नीलकंठजी, क्या आपकी तबियत कुछ ख़राब है?"

माधवी ने अपने नेत्र खोलकर देखा, और पूछा—"क्या नाम लिया, क्या वह आ गए? हाँ, ज़रूर आए हैं। यही तो उनका नाम है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने माधवी के सामने आकर पूछा—"तुम कौन हो, जो अपने उर में इतने भेद छिपाए हुए हो? तुम क्या कोई स्वर्ग की देवी हो?"

वह इसके आगे न कह सके। अतीत की स्मृति ने उनका कंठ अवरुद्ध कर दिया।

माधवी की विस्फारित दृष्टि स्थिर हो गई। वह उनकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगी।

माधवी ने अस्फुट स्वर में कहा—"तुम आ गए? मैं तुम्हें पह-चान गई, तुममें चाहे जितना परिवर्तन हो जाय, मैं तुम्हें नहीं भूल सकती। आह! आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ। मैं जानती थी कि तुम आओगे।"

यह कह वह उठकर बैठ गई, और डॉक्टर नीलकंठ की पद-धूलि लेने के लिये अग्रसर हुई। अमीलिया ने उसे रोकने का प्रयत्न किया।

माधवी ने सक्षोभ कहा—"अब तुम लोगों की शक्ति नहीं कि मुझे मेरे स्वामी के पास से जुदा कर सको। वह मेरे सामने हैं। मुझमें पूर्ण शक्ति आ गई है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने अमीलिया को अलग करते हुए कहा—"उसे

छेड़ो नहीं, यह प्रलाप नहीं, सत्य घटना है। मेरा स्वप्न आज सत्य हुआ। यह उस जन्म की आभा की मा है।"

माधवी ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, मेरी आभा, आभा, आभा। मैं उसका नाम भूल गई थी, अब तुम्हारे कहने से याद आया। वह कहाँ है, क्या उसे अपने साथ नहीं लाए? लाओ, लाओ, मेरी आभा को। इतने दिनों तक वह कैसे रही होगी। बिस्कुट और दूध अपने साथ लाए हो या नहीं? क्या तुम नहीं जानते कि उसे बिस्कुट कैसे अच्छे लगते हैं। चाची को क्यों नहीं लाए? उन्हीं के पास आभा रहती होगी। आभा उन्हें बहुत हिल गई थी, रात-दिन उनके पास रहती थी। तुम बोलते नहीं, क्या आभा को नहीं लाए?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आभा भी आई हैं, और चाची भी आई हैं। तुम घबराओ नहीं। मैं अभी उन्हें बुलाता हूँ।"

माधवी बड़ी शांति से लेट गई, और कहा—"तुम मेरे पास सिरहाने बैठ जाओ, जैसे लखनऊ में, जब मैं कभी बीमार पड़ती थी, बैठते थे। मुझे ये लोग न-मालूम कैसे तुम्हारे पास से छीन लाए, और मुझे बहुत कष्ट दिया है। मैं तो अपने जीवन से इतना ऊब गई थी कि मरना चाहती थी, क्योंकि यह मुझे विश्वास था कि मरने के बाद भी तुम्हें पाऊँगी। इन लोगों ने मुझे मरने भी न दिया। इन लोगों ने मुझे पागल बना रक्खा है। आज शांति मिली है। इन सब लोगों को जाने के लिये कह दो। पुलिस में इन्हें पकड़वा क्यों नहीं देते।"

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम घबराओ नहीं, उत्तेजित भी न हो। मैं सबको पकड़वा दूँगा, और सबको सज़ा मिलेगी। तुम बहुत उत्तेजित न हो।"

उनके हृदय का चिर-संचित प्रेम उमड़कर बारंबार बाँध तोड़ने

का प्रयास कर रहा था, किंतु वह उसे बड़ी मुश्किल से रोके हुए थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि माधवी पूर्वजन्म की आभा की मा है। स्वामी गिरिजानंद और पंडित मनमोहननाथ बड़े आश्चर्य से उन दोनो की बातचीत सुन रहे थे। उनके सामने केवल एक प्रश्न था—"क्या पूर्वजन्म वास्तव में सत्य है?"

माधवी ने उनका हाथ प्रेम से पकड़ते हुए कहा—"आज कितना सुखमय दिन है! मेरी सब चिंताओं का अंत हो गया। तुम आभा का नहीं लाए हो, मुझसे झूठ कहते हो। मैं ही पागल हूँ, तुम आभा को कैसे ला सकते हो, वह अभी दूध-पीती बच्ची है। जहाज़ पर आने से उसे कष्ट होता, ये लोग भी मुझे यहाँ जहाज़ से लाए हैं। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ। तुमने ज़रूर पुलिस में इत्तिला दी होगी। ये लोग कौन हैं, यह याद नहीं पड़ता कि मैं कैसे इनके जाल में फँस गई। मैं बीमार थी, तुम मेरा इलाज डॉक्टर बैनर्जी से करवा रहे थे। वह कहते थे कि क्षय है, जीर्ण-ज्वर है। तुमने उनकी बात पर विश्वास कर लिया था, और रात-दिन रोया करते थे। तुम चाहे जितना छिपाओ, क्या मैं जानती नहीं। मैं तुमसे कहती थी कि मैं ज़रूर अच्छी हो जाऊँगी। देखो, मैं अच्छी हो गई। अगर ये दुष्ट मुझे हरण कर न लाए होते, तो मैं वहीं रहती। एक दिन रात को मेरी तबियत बहुत घबराने लगी, ऐसा मालूम हुआ कि प्राण निकल रहे हैं। मैं तुम्हारे गले से भय-भीत होकर लिपट गई। तुमने मुझे कोई दवा पिलाई, इसके बाद मैं बेहोश हो गई। जब आँख खुली, तो मैंने अपने को इन दुष्टों के बीच में पाया। मैंने इनसे बहुत विनय की कि मुझे मेरे पतिदेव और आभा के पास पहुँचा दो, किंतु भला ये लोग कब सुनते हैं। मुझे बहकाकर, जहाज़ पर चढ़ाकर यहाँ ले आए। इनका सरदार मेरा पिता बनकर तुम्हारा नाम-पता पूछा करता था, लेकिन मैंने

नहीं बताया। मुझे भय था कि कहीं तुम्हें भी दुःख न दे। एक दिन मैंने कहा था कि मेरे पिता का नाम पंडित लक्ष्मीकांत हैं, तुम ज़बरदस्ती कहाँ से मेरे पिता बन गए। मुझे पिता बनकर ठगना चाहते थे। अच्छा, पिताजी का कोई समाचार मिला है? उन्होंने तो हमसे अपना संबंध ही तोड़ लिया। उन्हें अपनी दुलारी सावित्री की याद अब शायद नहीं आती। अम्मा तो अच्छी हैं? भैया कमलाकांत क्या अभी तक कॉलेज में पढ़ते हैं? वह ज़रूर मुझे चाहते थे। पिताजी का इतना कठोर आदेश होने पर भी मेरे पास आते और मेरे यहाँ खाते थे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब तुम आराम करो। मैं अब तुम्हें छोड़कर न जाऊँगा।"

माधवी ने कहा—"हाँ, अब मैं सोऊँगी। अभी तो मारे भय के नींद नहीं आती थी। मैं डरती थी कि अगर सो गई, तो ये लोग मुझे दूसरी जगह ले जाकर छिपा आवेंगे, और जब तुम मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आओगे, तब नहीं पाओगे। किंतु अब मुझे कोई डर नहीं। तुम्हारे पास से यमराज भी मुझे नहीं ले सकते, यह तो तुम कहा ही करते थे।"

यह कहकर माधवी मुस्किराई। डॉक्टर नीलकंठ को भी हँसी आ गई। अतीत की स्मृति ने बड़े ज़ोर से चुटकी ली।

माधवी फिर कहने लगी—"आज मेरे पास बहुत कुछ कहने को है। मुझे कह लेने दो। शायद वे दुष्ट आज रात का ही मौक़ा पाकर मार डालें। तुम इनका विश्वास मत करना। इनके साथ भगवा पहने महात्मा भी हैं, वैसे ही, जिनसे तुम सदा घृणा करते थे। मैं भी उससे घृणा करती हूँ। उसे देखते ही मुझे गंगाजी के किनारे बैठनेवाले रँगे सियारों की याद आ जाती है, जिन्होंने मेरी सखी कमला को भ्रष्ट कर जाह्नवी में डूब मरने के लिये बाध्य किया

था। तुम्हें वह घटना याद है न? तब से मैं बराबर इनकी छाया से दूर भागती रही। यहाँ यह भगवा पहने महात्मा भी मुझे वैसा ही मालूम होता है। मैं उसका मुख नहीं देखना चाहती। उसे मेरे पास से हटा दो। नहीं पुलिस में पकड़ा दो।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तुम फिर बात करना, अब सो जाओ। बहुत उत्तेजित होने से फिर बीमार पड़ जाओगी।"

फिर डॉक्टर हुसैनभाई को निद्रा लानेवाली औषधि बनाने का आदेश दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने विना प्रतिवाद के उनकी आज्ञा पालन की।

डॉक्टर नीलकंठ ने औषधि का गिलास अपने हाथ में लेकर कहा—"लो, यह दवा पी जाओ, भय करने की कोई ज़रूरत नहीं। बाहर पुलिस मकान को घेरे हुए है। अभी थोड़ी देर में मैं सबको गिरफ़्तार करवा दूँगा। मैं अब तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

माधवी ने दवा तुरंत पी ली। दवा पीकर कहा—"अगर मुझे नींद आ जाय, तो छोड़कर कहीं न जाना। इन दुष्टों का विश्वास मत करना। इन्हें शीघ्र ही पकड़वा देना।"

यह कहकर उसने उनका हाथ फिर पकड़ लिया।

डॉक्टर नीलकंठ ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम अब ज़रा भी चिंता न करो। मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता।"

उनका आवेग आँखों के बाहर निकलने का उपक्रम करने लगा। माधवी की आँखें दवा के प्रभाव से झिपने लगीं। वह उनका हाथ अपने वक्षःस्थल से लगाए हुए निद्रा में निमग्न हो गई।

विधाता का विधान मनोहर मुस्कान से उन सबको चकित करने लगा।

---

## ४

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"यह बड़ी आश्चर्य-जनक घटना है। इसके पूर्व कभी नहीं सुना।"

स्वामी गिरिजानंद ने उत्तर दिया—"मालूम होता है, ईश्वर हमारे ऋषियों के कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिये शहादत पर विश्वास करनेवाली इस दुनिया के नास्तिकों के सामने अकाट्य प्रमाण पेश कर रहा है। माधवी की दशा देखकर कौन इनकार कर सकता है कि पूर्वजन्म न था, और पर-जन्म न होगा। अभी तक जो अनुमान-मात्र था, उसके अनुमोदन के लिये अब हमारे पास अकाट्य प्रमाण हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"विधाता का अदृश्य हाथ और अव्यक्त आदेश प्रत्येक काम के पीछे होता है, आज से यह भी प्रमाणित हुआ। मनुष्य स्वयं कमज़ोरियों का समूह-मात्र है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, सत्य तो यही है। अहंकार के कारण मनुष्य अपने को ही विधाता मान बैठा है, इसलिये ईश्वरीय शक्तियाँ विकसित होकर हमें यह बता रही हैं कि सन्मार्ग वही है, जो तुम्हारे प्राचीन ऋषियों ने मेरे आदेश से तुम्हारे कल्याण के लिये निर्दिष्ट किया है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने, जो अब तक चुपचाप बैठे थे, कहा—"मैं भी स्वामीजी के कथन से सहमत हूँ। हमारा कल्याण अपने प्राचीन सिद्धांतों के अनुसार चलने में ही है। आजकल हम पश्चिमीय सभ्यता के वातावरण में अपनी प्राचीन संस्कृति को भूल गए हैं, जब तक हम उसे पुनर्जीवित न करेंगे, तब तक संसारमें कुछ

उन्नति नहीं कर सकते। यदि आज योरपीय सभ्यता के विकास का मूलान्वेषण करें, तो हमें उस स्थान पर पहुँच कर ठहर जाना पड़ेगा, जब से उनके यहाँ पुनर्जन्म अथवा 'रिनायसांस' होना आरंभ हुआ था। 'रिनायसांस' अथवा पुनर्जन्म के समय में केवल प्राचीन ग्रीक अथवा रोमन सभ्यता की पुनः प्रतिष्ठा हुई है। अब यह प्रश्न कि ग्रीक और रोमन सभ्यता का संबंध प्राचीन भारतीय सभ्यता से था या नहीं, विवाद-पूर्ण है। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन सभ्यता को पुनर्जीवित करने से हमारा विकास होगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, अब तो यही कहना पड़ेगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने मुस्किराकर कहा—"भारतवर्ष की आदिम सभ्यता अपने उदर में बड़े-बड़े अनुभव छिपाए हुए है। महाभारत-काल से हमारा पतन आरंभ हुआ, और अभी तक होता जा रहा है। विदेशी आक्रमणकारियों ने भी हमारा इतिहास, जिसमें हमारी सभ्यता अंकित थी, नष्ट कर दिया है। अब उसके यत्र-तत्र ध्वंसावशेष मिलते हैं, वे भी अपूर्ण। किंतु इतना तो ज़रूर कहना पड़ेगा कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।' और शायद कभी मिटेगी भी नहीं।"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"भारतीय सभ्यता का अब तक जब नाश नहीं हुआ, तो अब होगा, यह कहना असंभव है। किंतु आजकल की प्रचलित प्रणाली में बहुत कुछ परिवर्तन करने पड़ेंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"हाँ, समय और परिस्थितियों के अनुसार अवश्य परिवर्तन करना पड़ेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, आप यह बतलाइए कि जो-जो बातें माधवी ने कही हैं, क्या वे सब ठीक हैं?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"वे अक्षरशः सत्य हैं। वे ऐसी बातें हैं, जिनकी सत्यता केवल मैं जान सकता हूँ, और जिनको गुज़रे हुए आज लगभग सत्रह साल से ऊपर हो गए हैं। जब मैं इँगलैंड गया था, तो मेरी जातिवालों ने मुझे समाज-च्युत कर दिया था, किंतु मेरा साला कमलाकांत हमेशा लुक-छिपकर अपनी बहन को देखने आता था। इसका भेद सिवा हम चार आदमियों के और किसी को नहीं मालूम। मैं आपसे क्या बतलाऊँ, जितनी बातें उसने कही हैं, सब सत्य हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने विस्मयान्वित स्वर से पूछा—"इसके इस जन्म का हाल तो मुझे पूर्ण रूप से मालूम नहीं, किंतु अमीलिया के कहने से मालूम हुआ कि यह अविवाहित-सी है। तब इसे क्या पहले भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी? और, अगर नहीं, तो सहसा उसे कैसे स्मरण हो गया।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इसका भेद मैं कैसे कह सकता हूँ। मनुष्य की सत्ता के बाहर है कि वह ईश्वर के कार्यों का रहस्य जान सके। यह मुमकिन है कि मस्तिष्क, जहाँ स्मरण-शक्ति का केंद्र है, सिर में भयानक चोट लगने से भूकंप की भाँति उथल-पुथल गया हो, और पुरानी स्मृतियाँ सजग होकर ऊपरी सतह में आ गई हों, और इस जन्म की याददाश्त नीचे दब गई हो। वह अपने को मृत नहीं समझती, बल्कि पुराने जीवन का केवल प्रसार जानती है। उसे स्मरण नहीं कि उसके शरीर का आज सत्रह साल पहले अवसान हो चुका था, और उसे मैंने गंगा-तट पर चितारोहण किया था। मृत्यु की उसे याद नहीं। वह उसे बेहोशी समझती है, और जब उसकी चेतना आपके यहाँ जागी, तो पुराने जीवन की वे ही स्मृतियाँ उसके सामने एकत्र होने लगीं। वह अभी तक आभा को दो वर्ष की दूध पीती बच्ची समझती है। लड़कपन में वह बिस्कुट

बहुत खाया करती थी, कल भी उसने पहले वही प्रश्न किया। अभी तक वह जागी नहीं, जागने पर आज आभा और चाची को ले जाकर उसके सामने पेश करूँगा, देखूँ, वह उन्हें पहचानती है या नहीं। मेरा तो विश्वास है कि वह चाहे आभा को न पहचाने, लेकिन चाची को ज़रूर मेरी तरह पहचान जायगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हम लोग इधर फँसे रहे, और आभा की कोई ख़बर नहीं ली।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह इस समय अच्छी है। बुख़ार उतर गया है, और आज सुबह बिलकुल स्वस्थ थी। डॉक्टर हुसैनभाई कह रहे थे कि एक-दो दिन में अच्छी हो जायगी। चाची और राधा की मा उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही हैं। राधा की मा भी बड़े अच्छे स्वभाव की मालूम होती हैं। चाची से उनसे ख़ूब पटती है।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"मैं उधर नहीं गया। माधवी ने कल मेरी अच्छी तरह ख़बर ली, तब से स्त्रियों के सामने जाने का साहस नहीं होता।"

वे सब हँसने लगे।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप बुरा न मानें। उसने मुझे भी तो ब ख़ूखरी-खरी सुनाई है। वह हम लोगों को अपना शत्रु समझती है। अब मेरा भी उसके सामने जाने का साहस नहीं होता, शायद उत्तेजित होने से फिर कुछ आफ़त न आ पड़े।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसते हुए कहा—"भाई, मैं तो कल से यह कमरा छोड़कर बाहर नहीं गया, और सबकी आँखों से अपने को छिपाए हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"भला, इस तरह कब तक काम चलेगा?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"जब तक आप माधवी के साथ विवाह करके उसका भय दूर न कर देंगे।"

डॉक्टर नीलकंठ ने चकित होकर उनकी ओर देखा।

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"हाँ, जो स्वामीजी कहते हैं, वह अब आपको करना पड़ेगा। माधवी के साथ आपको विवाह करना पड़ेगा। जब भगवान् ने आपकी खोई वस्तु आपको दी है, तब स्वीकार करना पड़ेगा। आत्मा तो वही है, केवल कलेवर बदला है। वह अब आपको छोड़ भी तो नहीं सकती। आप उसे किसी प्रकार नहीं समझा सकते कि यह उसका पुनर्जन्म है।"

स्वामी गिरिजानंद ने हँसकर कहा—"यह बिलकुल असंभव है, मैं भी स्वीकार करता हूँ। उसका और आपका इसी में कल्याण है कि आप उससे विवाह करें।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मेरी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। देखा जायगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"जनाब की बरात में हम सब चलेंगे, और कन्या के संप्रदान के लिये किसी दूसरे को ढूँढ़ना पड़ेगा।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"यह नहीं हो सकता, कन्या का संप्रदान आपको करना पड़ेगा। हाँ, उसका ख़र्च मैं ज़रूर बरदाश्त कर लूँगा। मैं कन्या-संप्रदान नहीं कर सकता। इसलिये यह ज़िम्मेवारी आपके सिर रहेगी।"

इसी समय अमीलिया के साथ आभा ने उस कमरे में प्रवेश किया।

आभा दो दिनों की बीमारी में बिलकुल पीली पड़ गई थी, उसके नेत्रों की ज्योति अंतर्हित हो गई थी ; आँखें गड्ढे में घुस गई थीं। सदैव रक्तिम रहनेवाले कपोल पीले पड़ गए थे। ओष्ठ शुष्क

होकर नीरस हो गए थे। उसका इतना परिवर्तित रूप देखकर डॉक्टर नीलकंठ चकित रह गए।

उन्होंने उठकर आभा को सहारा देकर कुर्सी पर बैठाते हुए पूछा—"अब कैसी तबियत है?"

आभा ने उत्तर दिया—"अब तो अच्छी हूँ, आपसे एक बात पूछने आई हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"मुझे वहीं बुला लिया होता।"

आभा ने निष्प्रभ नेत्रों से कहा—"लेटे-लेटे मन बहुत क्लांत हो गया था। सुना है, राधा के साथ जो माधवी नाम की लड़की तूफ़ान से बचाई गई थी, वह मेरी उस जन्म की मा है। क्या यह सत्य है?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, वह तुम्हारी उस जन्म की मा है, और अब इस जन्म में फिर मा होगी।"

आभा ने विस्मय से अपने पिता की ओर देखा।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"लक्षणों से तो ऐसा ही मालूम होता है। तुम लड़कपन में बिस्कुट बहुत खाती थीं, उसकी भी याद उसे है। तुम्हें देखने के लिये वह बहुत लालायित है। आज जब वह जागेगी, तब तुम्हें ले चलूँगा।"

इसी समय पंडित मनमोहननाथ कमरे के बाहर चले गए, और उनके पीछे-पीछे स्वामी गिरिजानंद भी।

उनके जाने के बाद आभा ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"पापा, क्या वह सत्य ही मेरी मा हैं? आज चिर-संचित दुःख का नाश होगा। मैं उन्हें अभी देखूँगी। मुझे केवल दूर से दिखा दो।"

उसकी आँखों से हर्ष आँसू बनकर बाहर निकलने लगा।

डॉक्टर नीलकंठ ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"अब क्यों घबराती हो, उसके जागने पर हम तुम और चाची, सब चलेंगे।

आभा, अभी तक उसका प्रेम तुम्हारे ऊपर वैसा ही है। तुम्हें पह-चानेगी कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता।"

आभा कुछ कहने जा रही थी कि राधा ने आकर कहा—"माधवी सोकर उठी है, और आपको अपने पास न देखकर परेशान हो रही है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"आओ आभा, हम लोग चलें।" फिर राधा से कहा—"तुम चाची को उसी कमरे में ले आओ।"

आभा अमीलिया के हाथ के सहारे शीघ्रता से माधवी के कमरे की ओर जाने लगी। डॉक्टर नीलकंठ भी उसे एक तरफ़ से सहारा दिए हुए थे।

डॉक्टर नीलकंठ को देखकर माधवी की विकलता कम हुई। वह आज बिलकुल स्वस्थ मालूम होती थी। एक रात में उसका मुर-झाया हुआ सौंदर्य अपनी पुरानी मोहकता एकत्र कर रहा था।

डॉक्टर नीलकंठ को देखकर वह उनकी पद-रज लेने के लिये उठने लगी। किंतु आभा को देख ठिठककर वहीं खड़ी रही, और जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

आभा पास पहुँचकर, उसके गले से लिपटकर रोने लगी।

माधवी ने उसे अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"क्या यही मेरी आभा है?"

मातृ-प्रेम उमड़कर आभा को अपनी स्वर्गीय ज्योति से देदीप्यमान करने लगा।

माधवी ने उसका मुख चूमते हुए कहा—"हाँ, यही मेरी आभा है। देखो, इसके बाएँ गाल पर उसी जगह काला तिल है, जैसा इसके जन्म-काल में था। इसके बाएँ कान की लूर के पीछे भी एक मसा था, वह भी मौजूद है। मुख की गढ़न भी वही है; वैसा ही

आँखें हैं। तुम कहा करते थे कि आभा की आँखें बड़ी हैं। देखो, वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें हैं। लेकिन यह इतनी जल्दी कैसे बढ़ गई!"

माधवी आश्चर्य से उसका मुख देखने लगी। आभा अपने नेत्र बंद किए हुए किसी अनुपम आनंद का रस-भोग कर रही थी।

इसी समय राधा के साथ गंगा भी वहाँ आ गई।

डॉक्टर नीलकंठ ने गंगा की ओर इशारा करते हुए पूछा—"इन्हें पहचानती हो?"

माधवी ने क्षण-भर तक उसकी ओर देखा, फिर कहा—"अरे, चाची भी यहाँ आ गईं?"

गंगा भी सवेग उससे मिलने के लिये दौड़ी, और माधवी भी उठने लगी। आभा के पैर के नीचे उसकी साड़ी दब गई। सवेग उठती हुई माधवी पत्थर के फ़र्श पर गिर पड़ी। वह ज्यों ही उठने लगी कि उसके सिर में ठीक उसी स्थान पर पलँग का पाया लगा, जहाँ एडमंड हिक्स के जहाज़ में, अपनी रक्षा करने में, आघात पहुँचा था। हाल ही का अच्छा हुआ ज़ख़्म पुनः फट गया, और माधवी उसी क्षण बेहोश हो गई। रक्त की धारा सवेग उसी क्षत स्थान से निकलने लगी। सब लोग एक साथ चीत्कार कर उठे। आभा और गंगा बेहोश माधवी के शरीर से लिपट गईं।

चीत्कार सुनकर डॉक्टर हुसैनभाई और पंडित मनमोहननाथ दौड़े आए।

डॉक्टर हुसैनभाई की बहुत-सी दवाइयाँ माधवी के कमरे में रहती थीं। उन्होंने एक दवा बनाकर उसे तुरंत पिलाने की कोशिश की, किंतु माधवी की अचेतना इतनी गहरी थी कि वह दवा पी न सकी। डॉक्टर हुसैनभाई उसे इंजेक्शन देने का आयोजन करने लगे।

अर्मालिया ने अब तक उस क्षत स्थान को पानी से धोकर साफ़ कर दिया था, किंतु रक्त का स्राव किसी प्रकार बंद न होता था।

डॉक्टर हुसैनभाई ने इंजेक्शन लगाते हुए कहा—"आप लोग धैर्य धरें, अभी सब ठीक हो जायगा। चोट ज़्यादा गहरी नहीं मालूम होती। सिर्फ़ ऊपरी हिस्से में थोड़ा-सा घाव हो गया है। इतना ख़ून निकलने का कारण केवल यह है कि चोट पुरानी जगह में लगी है।"

उनके आश्वासित शब्दों पर सबको विश्वास हुआ, और आभा विनय-पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई उत्सुकता से दवा का असर देखने लगे।

माधवी की आँखें पथराई हुई थीं, जैसे जीवन का अंत हो चुका हो। उसके श्वास की गति भी मंद पड़ती जा रही थी, और रक्त-स्राव पूर्ववत् था। डॉक्टर नीलकंठ आकाश की ओर देखने लगे।

---

## ५

उसी दिन अमीलिया को एकांत में पाकर भारतेंदु ने कहा—"अमीलिया, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

अमीलिया ने उनकी ओर देखा तक नहीं, वह शीघ्रता से जाने लगी।

भारतेंदु ने बड़े कातर स्वर में कहा—"मुझे केवल दो-तीन बातें कहनी और पूछनी हैं, दो मिनट ठहरकर सुन लो।"

अमीलिया ने ठहरकर सरोष कहा—"क्यों, क्या कहना चाहते हो ? मेरा एक बार सर्वनाश कर क्या तुम्हें शांति न मिली ?"

भारतेंदु ने उसकी कटुता सहन करके कहा—"नहीं, उस दिन से अभी तक मुझे शांति नहीं मिली, और जब तक तुम क्षमा न करोगी, शायद मिलेगी भी नहीं।"

अमीलिया ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"मैं अब तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों का अर्थ अच्छी तरह जानने लगी हूँ। तुम्हें यह भय है कि मैं कहीं आभा से तुम्हारी कीर्ति प्रकाशित न कर दूँ!" उसका कूट-व्यंग्य भारतेंदु को अग्नि-शलाका की भाँति जलाने लगा।

भारतेंदु ने कहा—"नहीं, मुझे उसका भय नहीं, मैंने उसकी आशा त्याग दी है, और उससे भी कह दिया है कि मैं उसके योग्य नहीं। मैं अब अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।"

अमीलिया ने भ्रकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"वह कैसे ? क्या मुझे

हज़ार-दो हज़ार रुपए देकर मेरे सतीत्व का मूल्य चुकाना चाहते हो, या अपने पुत्र की क़ब्र पर कोई स्मारक-चिह्न बनाना चाहते हो, जिससे तुम्हारी कीर्ति अमर होकर भावी संतति की आँखें खोलती रहे ?"

भारतेंदु के लिये अपनी वेदना छिपाना असह्य हो गया।

अमीलिया ने फिर कहा—"तुम क्षमा माँगने आए हो। आज से पाँच वर्ष पहले कभी यह भाव तो उत्पन्न नहीं हुआ, आज कैसे हो गया ! मैंने न-मालूम कितने पत्र लिखे, कितनी अनुनय-विनय की, किंतु तुमने तो दो लाइनें लिखकर भी कभी मुझे सांत्वना न दी। जब घाव कुछ मुरझाने लगा था, तब उसे कुरेदकर फिर नमक छिड़कने आए हो।"

भारतेंदु ने जड़ित स्वर में कहा—"अमीलिया, तुम्हारा कहना सत्य है। इस समय मैं अपराधी हूँ। तुम जो चाहो, मुझे कह लो, वह मेरे लिये कम ही होगा। क्या मुझे अपनी स्थिति साफ़ करने का समय दोगी ?"

अमीलिया ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"क्या तुम्हारे पास अपनी सफ़ाई के अब भी सुबूत हैं ? याद रखना, यह आजकल की अदालत नहीं, जहाँ झूठी शहादतों पर सफ़ाई या बरियत हो जाती है, और मुलज़िम सचमुच अपराधी होकर भी छूट जाता है। अब मुझे पहले-जैसी सरल बालिका भी मत समझ लेना, क्योंकि तुम्हारे विश्वासघात ने मुझे दुरभिसंधि-पूर्ण संसार की चालों से सचेत कर दिया है, और मैं पुरुषों पर विश्वास नहीं करती।"

भारतेंदु ने मलिन स्वर में कहा—"मैं अपने अपराध से कब बरी होता हूँ। नत-मस्तक होकर उसे स्वीकार करता हूँ। मैं क्षमा माँगने नहीं, सज़ा का हुक्म पाने के लिये हाज़िर हुआ हूँ। अमीलिया, तुम विश्वास रक्खो, जो दंड तुम मेरे लिये निर्धारित करोगी, वह

मैं सहर्ष ग्रहण करूँगा। आभा के प्रति मेरा कोई कर्तव्य है, यह मुझे स्वयं नहीं मालूम। मैंने उससे अपनी पाप-कहानी, दो शब्दों में, कह दी है। आगे विस्तार-पूर्वक कहता, किंतु उसके सहसा बीमार होने से मैं नहीं कह सका।"

उनका स्वर अनुताप से रंजित था।

अमीलिया ने नम्र होते हुए कहा—"बस, इतना ही कहना है या और कुछ?"

भारतेंदु को कुछ कहने का साहस हुआ, उन्होंने कहा—"यह कैसे कहूँ कि नहीं कहना है, मेरे कहने के लिये बहुत है। मैंने कभी तुम्हारे साथ विश्वासघात करने का विचार नहीं किया। मैंने जो अपराध किया था, उसकी ग्लानि से मैं तुम्हारे सामने आने का साहस नहीं करता था, यहाँ तक कि पत्र लिखने की भी हिम्मत न होती थी। मेरा पाप मुझे डरा रहा था। मैं जन्म से ही भीरु स्वभाव का हूँ। जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे अपराध का वह पापमय परिणाम फला है, तब से उसकी ग्लानि से मैं स्वयं मरा जा रहा हूँ। मैंने आज तक आभा से कभी प्रेम-संभाषण नहीं किया, प्रेम का एक शब्द कभी उच्चारण नहीं किया। मैं करता कहाँ से, मेरे मन का सारा उत्साह तो नष्ट हो गया था, और मैं अकाल वृद्ध हो गया था। यह विवाह-संबंध पिताजी ने स्थिर किया था। मुझमें इतना साहस न था कि मैं उनका प्रतिवाद करूँ। मैंने यह यत्न किया था कि यह विवाह-संबंध टूट जाय, और इसीलिये आभा के पिता यहाँ तक आए हैं। जब मैंने उनसे कहा कि पिताजी ने मुझे एक पैसा अपनी संपत्ति से देने को नहीं कहा, तो वे लोग घबरा गए, और उसी का निर्णय करने के लिये यहाँ आए हैं। उसी दिन मेरी आत्मा ने बहुत धिक्कारा, इसलिये आभा से मैंने कह दिया कि मैं उसके योग्य नहीं। मैं जानता था कि उसे बहुत

कष्ट होगा, और वह धक्का सहन न कर सकेगी, फिर भी मुझे कहना पड़ा, इस भय से कि जब वह तुम्हारे मुँह से मेरी पाप-कथा का सब हाल सुनेगी, तो उसे बहुत ज़्यादा व्यथा होगी। मैं इसमें एक अक्षर भी झूठ नहीं कहता। सत्यता की कसौटी हृदय है, अपने हृदय से पूछकर देखो कि क्या मेरा कथन असत्य है?"

अमीलिया विचार में पड़ गई।

भारतेंदु फिर कहने लगे—"एक समय था, जब मैं तुम्हारे प्रेम के हिंडोले में झूलने का सुख-स्वप्न देखा करता था, किंतु आज वह आशा करना आकाश-कुसुम की इच्छा करना है। मैं वह प्रस्ताव नहीं कर सकता, और यदि करूँ भी, तो तुम इसमें अपना उपहास समझोगी। अब मेरा कल्याण इसी में है कि उस पाप-पंक के प्रक्षालन में अपना जीवन व्यतीत कर दूँ। शायद कभी तुम्हारे मन में मुझे क्षमा करने के भाव उदय हो जायँ।"

यह कहते-कहते भारतेंदु के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

अमीलिया ने अपना मुख फिराते हुए कहा—"तुम जाओ, ऐसी जगह जाओ, जहाँ मैं तुम्हें न देखूँ। तुम्हारे शब्द मेरे हृदय को पानी पानी किए डालते हैं। निष्ठुर, मैं अब भी तुम्हें उसी तरह प्यार करती हूँ। प्रेम का कभी नाश नहीं होता, और वह कितना कमज़ोर हृदय का होता है कि एक ही शब्द में अपना क्रोध, मान, अभिमान, रोष, राग, सब भूल जाता है। जिसने उसकी हत्या की है, जिस तलवार से उसके प्रेमिक वधिक ने आघात किया है, वह उसके और उसकी तलवार की धार के बोसे लेता है। तुम जाओ, मेरे मन में छलमयी आशा का दीपक प्रज्वलित न करो। मैं तुम्हें भूल गई हूँ, मैं अब दूसरे की वाग्दत्ता हूँ।" कहते-कहते अमीलिया दोनो हाथों से अपना मुख ढापकर रोने लगी।

भारतेंदु ने उसके समीप पहुँचकर उसे सांत्वना देने के लिये उसके सिर पर हाथ रक्खा। अमीलिया ने उसे क्रोध से हटा दिया, और कहा—"तुम मेरा स्पर्श न करो। वह अधिकार तुमने हमेशा के लिये खो दिया है। मेरे इस शरीर का अब कोई दूसरा व्यक्ति स्वामी है। मैं भ्रम के वश में होकर भूल कर बैठी हूँ, अब तो उसकी रक्षा मुझे करनी ही पड़ेगी। तुम अपना कर्तव्य पालन करो, मैं अपना। जीवन के प्रथम परिच्छेद में हम दोनो ने भूल की थी, उसका परिणाम हम दोनो को भोगना पड़ा है।"

भारतेंदु ने व्यथित स्वर में पूछा—"क्या तुमने किसी को अपना हृदय दे दिया है?"

अमीलिया ने कहा—"हृदय नहीं दिया है, शरीर दूँगी। हृदय तो मैंने उसे दिया था, जिसने उसकी क़द्र नहीं की, और ठुकरा दिया। मेरी उमंग, मेरा प्रेम, मेरा उत्साह, मेरा सुहाग, मेरी महत्त्वाकांक्षा, सब नष्ट हो गए हैं। तुम्हें ढूँढ़ने से उनकी राख भी नहीं मिलेगी। किंतु संसार में रहकर मनुष्य को कर्तव्य पालन करना पड़ता है, मनुष्य-धर्म भी पालन करना पड़ता है। जिसने मेरे शरीर की रक्षा की है, उसे यह शरीर तो समर्पित करना ही पड़ेगा।"

भारतेंदु की अंतरात्मा पीड़ा से झंकरित हो उठी। उन्होंने धीमे स्वर में पूछा—"वह भगवान् कौन है?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"कुछ दिनों में अपने आप प्रकट हो जायगा, जब वैध रूप से अपना शरीर उसे समर्पण करूँगी। पापा आ गए हैं, उनकी अनुमति लेना अवशेष है।"

भारतेंदु ने व्यथित हृदय से कहा—"यदि तुम्हें इसमें प्रसन्नता है, तो मैं तुम्हारे मार्ग में रोड़े नहीं अटकाऊँगा। तुम सहर्ष उससे विवाह करो। किंतु इसके पहले तुम मुझे क्षमा कर दो, बस मेरे लिये यही यथेष्ट है।"

अमीलिया ने कहा—"तुम्हें क्षमा मैं उसी दिन कर चुकी थी, जब तुमसे प्रेम किया था। अब क्या क्षमा करूँगी। अब तुम आभा के साथ विवाह कर उसे सुखी करो। मनुष्य अपने जीवन में कोई-न-कोई भूल अवश्य करता है। वह हमारे जीवन की भूल थी, इसे भूल जाना उचित है। मनुष्य यदि भूल न करे, तो वह मनुष्य की परिभाषा को पूर्ण नहीं करता।"

भारतेंदु ने कहा—"तुम्हारी क्षमा से मेरे जीवन का विकास आरंभ होगा। मैं अब तक जिस वेदना को सहन करता रहा हूँ, जो कसक निरंतर मुझे तड़पाती रही है, जो अग्नि अहर्निश प्रज्वलित होकर मुझे दग्ध करती रही है, उससे निस्तार तो इस जन्म में मिल नहीं सकता, किंतु मेरे मन को ग्लानि किसी अंश तक कम हो जायगी। मैं मनुष्यता से पतित हो गया हूँ, अब पुनः मनुष्य नहीं बन सकता। प्रायश्चित्त से अवश्य कुछ आत्मिक मालिन्य स्वच्छ हो जायगा। मैं तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सुखी होकर अपना कर्तव्य पालन करो।"

यह कहकर भारतेंदु शीघ्रता से अमीलिया को संदिग्ध अवस्था में छोड़कर चले गए।

अमीलिया ने उन्हें बुलाकर कहा—"अब ज़रा मेरी भी सुन लीजिए।"

भारतेंदु ने उस पर किंचित् कर्णपात नहीं किया।

अमीलिया क्षण-भर उनकी अपेक्षा कर माधवी के कमरे में चली गई।

---

## ६

मध्याह्न-काल का सूर्य अपनी प्रखर किरणों से संसार को दग्ध कर रहा था। स्वामी गिरिजानंद अपने कमरे में बैठे हुए माधवी के पुनर्जन्म के विषय में सोच रहे थे। मनुष्य दूसरे के सौभाग्य को देखकर कभी-कभी कुंठित हो जाया करता है—"यही उसका स्वभाव है। डॉक्टर नीलकंठ यद्यपि उनके अभिन्न-हृदय बंधु थे, और उनके सौभाग्य से उन्हें सुख अवश्य प्राप्त हुआ था, परंतु जब वह अपनी दशा का मिलान उनसे करते थे, तब इर्ष्या का कीटाणु उनके मन को दुःखित करने लगता। उनके अतीत जीवन के चित्र उनके सामने एक-एक करके आने लगे। वह विचारने लगे—"मानव-जीवन कितना रहस्य-पूर्ण है। पग-पग पर हमारे लिये विस्मय से अवाक् रह जाने के लिये वस्तुएँ मौजूद हैं। कौन जानता था कि यह निराश्रय लड़की उस जन्म की भद्र रमणी है, जिसकी स्मृति-सुवास से अब तक डॉक्टर नीलकंठ का घर सुरभित है। डॉक्टर साहब भी कैसे भाग्यवान् व्यक्ति हैं, जो इसी जन्म में अपनी खोई हुई निधि पा गए हैं। एक मैं हूँ, जो सब कुछ खो दिया है, जिसकी पुनः प्राप्ति की कोई आशा नहीं। तभी तो मुझे यह संसार छोड़कर भगवा पहनना पड़ा।

"माधवी ने कहा था कि भगवा पहने कपटी साधुओं से मुझे बहुत भय लगता है। वास्तव में मैं इस भगवा वस्त्र के आवरण में अपना कपटी हृदय छिपाए हुए हूँ। अपनी पाप-कथा मैं स्वयं जानता हूँ, और अगर आज संसार के सामने खोलकर रख दूँ, तो मुझे विश्वास है, कोई भला आदमी मुझे अपने द्वार पर खड़ा न होने

देगा। हत्यारा और ख़ूनी कहकर मेरा सब तिरस्कार करेंगे, और मेरा आदर-सम्मान सब कपूर की भाँति वायु में विलीन हो जायगा।

"आह! मेरा हृदय आज भी उस दिन की याद करके काँप उठता है, जब मैंने हृदय-हीन होकर अपनी प्रथम स्त्री को घर से बाहर निकाल दिया था। वह उस समय गर्भवती थी। मेरा बालक उसके गर्भ में था, लेकिन मैंने कोई परवा नहीं की। वह बहुत रोई-तड़पी, गिड़गिड़ाई, लेकिन मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। उस अँधेरी रात में निस्सहाय, केवल एक धोती पहनाकर, बाहर निकाल दिया था। हाय! अब मैं जब सोचता हूँ, तो भय से काँप उठता हूँ, और अपनी हृदय हीनता पर स्वयं मुझे आश्चर्य होता है।

"मोहिनी—यही उसका नाम था। वह वास्तव में मोहिनी थी। उसका जन्म यद्यपि ग़रीब-घर में हुआ, परंतु वह रूप का भंडार लेकर अवतीर्ण हुई थी। उसी प्रकार उसका शील और सौजन्य था। उसके बाप उसके बाल्य काल में ही मर चुके थे, और उसका पालन-पोषण, विवाह उसकी माता ने किया था। उसकी मा के मरने के बाद उसे कहीं सहारा मिलने की आशा न थी, फिर भी उसे निकाल दिया था। क्यों? मुझे उसकी सच्चरित्रता पर संदेह हुआ था। संदेह-मात्र से आज तक किसी ने ऐसा कष्ट अपनी स्त्री को न दिया होगा। उफ़्! मैं कितना बड़ा पापी हूँ।

"वैसी पति-परायणा स्त्री संसार में क्या दूसरी हो सकती है? जब तक मैं ड्यूटी पर से वापस आकर भोजन न कर लेता था, वह ख़ुद नहीं खाती थी। रेलवे में मुलाज़िम था, मुझे हमेशा बारी-बारी से आठ-आठ घंटे की ड्यूटी करनी पड़ती थी। मेरे साथ वह भी भुगतती थी, और फिर भी मैं उस पर अकथनीय अत्याचार करता था। कभी उसने उलटकर जवाब तक नहीं दिया। उस दिन

भी, जब दुर्घटना हुई थी, मेरी मार से उसकी पीठ और मुँह से ख़ून निकलने लगा था, किंतु वह ज़ोर से रोई तक नहीं। जब मैं उसे घर से बाहर निकालने लगा, तो वह मेरा पैर पकड़कर बैठ गई। मैं क्रोध से अंधा हो रहा था, उसे घसीटकर घर के बाहर निकाल लाया। जब उसने वहाँ भी मेरे पैर पकड़ लिए, तो उसके सिर पर आघात करके बेहोश कर दिया, फिर अपना दरवाज़ा बंद कर सो गया। सुबह उसका कहीं पता न था। मेरा पाप हँसकर मेरा विद्रूप करने लगा।

मैंने दूसरा विवाह किया। यह स्त्री पहले-जैसी न थी। रूप और सौंदर्य में पहली से अवश्य श्रेष्ठ थी, किंतु हृदय-हीनता में मुझसे भी बढ़कर थी। यदि यह कहूँ कि मेरा पाप मुझे दंड देने के लिये दूसरी स्त्री के रूप में प्रकट हुआ था, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। मैंने अपनी पहली स्त्री का ख़ून किया था, तो इसने मेरा ख़ून किया। यह तो उस महात्मा की कृपा थी, जिसने मुझे जीवन-दान देकर संसार की निस्सारता का उपदेश दिया और मुझे इस पवित्र धर्म में दीक्षित किया।

"संसार के लिये मैं मृत हूँ। मेरा असली परिचय कोई नहीं जानता। मेरे आत्मीय और मेरी स्त्री भी नहीं जानती कि इस संसार में गौरीशंकर जीवित है। मेरी दूसरी स्त्री अपनी कहीं पाप-वासना पूर्ण कर रही होगी, हास-विलास में मत्त होकर विषय-वासना का तांडव-नृत्य कर रही होगी, और मेरी पहली स्त्री मोहिनी—स्वर्गीया देवी—यथार्थ ही स्वर्ग में उत्सुकता से मेरे आने की प्रतीक्षा कर रही होगी। मुझे विश्वास है, वह मुझे क्षमा कर देगी, क्योंकि उसमें हृदय था, और था मेरे प्रति असीम प्रेम। किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसके खो जाने पर ही विदित होता है। मेरी अंतरात्मा में यह प्रतिध्वनि निरंतर उठा करती

है कि अपने पाप-कर्मों को भोगने के लिये ही मैं पुनर्जीवित हुआ हूँ।

"यह वृश्चिक-दंशन मुझे अहर्निश संतप्त किया करता है। क्या मोहिनी मुझे क्षमा करेगी। क्या मैं उससे क्षमा माँगने योग्य हूँ। इन सब प्रश्नों का उत्तर है केवल नहीं। परंतु फिर भी मुझे आशा है। मोहिनी, मोहिनी, मेरा अपराध क्षमा करो……।"

इसी समय राधा के साथ उसकी मा यशोदा ने उस कमरे में प्रवेश किया। यशोदा और स्वामी गिरिजानंद की आँखें चार हुईं, और दोनो की दृष्टि विस्मय और कौतूहल से स्थिर हो गई।

स्वामी गिरिजानंद ने विस्फारित नेत्रों से यशोदा की ओर देखते और आराम-कुर्सी से उठते हुए कहा—"तुम……"

इसके आगे वह कुछ कह न सके। उनके पाप ने उनका कंठ-स्वर रोक दिया। यशोदा काँप रही थी, उसमें खड़े रहने की शक्ति न था। वह अचेत होकर गिरने लगी। राधा और स्वामी गिरिजानंद ने उसे रोक लिया और फ़र्श पर वहीं लिटा दिया।

राधा आश्चर्य से स्वामी गिरिजानंद की ओर देखने लगी। आज के पहले उसने कभी अपनी मा को इस प्रकार मूर्च्छित होते नहीं देखा था।

राधा ने भय-जड़ित स्वर से कहा—"अम्मा, बेहोश हो गई, जाऊँ, डॉक्टर को बुला लाऊँ?"

स्वामी गिरिजानंद ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"नहीं, डॉक्टर बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं। अभी, क्षण-भर में यह मूर्च्छा दूर हो जायगी। बेटी, मेरे पाप का भेद खोलने का प्रयत्न मत करो। वास्तव में मैं ही तुम्हारा पिता हूँ, और तुम्हारी मा मेरी पहली स्त्री है, जिसे एक दिन मैंने उसके चरित्र पर संदेह करने से घर के बाहर, बुरी तरह से आहत कर, निकाल दिया था……।"

राधा ने विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हीं मेरे पिता हो, जिसके अत्याचार से हमें अभी तक निवृत्ति नहीं मिली। क्या तुम वही निरंकुश, पशु से भी गए-बीते, बर्बर हो, जिसने एक सती-साध्वी को, जब वह गर्भवती थी, असहाय निरवलंब दशा में, केवल एक धोती पहनाकर, घर के बाहर निकाल दिया था। तुम क्या वही........?"

स्वामी गिरिजानंद ने अपने दोनो हाथों से अपना मुँह छिपाते हुए कहा—"हाँ, मैं वही पापी हूँ। तुम मेरा ख़ूब तिरस्कार करो, यही मेरे लिये उपयुक्त दंड है। केवल तिरस्कार से मेरे पापों का प्रायश्चित्त न होगा। मुझे दंड दो, तब मेरा निस्तार होगा।"

राधा ने सक्रोध कहा—"फिर भी कहते हो कि मेरा भेद प्रकाशित न करो। यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें ले जाकर संसार के सामने खड़ा करूँगी, और कहूँगी कि इस भगवा चोले के भीतर एक पापी की आत्मा छिपी हुई है। संसार जिसकी भक्ति करता है, आदर करता है, जिसके पैरों पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाता है, वह एक महान् पापी, निरंकुश, अपनी स्त्री और गर्भजात पुत्री को नरक-पथ की ओर घसीट ले जानेवाला, उन्हें घर के बाहर निराश्रय निकालकर वेश्यावृत्ति करने के लिये मजबूर करनेवाला पातकी है। जिसके वेदांत के लेक्चर सुनकर आप प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, उससे उसके जीवन, उसकी स्त्री, और लड़की की कलंक-कहानी तो सुनिए। दोनो सुनकर फिर उसकी प्रशंसा कीजिए। उफ़! तुम्हें पिता कहते हुए शर्म आती है। इस समय प्रकट होकर तुमने हम लोगों के बचे-बचाए सुख का भी अंत कर डाला। शायद अम्मा की यह बेहोशी मृत्यु में परिणत हो जायगी। पहले तुमने उनकी आत्मा का ख़ून किया, और अब उनके जीवन का।"

स्वामी गिरिजानंद ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़े थे।

राधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"मैं जाकर पंडितजी से कहती हूँ कि आपने कैसे भयंकर पातकी को अपने यहाँ स्थान दिया है।"

राधा का तीक्ष्ण स्वर अपने कमरे में चिंतित बैठे हुए पंडित मनमोहननाथ ने सुना। वह किसी दुर्घटना की आशंका से तुरंत ही स्वामी गिरिजानंद के कमरे की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने देखा, एक प्रौढ़ा रमणी बेहोश पड़ी है, और स्वामी गिरिजानंद अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़े हैं, और राधा उनकी ओर सक्रोध देख रही है।

उन्होंने कठोर स्वर से पूछा—"क्या मामला है राधा?"

राधा ने तेज़ी के साथ कहा—"है क्या? आप अपने यहाँ ऐसे पापियों को आश्रय देते हैं, जिन्हें दुनिया में कहीं किसी भले आदमी के यहाँ क्षण-भर के लिये स्थान न मिलेगा। जिसे आप स्वामी गिरिजानंद कहकर सम्मान करते हैं, वह वास्तव में साधु नहीं, बल्कि इस पवित्र वेष में अपने पापों को छिपाए हुए महान् पातकी, ख़ूनी और संसार का, मनुष्य-समाज का, बड़ा भारी अपराधी है। जिसने एक सती-साध्वी को, जो वास्तव में निरपराध थी, अर्धरात्रि के समय, गहन अंधकार में, अधमरी अवस्था में, केवल एक फटी धोती पहनाकर घर के बाहर निकाल दिया था। वह सती उस समय गर्भवती थी, जिसका ज्ञान इस दुष्ट पातकी को था, फिर भी अपनी उस संतान की, अपनी स्त्री की कुछ भी परवा न कर, घर से निकालकर पथ की भिखारिनी कर दिया था। इसने उस सती को पाप-मार्ग में चलने के लिये मजबूर किया, क्योंकि हिंदू-समाज में स्त्रियों को पति से त्यक्त होने पर अपना गुज़ारा पाने का भी अधिकार प्राप्त नहीं। ग़रीब, निस्सहाय औरतें अदालत की शरण नहीं

ले सकतीं। मेहनत-मज़दूरी कर और शरीर को बेचकर ही वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं। उच्चवर्णों की जातियों की स्त्रियाँ पर्दे में बंद रहने से मेहनत-मज़दूरी करने लायक़ रहती नहीं, उनके लिये तो केवल वेश्या-वृत्ति का द्वार ही उन्मुक्त रहता है। यही नहीं, इन्हीं महात्मा ने अपनी पुत्री को भी, जिसका कोई अपराध न था, पतन के उस भयानक गह्वर में जाने दिया। मैं आपके सामने आँचर पसार न्याय की भीख माँगती हूँ। मेरी मा तो शायद मर ही गई, अब वह उठकर इन महात्मा का दर्शन न करेगी, लेकिन मैं प्रतिशोध चाहती हूँ, ईश्वरीय न्याय चाहती हूँ।"

कहते-कहते राधा का स्वर विह्वलता से अवरुद्ध हो गया। पंडित मनमोहननाथ की समझ में कुछ न आया। वह कभी स्वामी गिरिजानंद की ओर देखते, और कभी राधा की ओर। फिर यशोदा को इंगित करके कहा—"क्या यही तुम्हारी मा है?"

राधा जल की छींटें देकर अपनी मा की मूर्च्छा दूर करने में लगी हुई थी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

स्वामी गिरिजानंद ने साहस एकत्र करके उत्तर दिया—"जी हाँ, यह राधा की मा और मेरी पहली स्त्री है; और राधा का पिता मैं हूँ। जो स्वामी गिरिजानंद के नाम से संसार की आँखों में आज कई वर्षों से धूल डाल रहा है, वह वास्तव में एक महान् पातकी है। राधा ने जो कुछ भी मेरे लिये कहा, वह मेरा सत्य परिचय देने के लिये पर्याप्त नहीं। मैं पुराना जीवन भूलकर हर्ष मना रहा था कि मेरा पापमय अतीत कोई नहीं जानता, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं। मेरे मूक पाप स्वयं वाचाल होकर अपना भंडाफोड़ करेंगे। लेकिन इतना संतोष है कि मुझे प्रायश्चित्त करने का अवसर मिल गया।"

राधा के यत्न से यशोदा को कुछ होश आ रहा था। उसने आँखें खोलकर चारों ओर देखा, फिर विचारों को एकत्र करते हुए कहा—"क्या यह स्वप्न है? राधा, आज मैंने उनको देखा है। वही गौर मुख है, वे ही आँखें हैं, और माथे पर वही दाग़ है, जो गाँव में भाइयों से लड़ाई हो जाने पर लाठी लग जाने से हुआ था। वह ज़रूर वही हैं। अंतिम दिनों में उनकी सेवा करके अपना पाप-पंक धो डालने का प्रयत्न करूँगी। राधा, वह तुम्हारे पिता हैं, जन्म-दाता हैं।"

राधा ने क्रुद्ध होकर कहा—"अम्मा, शांत होकर चुप रहो। मुझे क्षमा करना, मैं उस पापात्मा को पिता के पवित्र पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये तैयार नहीं।"

यशोदा ने दाँतों-तले जिह्वा दबाते हुए कहा—"यह क्या कहती हो, अबोध! जो कुछ भी हो, वह तुम्हारे पिता हैं। पिता के अपराधों की विवेचना करने का अधिकार संतान और स्त्री को नहीं। वह कहाँ हैं? मुझे उनके पास ले चलो। उनको चरण-धूलि लगाकर अपना यह जीवन सफल करूँगी।"

स्वामी गिरिजानंद ने उसके सामने आकर, नत-जानु होकर कहा—"वास्तव में राधा का कहना सत्य है। मैं पिता का पवित्र पद पाने के लिये सर्वथा अयोग्य हूँ, और साथ ही पति का आदर-पूर्ण पद भी पाने के लिये। मैं किस प्रकार अपने पापों की क्षमा माँगूँ?"

यशोदा ने उठकर कहा—"यह क्या करते हो? मैं वैसे ही पाप-पंक में फँसी हुई घृणित हूँ, और क्यों मुझे संतप्त करते हो। ईश्वर की बड़ी कृपा थी, जो आपके दर्शन हो गए, मैं तो सब प्रकार से निराश हो गई थी। मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ, अपने चरणों की धूलि दूर से मेरे सिर पर डाल दो।"

पंडित मनमोहननाथ ने आगे आकर कहा—"देवी, जो तुम्हें

पापिनी कहे, वह स्वयं एक बड़ा भारी पापी है। तुम्हारी आत्मा की पवित्रता सर्वदा अक्षुण्ण है। शरीर कलुषित होने से आत्मा कभी कलुषित नहीं होती। मैं तो तुम्हें स्वामी गिरिजानंद से हज़ार-गुना पवित्र समझता हूँ। और, मेरी उतनी ही भक्ति की आप अधिकारिणी भी होंगी।"

यशोदा ने उन्हें देखकर घूँघट से अपना मुख छिपा लिया।

पंडित मनमोहननाथ उन लोगों को वहीं छोड़कर कुछ सोचते हुए कमरे के बाहर चले गए।

कमरे में किंचित् काल के लिये घोर निस्तब्धता छा गई। किसी अदृश्य शक्ति का मृदुल और नीरव हास्य उस छोटे-से कमरे में मुख-रित होकर राधा, यशोदा उर्फ़ मोहिनी और स्वामी गिरिजानंद को चकित करने लगा।

---

## ७

जिस समय स्वामी गिरिजानंद के कमरे में उपर्युक्त घटनाएँ हो रही थीं, उस समय माधवी की चेतनता वापस आई। डॉक्टर नील-कंठ, आभा और गंगा उसके पास बैठे हुए उत्सुकता से देख रहे थे। माधवी को होश में आते देखकर डॉक्टर हुसैनभाई विजय-भरी दृष्टि से उन सबकी ओर देखने लगे। माधवी ने चकित होकर चारो ओर देखकर पूछा—"मैं कहाँ हूँ ?"

आभा ने उसके समीप जाकर विह्वलता और व्यग्रता से पुकारा—"अम्मा, अम्मा !"

गंगा भी सस्नेह कह उठी—"बिटिया, अब कैसी तबियत है ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने अपनी व्यग्रता दमन करते हुए कहा—"पूर्ण रूप से होश में आने दो, फिर बातें करना। ज़्यादा चिल्लाने से शायद फिर तबियत ख़राब हो जाय।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने डॉक्टर नीलकंठ की बात का समर्थन किया।

आभा और गंगा दोनो अपने मन की भावनाएँ दबाकर माधवी की ओर देखने लगीं, जो उनकी ओर बड़े ही कौतूहल से देख रही थी।

माधवी ने अस्पष्ट स्वर से पूछा—"क्या तूफ़ान शांत हो गया ?"

आभा और गंगा को आशा थी कि माधवी उन दोनो को देख-कर प्रसन्न होगी, किंतु वे उसके लिये अब केवल अपरिचित थीं।

आभा ने माधवी के कपोल के पास अपना मुख ले जाकर कहा—"अम्मा, अम्मा, यह तुम्हारी आभा है। क्या तुम मुझे नहीं पहचानतीं ?"

माधवी ने स्फुट स्वर में कहा—"आभा, कौन आभा! मैं तो आभा नाम की किसी लड़की को नहीं जानती। हाँ, राधा को ज़रूर जानती हूँ, जिसने उन दुष्ट डीपोवालों से मेरी रक्षा की है, और शायद उस कप्तान से भी की, जो तूफ़ान में मेरी इज़्ज़त-आबरू लेने पर कटिबद्ध था। हाँ, यह तो बतलाओ, मैं कहाँ हूँ, और राधा कहाँ है?"

आभा ने अपने हृदय की आशाओं को दबाते हुए डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"पापा, चोट लग जाने से शायद अम्मा की सुध-बुध जाती रही है, और अब प्रलाप कर रही हैं।"

गंगा बड़े ध्यान से माधवी की ओर देख रही थी।

डॉक्टर नीलकंठ ने आभा के कथन के उत्तर में कहा—"नहीं आभा, तुम्हारा यह अनुमान सर्वथा मिथ्या है। इसे वास्तविक ज्ञान अब हुआ है।"

उन्होंने बड़े कष्ट से अपनो मनोवेदना छिपाई।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आपका अनुमान सत्य प्रतीत होता है। दरअसल इस व़क्त पूरी तरह से होश हुआ है।"

माधवी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उन लोगों की ओर देखते हुए पूछा—"क्या है? आप लाग मेरी ओर इस प्रकार क्यों देख रहे हैं? जहाज़ तूफ़ान से बच गया है या नहीं? राधा कहाँ है? क्या वह भी मुझे धोखा देकर चली गई? क्या आप राधा को नहीं पहचानते?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"राधा यहाँ है, अभी बुलाता हूँ। उस बदमाश कप्तान का जहाज़ डूब गया, और वह भी डूब मरा। आप और राधा, दोनो बच गई हैं, और इस वक़्त बिलकुल निरापद हैं। आपको क्या कुछ याद है कि आप कैसे बेहोश हो गई थीं?"

माधवी ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"उफ़्! जहाज़ डूब गया? तब तो जहाज़ के कितने ही आदमी डूब गए होंगे। किस प्रकार उनके प्राण निकले होंगे।"

माधवी विचार में पड़ गई।

आभा ने अधीर स्वर में कहा—"अम्मा, क्या आप मुझे फिर भूल गईं?"

यह कहकर वह माधवी के वक्षःस्थल पर गिर पड़ी। माधवी उसकी ओर व्याकुल दृष्टि से देखने लगी।

डॉक्टर नीलकंठ ने आभा को उठाते हुए अवरुद्ध कंठ से कहा—"आभा, किस छलमयी छलना के फेर में पड़ रही हो। वह तो एक स्वप्न था, जिसने क्षण-भर के लिये हमें अपनी झलक दिखा दी। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न का नाश होता है, उसी प्रकार अब यह भाव भी नष्ट हो गया। इसमें तिल-भर संदेह नहीं कि यह उस जन्म की तुम्हारी माता है, परंतु इस जन्म के विकास के साथ पुरानी भावनाओं और विचारों का अंत हो गया। अब एक नवीन संसार का सूत्र-पात है। यह तो भगवान् की इच्छा थी, जिसने अपना चमत्कार दिखाकर हमारे नेत्र खोल दिए हैं। मस्तिष्क का वह स्थान जहाँ अतीत की स्मृति संचित रहती है, भीषण धक्का लगने से उथल-पुथल हो गया था, अब दूसरा धक्का लगने से सब वस्तुएँ यथास्थान आ गईं, और पुराने कार्य-क्रम पर मानसिक विचार अपना काम करने लगे। अब चाहे जितना यत्न करो, गत जीवन की स्मृति पुनः जाग्रत् नहीं होने की, और तुम्हारी मा अब सदैव के लिये पुनः मर गईं समझो।"

कहते-कहते उनके नेत्र अश्रुओं से सिक्त हो गए, और कंठ-स्वर रुक गया। आभा ने बालकों की भाँति पिता के वक्षःस्थल में अपना

सिर छिपाते हुए अधीरता से कहा—"पापा, मैं तो आभा से दो बातें भी न कर पाई।"

यह कहकर वह बड़े वेग से रो पड़ी।

डॉक्टर नीलकंठ का कलेजा पानी-पानी होकर बहा जा रहा था। उन्होंने आभा की पीठ पर स्नेह-हाथ फेरते हुए कहा—"आभा, तुम्हारी मा तो बहुत दिन हुए, मर गई थी। अब उसकी याद करके क्यों दुखी होती हो। माता-पिता का संयुक्त भार तो मैंने अब तक वहन किया है, वैसे ही करता रहूँगा। मेरे रहते तुम्हें कोई कष्ट नहीं होने पाएगा।"

गंगा, अभागिनी गंगा अपने मन की सारी उमंगें लिए ही रह गई थी। आभा का रुदन देखकर वह भी रोने लगी। अतीत की उस दुर्घटना की पुनरावृत्ति हो रही थी, जब आभा की मा सावित्री का देहावसान आज से लगभग सत्रह वर्ष पूर्व हुआ था। अंतर केवल इतना था कि उस दिन सावित्री की आत्मा, पांचभौतिक शरीर को त्यागकर इसी माधवी के कलेवर में प्रविष्ट होने के लिये आतुरता के साथ प्रस्थान कर गई थी, और आज उसी अतीत की स्मृति निर्वाणप्राय दीपक की भांति प्रज्वलित होकर सदैव के लिये विस्मृति के निविड़ कालिमांधकार में विलीन हो गई। स्मृति और विस्मृति के संबंध का ज्ञान इस प्रकार पहले कभी किसी को अनुभव हुआ था या नहीं, यह कौन कह सकता है? क्षुद्र ज्ञान के अहंकार का पुतला मनुष्य तो अपनी बीरबल की खिचड़ी अलग ही पकाने में संलग्न रहता है।

इसी समय पंडित मनमोहननाथ ने आकर वह रुदन का दृश्य देखा। वह स्तंभित होकर उनकी ओर देखने लगे। अभी क्षण-भर पहले पति-पत्नी का कल्पनातीत पुनर्मिलन देखकर वह चकित हो चुके थे, और यहाँ एक दूसरे परिवार को रुदन करते देख, किसी

भावी आशंका से सिहरकर उन्होंने डॉक्टर हुसैनभाई से पूछा—"क्या हुआ, माधवी सकुशल है ?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"जी हाँ, सकुशल है। उसकी बेहोशी तो दर असल आज ही दूर हुई है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"मैं समझा नहीं।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उत्तर दिया—"आज सुबह की बेहोशी के बाद जब उसे होश आया, तो उसने राधा और जहाज़ तथा कैप्टेन के बारे में प्रश्न किए, जिससे अनुमान होता है कि इस जन्म के विचारों के कार्य-क्रम में, दिमाग़ में उथल-पुथल हो जाने से, जो अंतर आ गया था, दुबारा उसी ज़ख़्म पर चोट लग जाने और अपनी जगह पर आ जाने से वह पुनः जारी हो गया। अब न तो उसे पूर्व-जन्म की कोई बात याद है, और न वह डॉक्टर नीलकंठ वग़ैरह को पहचानती है। इस समय वह उसी प्रकार अपरिचित है, जैसे हम लोग।"

डॉक्टर नीलकंठ इस समय तक अपने शोक पर विजयी हो चुके थे। संयत चेष्टा से मनमोहननाथ के समीप आकर कहा—"हाँ पंडितजी, वह तमाशा ख़त्म हो गया। उसका आविर्भाव तो केवल हम लोगों को दुखी करने के लिये हुआ था। ईश्वर की सृष्टि का यह नियम है कि प्रत्येक वस्तु उतनी ही देर रहती है, जितनी देर उसकी आवश्यकता होती है। संसार का प्रत्येक मनुष्य अपना कोई विशेष कार्य करने के लिये अवतीर्ण हुआ है, इसलिये वह उसे संपादन करता है। उसका जीवन उस वक़्त तक रहेगा, जब तक वह उस विशेष कार्य का संपादन नहीं कर लेता। इसी प्रकार हमारे पापों के कारण मुरझाया हुआ घाव ताज़ा होना था, वह हो गया। अब उसके गत जीवन की स्मृति का नाश न होना अवश्य विस्मय-जनक होता।"

पंडित मनमोहननाथ ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या माधवी वे सब बातें भूल गई ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मलिन हास्य के साथ कहा—"हाँ, सब कुछ भूल गई। एक बात भी याद नहीं। आभा और चाची को भी नहीं पहचानती। अतीत की सब घटनाएँ विस्मृति के पर्दे में आच्छादित हो गई हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने माधवी के समीप जाकर पूछा—"माधवी, क्या तुम मुझे नहीं पहचानतीं ?"

माधवी अपनी आँखें बंद किए किसी विचार में लीन थी। उसने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलकर उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी आपको देखा है।"

पंडित मनमोहननाथ ने पूछा—"अच्छा, अपना परिचय बताओ, तुम कौन हो, और कैसे डीपोवालों के जाल में पड़ गई थीं ?"

फिर डॉक्टर हुसैनभाई से पूछा—"बातें करने से कोई हानि पहुँचने की संभावना तो नहीं ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"आप थोड़ी देर तक बातें कर सकते हैं। किसी तरह की हानि न पहुँचेगी।"

पंडित मनमोहननाथ ने पुनः माधवी से वही प्रश्न किया।

माधवी कुछ देर सोचने के बाद कहने लगी—"कानपुर-ज़िले में कुंडलपुर-नामक एक गाँव है, वहाँ के पंडित मधुसूदन मिश्र की मैं लड़की हूँ। मेरे पिता का देहांत उस समय हुआ, जब वह मेरे लिये कोई पात्र खोजने गए थे। तभी से मेरे दुर्भाग्य के दिन आरंभ हुए। गाँववाले मुझे अभागिनी कहने लगे, और तरह-तरह के नाम देने लगे। मेरी विधवा मा ने मेरा विवाह सत्तर वर्ष के वृद्ध से किया, और मैं विवाह के पश्चात् जब अपनी ससुराल गई, तो मेरे पतिदेव मर चुके थे। विवाह के कई काम बक़ाया थे, और

उनके समाप्त होने के पहले ही मैं विधवा हो गई। मेरे पति के मरते ही उनके पट्टीदारों ने सारी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया, और मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं पुनः अपने मायके वापस आई। सौभाग्य का सिंदूर माँग में भरकर गई थी, और उसे हमेशा के लिये पुँछवाकर वापस आई। अभागिनी होने का इससे ज़्यादा प्रमाण और क्या चाहिए। मेरी मा को और स्वयं मुझे विश्वास हो गया कि मैं मंदभागिनी हूँ। मैं जहाँ जाऊँगी, वहाँ केवल विपत्ति की सृष्टि होगी। इसी तरह कुढ़ते-कुढ़ते अपने दिन व्यतीत करने लगी। आख़िर एक दिन अम्मा का भी देहांत हो गया। मेरे पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उन प बहुत क़र्ज़ था। उनके सामने ही जायदाद का एक बड़ा हिस्सा महाजनों के अधीन हो चुका था और जो कुछ बचा, वह उनके मरने के बाद नीलाम होकर चला गया। दो-तीन खेतों से हम मा-बेटी किसी तरह अपना गुज़ारा करती थीं, और उनके मरने के पश्चात् वह द्वार भी बंद हो गया। रिश्तेदारों ने क़ब्ज़ा कर लिया, और मुझे घर के बाहर निकलना पड़ा। मैं पढ़ी-लिखी थी; सोचा, शहर में जाकर किसी स्कूल में नौकर हो जाऊँगी। इसी विचार से एक रात को, गाँववालों के उपद्रव से मुक्त होने के लिये, शहर की ओर चल दी। जब मैं स्टेशन पहुँची, तो वहाँ एक वृद्ध, जिसके साथ दो स्त्रियाँ थीं, मिला। उसने मेरा हाल सुनकर कई प्रकार से मुझे आश्वासन दिया। कपटी संसार से मैं बिलकुल अनभिज्ञ थी। मैंने उसकी बातों पर विश्वास किया, और ऐसा सहृदय बंधु मिल जाने से भगवान् को मन-ही-मन अनेकों धन्यवाद दिए। मुझे क्या मालूम था कि वह दुष्टों और पापियों का सरदार है। कानपुर जाकर हम लोगों को उसने एक पक्के मकान में उतारा, और जब मैंने उसके अंदर जाकर वहाँ का रोमांचकारी दृश्य देखा, तो मैं भय से सिहर

उठी। अपनी रक्षा के लिये भगवान् से प्रार्थना करने लगी। उस लंकापुरी में राधा मुझे त्रिजटा-रूप में मिल गई, जिसने मुझे आश्वासन और मेरी रक्षा करने का वचन दिया। भाग्य-वश उसी दिन सबको कलकत्ते ले जाने के लिये तार आ गया, और हमें तुरंत रवाना होना पड़ा। कलकत्ते पहुँचकर हमसे एक काग़ज़ पर अँगूठे का निशान बनवाया गया, और हमें एक जहाज़ पर बैठा दिया गया। जिस दिन जहाज़ रवाना हुआ, रात को बड़ा भयंकर तूफ़ान आया। मैं राधा से बातें कर रही थी, इसी समय एक दूसरी औरत, जो उसी पापी-दल की थी, आई, और राधा से अकथ्य बातें करने लगी। मैं अपने कमरे में गई और राधा मेरे खाने का प्रबंध करने चली गई। राधा के जाते ही वह स्त्री, जिसका नाम गुलाब था, मुझे अपने कमरे में ले चलने के लिये ज़िद करने लगी। मैं कम-से-कम इन लोगों को प्रसन्न रखना चाहती थी, क्योंकि उस पाप-पुरी में इन्हीं का सहारा था। गुलाब मुझे घुमाती हुई ऊपर के खंड में ले गई, जहाँ कप्तान का कमरा था। वहाँ उसने मुझे उसके कमरे में जाने को कहा। मेरे इनकार करने पर उसने बड़े ज़ोर से धक्का दिया, जिससे मैं बेहोश हो गई। होश आने पर देखा, वह दुष्ट कप्तान मुझे मदिरा पिलाने का प्रयत्न कर रहा है। मैंने पीने से इनकार किया, और उसकी बहुत प्रकार से आरज़ू-मिन्नत की, परंतु वह दुष्ट न पसीजा, और मेरे ऊपर आक्रमण करने लगा। इसी समय एक बड़ा विकट शब्द हुआ, और जहाज़ बड़े ज़ोर से डग-मगा गया। मैं गिर पड़ी, और फिर मुझे होश न रहा। होश आने पर मैं अपने को यहाँ पाती हूँ। बस, यही मेरी कहानी है।"

पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर नीलकंठ बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने कहा—'यहाँ पहले कभी तुम थीं, क्या तुम्हें यह याद नहीं पड़ता ?"

माधवी ने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं इस जगह कभी नहीं आई। इतनी बड़ी होकर मैं कभी अपने गाँव से बाहर नहीं गई। मुझे याद नहीं, मैंने कभी आप लोगों को देखा हो। आपके चेहरे से मालूम होता है कि आप सज्जन पुरुष हैं। मैं अनाथ हूँ, दुष्टों से मेरी रक्षा कीजिए, यही प्रार्थना वारंवार हाथ जोड़कर करती हूँ।"

कहते-कहते माधवी की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी।

पंडित मनमोहननाथ ने स्नेह के साथ उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। तुम्हें मैंने अपनी धर्म-कन्या बनाया है। तुम अपना सब भय दूर करो।"

माधवी को आश्वासन मिला। उसने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से पंडित मनमोहननाथ की ओर देखा।

उनकी आँखों से भी ममत्व और वात्सल्य द्रवीभूत होकर उसे सांत्वना प्रदान करने लगे।

---

## ८

सर रामकृष्ण ने बड़े आदर के साथ बाबू मातादीन को बैठाते हुए कहा—"आज आप बहुत दिनों में आए?"

अभी थोड़ी देर पहले पुलिस-डायरी उनके पास आ चुकी थी, जिसे पढ़कर उन्हें भली भाँति मालूम था कि वह कहाँ गए और क्या करते थे। यद्यपि बाबू मातादीन अपने को बहुत चालाक समझते थे, और उन्हें इस बात का अभिमान भी था, मगर सी० आई० डी० के व्यक्ति उनसे भी अधिक धूर्त थे। जो आजकल उनका बड़ा प्रिय नौकर हो रहा था, वह वास्तव में सर रामकृष्ण के आज्ञानुसार काम करता हुआ सी० आई० डी० का एक व्यक्ति था, जो गुप्त रीति से उनकी गति-विधि पर नज़र रखता था, और अपनी रिपोर्ट नित्य भेजा करता था। इसके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी थे, जो बाहर रहकर उन पर नज़र रखते थे।

बाबू मातादीन के बैठ जाने पर उन्होंने अपने प्रश्न को दोहराया।

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"हुज़ूर के दुश्मनों को शिकस्त देने के फ़िराक़ में गया था।"

सर रामकृष्ण ने उत्साहित करनेवाली मधुर हँसी के साथ कहा—"कहाँ-कहाँ गए, और क्या किया, ज़रा मैं भी सुनूँ।"

बाबू मातादीन ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—"अनूपकुमारी के असली पति का पता लग गया है! वह अभी जीवित है।"

सर रामकृष्ण ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"कहाँ है?"

बाबू मातादीन ने सहास्य उत्तर दिया—"वह संन्यासी होकर देश-विदेश में उपदेश देता फिरता है। आजकल वह विदेश में है, लेकिन शीघ्र ही आने की संभावना है। मुझे यह भय था कि कहीं वह मर न गया हो। लेकिन यह ठीक पता चल गया है कि वह जीवित है। यही समाचार देने के लिये मैं ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"यह तो अच्छी ख़बर है। अब आप उसकी हुलिया थाने में जाकर लिखा दें, पुलिस उसका पता लगा लेगी। मैं इंस्पेक्टर जेनरल पुलिस को अपना डी० ओ० लिख दूँगा।"

बाबू मातादीन ने उठते हुए कहा—"जो हुक्म। हाँ, क्या आपने कुँवर साहब को वह औषधि खिलाई थी?"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए कहा—"उफ़! मैं तो उसके लिये आपको धन्यवाद देना बिलकुल भूल गया था। आप कहेंगे, बड़े आदमियों का स्वभाव ऐसा ही होता है। भाई, माफ़ करना।"

बाबू मातादीन ने उत्फुल्ल होकर कहा—"यह आप क्या फ़रमाते हैं। मैं तो आपके पैर की जूतियों के पास बैठनेवाला हूँ। ख़ैर, मुझे सबसे बड़ी ख़ुशी इस बात की है कि मेरा कथन सत्य प्रमाणित हुआ। मुझे यक़ीन है, उसकी एक ही ख़ूराक से कुँवर साहब की बीमारी चली गई होगी।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"हाँ, फ़ायदा तो एक ही ख़ूराक ने किया है। ज़रा ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।"

यह कहकर वह घर के अंदर चले गए, और थोड़ी देर में नोटों का एक पुलिंदा लाकर उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए, यह आपके लिये इनाम है। ये पाँच हज़ार के नोट हैं।"

बाबू मातादीन ने बड़ी दीनता से उन्हें वापस करते हुए कहा—

"यह आप क्या फ़रमाते हैं, क्या मैं यह कभी ले सकता हूँ ? पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि कमतरीन आपका पुश्तैनी ख़ादिम है, कुँवर साहब का तो कम-से-कम है ही। अगर अपने खाल की जूतियाँ बनाकर तुम्हें और कुँवरानी साहबा को पहनाऊँ, तो भी उनके एहसान से मैं उऋण नहीं हो सकता। मेरे लिये इतना ही पुरस्कार बहुत है, जो मुझे संतोष और अकथनीय आनंद प्राप्त हुआ है। मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। क्या मैं कुँवर साहब के दर्शन कर सकता हूँ ?"

सर रामकृष्ण ने नोटों को मेज़ पर रखते हुए कहा—"यह याद रखिए, आप इन्हें मंज़ूर न करके मुझे और ख़ासकर लेडी साहबा को बहुत दुःखित कर रहे हैं। कुँवर साहब इस समय कहीं बाहर गए हुए हैं, किसी दूसरे व़क्त आप आकर उनसे मिल लीजिएगा।"

बाबू मातादीन विदा होकर चले गए।

उनके जाने के बाद सर रामकृष्ण धीमे स्वर में कहने लगे—"वास्तव में बड़ा धूर्त आदमी है। मैंने लोभ दिया, लेकिन उसमें न फँसा। यदि कोई कच्चा खिलाड़ी होता, तो पाँच हज़ार रुपए कदापि न छोड़ता। मालूम होता है, कोई बहुत बड़ी मछली मारने की प्रतीक्षा कर रहा है। अच्छा, इसकी उस दवा को तो किसी पर आज़माऊँ। अभी तक वह ज्यों-की-त्यों पड़ी है। जिस दवा के प्रभाव से कुँवर साहब अच्छे हुए हैं, वह ज़रूर इसी की बनाई हुई है। बड़ा विलक्षण पुरुष है। मैंने भी रस्सी ढीली कर दी है, देखूँ, वह कितना दौड़ता है। जिस वक़्त यह मेरे लिये कंटक सिद्ध होगा, निकालकर फेंक दूँगा। बंसी में फँसी हुई मछली चाहे जितनी दूर भाग जाय, शिकारी जब उसे खींचेगा, तो आना ही पड़ेगा।"

कुँवर साहब के लिये अब क्या करना उचित होगा ? राजा साहब को बुढ़ापे में इश्क सवार हुआ है, जिससे अपने घरवालों की फ़िक्र

नहीं करते। लड़कियाँ इतनी बड़ी हो गई हैं, लेकिन विवाह नहीं करते। ऐसे गुणवान् पुत्र को त्यागकर एक रखैल के लड़के को गद्दी पर बैठाने के लिये आकुल हैं। अवध के ताल्लुक़ेदारों में आज तक ऐसा नहीं हुआ, अब होना भी असंभव है। तभी तो मैं भी चुपचाप बैठा हूँ। अगर आज चाहूँ, तो मैं उनकी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिला दूँ, लेकिन फिर भी मेरे संबंधी हैं। इसमें मेरी ही बदनामी होगी। यह भी सुनने में आया है कि वह अनूपकुमारी से विवाह करने जा रहे हैं। हालाँकि इस विवाह करने से मेरी कोई क्षति नहीं, और न इससे कुँवर साहब के अधिकारों पर कुछ व्याघात हो सकता है, परंतु है लज्जा-जनक। मेरे संबंधी होने से मुझे भी नदामत उठानी पड़ेगी। इसे रोकना मेरा कर्तव्य है।"

इसी समय मालती ने आकर कहा—"क्या आपने आज का लीडर पढ़ा है?"

उसके स्वर में उद्विग्नता थी।

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"अभी नहीं पढ़ा। आज काम बहुत था, इसलिये अवकाश नहीं मिला। क्या कोई विशेष समाचार है?"

मालती ने सिर झुकाए हुए कहा—"जी हाँ, अनूपगढ़ के बारे में एक अद्भुत ख़बर आई है।"

सर रामकृष्ण ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"देखूँ, क्या ख़बर है।"

मालती समाचार-पत्र देकर चली गई।

सर रामकृष्ण ध्यान-पूर्वक पढ़ने लगे। लीडर के रायबरेली के संवाददाता ने लिखा था—"अनूपगढ़ के राजा सूरजबख़्शसिंह हिंदू-समाज के सुधारक नेता हैं। आप प्रसिद्ध दानी हैं। और, उनके दान से आज कितनी ही संस्थाएँ चल रही हैं। आप केवल आदर्शवादी निष्कर्मण्य सुधारक नहीं, वरन् कर्मिष्ठ हैं। आपके

गुणों से मोहित होकर जनता ने आपको एसेंबली का सदस्य मनोनीत करके भेजा है। आप एसेंबली में कई महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव रखनेवाले हैं, जिससे हिंदू-समाज की स्त्रियों को विशेष अधिकार मिलेंगे, और उनकी शोचनीय दशा में बहुत कुछ परिवर्तन होगा। यह जानकर सबको प्रसन्नता होगी कि यद्यपि उनकी अवस्था विवाह-योग्य नहीं है, और न वह विवाह करने के इच्छुक हैं, परंतु संसार के सामने एक उदाहरण रखने के लिये इस अवस्था में भी विधवा-विवाह करेंगे। यह विवाह अनुकूल अवस्था की वधू के साथ होगा। वधू प्रौढ़ अवस्था की है, जिससे अनमेल विवाह नहीं कहा जा सकता। ताल्लुक़ेदारों के समाज में ऐसा विधवा-विवाह पहला ही है। नवयुवकों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और साहस-पूर्वक विधवा-विवाह कर हिंदू-समाज का पाप धोने की कोशिश करनी चाहिए। अंत में हम श्रीमान् राजा साहब को उनके साहस और निर्भीक विचारों के लिये बधाई देते हैं!"

सर रामकृष्ण यह समाचार पढ़कर ज़ोर से हँस पड़े। उनकी हँसी से कमरा गूँज उठा।

उनकी हँसी सुनकर लेडी चंद्रप्रभा ने आकर पूछा—"ऐसी हँसने की कौन ख़बर आई है?"

सर रामकृष्ण ने हँसते हुए कहा—"बड़ा ही अद्भुत समाचार है। क्या यह तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे समधी साहब एक विधवा से विवाह करके एक आदर्श हम लोगों के समाज में रखने जा रहे हैं। अब मुझे भी विधवा-विवाह करने के लिये किसी बूढ़ी विधवा को खोजना पड़ेगा।"

यह कहकर वह फिर हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"वाह! इसमें हँसने की कौन बात? तुम भी कोई विधवा से विवाह कर लो। तुम्हारा ही अरमान क्यों

रह जाय। विधवा वही अनूपकुमारी होगी, जिसने उस घर की सारी इज़्ज़त-आबरू पर पानी फेर दिया है।"

सर रामकृष्ण ने हँसी रोकते हुए कहा—"मालूम तो ऐसा ही होता है। अभी उस भाग्यशालिनी का नाम ज़ाहिर तो नहीं हुआ, लेकिन अनुमान से ऐसा ही मालूम होता है। बेचारे को बुढ़ापे में बुढ़भस सवार हुआ है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"यह विवाह तो रोकना पड़ेगा। चाहे जैसे हो, मैं यह विवाह कदापि न होने दूँगी।"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"इसका रोकना मेरे और तुम्हारे लिये कब संभव है। विवाह हो जाने से हमारा नुक़सान ही क्या है। इस विवाह से कुँवर साहब के हक़ पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता। पाटवी तो पाटवी ही रहेगा, और अभी तक ऐसा क़ानून नहीं बना, जिससे रखैल के लड़के गद्दी के मालिक हो सकें।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"लेकिन विवाह के बाद वह रखैल नहीं रहेगी, वह तो विवाहिता हो जायगी।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"उसका पुत्र उस समय पैदा हुआ था, जब वह उप-पत्नी होकर रहती थी, इसलिये वह किसी प्रकार गद्दी का हक़दार नहीं हो सकता।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"लेकिन जो पुत्र विवाह के बाद होंगे, वे तो गुज़ारा पाने के हक़दार होंगे?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"ऐसा विवाह हिंदू-समाज की रीति के प्रतिकूल है, इससे यह क़ानूनन् विहित नहीं समझा जायगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"विधवा-विवाह को सरकार ने जायज़ क़रार दिया है, फिर वह नाजायज़ कैसे समझा जायगा?"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"वर और वधू को एक ही जाति का होना चाहिए, और इसके अतिरिक्त हम तल्लुक़ेदारों

का क़ानून ही दूसरा है। लेकिन यह विवाह अवश्य रोकना पड़ेगा। और कुछ नहीं, इससे हमारी इज़्ज़त में भी बट्टा लगता है, क्योंकि वह हमारे निकट-संबंधी हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"ख़ैर, यह तो आपको भी अंगीकार करना पड़ा कि यह विवाह रोकना चाहिए।"

सर रामकृष्ण हँसने लगे।

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"उस बाबू मातादीन का क्या हुआ? उसका बहुत दिनों से कोई हाल नहीं मिला?"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"वह तो आज भी आया था। बड़ा ही धूर्त आदमी है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्सुकता के साथ पूछा—"क्या कहता था?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"कह गया है कि अनूपकुमारी के पति का पता लग गया है, और वह अभी तक जीवित है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने विस्मित स्वर में पूछा—"क्या अभी तक अनूप-कुमारी का पति जीवित है! तब तो वह विधवा नहीं है। हिंदू-क़ानून के मुताबिक़ कोई हिंदू-स्त्री पति रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकती। अगर हम लोग विवाह होने के पहले-पहले उसके पति को ढूँढ़ निकालें, तो फिर यह विवाह नहीं हो सकता। अपने आप रुक जायगा।"

सर रामकृष्ण ने मुस्किराते हुए कहा—"यह तो ठीक है, लेकिन उसे ढूँढ़ निकालना कोई सहज काम नहीं। मातादीन यह भी कहता था कि इस समय वह विदेश में है। मैंने उससे उसकी हुलिया थाने में लिखा देने को कह दिया है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"चाहे जैसे हो, इस विवाह को रोकना ही पड़ेगा। मैं कुछ नहीं जानती।"

सर रामकृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा—"जो हुक्म सरकार! घर की सरकार का हुक्म तो पहले मानना पड़ता है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"यह क्या करते हो, तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं। सब लड़के-बाले बड़े हो गए हैं, अगर कोई देख ले, तो क्या कहेगा? मैं आज से तुम्हारे कमरे में क्या, तुम्हारे पास नहीं आऊँगी। तुम्हारा दिमाग़ तो अँगरेज़ों के साथ रहकर उनका-जैसा हो गया है, लेकिन मैं हिंदू-स्त्री हूँ, मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगता।"

यह कहकर वह तेज़ी के साथ कमरे से बाहर हो गईं।

सर रामकृष्ण हँसते हुए उन्हें बुलाते ही रहे।

## ६

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अनूपकुमारी का चित्र उसके सामने रखते हुए कहा—"देखो, मैं तुम्हारा यह चित्र अख़बारों में प्रकाशित कराऊँगा। तुम्हें पसंद है या नहीं?"

अनूपकुमारी ने मलिन हास्य के साथ कहा—"यह फ़िज़ूल आडंबर किसलिये करते हो। अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के मुख की श्री अंतर्हित हो गई। उनके भूले हुए मन के घाव पर धक्का लगा, और अपनी वास्तविक दशा का भान हो गया। बाबू मातादीन के प्रति हृदय विद्वेष से जल उठा। उन्होंने तेज़ी के साथ कहा—"तुम इतना परेशान क्यों होती हो, मैं शीघ्र ही अच्छा हो जाऊँगा। दवा ज़रूर कुछ-न-कुछ फ़ायदा दिखाएगी। दुश्मनों के वार से घबराना क्षत्रियों का धर्म नहीं। मातादीन की दवा का असर हमेशा के लिये नही रह सकता, उसकी भी एक अवधि होगी, जैसी सब चीज़ों की होती है। जब उसकी उत्तेजक दवा का असर चंद घंटे रहता है, तो इसका प्रभाव चंद दिन या महीने रहेगा। यह कभी संभव नहीं कि हमेशा के लिये मुझे अपंग कर दे।"

अनूपकुमारी ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"मुझे विश्वास नहीं होता। जब तक तुम पूर्ण रूप से अच्छे नहीं हो जाते, तब तक मैं कुछ नहीं सच मानती। जाते-जाते उस दुष्ट ने ऐसा वार किया है, जिसका कोई जवाब नहीं दिया जा सकता। यदि मैं उसे देख पाऊँ, तो फिर चाहे जो कुछ हो, उसके कलेजे के ख़ून से अपनी

छुरी की प्यास बुझाऊँ। इसके लिये अगर फाँसी पर लटकना पड़े, तो कोई परवा नहीं।"

कहते-कहते उसका सहज सौंदर्य और रूप-माधुरी भयंकरता के पर्दे से झाँकने लगी। उसकी मतवाली आँखों की सहज अरुणाभा तीव्र होकर अग्नि के शोलों की भाँति प्रज्वलित हो उठी। उसके अधर फड़कने लगे, और जिह्वा मनोभावों को व्यक्त करने में असमर्थ होकर लड़खड़ाने लगी। उसका वह रूप देखकर राजा सूरजबख़्श-सिंह भी काँप उठे।

उन्होंने उसके समीप पड़ा हुआ चित्र उठा लिया, और कहने लगे—"फ़िज़ूल अपना मन क्यों परेशान करती हो। हरामज़ादा मेरे ही घर से पला, और अख़ीर में मुझ पर ही वार किया। मैं जब सब बातें सोचता हूँ, तो मेरा ख़ून अपने आप खौलने लगता है, और यही विचार उठता है कि इस हरामख़ोर को एक-एक बूँद पानी के लिये तरसाकर मारूँ। ईश्वर चाहेगा, तो ऐसा ही होगा।"

अनूपकुमारी को उनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ। वह संदिग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। फिर कहा—"मुझे उसकी शक्ति का पता है। तुम कौशल में उससे कभी नहीं पार पा सकते। वह हमारे बहुत समीप है, लेकिन हमसे छिपा हुआ है। जब उसके वार करने का समय आएगा, वह प्रकट होगा, और अपना काम कर डालेगा। इसके पहले उसका पता लगना, उसकी गंध तक मिलना असंभव है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"तो क्या वह अकेला ही हम लोगों पर विजयी होगा?"

अनूपकुमारी ने कहा—"यह मैं नहीं कहती, और शायद इस बार ऐसा न होने पाएगा। उसने मुझे हमेशा नीचा दिखाया है, अब मुक़ाबला होने पर ऐसा न होगा। दो में से एक बात

होगी, या तो वह मेरा सर्वनाश करेगा, या मैं ही उसका अंत कर दूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने घबराकर कहा—"यह तुम बार-बार क्या कहती हो। उसे यमपुर पहुँचाने के लिये मेरे पास सैकड़ों आदमी हैं।"

अनूपकुमारी ने धीमे, किंतु दृढ़ कंठ से कहा—"उस पर हाथ उठाने की शक्ति आपके किसी आदमी में नहीं। उसकी आँखों में वह शक्ति है कि जिसे वह एक बार देख दे, वह उसका अनुगत हो जाता है। मुझे आपके आदमियों पर तनिक विश्वास नहीं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि राजमहल के सब नौकर उसके नौकर हैं, और उसके गुप्तचरों का काम देते हैं। अभी आपको उसकी शक्ति का अंदाज़ा नहीं है। अगर कोई उससे लोहा ले सकता है, तो वह केवल मैं हूँ। मेरा सर्वनाश करने के लिये ही वह अंतर्धान हुआ है, और कोई विकट षड्यंत्र रचने की योजना में है।"

कहते-कहते वह फिर भंयकर हो उठी। उसक वास्तविक रूप की एक झलक फिर राजा सूरजबख़्शसिंह को दिखाई दी, और इस बार वह पहले से भी अधिक सिहर उठे।

अनूपकुमारी कहने लगी—"यह वह अच्छी तरह जानता है कि मेरे रहते उसकी चालें नहीं चलेंगी, इसलिये वह मुझे अपने मार्ग से हटाना चाहता है। आपको अपंग बनाकर उसने मुझे यह चेतावनी दी है कि मैं फिर उसकी शरण में जाऊँ, और उसके हाथों की कठपुतली होकर नाचूँ। अपना और अपने बच्चे का सर्वनाश कराऊँ। परंतु मैंने निश्चय कर लिया है कि ऐसा नहीं होगा। मैं अब उसके पैर नहीं पड़ूँगी, चाहे मेरा सर्वनाश ही क्यों न हो जाय। वह कब तक इस प्रकार छिपकर अपनी जान बचाएगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने आकुल होकर कहा—"तुम क्या कह रही हो, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

अनूपकुमारी ने उनकी ओर मोहन-कटाक्ष करके, कुछ अँगड़ाते हुए कहा—"थोड़े दिनों में सब समझ में आएगा। अब हमें कौशल से काम लेना पड़ेगा। अब हमारे सामने सबसे पहले यह काम है कि किसी तरह मातादीन का पता लगावें कि वह कहाँ है, और क्या कर रहा है। हमारे पास ऐसे चतुर व्यक्ति नहीं, जो उसे खोज-कर ढूँढ़ निकालें ?...."

राजा सूरजबख़्शसिंह ने बात काटकर कहा—"लेकिन क्या हम चतुर आदमी नौकर नहीं रख सकते ?"

अनूपकुमारी ने उसी प्रकार मुस्किराते हुए कहा जैसे कोई आचार्य अपने भोले शिष्य के अत्यंत सरल प्रश्न पर मुस्किराता है—"अब जो आदमी हम नौकर रक्खेंगी, वह उसका ही आदमी होगा। इसी काम के लिये उसके सैकड़ों आदमी फिर रहे होंगे, जो इस बात की कोशिश में होंगे कि हम किसी तरह यहाँ नौकर हो जायँ। आप कोई नया आदमी बिना मुझे दिखाए नौकर न रक्खें।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"ठीक है, यह ज़िम्मेवारी भी छूटी। नए दीवान को मैं हुक्म दे दूँगा कि जिस किसी को नौकर रखना हो, उसे पहले ज़नानी ड्योढ़ी पर भेजकर मंज़ूरी हासिल कर ली जाय।"

अनूपकुमारी ने मुस्किराते हुए कहा—"इस तरह नहीं, यों हुक्म दीजिए कि जिस किसी को नौकर रक्खा जाय, उसको असालतन सरकार में पेश किया जाय, और सरकार की मंज़ूरी हासिल होने पर नौकर समझा जाय। बाला-बाला किसी को नौकर न रक्खा जाय, और न किसी का इस्तीफ़ा मंज़ूर किया जाय या कोई बर्ख़ास्त किया जाय।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"लेकिन मुझसे यह आफ़त और माथा-पच्ची न होगी, इसीलिये मैंने दीवान को कुल अख़्त्यारात दे रक्खे हैं ?"

अनूपकुमारी ने कहा—"मैं सब कर लूँगी, आप घबराएँ नहीं। जब राज्य करना है, तो माथा-पच्ची भी करनी पड़ती है। जो काम हो, वह आपके नाम से होना चाहिए, इसी में ख़ूबसूरती है। सरकार तो हमेशा ज़नानी ड्योढ़ी में ही रहते हैं, और रहेंगे; तब नौकरी का नया उम्मेदवार तो यहीं आवेगा। मैं उसकी परीक्षा ले लूँगी। इसमें न तो किसी को बुरा लगेगा, और न नाम ही बद-होगा; काम भी चल जायगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"यह बहुत ठीक है। मुझमें भगवान् ने रूप के साथ गुण भी दिया है, बुद्धि भी दी है। तुम्हें पाकर मैं यथार्थ ही धन्य हो गया।"

अनूपकुमारी ने सिर झुकाते हुए कहा—"यह आपकी मिहरबानी है, नहीं तो मेरी क्या हक़ीक़त। ख़ैर, अब आप वह उपाय कीजिए, जिससे मातादीन अपने आप प्रकट हो जाय, और हमें कुछ विशेष प्रयत्न न करना पड़े।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"उपाय तुम्हीं बताओ, मैं तो उतने ही क़दम चलूँगा, जितने तुम कहोगी। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी-जैसी कुशाग्र बुद्धि मेरी नहीं।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्न-कंठ से कहा—"यह आप क्या बार-बार कहते हैं। आपके साथ मेरा विवाह होने की बात मातादीन को बिलकुल अच्छी नहीं लगी, और न उसे यही अच्छा लगा कि लाल साहब के बजाय हमारा पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने तीव्रता के साथ कहा—"उसे अच्छा नहीं लगा, इसकी परवा कौन करता है। उसे अच्छा या बुरा लगने से मेरा न कोई फ़ायदा है, और न नुक़सान।"

अनूपकुमारी ने हँसकर कहा—"बस, इसी बात से मेरा और उसका झगड़ा शुरू हुआ। मैंने उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि इस बारे में मैं कुछ नहीं जानती। जो राजा साहब की इच्छा होगी, वह करेंगे। उसने दो-एक बार मुझे चेतावनी दी, और कहा कि मैं ऐसा अन्याय न होने दूँगा, गद्दी पर तो लाल साहब ही बैठेंगे। एक दिन उसने यहाँ तक कह डाला था कि अगर तुम अपने पैर बहुत फैलाओगी, तो मैं तुम्हें कुतिया की तरह राजमहल से बाहर निकाल दूँगा, फिर तुम्हें रोटियों तक के लाले पड़ जायँगे।"

राजा सूरजबख़्शसिंह के मस्तक पर बल पड़ने लगे। उन्होंने भ्रू कुंचित करके कहा—"उस नमकहराम का इतना ऊँचा दिमाग़ चढ़ गया था। पहले मुझसे यह बात क्यों नहीं कही, नहीं तो उसकी दाढ़ी उखाड़कर और उसमें मिरचें लगाकर बिदा करता।"

अनूपकुमारी ने एक वंकिम कटाक्ष के साथ उनकी ओर देखा, और कहा—"उसने मुझे डरा दिया था, इसलिये नहीं कहा। उस ज़माने में आप उसके हाथों के खिलौने हो रहे थे। उसने कहा था कि अगर इस बात की चरचा राजा साहब से की, तो याद रखना, उसी दिन तुम्हें राजमहल के बाहर निकलना पड़ेगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने अधीरता के साथ कहा—"क्या बताऊँ, तुमने पहले यह बात क्यों नहीं कही?"

अनूपकुमारी ने कहा—"पहले मेरा इतना साहस न होता था। उसने यह भी कहा था कि मैं राजा साहब से कहूँगा कि यह हत्यारिणी है, अपने पति का ख़ून करके आई है, और मेरे पास एक ऐसा आदमी है, जो यह कहेगा कि यह मेरी स्त्री है, इसने मुझे ज़हर

देकर मारा था, और अगर राजा साहब कुछ ध्यान नहीं देंगे, तो फिर पुलिस में रिपोर्ट कर तुम्हारी बेइज़्ज़ती करूँगा....... ”

राजा साहब ने बात काटकर कहा—“अच्छा, उसकी यहाँ तक हिम्मत थी ?”

अनूपकुमारी ने भोले स्वर में कहा—“जी हाँ, वह बड़ा साहसी था। अपनी इज़्ज़त जाने के भय से मैं चुपचाप रही। मैंने आपसे कहा भी था कि इस बात को छोड़ दें, लेकिन आप माने नहीं। आख़िर वह यहाँ से हमारे होशियार होने के पहले ही निकल भागा। अब, जहाँ तक मेरा अनुमान है, वह उसी षड्यंत्र के रचने में लगा होगा। किसी लोभी साधू-संन्यासी को खड़ा करेगा, और उससे कहलवाएगा कि अनूपकुमारी मेरी परिणीता स्त्री है, और उसने मुझे विष देकर मेरी हत्या करने की कोशिश की थी।”

अनूपकुमारी की बात से चकित होकर राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—“वह कुत्ता हज़ार भूके, मगर बिगाड़ क्या सकता है। मेरे ख़िलाफ़ पुलिस भी मामला में हाथ डालने के पहले दो बार सोचेगी। इसके अलावा मेरे पास असंख्य रुपए हैं, मैं सबका मुँह बंद कर दूँगा। प्रथम तो मातादीन ख़ुद ऐसा करने की हिम्मत न करेगा, दूसरे अगर की भी, तो सुबूत कहाँ से पेश करेगा। मुर्दे कहानी नहीं कहा करते। करने तो दो, उलटा मातादीन ख़ुद फँसेगा, और जेल जायगा। वह इतना बुद्धू नहीं, जो साँप के बिल में हाथ डाले। औरत-ज़ात को धमकाने के लिये बहुत है। अगर कहीं पहले ज़िक्र किया होता, तो मैं तुम्हारे सामने उसका भंडाफोड़ करा देता।”

अनूपकुमारी ने कहा—“नहीं, उसमें सब कर गुज़रने की ताक़त है। वह सब तरफ़ से मज़बूती करके मैदान में उतरेगा। इसीलिये

वह गुस हुआ है। जाने के दिन भी वह इसी बात की चेतावनी देकर गया।"

राजा साहब ने लापरवाही दिखलाते हुए कहा—"इस ओर से तो तुम बेफ़िक्र रहो, मैं उसे अच्छी तरह समझ लूँगा। उसे मैदान में उतरने तो दो, फिर मैं उससे अच्छी तरह निपट लूँगा।"

अनूपकुमारी ने उनके पास खिसककर कहा—"तुम तो उसकी बात पर विश्वास न करोगे?" यह कहकर उसने बड़ा मधुर दृष्टि से उनकी ओर देखा।

राजा साहब ने आदर और आश्वासन के साथ उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"मातादीन क्या, अगर ब्रह्मा भी स्वयं आकर कहें, तो मैं स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकता। अगर शायद कभी आँखों से भी देख लूँ, तो भी मैं उनका भ्रम समझूँगा।"

अनूपकुमारी ने मन-ही-मन संतुष्ट होकर कहा—"अगर आप विश्वास नहीं करेंगे, तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता। भय केवल आपकी तरफ़ से है, क्योंकि आपके रुष्ट होने से मैं संसार में जीवित नहीं रह सकती, और फिर मेरा संसार में है ही क्या।"

कहते-कहते अनूपकुमारी की आँखों से अजस्र अश्रु-धार बह चली।

रमणी—विशेषकर प्रेयसी के आँसू दिग्विजयी होते हैं। अनूपकुमारी के आँसुओं ने राजा साहब के कलेजे में बर्छियों का काम किया। उन्होंने उसे हृदय से लगाते हुए, आदर के साथ आँखें पोछते हुए, कहा—"अनूप, तुम इतना अधीर क्यों होती हो? जानती हो, तुम्हारे आँसुओं से मुझे कितना कष्ट होता है। यदि तुम पहले से भी न कहतीं, तो मैं कदापि विश्वास न करता। जो बात अनुमान तथा कल्पना के बाहर है, उस पर कौन विश्वास करेगा। मैं अब इसी निश्चय पर पहुँचता हूँ कि हम लोगों का विवाह क़ानूनी रीति से जितनी जल्द हो जाय, उतना अच्छा। विवाह हो जाने के बाद

तुम्हारे अधिकार कहीं अधिक हो जायँगे। उस वक्त तुम अनूपगढ़ की रानी हो जाओगी, फिर तुम्हारे ऊपर सहसा किसी को भी हाथ डालने का साहस न होगा।"

अनूपकुमारी ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"मुझे कब इनकार है। लेकिन मैं छिपकर विवाह नहीं करना चाहती। विवाह को ख़ूब प्रकाशित करके करना चाहिए, ताकि छिपे हुए सातादीन को भी मालूम हो जाय कि मैं डंके की चोट पर अनूपगढ़ की राज-गद्दी पर बैठती हूँ।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने भी प्रसन्न होकर कहा—"यही तो मैं भी चाहता हूँ। इसीलिये मैं तुम्हारा फ़ोटो हर अख़बार में प्रकाशित कराना चाहता हूँ। हमारे नए दीवान साहब भिन्न-भिन्न नाम से भारतवर्ष के समाचार-पत्रों में कई लेख लिखेंगे, और मैं भी दोनो हाथों अख़बारवालों को रुपए देकर वशीभूत कर लूँगा। वे भी हमारी तारीफ़ में लंबे-लंबे लेख लिखेंगे। रुपए में वह ताक़त है, जो पीतल को भी चमकाकर सोने-जैसे चमकीला कर दे। हमारा यह विवाह समाज में आदर्श विवाह समझा जायगा।"

अनूपकुमारी ने प्रसन्न होकर, मंद मुस्कान-सहित, कहा—"तभी मुझे चैन आएगी, जब मैं दुश्मनों की छाती पर सवार होकर राज-सिंहासन पर बैठूँगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा है, तो ऐसा ही होगा।

अनूपकुमारी संतुष्ट होकर हँसने लगी।

---

## १०

डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया का कर-पल्लव चूमते हुए कहा—"क्यों प्रियतमे, अब कब तक मैं धैर्य धरूँ? अभी मि० जैकब्ज यहाँ मौजूद हैं, मुझे आज्ञा दो कि मैं उनसे यह शुभ संदेश कहूँ।"

अमीलिया की आँखों से प्रकट हो रहा था कि वह रात-भर सोई नहीं, और रो-रोकर रात्रि व्यतीत की है। उसका मुख श्री-हीन था, अधर शुष्क और पपड़ाए हुए, आँखें निस्तेज थीं। किंतु कमरे का अंधकार और प्रेम की अधीरता ने डॉक्टर हुसैनभाई को उसके मुख की विवर्णता को देखने नहीं दिया। अमीलिया ने उनके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई ने अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर अधीरता के साथ उसके मुख की ओर देखा। उसका चेहरा देखकर वह चौंक पड़े।

उन्होंने अधीरता के साथ कहा—"क्या तुम्हारी तबियत कुछ ख़राब है? मालूम होता है, रात-भर नींद नहीं आई।"

अमीलिया ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"नींद कभी दुखी और शाप-ग्रस्त के पास नहीं आती।

डॉक्टर हुसैनभाई ने चिंतित स्वर में पूछा—"क्या कुछ मुझसे अपराध हुआ है?'

अमीलिया ने उत्तर दिया—"आपसे क्या अपराध हो सकता है। सारे अनर्थ की जड़ तो मैं स्वयं हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने चकित होकर कहा—"यह आप क्या कहती हैं ?"

अमीलिया ने करुण स्वर में कहा—"वास्तव में मैं ही अपने दुःखों का कारण हूँ। इधर आपने मेरी जीवन-रक्षा की, और मेरे मृत मन में नवीन आशा का बीजारोपण किया, और उधर मेरा विद्रोही मन उन्हें समूल नष्ट करने की फ़िराक़ में है।"

डॉक्टर हुसैनभाई का मुख आशंका से श्वेत हो गया।

उन्होंने भयाकुल स्वर में कहा—"इसका कारण ?"

अमीलिया ने विषण्ण मुख से उत्तर दिया—"कारण क्या, मेरा अभाग्य ! मेरे भाग्य में वह सुख नहीं। मैने उसे हमेशा के लिये खो दिया है।"

कहते-कहते उसके आँसू निकलकर डॉक्टर हुसैनभाई के मन को अधीर बनाने लगे।

अमीलिया कहने लगी—"मैं अपनी दुःखमय कहानी कह चुकी हूँ, और क्या कहूँ। मैं अब अपना जीवन एकांत-वास में व्यतीत करूँगी, यही मैने निश्चय किया है। विवाह के प्रलोभन में पड़कर अपना और किसी दूसरे का सुख नष्ट नहीं करूँगी। मैं आपसे क्षमा माँगती और प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे भूल जाइए।"

डॉक्टर हुसैनभाई में बोलने की शक्ति नहीं रह गई थी।

अमीलिया फिर कहने लगी—"मेरे व्यवहार से आपको अवश्य दुःख होता होगा, किंतु आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। जब मेरा विवाह एक बार हो चुका, तब मैं कैसे 'उनके' जीवित रहते दूसरा विवाह करूँ। संसार चाहे मेरे कार्य को दोष न दे, प्रशंसा करे, परंतु मैं अपनी दृष्टि में स्वयं गिर जाऊँगी। मैं ऐसा नहीं करूँगी। आपसे पुनः क्षमा माँगती हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने शांत स्वर में कहा—"मै आप पर कोई

बेजा दबाव नहीं डालना चाहता। जब आपकी यही इच्छा है, तब मैं भी सब सहन करूँगा। पुरुष भी प्रेम करता है, तो केवल एक बार। मैं जब आपसे प्रेम करता हूँ, तो अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक प्रतीक्षा भी कर सकता हूँ। प्रेम रूह का रूह से होता है, ऐसे प्रेम का नाश नहीं। आप स्वच्छंदता से, अपने इच्छानुसार अपना कर्तव्य पालन करें।"

कहते-कहते उनका गला भर आया, और वह शीघ्रता से अपने हृदय में उठते हुए तूफ़ान का दमन करने के लिये कमरे से बाहर हो गए।

अमीलिया उनकी ओर पथराई हुई आँखों से देखती रही। थोड़ी देर तक वैसे ही खड़ी रहकर वह एक कुरसी पर बैठ गई, और सोचने लगी—

"एक यह आख़िरी सहारा था, उसे भी खो दिया। मन ! अब तो तू प्रसन्न है। बोल, तू क्या कुछ और चाहता है ? तेरे उतावलेपन ने उन उमंगों में मुग्ध पुरुष को भी अपना-जैसा दुखी बना दिया। अब तो तुझे शांत होना चाहिए, या अभी कुछ और दिखलाना मंज़ूर है ?

"भारतेंदु, तुम मेरे जीवन की किस कुघड़ी में उदय हुए थे, जो मेरा सर्वनाश करके भी शांत नहीं होते। अब क्या मेरे जीवन-बलिदान से शांत होगे ? जहाँ मैंने सुखमय स्वप्न देखने आरंभ किए, तुमने न-मालूम कहाँ से प्रकट होकर उनका नाश कर दिया। तुम्हारा जीवन भी नष्ट हुआ और मेरा भी। तुम्हारे प्रेम में एक अबोध बालिका उन्मत्त है, वह तुम्हारी पूजा करती है—उस भक्ति से, जैसे उपास्य देव की की जाती है। वह अभी तक उस आघात से अच्छी नहीं हुई, जो तुमने उसे जहाज़ पर पहुँचाया था। वह अभी कल ही कह रही थी कि यहाँ आकर न-मालूम उन्हें क्या हो गया है।

अगर को देखकर मेरा मन करुणा, दया और स्नेह से परिपूर्ण हो जाता है। जिस दुख से मैं दुखी हूँ, उससे उसे संतप्त क्यों करूँ? संसार की मातृहारा बालिका जिसका जीवन मेरे ही-जैसा दुःखमय बीता है, उसे जीवन-भर के लिये संतप्त करना मेरा कर्तव्य नहीं। मैं आभा का प्राप्य आभा को दूँगी।

"मैंने अपने जीवन में एक बड़ी भूल की है, जिसके परिणाम-स्वरूप अभी तक दुःख भोग रही हूँ। वैसी ही भूल आभा ने भी की है, जिससे उसके जीवन का सुहाग भी मेरी तरह नष्ट हो सकता है। उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। भारतेंदु के साथ विवाह होने में उसका कल्याण है, और मेरा भी।

"मेरा क्या होगा? मैं कौन-सा कार्य लेकर अपने जीवन के दिन व्यतीत करूँ। डॉक्टर हुसैनकाई एक सहृदय, उन्नत विचारों के पुरुष हैं। उनका प्रेम वास्तव में अथाह है, असीम है। मुझे विश्वास है कि वह मेरी प्रतीक्षा जीवन के अंत तक करेंगे। उनके प्रेम में कामुकता नहीं। भारतेंदु के प्रेम में कामुकता थी, और अब है उसका अनुताप। कामुकता के साथ अनुताप सन्निहित है। प्रेम में कामुकता नहीं होती, वह तो शांत, स्निग्ध और निःस्पृह होता है। वह स्वर्गीय ज्योति से देदीप्यमान रहता है। उसमें किसी प्रकार की कामना नहीं होती, विनिमय या प्रत्युत्तर की आकांक्षा नहीं होती। उस प्रेम की झलक आभा और डॉक्टर हुसैनभाई में मिलती है। इन दो प्रेमी जीवों को दुखी करना क्या मेरा कर्तव्य है?

"जितना ही इस विषय को सोचती हूँ, उतना ही इसकी उलझन के जाल में फँसी जाती हूँ। भारतेंदु को भी मैं प्राप्त कर सकती हूँ, लेकिन क्या उससे मुझे शांति मिलेगी। दो प्रेमी जीवों को दुखी करके क्या मैं सुखी हो सकती हूँ? भारतेंदु के साथ विवाह करने से निरंतर कलह, अविराम अनुताप की अग्नि में भस्म होना है,

जीवन का सौख्य नष्ट करना है। क्योंकि यह विवाह प्रेमी की लहरों में डूबकर नहीं होगा—अनुताप और दुःख की वेदी पर चढ़कर होगा, जिससे सदैव इनकी सृष्टि होती रहेगी।

"जब मैं अपने जीवन का पृष्ठ उलट चुकी हूँ, तब उसे पुनः पढ़ना मूर्खता है। उसे हमेशा के लिये भूल जाना चाहिए। भारतेंदु के साथ आभा का विवाह करना मेरा कर्तव्य हो गया है। आह, यह विचार उठते ही हृदय में पीडा होती है। मनुष्य का हृदय बड़ा स्वार्थी होता है।"

इसी समय आभा ने आकर पूछा—"आज अभी तक आप नहीं उठीं। क्या कुछ तबियत ख़राब है?"

अमीलिया ने आभा को पकड़कर कुरसी पर बैठाते हुए कहा—"आओ, मैं तुम्हारी ही बात सोच रही थी।"

आभा ने उत्सुकता से पूछा—"मेरी कौन सी बात सोच रही थी?"

अमीलिया ने सप्रेम उत्तर दिया—"क्या तुम्हारी बात सोचने का अधिकार मुझे नहीं?"

आभा ने सलज्ज कंठ से उत्तर दिया—"क्यों नहीं?"

अमीलिया ने उसका कपोल चूमते हुए कहा—"आभा, तुमने मुझे अपना गुलाम बना लिया है। न-मालूम क्यों तुम्हें देखकर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ।"

आभा ने मुस्किराकर कहा—"और, आपने क्या कुछ कम मुझे वशीभूत किया है। अब बार-बार यही विचार मन में उठता है कि मैं देश में जाकर आपके बिना कैसे रहूँगी। इतनी सेवा आपने पूर्व-जन्म की मेरी मा की की है, जिसके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती।"

अमीलिया ने सप्रेम उसकी ठुड्डी पकड़कर, उसकी आँखों के भीतर देखते हुए कहा—"बहन, स्नेह के बंधन में कृतज्ञता और

ऋण की गाँठ नहीं पड़ा करती। सात्त्विक स्नेह से उच्च कोई भाव दुनिया में नहीं। यह स्नेह-बंधन जाति, देश आदि के संकीर्ण विचारों से परे है। इसमें तो केवल दो आत्माओं के गूढ़ परिचय का भाव सन्निहित रहता है। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि जैसा प्रेम-भाव अभी है, वैसा सदा बना रहे। तुम्हारे जाने से मुझे मर्मांतक पीड़ा होगी, लेकिन यहाँ से—मेरे पास से दूर भागने में ही तुम्हारा कल्याण है। मेरी छाया से तुम जितना दूर रहोगी, उतना ही तुम्हारे लिये हितकर होगा। तुम मेरा असली रूप नहीं पहचानतीं। दूसरे के लिये चाहे मैं कितनी ही दयालु, स्नेही और सेवा-मय हो जाऊँ, किंतु तुम्हारे लिये किसी-न-किसी दिन कंटक साबित हो जाऊँगी। फिर बहन, यह स्नेह का भाव घृणा में बदल जायगा। आश्रम-उद्घाटन का समारोह कल समाप्त हो जायगा, और इसके बाद ही तुम सब लोग यहाँ से विदा हो जाओगे। तुम्हारे पिता यहाँ से जाने को जल्दी कर रहे हैं, क्योंकि भारत पहुँचकर तुम्हारा विवाह करना है। तुम शीघ्र ही पंडितजी की पुत्रवधू बनोगी, और इस नाते से पुनः तुमसे मिलाप हो सकता है। परंतु जहाँ तक हो सके, तुम मुझसे दूर रहना।"

कहते-कहते अमीलिया के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

आभा ने उसकी आँखें पोंछते हुए कहा—"तुम्हारी बातें मैं नहीं समझी। स्नेह का बंधन मिलने-जुलने से दृढ़ होता है।"

अमीलिया ने शांत होते हुए कहा—"इसका कारण कुछ नहीं, केवल मेरा प्रलाप है। मैं इसी आश्रम में रहूँगी, और मनुष्य-मात्र की सेवा करके अपने दिन व्यतीत करूँगी। किंतु बड़ी बहन के नाते तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सुखी हो।"

आभा ने कुछ उत्तर न दिया।

अमीलिया फिर कहने लगी—"तुम्हारी पूर्व-जन्म की मा यानी

माधवी को पंडितजी ने अपनी पुत्री बनाने का संकल्प किया है। वह अपनी संपत्ति का कुछ भाग तो भारतेंदु को देंगे, और बाक़ी इसी साम्यवाद-आश्रम को अर्पण कर देंगे, जिसका परिचालन माधवी, मैं तथा दूसरे तीन व्यक्ति करेंगे।"

आभा ने कहा—"और हम लोग कहाँ रहेंगे?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"इच्छा-पूर्वक कहीं रह सकते हैं, लेकिन शायद तुम लोगों को अभी भारत में ही रहना पड़ेगा। पंडितजी की इच्छा है कि जब तक तुम्हारे पिता जीवित हैं, तब तक तुम लोग यहीं रहो। तुम्हारे पिता को वह दुखी नहीं करना चाहते, और न उनके जीवन का अंतिम अवलंब छीनने की उनकी इच्छा है।"

आभा ने पूछा—"और तुम क्या अपना विवाह नहीं करोगी?"

अमीलिया ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"मेरा विवाह अब नहीं होगा। मैं आजन्म कुमारी रहूँगी। हमारी जाति में कुमारी रहने का रिवाज़ है।"

आभा ने पूछा—"यह क्यों, फिर डॉक्टर हुसैनभाई क्या करेंगे?" यह कहकर आभा कुछ मुस्किराई।

अमीलिया ने हँसकर कहा—"वह मेरी प्रतीक्षा करेंगे। जब कभी मेरा अधिकार मेरे मनोभावों पर हो जायगा, तब देखा जायगा।"

आभा ने कहा—"तुम्हें समझना पहेली से भी कठिन है।"

अमीलिया ने उठते हुए कहा—"मुझे ऐसी ही अनबूझ पहेली बनी रहने दो। चलो, माधवी के पास चलें।"

यह कहकर वह आभा को लेकर चली गई।

---

## ११

साम्यवाद-आश्रम का उद्‌घाटन हो गया। पंडित मनमोहननाथ की संपत्ति का एक विशाल भाग उनकी खानों पर काम करनेवालों की संपत्ति हो गई। जाति-भेद, वर्ण-भेद, देश-भेद से वह आश्रम मुक्त था।

दोपहर का समय था। पंडित मनमोहननाथ, स्वामी गिरिजानंद और डॉक्टर नीलकंठ, तीनों स्वदेश लौटने का परामर्श कर रहे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराते हुए कहा—"आपने अपनी संपत्ति का एक भाग भारतेंदु को दे दिया, इसके लिये मुझे बड़ा संतोष है। हम लोगों का इतनी दूर आना सफल हो गया।"

पंडित मनमोहननाथ ने हँसकर कहा—"अजी, आपको अपनी स्त्री के भी तो दर्शन हो गए, और स्वामी गिरिजानंद भी अपने परिवार से मिल गए।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह सब आपकी कृपा का फल है। जिस ज्वाला से मैं अहर्निश जलता था, वह किसी अंश तक शांत हो गई। मेरी मूर्खता से राधा और उसकी मा को असहनीय कष्ट भोगने पड़े हैं, जिनका उत्तरदायी मैं हूँ। संसार में मुख दिखाने योग्य नहीं। क्रोध वाजिब है। इस जीवन से तो मेरा मरना अच्छा है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"भगवान् की सृष्टि में एक-से-एक अद्‌भुत व्यापार होते हैं, जिनकी कल्पना मनुष्य नहीं कर सकता। मुझे स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं हुआ था कि मैं इस जन्म में

आभा की मा को देख सकूँगा। उसे देखा, लेकिन उससे मेरा पीड़ा कम होने की अपेक्षा बढ़ गई।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आप माधवी से विवाह क्यों नहीं करते?"

डॉक्टर नीलकंठ ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"विवाह अब बुढ़ापे में करूँगा। दरअसल देखा जाय, तो इस विस्मृति में ही आनंद है, तभी हमें अपने पूर्वजन्म की याद नहीं रहती। हालाँकि मुझे माधवी का पूर्व-वृत्तांत विदित हो गया; परंतु मैं उससे विवाह नहीं कर सकता, क्योंकि समय का भेद है। वह अभी तरुण बालिका है, मेरी आभा से भी छोटी, और मैं पचास वर्ष का वृद्ध! क्या इस शादी में उल्लास हो सकता है? और, क्या विवाह भी वैध कहा जा सकता है?"

पंडित मनमोहननाथ ने उत्तर दिया—"विधाता के विधान में कोई ग़लती नहीं होती। हम अपनी नासमझी से उसके प्रतिकूल चलकर अपना अनिष्ट करते हैं। माधवी को मैंने अपना धर्म पुत्री बनाना निश्चय किया है, क्योंकि इस जगत् में उसका अपना कह-कर कोई नहीं। वह मेरे इसी आश्रम में रहेगी। वह बाल-विधवा है, और एक प्रकार से कुमारी। उसने जन्म-भर अविवाहित रहने का विचार किया है। अमीलिया और माधवी में स्नेह-विशेष है। उन दोनो को मैंने इस आश्रम के स्त्री-विभाग की संचालिका नियुक्त किया है। इस विषय में उन दोनो का मत भी प्राप्त हो गया है। भारतेंदु को आप अपने साथ ले जायँ, और उसे अपनी संरक्षता में रक्खें। जब आप विवाह करना निश्चय करेंगे, मैं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा, और अगर न आ सकूँ, तो मेरी प्रतीक्षा न कीजिएगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने सहास्य कहा—"आपने तो सब कार्य-क्रम निश्चित कर दिया है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"जी हाँ, मैंने सब तय कर दिया है। मेरी इच्छा थी कि आज के दिन भारतेंदु का विवाह करके निश्चिन्त हो जाता, किंतु आपकी और चाची की अनुमति न मिली। उनकी इच्छा स्वदेश जाकर विवाह करने की है।"

पंडित मनमोहननाथ भी गंगा को चाची कहने लगे थे।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"शायद आपको यह नहीं मालूम कि चाची भी आभा के विवाह के बाद अपना शेष जीवन इसी आश्रम में व्यतीत करना चाहती हैं।"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"उन्होंने अंत-समय में गंगा-लाभ का लोभ तो छोड़ दिया, परंतु माधवी का साथ छोड़ना नहीं चाहतीं। उसके ऊपर उनका अगाध प्रेम है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर में कहा—"हाँ, उनका उस पर माता से भी अधिक स्नेह था। उन्हें इस बात का बड़ा शोक है कि उनसे वह अतीत की बातें न कर सकी। इसी लोभ से वह उसके साथ रहना चाहती हैं।"

पंडित मनमोहननाथ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"यही तो मानव-हृदय की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"इसी कमज़ोरी में तो मानवता का इतिहास लिखा हुआ है।"

स्वामी गिरिजानंद ने प्रसंग बदलते हुए कहा—"अब मुझे क्या करना उचित है?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"इस भगवा को त्याग करके पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें, और राधा तथा उसकी मा के प्रति प्रायश्चित्त करें। मनुष्य अपने जीवन में सदैव भूल करता है, लेकिन जो उस भूल को सुधार लेता है, वह तो मनुष्य बना रहता है, और जो उसे सुधारता नहीं, वह पशुओं की श्रेणी में उतर जाता है।

राधा की मा को अपने घर में स्थान देने से क्या आपको संकोच होता है ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"संकोच मुझे तिल-मात्र भी नहीं है, वरन् मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ। मेरे विचार संकीर्ण नहीं। मैं विशद हिंदू-समाज का एक अंग हूँ, जिसमें पवित्रता का संबंध आत्मा से है, न कि शरीर से। शरीर का धर्म है अपवित्र रहना। शरीर और आत्मा के बीच में उन्हें जोड़नेवाली कड़ी मन है। यदि मन अपवित्र है, तो उसका प्रभाव अवश्य आत्मा पर पड़ेगा। राधा और उसकी मा की आपत्तियों का कारण मैं हूँ, इसलिये मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ। उनका कलेवर चाहे भले ही अपवित्र हो गया हो, लेकिन उनकी आत्मा पवित्र है, उनका मन पवित्र है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"तब फिर आप स्वदेश जाइए, और समाज के सामने अपना आदर्श रखिए। हज़ारों-लाखों हिंदू-स्त्रियाँ, जो घर से निकल आती हैं, उन्हें हिंदू-समाज में पुनः प्रवेश करने का अधिकार नहीं। आप उन्हें यह अधिकार दिलाने के लिये आंदोलन करें। इससे बढ़कर प्रायश्चित-कर्म आपके लिये नहीं। आप इस साम्यवादी आश्रम के सदस्य रहेंगे। वार्षिक आय का जो भाग होगा, वह आपको भेज दिया जाया करेगा। इस आश्रम का सर्व-प्रथम प्रचारक मैं आपको नियुक्त करता हूँ। हिंदू-समाज में सर्वोच्च समष्टिवाद के मंत्रों का प्रचार कीजिए, और व्यक्तिगत पूँजी का नाश करने का आंदोलन कीजिए।"

स्वामी गिरिजानंद ने सिर नत करके स्वीकार करते हुए कहा—"यह मुझे स्वीकार है, परंतु राधा के विवाह की समस्या सुलझाना बाक़ी है।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"वह समस्या आपके सुलझाने

की नहीं, राधा उन्हें स्वयं सुलझा लेगी। जहाँ तक मुझे मालूम है, राधा विवाह नहीं करना चाहती। और, अगर वह अपना विवाह करेगी, तो मैं प्रबंध करूँगा।"

स्वामी गिरिजानंद ने संतुष्ट होकर कहा—"अब मैं निश्चिंत हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—'हम लोग यहाँ से कब चलेंगे?"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"आपकी सेवा में जहाज़ तैयार है, जब आपकी इच्छा हो, जा सकते हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"तब तो कल प्रातःकाल हम लोग रवाना हो जायँगे।"

पंडित मनमोहननाथ ने कहा—"मैं सब प्रबंध कर दूँगा।"

डॉक्टर नीलकंठ ने उठते हुए कहा—"तब मैं जाकर आभा और चाची को तैयार होने के लिये कहूँ।"

यह कहकर वह उन लोगों को वहीं छोड़कर आभा के कमरे की ओर चले गए।

---

# १२

वालपेराइज़ो-बंदर पर पंडित मनमोहननाथ का 'सुमित्रा' जहाज़ खड़ा हुआ आरोहियों की राह देख रहा था। कैप्टेन अल्फ़्रेड जैकब्स उत्सुकता से बार-बार समुद्र-तट पर अपनी दृष्टि डालते, किंतु कोई मोटर न आते देखकर डेक पर टहलने लगते।

प्रातःकाल लगभग आठ बजे पंडित मनमोहननाथ के साथ मेहमानों के अतिरिक्त अमीलिया और डॉक्टर हुसैनभाई भी उन्हें बिदा करने आए थे। कैप्टेन जैकब्स ने उनका स्वागत करते हुए कहा—"आपने सात बजे का समय दिया था, और अब आठ बज चुके हैं। मैं तो समझा था, आज जाने का विचार स्थगित कर दिया गया है।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"बिदा होने में देर हो गई।"

भारतेंदु जहाज़ पर चढ़कर अपने कैबिन की ओर जाने लगे। इन दिनों वह किसी से विशेष बातचीत न करते थे। उनके मन में निरंतर कलह हुआ करती थी। जिस दिन से अमीलिया ने उन्हें स्पष्ट उत्तर दिया था, उनके जीवन का उत्साह नष्ट-सा हो गया था।

ज्यों ही वह अपने निर्दिष्ट कमरे में प्रविष्ट हुए, और द्वार बंद करने के लिये पीछे घूमे, उनकी दृष्टि अमीलिया पर पड़ी। उसे देखकर वह चौंककर एक ओर खड़े हो गए।

अमीलिया ने उनके कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"आपसे दो-चार बातें करनी हैं। क्या आप मुझे समय प्रदान करेंगे?"

भारतेंदु ने विस्मित स्वर में पूछा—"मुझसे।"

अमीलिया ने कहा—"जी हाँ, आपसे।"

भारतेंदु ने कहा—"किंतु मेरा नाम तो भारतेंदु है, डॉक्टर हुसैन-भाई नहीं।"

उनके व्यंग्य से अमीलिया तड़प उठी। उसकी शांत, मधुर आँखें सहसा जल उठीं। किंतु बड़े धैर्य से अपना क्रोध दबाकर कहा—"यह व्यंग्य तुम्हारे-जैसों के श्रीमुख से ही शोभा देता है।"

भारतेंदु आवेश में कह तो गए, किंतु उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वह काँपने लगे, और उनके मुख का रंग फीका पड़ गया।

अमीलिया कहने लगी—"तुम्हारी जाति का यह गुण है कि तुम लोग अर्ध-मृतकों पर भी अपनी वीरता आज़माने के लिये वार करने में संकोच नहीं करते।"

भारतेंदु ने सलज्ज कंठ से कहा—"मुझसे अपराध हुआ, मुझे क्षमा करो।"

अमीलिया ने थोड़ी देर सोचकर कहा—"क्या तुम वास्तव में अपने पिछले और इस अपराध की क्षमा चाहते हो?"

भारतेंदु ने उत्तर दिया—"हाँ।"

अमीलिया ने कहा—"तब तो तुम्हें एक बात की प्रतिज्ञा करनी होगी।"

भारतेंदु ने घबराए हुए स्वर में पूछा—"क्या?"

अमीलिया ने उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"तुम पर मेरा विश्वास नहीं; पहले ईश्वर को साक्षी कर प्रतिज्ञा करो कि मैं उसे पालन करूँगा।"

भारतेंदु का चित्त डावाँडोल होने लगा।"

अमीलिया ने भ्रू-कुंचित करके कहा—"क्यों, क्या आपत्ति है? मैं तुम्हारी धन-माया नहीं माँग लूँगी। घबराते क्यों हो?"

भारतेंदु ने लज्जित होकर अपना सिर नत कर लिया।

अमीलिया ने हँसकर कहा—"मैं आज तुम्हारे वे रुपए वापस करने आई हूँ, जो तुमने मेरी इज़्ज़त के हरजाने में दिए थे।"

यह कहकर उसने अपने ब्लाउज़ से नोटों का पुलिंदा बाहर निकाला।

भारतेंदु ने अपना मुख अपने हाथों छिपाते हुए कहा—"अमीलिया, मुझे क्षमा करो। इस अंतिम भेंट में........"

अमीलिया ने हँसकर कहा—"तुम क्षमा माँगते हो? एक कुमारी को पति-भ्रष्ट करके, उसके ऊपर सारी ज़िम्मेवारी छोड़कर चोर की तरह निकल भागे, उसके अमूल्य स्त्रीत्व का धन अपहरण करके अब क्षमा माँगते हो। ख़ैर, मैं तुम्हें वह भी दूँगी। जब अपना प्रेम, अपना अमूल्य रत्न तुम्हारे चरणों पर उत्सर्ग कर दिया था, तब क्षमा भी प्रदान करूँगी, परंतु कह चुकी हूँ, एक शर्त पर।"

भारतेंदु ने विकृत कंठ से कहा—"वह क्या?"

अमीलिया ने कहा—"पहले प्रतिज्ञा करो, पीछे कहूँगी।"

भारतेंदु ने शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा की।

अमीलिया ने संतुष्ट होकर कहा—"अच्छा, क्या तुम अपने वचन मन-प्राण से रक्खोगे?"

भारतेंदु ने कहा—"अगर तुम यह कहोगी कि मेरे सामने समुद्र में कूद पड़ो, अपने हाथ से अपना गला काट डालो, वह सब करूँगा। मैं आज कई वर्षों से निरंतर मरण की प्रार्थना करता हूँ, किंतु भगवान् उसे नहीं सुनते। लेकिन अब शीघ्र ही उन्हें सुनना पड़ेगा।"

अमीलिया ने सप्रेम उनका हाथ पकड़ते हुए कहा—"यह क्या कहते हो, मैं तुम्हारे जीवन की भूखी नहीं। अपना जीवन देकर भी तुम्हें सुखी करना चाहती हूँ।"

भारतेंदु सिर झुकाए हुए खड़े रहे।

अमीलिया ने गभीर होकर कहा—"अभी तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता, परंतु एक दिन होगा। वह उस दिन होगा, जब मैं संसार में न होऊँगी। उफ़्, यह क्या ? मैं कहाँ बहक गई। हाँ, तुमने प्रतिज्ञा कर ली। अच्छा, सुनो, तुम्हें क्या करना है।"

भारतेंदु ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"कहिए, मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ; आदेश दीजिए।"

अमीलिया ने गंभीरता के साथ कहा—"मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानती हूँ। जो कुछ तुम्हारे मन में है, वह मुझसे छिपा नहीं। तुमने मुझसे तिरस्कृत होकर यह विचार किया है कि किसी-न-किसी तरह तुम यहाँ से जाकर अपना जीवन विसर्जन कर दोगे। तुम चौंकते हो, यह नितांत सत्य है। यहाँ पंडितजी के सामने तुम्हें आत्महत्या करने का साहस न हुआ, क्योंकि इससे तुम्हारी पाप-कथा प्रकट हो जाने का भय था। किंतु विदेश में जाकर, कोई आकस्मिक दुर्घटना का रूप दिखाकर अपनी इहलीला समाप्त करना चाहते हो। क्यों, क्या यह सत्य नहीं ?"

भारतेंदु ने कोई उत्तर न दिया।

अमीलिया ने हृदय-भेदी दृश्य से उनकी ओर देखते हुए पूछा—बोलो, क्या यह सत्य नहीं ? संसार को तुम भले ही धोखा दे दो, किंतु मुझे नहीं दे सकते।"

भारतेंदु ने मलिन हास्य के साथ कहा—"पाप का प्रायश्चित्त हमेशा किया जाता है।"

अमीलिया ने ज़ोर से हँसकर कहा—"प्रायश्चित्त करने का यह तरीक़ा नहीं। यह कापुरुषों का काम है। यह क्या, मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है। क्या तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे ऊपर दया करें। दया का पात्र होने की अपेक्षा........"

कहते-कहते अमीलिया रुक गई।

भारतेंदु ने कहा—"इसके अतिरिक्त और उपाय क्या है? मैंने तुम्हारे साथ घोर अन्याय किया है, उसका दो प्रकार से निवारण है। एक तो तुम्हारे साथ विवाह करके, और दूसरे आत्मघात करके। पहले तो तुमने अस्वीकार किया, अब तो दूसरा ही मार्ग खुला हुआ है।"

अमीलिया ने काँपकर कहा—"मैंने तुम्हारे साथ विवाह करना इसलिये अस्वीकार किया, क्योंकि मैं किसी दूसरे का फल अपहरण नहीं करना चाहती। अगर आभा तुमसे इस प्रकार प्रेम न करती होती, तो मैं यह लोभ संवरण न कर सकती। परंतु तुम मेरे नहीं आभा के हो चुके हो, और उसी के होकर रहो। तुम आभा से विवाह करो, और उसे सुखी करो। मातृहारा बालिका हवा में जो स्वर्ण-प्रासाद बना रही है, उसे नष्ट न करो। बस, यही मैं तुमसे अंतिम भीख माँगती हूँ।"

भारतेंदु ने सिहरकर कहा—"अमीलिया, मुझे क्षमा करो, यह मैं नहीं कर सकता। उस पवित्र आत्मा को अपने-जैसे पापी के साथ बाँधकर उसके भी जीवन का सौख्य नष्ट नहीं करना चाहता। मैं जानते-बूझते यह दूसरा महान् पातक नहीं करूँगा। अमीलिया, अमीलिया, मैं तुम्हारे अनुरोध की रक्षा नहीं कर सकता।"

अमीलिया ने गंभीर स्वर में कहा—"याद रक्खो, तुम प्रतिज्ञा-बद्ध हो, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी होगी। यदि न करोगे, तो तुम मेरी और आभा की हत्या के ज़िम्मेवार होगे, फिर अगले जन्म में भी तुम्हारा निस्तार न होगा। बस, इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कहना चाहती। अमीलिया को तुम भूल जाओ। उसकी स्मृति हृदय से निकाल दो। मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। अपनी बहन आभा के कल्याण की कामना करती हूँ। बस, हमारा और तुम्हारा यही

अंतिम मिलन है। मैं जाती हूँ, तुम्हारी प्रतिज्ञा की फिर याद दिलाए जाती हूँ।"

कहती-कहती अमीलिया अपनी आँखों का अश्रु-वेग छिपाने के लिये कैबिन से सवेग निकलकर अदृश्य हो गई। भारतेंदु स्तब्ध होकर उसकी ओर देखते ही रह गए।

इस समय तक डॉक्टर नीलकंठ और स्वामी गिरिजानंद अपने परिवार के साथ पंडित मनमोहननाथ से बिदा होकर जहाज़ पर चढ़ आए थे। जहाज़ चलने की सूचना दे चुका था। अमीलिया दौड़ती हुई जहाज़ से उतर गई। उसने अपने पिता से भी बिदा नहीं माँगी। वह अचेत भागी जा रही थी, जैसे कोई उसे पकड़ने के लिये पीछे दौड़ा आ रहा हो।

कुछ ही क्षण बाद जहाज़ चल दिया। अमीलिया रुकी, और उसने पीछे फिरकर देखा। सामने ही डेक पर आभा खड़ी हुई उसे देख रही थी। आभा ने रूमाल हिलाकर बिदा माँगी। अमीलिया ने भी रूमाल निकालकर हिलाना चाहा, किंतु वह उसके हाथ में ही रह गया, और वह अचेत होकर डॉक्टर हुसैनभाई की गोद में गिर पड़ी, जो उसके पीछे आकर उसी समय खड़े हुए थे।

समुद्र की तरंगें 'सुमित्रा' को खिलाती हुई पृथ्वी के उत्तरीय खंड की ओर बड़े वेग से ले चलीं।

---

## १३

दो मास पश्चात्—

डॉक्टर नीलकंठ और आभा को दक्षिणी अमेरिका छोड़े दो महीने बीत गए। आस्ट्रेलिया तथा अन्य द्वीप-समूह देखते हुए वे देश वापस आए। भारतेंदु की गंभीरता धीरे-धीरे उग्र रूप धारण कर रही थी, जिससे डॉक्टर नीलकंठ को भी चिंता होने लगी थी, और आभा, उसकी चिंताओं का तो कहीं ओर-छोर न मिलता था। मानव-प्रकृति का यह स्वभाव है कि अभिमान उस मनुष्य के प्रति स्वतः उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्य प्रेम करता है, यदि उसका प्रेमी उसकी उपेक्षा करता है। रास्ते-भर आभा उसी आहत अभिमान को अपने उर में छिपाए हुए भारत पहुँच गई।

दोपहर का समय था। मेष का सूर्य अपनी प्रखर ज्वाला से उत्तरीय पृथ्वी-खंड को दग्ध कर रहा था। आज प्रातःकाल ही डॉक्टर नीलकंठ स्वदेश वापस आए थे। नौकर घर की सफ़ाई समाप्त कर चुके थे, और गंगा भोजन बनाने का आयोजन कर रही थी। राधा और यशोदा उसकी सहायता कर रही थीं। भारतेंदु ने अपने निवास-स्थान में जाने का बहुत अनुरोध किया, लेकिन डॉक्टर नील-कंठ किसी प्रकार सहमत न हुए। आभा ने जब उन्हें बहुत ज़िद पकड़ते देखा, तो रुष्ट होकर कहा—"पापा, जब किसी को आपका सत्कार अच्छा नहीं लगता, तब आप क्यों ज़िद करते हैं, उन्हें जाने दीजिए, शायद कोई ज़रूरी काम हो।"

आभा यह कहकर तेज़ी से चली गई। डॉक्टर नीलकंठ भी चुप हो गए। भारतेंदु बिना कुछ कहे, अपने हृदय का भार वहन किए

चले गए। आभा वहाँ से सीधे अपने कमरे में जाकर अपनी मा का चित्र देखने लगी, और उसकी छवि का मिलान माधुरी के स्वरूप से करने में व्यस्त हो गई। उसकी मा 'सावित्री' का चित्र उसे आकृष्ट करने लगा। वह कहने लगी—"इस चित्र की आत्मा आज एक जीवित मनुष्य में व्याप्त है, जिसे मैं जानती हूँ, लेकिन अब उसे यह रहस्य विदित नहीं। एक समय था, जब वह इस चित्र में प्रतिष्ठित शरीर के संबंधी मनुष्यों से मिलने के लिये लालायित नहीं, आतुर थी, परंतु आज उसे वह ज्ञान नहीं है। मैंने अपनी मा को पाकर पुनः खो दिया।"

कहते-कहते वह विकल हो गई। उसके हृदय की आकुलता व्यग्र होकर उस चित्र में जड़ित शीशे पर गिरकर अश्रु-माल पहनाने लगी।

इसी समय प्रसन्नता से उमगती हुई मालती ने उस कमरे में प्रवेश किया। आभा ने चौंककर उसकी ओर देखा। आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी बूँदें, जो सहसा किसी अपरिचित को मार्ग में आते देख, त्रस्त होकर, ठिठक गई थीं, अब उसे पहचानकर शर्म के मारे जल्दी से गिरकर उस अश्रु-जल में सम्मिलित हो गईं, जो बहुत समय से चित्र के चौखटे के समीप एकत्र हो रहा था। मालती आभा की यह अवस्था देखकर किंचित् व्याकुल होकर सहमी हुई दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। आभा सखी का स्वागत करने के लिये उठ खड़ी हुई, उसके मुख पर एक मलिन हास्य-रेखा थी। मालती को कुछ आश्वासन मिला। वह आगे बढ़ी। आभा अब अपने को न रोक सकी, दौड़कर बिछुड़े प्रेमियों की भाँति मालती से चिपट गई। मालती इसके लिये तैयार थी, उसने दोनो हाथों से उसे अपने हृदय से कसकर लगा लिया। हृदय अपनी मौन भाषा में एक दूसरे की धड़कन सुनकर बेताबी से दुख-सुख पूछने लगे।

मालती ने आभा के अश्रु-सिक्त कपोल पर एक प्रेम-चिह्न अंकित

करते हुए कहा—"कहो, अच्छी तो रहीं। तुम तो वहाँ पहुँचकर मुझे एकदम भूल गईं, सिर्फ़ अपने पहुँचने और यहाँ आने का पत्र लिखा। यह तो कहो, सेहरा गाने के वक्त मरसिया क्यों गाया जा रहा है?"

आभा ने आवेग से उसे अपने हृदय से लगाते हुए उत्तर दिया—"तुम्हें पाकर आज शांति मिली। अब मिली हो, सब कहूँगी। ज़रा चित्त तो ठिकाने होने दो।"

मालती ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या अभी तक पूर्व-जन्म के प्रेम की भूमिका ही लिखी जा रही है?"

आभा ने मुस्किराकर मालती को छोड़ दिया। फिर उसे सोफे पर ले जाकर बैठाते हुए, कुछ गंभीर होकर कहा—"मालती, तुम पूर्व-जन्म में विश्वास नहीं करतीं, किंतु आज मैं अकाट्य प्रमाण पेश करूँगी, जिससे तुम्हें विश्वास करना पड़ेगा कि संसार में पूर्व-जन्म तथा पर-जन्म है। ईश्वर की कृपा से वह चमत्कार देखने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है, और साथ ही उन सब व्यक्तियों ने भी इसे देखा है, जो दक्षिणी अमेरिका में, 'साम्यवाद-आश्रम' में, उपस्थित थे। तुम्हें सुनकर और आश्चर्य होगा कि मैंने अपनी स्वर्गीया मा का पुनर्जन्म देखा है।"

मालती ने चकित होकर कहा—"तुमने अपनी मा को दूसरे जन्म में पहचान लिया? क्या वह दक्षिणी अमेरिका में जन्मी हैं?"

वह आभा की ओर विस्फारित नेत्रों से देखने लगी।

आभा ने उत्तर दिया—"नहीं, उनका जन्म तो इसी देश में हुआ है, मगर घटना-चक्र से वह इस समय वालपेराइज़ो के समीप साम्यवाद-आश्रम में हैं।"

मालती ने हँसकर कहा—"तुम्हारे ससुरजी के आश्रम में?"

यह कहकर वह हँस पड़ी। आभा हया से शरमा गई।

मालती ने हँसते हुए कहा—शरमाती क्यों हो, आज नहीं, दो दिन बाद तो वह तुम्हारे ससुर होंगे ही, इसमें भी क्या संदेह है।"

आभा ने आँख नीची करके कहा—"अब वैसी आशा नहीं।"

मालती ने आश्चर्य के साथ कहा—"यह मैं क्या सुनती हूँ। नहीं, तुम मुझे सिर्फ़ परेशान करने के लिये ऐसा कहती हो।"

आभा ने धीमे स्वर में कहा—"मालती, क्या कभी मैंने तुमसे झूठ बात कही है। आज तक मैं उन्हें कभी ठीक से समझ नहीं पाई, हालाँकि इतने दिनों से मैं उन्हें जानती हूँ। यह मैं जानती हूँ कि उनके मन में कोई मानसिक पीडा है, जिसे वह अपने ही हृदय में छिपाए हुए हैं। कभी-कभी जब वह पीड़ा भयंकर हो उठती है, उनकी दशा बिलकुल पागल आदमियों के सदृश हो जाती है। जब हम लोग जा रहे थे, और हमारा जहाज़ वालपेराइज़ो पहुँचने ही वाला था, तब एक दिन शाम को उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया था—"मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता।" इसके बाद उन्होंने आज तक कभी मुझसे एक शब्द न कहा, और न मैं उनसे कुछ पूछ ही पाई। अमीलिया भी उनके इस व्यवहार से असंतुष्ट थी, क्योंकि उसे ही यह भेद मालूम था, और मैंने उसे अपना भेद बताया था।"

मालती ने पूछा—"अमीलिया कौन है?"

आभा का गला कहते-कहते भर आया था। उसे परिष्कृत करके कहा—"कैप्टेन जैकब्स की कन्या और उनकी मित्र हैं।"

मालती ने कान खड़े करते हुए कहा—"क्या वह भारतेंदु बाबू को जानती है?"

आभा ने सहज भाव से उत्तर दिया—"हाँ, वह उनकी बाल-बंधु है।"

मालती ने संदिग्ध स्वर में पूछा—"क्या तुमने उन दोनो के व्यवहार में कुछ और नहीं लक्ष्य किया?"

आभा ने चकित होकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।"

मालती ने पूछा—"मित्रता के अलावा उनमें प्रेम-संबंध तो नहीं है?"

आभा ने दाँतों-तले जीभ दबाते हुए कहा—"नहीं, ऐसा कभी संभव नहीं। उसके-जैसा पवित्र-हृदय देखने को बहुत कम मिलता है।"

मालती ने कुछ विचारते हुए कहा—"अच्छा, क्या तुमने कभी उन दोनो को एकांत में मिलते या बातें करते देखा है?"

आभा ने उत्तर दिया—"नहीं, जहाँ तक मुझे मालूम है, वे दोनो कभी एकांत में न मिलते थे। अमोलिया ने तो सेवा का व्रत ले रक्खा था, वह पहले से मेरे पूर्व-जन्म की मा की परिचर्या में नियुक्त थी, और हम लोगों के वहाँ रहने तक वह उसी कार्य पर रही। वह डॉक्टर हुसैनभाई से प्रेम करती है, और उनके विवाह की बात भी आपस में तय हो गई है। इधर उन दिनों ज़रूर उनके विचार में कुछ परिवर्तन-सा हुआ था। वह कहती थी कि मैं आजन्म कुमारी रहूँगी, और इसी तरह सेवा में अपना जीवन व्यतीत करूँगी। मेरा उससे बहुत स्नेह हो गया था, लेकिन वह कहती थी कि तुम मेरी छाया से दूर रहना, और कभी मुझसे मिलने का प्रयत्न न करना, नहीं तो मुझसे तुम्हारा बहुत अपकार होने की संभावना है। मैंने उससे इसका अर्थ पूछा, लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया, और टाल दिया।"

मालती ने अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहा—"अब मैं ज़रूर कह सकती हूँ कि दोनो एक दूसरे से प्रेम करते थे। यह ध्रुव सत्य है। किंतु उनका प्रेम विवाहित होकर स्थायी नहीं बनाया जा सकता था, इसलिये दोनो उसी दुख से एक-दूसरे से मिलने में कुंठित होते

थे। एक नारी-हृदय था, इसलिये सेवा से प्रेम कर अपना जीवन बिताना चाहता था, और एक पुरुष-हृदय था, जो मौन रहकर अपनी विपरीत परिस्थितियों से युद्ध कर रहा था। पुरुष का हृदय कुछ उतावला होता है, वह कठिनता के समय अधीर हो जाता है। भारतेंदु बाबू ज्यों-ज्यों वालपेराइज़ो के निकट पहुँच रहे थे, त्यों-त्यों अधीर हो रहे थे, यहाँ तक कि उस स्थान के समीप होते ही उनका मन विद्रोही हो उठा, और उन्होंने वह विद्रोहाग्नि शांति करने के लिये तुम्हें अपने मनोविकारों के संघर्ष का अंतिम निर्णय सुना दिया। इसके विपरीत अमीलिया एक उच्च हृदया रमणी है। उसका प्रेम सागर-सा गंभीर है, उसमें झंझावात का प्रवेश नहीं, वह त्याग और उसका महत्त्व जानती है, और मानवता की सर्वोच्च भावना के वशीभूत होकर अपना प्राप्य तुम्हें समर्पित कर देती है, इस आदेश के साथ कि तुम फिर उसके मार्ग में पड़कर उसे विचलित न कर सको। तुम कहती हो कि वह डॉक्टर हुसैनभाई से प्रेम करती है, यह बिलकुल ग़लत है, सत्य यह है कि डॉक्टर हुसैनभाई उससे प्रेम करते हैं, और दूसरे भारतेंदु बाबू का प्रेम अपने से हटाने के लिये उसने यह प्रसिद्ध किया कि उसका विवाह स्थिर हो गया है, परंतु वह विवाह कदापि न करेगी।"

आभा ने उसकी ओर विस्फारित नेत्रों से देखते हुए कहा—"मालती, तुम तो इस प्रकार बातें कह रही हो, जैसे इस नाटक की सूत्रधार तुम्हीं हो। तुम्हारी बातों में मुझे बहुत कुछ सत्य प्रतीत होता है। अवश्य ही ऐसा कुछ मामला है।"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"जो कुछ मैंने कहा है, वह पूर्ण सत्य है, नहीं तो तुम्हारी-जैसी सुंदरी से विवाह करने को कौन महामुनि अस्वीकार करेगा।"

यह कहकर उसने आभा के कपोलों का प्रेम के साथ उँगली से

स्पर्श किया। आभा लज्जित होकर किसी आशंका से काँपकर नत दृष्टि से पृथ्वी की ओर देखने लगी।

इसी समय राधा ने आकर कहा—"भोजन तैयार है, चलिए।"

मालती ने राधा को देखकर पूछा—"यह कौन है?"

आभा ने उत्तर दिया—"यह मेरी सखी हैं, और स्वामी गिरिजानंद की लड़की। इनकी कहानी भी विचित्र है, किसी दूसरे समय सुनाऊँगी। मालती, तुम्हें क्या बतलाऊँ, इस भ्रमण में ऐसी-ऐसी विचित्र घटनाएँ हुई हैं, जिनके ब्योरेवार वर्णन के लिये कई घंटे क्या, कई दिन चाहिए।"

मालती ने उठते हुए कहा—"अच्छा, मैं जाती हूँ, और भारतेंदु बाबू से मिलकर इस बात का निर्णय करती हूँ कि यह बात कहाँ तक सत्य है।"

आभा ने अधीरता के साथ उसे पकड़ते हुए कहा—"नहीं, ऐसा मत करना, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

मालती ने हँसकर कहा—"अगर वे ही शब्द तुम उनसे कहतीं, त शायद इसका असर कुछ और ही होता।"

आभा ने लज्जित होकर कहा—"जाओ, तुम्हें हमेशा मज़ाक़ ही सूझता है। चलो, तुम भी थोड़ा खाना खा लो।"

मालती ने कहा—"मैं इस वक्त कुछ न खाऊँगी। हाँ, तुम्हारी यात्रा का वृत्तांत सुनने के लिये तैयार हूँ, ज़रूर सुनूँगी। मैं यहाँ बैठी हूँ। तुम जाओ, खाना खा आओ।"

आभा राधा के पीछे-पीछे चली गई। मालती गंभीर होकर विचार-मग्न हो गई।

---

## १४

सर रामकृष्ण ने चिंतित स्वर में कहा—"अब इसे किस उपाय से रोका जाय। दिन तो बहुत नज़दीक हैं, और अभी तक अनूपकुमारी के पति का पता नहीं मिला, हालाँकि तमाम भारतवर्ष की पुलिस ढूँढ़-ढूँढ़कर परेशान हो गई है। देखता हूँ, अब कौशल काम नहीं देगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने उत्तर दिया—"यदि कौशल काम न दे, तो बल का प्रयोग करो। चाहे जैसे हो, राजा साहब का विवाह तो रोकना ही पड़ेगा।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"बड़ी सरकार, सचमुच बड़ी सरकार हैं। नादिरशाही हुक्म लगाने में कुछ देर नहीं लगती। ख़ैर, मैं अभी हताश नहीं हुआ हूँ। अब भी आज से पूरे पंद्रह दिन हमारे सामने हैं। आशा है, इस दर्म्यान कुछ-न-कुछ पता ज़रूर लग जायगा।"

लेडी चंद्रप्रभा ने पूछा—"आजकल भूतराज मातादीन कहाँ है?"

सर रामकृष्ण ने कहा—"वह अभी तक कलकत्ते गया हुआ था, आज वापस आया है। गुप्तचर की रिपोर्ट अभी कुछ देर पहले आई है। कलकत्ते जाकर उसने इतनी छान-बीन की, जिसका कोई ठिकाना नहीं। यह तो कहना पड़ेगा कि वह हाथ धोकर अनूपकुमारी के पीछे पड़ा है, उसे किसी तरह चैन नहीं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"हमें उसका कृतज्ञ रहना पड़ेगा। यदि वह इतने भेद हमें न दिए होता, तो हम लोग कुछ न कर पाते।"

सर रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"बेशक, मगर यह काम उसने

अपने स्वार्थ से किया है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, वह पुनः अनूपगढ़ का दीवान होना चाहता है, इसके अतिरिक्त अनूपकुमारी से प्रतिशोध भी लेना है। वह काइयाँ और दूरदर्शी है। उसे किसी तरह मालूम हो गया था कि एक दिन उसे अनूपगढ़ से जाना पड़ेगा, इसलिये उसने अपना जाल पहले से ही गूँथना शुरू कर दिया था। कुँवर साहब को निःशक्त करने का यही कारण था। इनके द्वारा वह अपना दीवानी-पद क़ायम रखना चाहता है, इसी-लिये अनूपगढ़ से संबंध-विच्छेद होने पर उसने तुम्हें कल्पित नाम से पत्र लिखा, और वह दवा भी ले आया, जो उसकी पहली दवा का प्रभाव नष्ट करनेवाली थी। ऐसे ही व्यक्ति संसार में तुच्छ कुल में उत्पन्न होकर अपूर्व दक्षता और प्रभुत्व स्थापित कर लेते हैं, किंतु यदि वे गिरते हैं, तो अपना सर्वस्व डुबा देते हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने हँसते हुए कहा—"तुम तो उसके बहुत बड़े भक्त हो गए। कपटी, छली और प्रपंची मनुष्य की इतनी तारीफ़!"

सर रामकृष्ण ने हँसते हुए कहा—"हमारा काम ऐसे ही मनुष्यों से चलता है। यदि संसार में ऐसे मनुष्य न हों, तो सरकार का काम एक पल न चले। ऐसे ही आदमियों को हाथ में रखने से असंभव भी संभव हो जाता है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने मंद-मंद मुस्किराते हुए कहा—तुम-जैसे सर-कारी आदमियों से भगवान् ही रक्षा करें।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"मालती कहाँ है?"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"आभा से मिलने गई है।"

सर रामकृष्ण ने उत्कंठित होकर पूछा—"क्या डॉक्टर नीलकंठ आ गए? उन्होंने अपने आने का समाचार नहीं दिया। अगर आ गए हैं, तो मैं भी आज उनके यहाँ जाऊँगा। इधर कई महीनों से उनके यहाँ नहीं गया, हालाँकि वह कई दफ़े आ चुके हैं।"

लेडी चंद्रप्रभा ने कहा—"तुम्हें कहीं आने-जाने की फ़ुरसत कहाँ रहती है। हाँ, मातादीन-जैसे पशुओं से बातें करने को बहुत समय मिलता है।"

इसी समय अर्दली ने आकर कहा—"मातादीन नाम का एक आदमी हुज़ूर से मुलाक़ात हासिल करने के लिये हाज़िर हुआ है। कहता है, मुझे ख़ास काम है।"

अर्दली की लखनवी तहज़ीब की गुफ़्तगू सुनकर सर रामकृष्ण ने व्यग्रता से कहा—"उसे प्राइवेट कमरे में बैठाओ, मैं अभी आता हूँ। लेकिन उसे वहाँ अकेले मत छोड़ना, उससे बातें करते हुए उसकी हरकत पर नज़र रखना।"

अर्दली आदाब बजाकर चला गया।

लेडी चंद्रप्रभा ने मुस्किराते हुए कहा—"इस कमबख़्त की उम्र भी बहुत है। नाम लेते ही शैतान की तरह हाज़िर हो गया।"

सर रामकृष्ण ने कहा—"ऐसे ही लोगों के गुण-समूह का नाम शैतान है। उनका अस्तित्व शैतान की तरह अनादि और अनंत है। अच्छा, जाऊँ देखूँ, आज कोई-न-कोई समाचार लाया होगा। बहुत दिनों में आया है।"

लेडी चंद्रप्रभा ने 'लीडर' उठाते हुए कहा—"ज़रूर जाइए, शैतान-पुराण आरंभ कीजिए।"

सर रामकृष्ण चले गए। उनके जाने के बाद लेडी चंद्रप्रभा उस दिन का 'लीडर' पढ़ने लगीं। रायबरेली के संवाददाता ने लिखा था—

"राजा सूरजबख़्शसिंह-जैसे महानुभाव, आदर्श सुधारक हमेशा जन्म नहीं लेते, केवल समय के तक़ाज़े पर, ईश्वर की कृपा से, पैदा होते हैं। रंगमंच पर खड़े होकर लंबी-लंबी वक्तृताएँ देनेवाले सुधार-प्रेमियों के दर्शन तो नित्यप्रति वैसे ही होते हैं, जैसे वर्षा में

मेढ़कों के, परंतु निःस्पृह और कर्मिष्ठ सुधार-प्रेमी उस प्रकार देखने को नहीं मिलते, जैसे आजकल सच्चे महात्मा और संन्यासी। राजा सूरजबख़्शसिंह ऐसे ही व्यक्तियों में हैं। हिंदू-समाज की कितनी ही जातियों में विधवा-विवाह रायज हो गया है, परंतु ताल्लुक़ेदारों में ऐसी कोई मिसाल देखने में आज तक नहीं आई। ताल्लुक़ेदारों के समाज में जो यह बड़ा कलंक लग रहा है, उसका नाश बहुत शीघ्र ही हो जायगा। हमारे सामने सुधार-प्रेम का उत्कृष्ट नमूना शीघ्र ही उपस्थित होनेवाला है। इस कलंक को मिटाने का श्रेय प्रातः स्मरणीय अनूपगढ़ के राजा सूरजबख़्शसिंहजी को प्राप्त होनेवाला है। इस प्रौढ़ावस्था में भी आपकी सुधार-कामना इतनी प्रबल है कि वह एक समवयस्क विधवा से अपना विवाह कर नौजवान ताल्लुक़ेदारों के सामने एक आदर्श रखना अपना कर्तव्य समझते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने इस अवस्था में भी विवाह करना उचित समझा है। यह आदर्श विवाह आगामी १८ एप्रिल को, लखनऊ में होनेवाला है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम लोग ऐसे विवाह का स्वागत कर अपने नवयुवक हिंदू-समाज में नवजीवन का मंत्र फूँक दें। श्रीमान् राजा साहब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, और उनके नैतिक साहस के लिये हम जनता की ओर से बधाई देते हैं! हमें विश्वस्त सूत्र से यह भी मालूम हुआ है कि श्रीमान् राजा साहब इस विवाह के उपलक्ष्य में एक लाख रुपयों का दान कई देश-सुधारक संस्थाओं को देंगे। भगवान् से हमारी यही प्रार्थना है कि वह दीर्घायु होकर बहुत काल तक हिंदू-समाज की सेवा करें।"

लेडी चंद्रप्रभा ने घृणा के भाव से ओत-प्रोत होकर वह पत्र फेक दिया। उसके पन्ने बिजली के पंखे से उड़-उड़कर उसमें लिखे हुए समाचार को बधाई देने लगे। लेडी चंद्रप्रभा उसे बरदाश्त न कर सकीं, और क्रुद्ध होकर उस पत्र को मरोड़कर दूर फेक दिया। फिर

थोड़ी देर बाद, जब उन्हें उससे भी शांति न मिली, उठकर कमरे के बाहर चली गईं।

उधर सर रामकृष्ण को कमरे में प्रवेश करते देख बाबू मातादीन उठकर खड़े हो गए, और निहायत अदब से फ़रशी अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गए। अर्दली उन्हें देखकर चुपचाप कमरे के बाहर हो गया, और दरवाज़ा बंद कर लिया।

सर रामकृष्ण ने बाबू मातादीन को बैठने का संकेत करते हुए कहा—"आज बहुत दिनों में दिखाई दिए? इतने दिनों तक कहाँ थे? मैं तो समझा था, तुम नाराज़ हो गए।"

बाबू मातादीन ने बड़े ही विनीत स्वर से कहा—"हुज़ूर, यह क्या फ़रमाते हैं। नाहक़ कमतरीन को काँटों में घसीटते हैं। आज मैं हुज़ूर की ख़िदमत में एक ख़ुशख़बरी लेकर हाज़िर हुआ हूँ।"

सर रामकृष्ण ने उत्साहित करनेवाली हँसी मुँह पर लाकर कहा—"मैं समझता हूँ, तुम्हें अनूपकुमारी के पति का पता लग गया है।"

बाबू मातादीन ने सिर झुकाकर आदाब बजा लाते हुए कहा—"हुज़ूर का क़यास बहुत दुरुस्त है। मैं आज कामयाब हुआ हूँ। उसे मैंने कलकत्ते के बाज़ार में देखा। तब से मैं उसके पीछे छाया की भाँति लगा हुआ हूँ। आज वह लखनऊ आया है।"

सर रामकृष्ण ने प्रसन्न कंठ से पूछा—"वह कहाँ है?"

बाबू मातादीन ने सहर्ष उत्तर दिया—"बटलर-रोड के एक बँगले में ठहरा हुआ है। मैं वहाँ अपने दो आदमी छोड़ आया हूँ, जो उसका पीछा करेंगे, अगर वह कहीं जायगा। मेरे ख़याल से आप मेरे साथ तशरीफ़ लाएँ, और किसी उपाय से उसे अपने हाथ में कर लें। आपमें ताक़त है, उसे आप किसी बहाने से गिरफ़्तार कर अपने क़ब्ज़े में कर सकते हैं।"

सर रामकृष्ण ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। मुझे भी बाहर जाना है, उसी तरफ़। रास्ते में वह स्थान भी देख लूँगा, जहाँ वह ठहरा हुआ है। अगर गिरफ़्तार करने की ज़रूरत पड़ेगी, तो गिरफ़्तार करा दूँगा। लेकिन यह तो कहो कि तुमने उसके पहचानने में भूल तो नहीं की?"

बाबू मातादीन ने उत्तर दिया—"जी नहीं हुज़ूर, ऐसी ग़लती कमतरीन से नहीं हो सकती। उसे मैं हज़ार आदमियों के बीच से ढूँढ़कर निकाल सकता हूँ। मैं वर्षों उसके साथ रहा हूँ। उसके मस्तक पर ऑपरेशन का निशान ऐसा विचित्र है, जो कभी भूला नहीं जा सकता।"

सर रामकृष्ण ने घंटी बजाई। दूसरे क्षण अर्दली दरवाज़ा खोलकर दाख़िल हुआ। उसे मोटर लाने का आदेश दिया।

थोड़ी देर बाद, जब हॉर्न का शब्द सुना, वह बाबू मातादीन को अपने साथ लेकर बटलर रोड की तरफ़ चल दिए।

---

## १५

डॉक्टर नीलकंठ ने मंद मुस्कान-सहित सर रामकृष्ण का स्वागत करते हुए कहा—"पधारिए, आज आपने बड़ी कृपा की। मैं आज ही दक्षिणी अमेरिका से लौटा हूँ, कल आपके दर्शनों को आता।"

सर रामकृष्ण ने सोफ़े पर बैठते हुए कहा—"मालती की मा से मालूम हुआ कि आप आ गए हैं, इसलिये मैं मिलने के लिये चला आया। कहिए, यात्रा तो कुशल-पूर्वक बीती?" दरवाज़े की ओर देखते हुए कहा—"बाबू मातादीन, चले आइए।"

स्वामी गिरिजानंद, जो पास ही बैठे हुए थे, यह नाम सुनकर चौंके, और उत्सुकता से द्वार की ओर देखने लगे। दूसरे क्षण बाबू मातादीन ने मुअद्दबाना तरीक़े से कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही स्वामी गिरिजानंद उठ खड़े हुए, और उन्हें तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"कौन, बाबू मातादीन हैं क्या?"

बाबू मातादीन ने आगे बढ़ते हुए कहा—"हाँ, वाजपेयीजी, मैं ही हूँ।"

डॉक्टर नीलकंठ आश्चर्य के साथ बाबू मातादीन की ओर देखकर फिर सर रामकृष्ण तथा स्वामी गिरिजानंद की ओर कौतूहल-पूर्वक प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगे। सर रामकृष्ण तो चुप रहे, लेकिन स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"यह मेरे बड़े उपकारी मित्र हैं। मेरे ऊपर इनके इतने एहसान हैं कि मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।"

सर रामकृष्ण मुग्ध होकर स्वामी गिरिजानंद की ओर देखने लगे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि बाबू मातादीन क्या इतने अच्छे हो सकते हैं, जितना वह उसका गुण-गान कर रहे हैं।

सर रामकृष्ण ने डॉक्टर नीलकंठ से कहा—"यह बड़े हर्ष की बात है कि बाबू मातादीन स्वामीजी को जानते हैं। कृपा कर स्वामीजी का परिचय तो कीजिए।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"स्वामीजी हमारे घनिष्ठ मित्रों में हैं। आप पिछले ऑक्टोबर में पंडित मनमोहननाथ के साथ फ़िजी और दक्षिणी अमेरिका गए थे। आश्रम का उद्घाटन आपने ही किया है। वेदांत के आचार्य हैं तथा हिंदू-फ़िलासफ़ी के महान् ज्ञाता। आपने देश-विदेश में हिंदू सभ्यता की विजय-पताका फहराई है।"

सर रामकृष्ण ने अपने मन का क्षुब्ध भाव छिपाते हुए कहा—"यह मैं नहीं पूछता। आपके पूर्व-जीवन का इतिहास पूछता हूँ।"

स्वामी गिरिजानंद ने, इसके पहले कि डॉक्टर नीलकंठ इस प्रश्न का उत्तर दें, शीघ्रता से कहा—"जो कुछ डॉक्टर साहब ने कहा है, वह बिलकुल सत्य नहीं। आप मेरा परिचय अथवा पूर्व-इतिहास जानने के लिये उत्सुक हैं, इसका उत्तर तो मेरे और बाबू मातादीन के अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। मैं संसार का बहुत क्षुद्र, नीच और पापात्मा हूँ। यदि अपने पिछले जीवन का इतिहास कहूँगा, तो वह विस्तृत पाप-कहानी होगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराते हुए कहा—"मैं इससे सहमत नहीं हो सकता। संसार के प्रत्येक प्राणी से भूल हुआ करती है।"

सर रामकृष्ण ने गंभीर होकर पूछा—"कैसी भूल ?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"डॉक्टर साहब, अभी मैंने अपने जीवन का केवल एक अंश बयान किया है, दूसरा अंश तो सिवा मेरे और बाबू मातादीन के दूसरा नहीं जानता। राधा की मा को नर-पिशाच की तरह, अर्धरात्रि में, एकवस्त्रा निकाल देने के बाद मेरी विवाह अथवा स्त्री-संभोग की लालसा मिटी नहीं थी, इसी कारण मैंने अपना पुनर्विवाह किया। मेरी दूसरी स्त्री यद्यपि रूप

में राधा की मा से कहीं बढ़-चढ़कर थी, किंतु मेरी ही भाँति हृदय-हीन थी। ईश्वर ने मेरे पापों का बदला लेने के लिये उसकी उत्पत्ति की थी, सती की आहें कभी निष्फल नहीं जातीं। उसी के प्रभाव से मेरी दूसरी स्त्री ने मुझे विष देकर मुझसे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। बाबू मातादीन की कृपा से मैं किसी तरह बचकर श्मशान-भूमि से वापस आया। जब ताक़त आने पर घर गया, तो देखा, वह ग़ायब हो गई है, उसका कहीं पता नहीं। हाथ मसलकर रह गया। मैं उसका पता लगाने लगा, लेकिन किसी तरह पता न लगा। अंत में निराश होकर और उसे दैविक प्रतिशोध के लिये छोड़कर संन्यासी हो गया। उस कठिन समय में बाबू मातादीन ने मुझे बहुत सहायता दी थी, और इन्हीं के सदुपदेश से मैंने यह भगवा वेष धारण किया है।"

कहते-कहते स्वामी गिरिजानंद कातरता के साथ तीनो व्यक्तियों की ओर देखकर नत दृष्टि से पृथ्वीतल की ओर देखने लगे।

सर रामकृष्ण ने वह निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—"यदि आपकी दूसरी स्त्री आपको मिल जाय, तो आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?"

स्वामी गिरिजानंद ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"क्या करूँगा, क्षमा करूँगा, और उसे सुखी होने का आशीर्वाद दूँगा। जब मैं स्वयं इतना बड़ा पापी हूँ, तो किसी दूसरे को पाप का दंड देने का अधिकार मुझे कदापि नहीं।"

बाबू मातादीन की आँखें अपने आप सर रामकृष्ण की क्षुब्ध दृष्टि से मिल गईं।

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आपके इतिहास का दूसरा खंड तो पहले से भी अधिक त्रास-जनक है। इसके पहले आपने कभी नहीं कहा, और इस विषय पर हमारी-आपकी कभी बातचीत नहीं हुई।"

स्वामी गिरिजानंद ने मलिन हास्य के साथ कहा—"संसार के बहुत कम मनुष्यों को अपनी पाप-कथा कहने का नैतिक साहस होता है, और विशेषकर मेरे-जैसे गेरुआ वस्त्रधारी पापियों में ऐसा साहस होना असंभव है। मेरे जीवन का प्रथम खंड क्रिया थी, दूसरा प्रतिक्रिया और तीसरा अब क्रिया तथा प्रतिक्रिया का संघर्ष है। मेरे पापों का अंत नहीं, प्रायश्चित्त तो बहुत दूर है।"

सर रामकृष्ण ने हँसकर कहा—"स्वामीजी, प्रायश्चित्त कर्म से नहीं, उस भाव के उदय होने से आरंभ होता है। किंतु मैं यह अवश्य कहूँगा कि प्रतिशोध लेना प्रत्येक का धर्म है। क्षमा हृदय की कमज़ोरी का दूसरा नाम है; यह कापुरुषता का लक्षण है। आपको अपनी दूसरी स्त्री से अवश्य प्रतिशोध लेना चाहिए।"

स्वामी गिरिजानंद ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"प्रतिशोध मानुषिक वासना है, और क्षमा दैवी। मनुष्य को अधिकार नहीं कि वह दूसरे मनुष्य को हनन करे, यदि कोई ऐसी ग़लती करता है, तो इसका अर्थ कदापि नहीं कि दूसरा भी उसे दोहराए। मैंने राधा की मा के साथ अन्याय किया। उस अभागिनी ने केवल मेरे कारण इतने कष्ट उठाए, लेकिन उसने मेरे सारे दोषों पर परदा डाल दिया, और मुझे क्षमा प्रदान की। मैं प्रतिशोध लेकर ईश्वरीय न्याय में ख़लल नहीं डालना चाहता।"

बाबू मातादीन ने उत्सुकता के साथ पूछा—"क्या बहनजी का पता लग गया?"

स्वामी गिरिजानंद ने कहा—"हाँ, उन्हें मेरे कारण ग़ुलाम होकर अपने जीवन के दिन काटने पड़े। यह डीपोवालों के चक्कर में फँसकर फ़िज़ी चली गई थीं। और जिस प्रकार उन्होंने अपने दिन गुज़ारे हैं, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। फ़िज़ी में ही आपकी भांजी राधा का जन्म हुआ है। वे दोनो मेरे साथ हैं।

यदि आपकी इच्छा हो, तो उनसे मिलकर उनकी मुसीबतों का हाल पूछ लें।"

बाबू मातादीन तुरंत तैयार हो गए। स्वामी गिरिजानंद उन्हें लेकर भीतर चले गए।

सर रामकृष्ण ने उनके जाने के बाद कहा—"स्वामीजी का इतिहास बड़ा रहस्य-पूर्ण है।

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"ईश्वर की सृष्टि में यदि कोई रहस्यमय है, तो वह मनुष्य है। स्वामीजी की जीवन-कहानी सत्य ही आश्चर्यमय है।"

सर रामकृष्ण गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"अपनी यात्रा का सविस्तार वर्णन तो कीजिए।"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आज मैं आपको एक दूसरी आश्चर्य-जनक घटना सुनाऊँगा, जिस पर शायद आपको विश्वास न हो। यदि मैं कहूँ कि आभा की मा का पुनर्जन्म हुआ है, और मैंने उसे देख है, तो आप क्या कहेंगे?"

सर रामकृष्ण ने चकित होते हुए कहा—"आभा की मा को आपने पुनर्जन्म में कैसे पहचाना? और उनका पुनर्जन्म हुआ, इसका क्या प्रमाण है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराते हुए कहा—"इसके अकाट्य प्रमाण हैं। उसने मुझे, आभा और चाची को पहचाना। ऐसी-ऐसी गुप्त बातें बताईं, जिन्हें मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। ऐसा मालूम होता है कि केवल उससे मिलने के लिये ही मुझे दक्षिणी अमेरिका जाना पड़ा।"

सर रामकृष्ण ने उत्कंठित स्वर से पूछा—"वह आजकल कहाँ है?"

डॉक्टर नीलकंठ ने एक दीर्घ निःश्वास के साथ कहा—"वह तो

केवल एक क्षणिक विद्युत्-प्रकाश था, जो दूसरे ही क्षण फिर विस्मृति के काले बादलों में विलीन हो गया। मस्तिष्क के स्मृति-कक्ष में एक आततायी के अत्याचार से एक प्रकार का भूचाल आ जाने के कारण उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हो गई थी, और फिर उसमें दुबारा हलकंप होने से वह उसी क्षण लुप्त हो गई। इस समय उसे कुछ ज्ञात नहीं। उसे केवल इस जन्म की स्मृति है।"

सर रामकृष्ण ने पूछा—"आप सविस्तार अपनी कहानी कहिए। आपने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया है।"

डॉक्टर नीलकंठ माधवी की कथा कहने लगे।

---

# १६

जब से अमीलिया भारतेंदु को बिदा कर आश्रम में वापस आई है, तब से वह बीमार है। उसकी बीमारी के कारण पंडित मनमोहन-नाथ और डॉक्टर हुसैनभाई बहुत चिंतित रहते थे। माधवी, जो अब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गई थी, उसकी देख-भाल करती थी। दो महीने में वह इतनी कृश हो गई थी कि उसे पहचानना कठिन ही नहीं, असंभव हो गया था। किंतु उसका मुख अब भी देदीप्यमान था, और आँखों में एक विशेष चमक आ गई थी। डॉक्टर हुसैनभाई रात-दिन जी-तोड़ परिश्रम करते, किंतु वह अमीलिया का किसी भाँति आरोग्य न कर सके। इन दिनों अमीलिया केवल माधवी को छोड़कर किसी अन्य से बात भी न करती थी। यदि कभी पंडित मनमोहननाथ उससे उसकी तबियत का हाल पूछते, तो वह मलिन हास्य के साथ उन्हें सांत्वना देनेवाले दो-तीन शब्द कहकर चुप हो जाती। डॉक्टर हुसैनभाई के हृदय की अवस्था भी बड़ी चिंता-जनक थी। वह चाहते थे, अमीलिया खुलकर उनसे अपनी बातें करे, किंतु उनके मन की साध पूरी न होती थी, जिससे वह अधिकाधिक दुखी होते जाते थे। अमीलिया के साथ-साथ उनका भी स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता जाता था, परंतु वह भी अपनी वेदना अपने ही उर में छिपाए रहते थे। अमीलिया की तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी यह वेदना छिपी न थी। वह एक दुख-भरी आह के साथ उनकी ओर देखकर अपने नेत्र पुनः बंद कर लिया करती थी।

दोपहर का समय था। दक्षिणी अमेरिका के दिन अब छोटे होने लगे थे, और शीत-काल अपने लंबे क़दमों के साथ बढ़ा चला आता

था। माधवी आश्रम-वासियों के लड़कों की देख-रेख करने गई थी, क्योंकि आज अमीलिया की हालत किसी क़दर अच्छी थी। अमीलिया धूप में एक आराम-कुरसी पर बैठी हुई चित्रों का अलबम देख रही थी। किसी के आने का पद-शब्द सुनकर, उसने सिर उठाकर देखा, तो कमरे के द्वार पर डॉक्टर हुसैनभाई खड़े थे। उन्हें आगे जाने का साहस न हुआ। वह वहीं खड़े होकर कुछ सोचने लगे।

अमीलिया ने उनकी ओर देखा, और उनके आने की प्रतीक्षा करने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई उसके बुलाने की प्रतीक्षा करते रहे। वह आगे कमरे में न गए।

अमीलिया ने कुछ देर तक उनकी राह देखकर कहा—"आइए, आप दरवाज़े पर क्यों खड़े हैं?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"मैं समझा, शायद आप सो रही हैं, इसलिये आपकी नींद में ख़लल पड़ने के डर से भीतर आने का साहस न करता था।"

यह सुनकर अमीलिया मुस्किराई, और एक क्षीण हास्य-रेखा उनके मुख पर भी दिखाई दी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने कहा—"आज आपकी तबियत शायद अच्छी है?"

अमीलिया ने उत्तर दिया—"हाँ, आज कुछ ज़रूर अच्छी है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने नत दृष्टि से कहा—"आज मैं आपसे बिदा होने के लिये आया हूँ। इसके पहले कि मैं आपसे बिदा माँगूँ, अपने सारे अपराधों की क्षमा चाहता हूँ। आप ऊँचे ख़यालात की रमणी हैं। आशा है, आप मेरे सारे क़ुसूर माफ़ फ़रमाएँगी।"

कहते-कहते आवेग से उनका कंठ अवरुद्ध हो गया।

अमीलिया चौंक पड़ी, और उठकर बैठ गई। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा, और भीत दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने अपने को सँभालते हुए कहा—"आज दो-ढाई महीने से मैं यह देख रहा हूँ कि मेरी मौजूदगी से आपको बहुत कष्ट होता है। मैं ज्यों-ज्यों इस बारे में सोचता हूँ, त्यों-त्यों मुझे यह विश्वास होता है कि मैं मेरी धारणा सत्य है। इस सबब से मैंने यह निश्चय किया है कि अपने को आपकी दृष्टि से हमेशा के लिये छिपा लूँ। कल जहाज़ से मैं सिंगापुर वापस जा रहा हूँ, और इस्तीफ़ा लिखकर पंडितजी की मेज़ पर रख आया हूँ। मैं पुनः आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।"

अमीलिया उनकी ओर एकटक देखती रही, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर हुसैनभाई उठ खड़े हुए। उनकी आँखें अश्रु-पूर्ण थीं।

अमीलिया शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखती रही। उसकी चेतना तिरोहित हो चुकी थी, और वह आराम-कुरसी पर अचेत होकर गिर पड़ी।

डॉक्टर हुसैनभाई ने क्षण-भर स्तंभित होकर उसकी यह दशा देखी, और फिर तुरंत ही उसे सजग करने के लिये जल के छींटे मारने लगे। उन्होंने नब्ज़ देखी, उसकी गति बहुत मंद थी। अमीलिया की कमज़ोरी ने उसकी बेहोशी को शक्ति प्रदान कर दी। डॉक्टर हुसैनभाई कुछ दवाओं की खोज में चले।

जब वह लौटे, अमीलिया उसी तरह बेहोश थी। वह बड़े संकट में पड़े। माधवी भी इस समय न थी, और पंडित मनमोहननाथ भी बाहर गए हुए थे। अंत में, आश्रम-वासियों की सहायता से उन्होंने अमीलिया को पलँग पर लिटाया, और इंजेक्शन देने की तैयार करने लगे।

इसी दर्म्यान माधवी भी वापस आ गई। अमीलिया की यह दशा देखकर स्तंभित रह गई। डॉक्टर हुसैनभाई ने इंजेक्शन दिया, किंतु उससे भी कुछ लाभ न हुआ। उनका मुख श्री-हीन हो गया, और एक प्रकार के भय से वह सिहर उठे।

थोड़ी देर में पंडित मनमोहननाथ भी आ गए। उन्होंने डॉक्टर हुसैनभाई से अमीलिया की आकस्मिक बेहोशी का कारण पूछा, लेकिन वह उसका कोई उत्तर न देकर दूसरा इंजेक्शन देने की तैयारी करने लगे।

पंडित मनमोहननाथ अमीलिया की नाड़ी-परीक्षा करने लगे। नाड़ी की गति देखकर वह भयभीत हो गए।

उन्होंने आशंका-पूर्ण स्वर में कहा—"डॉक्टर, अमीलिया की हालत नाज़ुक तो नहीं है? मुझे तो लक्षण अच्छे नहीं मालूम होते।"

डॉक्टर हुसैनभाई का कंठ जड़ित था। कंठ परिष्कृत करते हुए कहा—"अभी चिंता-जनक बात नहीं। दूसरे इंजेक्शन से सब ठीक हो जायगा।"

उन्होंने पंडित मनमोहननाथ को आशा तो दिला दी, किंतु उनका हृदय स्वयं उनके कथन की सत्यता को मानने के लिये तैयार न था।

थोड़ी देर बाद उन्होंने दूसरा इंजेक्शन दिया। अमीलिया पर उसका भी कुछ असर होते नहीं दिखाई दिया। उसकी आँखों की पलकें वैसी ही निश्चल थीं। पंडित मनमोहननाथ और डॉक्टर हुसैनभाई, दोनो को चिंताओं का वार-पार न रहा। माधवी ने पंडित मनमोहननाथ से कहा—"पिताजी, मुझे तो डर मालूम होता है।"

पंडित मनमोहननाथ ने सांत्वना-पूर्ण स्वर में कहा—"डरने की कोई बात नहीं, अमीलिया अभी होश में आ जायगी।"

डॉक्टर हुसैनभाई तीसरा, पहले से भी उग्र, इंजेक्शन तैयार

करने लगे। तीसरे इंजेक्शन ने किसी हद तक अपना असर दिखाया, अमीलिया की पलकों में एक हल्का कंपन होने लगा। पंडित मनमोहननाथ को कुछ ढाढ़स बँधा। धीरे-धीरे अमीलिया की निश्चेतना तिरोहित होने लगी।

अमीलिया ने अपने नेत्र खोलकर चारो ओर श्रांत दृष्टि से देखा। वह स्पष्ट रूप से कुछ देख न सकी।

पंडित मनमोहननाथ ने सप्रेम उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा—"अमीलिया, अब तुम्हारी कैसी तबियत है?"

अमीलिया ने उनकी ओर शून्य दृष्टि से देखा, किंतु कुछ उत्तर नहीं दिया।

पंडित मनमोहननाथ ने डॉक्टर हुसैनभाई को दवा पिलाने का संकेत किया।

डॉक्टर हुसैनभाई में साहस न था कि वह अमीलिया से दवा पीने का अनुरोध करें। पंडित मनमोहननाथ ने दवा का प्याला लेकर अमीलिया को पिलाते हुए कहा—"दवा पी लो।"

अमीलिया बिना किसी आपत्ति के उसे पी गई।

पंडित मनमोहननाथ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"न-मालूम क्यों विधाता मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है। कोई-न-कोई यहाँ हमेशा बीमार ही रहता है।"

माधवी ने उत्तर दिया—"पिताजी, अभी तक मैं आपके लिये चिंताओं का केंद्र थी, अब अमीलिया बड़न हैं।" कहते-कहते उसका चेहरा उदास हो गया।

पंडित मनमोहननाथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह कुछ सोचते हुए बाहर चले गए।

---

## १७

निशा का अवसान समीप था। सुदूर पूर्व-दिशा में एक प्रकाश-पुंज को क्षीण रेखा कालिमा को मौन भाषा में संकेत कर रही थी कि वह वहाँ से प्रस्थान कर जाय। डॉक्टर हुसेनभाई भी आश्रम से प्रस्थान करने के लिये तैयार होकर सोती हुई अमीलिया को अंतिम बार देखने के लिये उसके कमरे के दरवाज़े पर आए। भीतर झाँककर देखा, सर्वत्र नीरव शांति छाई हुई थी, केवल अमीलिया के साँस लेने का शब्द अर्द्ध-प्रस्फुटित भाषा में समय बीतने का संकेत बतला रहा था। वह लौटकर जाने लगे—उन्हें भय हुआ कि कहीं दोपहर की भाँति कोई दुर्घटना न हो जाय। किंतु दो ही क़दम पीछे हटकर फिर ठहर गए। लालसा ने ज़ोर मारा, वह उसे देखने के लिये फिर द्वार पर आकर खड़े हो गए। अमीलिया बेख़बर सो रही थी। वह स्थिर दृष्टि से देखने लगे। उनका मन वहाँ से जाने के लिये किसी भाँति तैयार न होता था। उनकी लालसा ने पुन: ज़ोर मारा, और इस बार वह कमरे के अंदर प्रविष्ट हो गए। चोर की तरह शंकित होकर उन्होंने चारो ओर देखा। प्रकृति निस्तब्ध थी, और पूर्व-दिशा में तत्काल उदित हुआ शुक्र मुस्किराने लगा। उसकी नि:शब्द हँसी से कातर होकर वह अमीलिया के पर्यंक के पास आकर खड़े हो गए, और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उसकी म्लान सुंदरता देखकर अपने मन को ऐसी कठोर प्रतिज्ञा के लिये धिक्कारने लगे। वह सोचने लगे—"क्या वास्तव में उन्हें अमीलिया से दूर जाना है—उसे एक जन्म के लिये छोड़ना है। उसके कल्याण के लिये

उससे दूर भागने में ही उसकी भलाई है। उनके कारण ही वह इस मुमूर्षु-अवस्था को पहुँची है, और वहाँ अधिक दिनों तक रहने से उसका जीवन नष्ट होने का भय है। उन्हें जाना ही पड़ेगा, और अमीलिया का त्यागना पड़ेगा।"

उनके मन ने साहस पाकर उन्हें वहाँ से जाने के लिये संकेत किया। अवश होकर वह कमरे के बाहर जाने के लिये उद्यत हुए। लालसा की हार होते देखकर मन हँसने लगा। लालसा तिलमिला गई, और वह पूर्ण बल लगाकर युद्ध करने लगी। डॉक्टर हुसैन-भाई ठहर गए। उनकी आँखों का अश्रु, जो सूख चला था, छल-छला आया, और अपनी व्यथा कहने के लिये अमीलिया के कान के पास कपोल पर गिर, वहाँ कुछ देर ठहर, फिर शय्या पर गिर पड़ा। वह शंकित होकर उसकी ओर देखने लगे, किंतु अमीलिया अपनी निद्रा में निमग्न हास्य और शोक की भावनाओं से ओत-प्रोत स्वप्न-लोक में स्वच्छंद विचर रही थी। उसकी यह हालत देख-कर उन्हें संतोष हुआ, उनका साहस भी बढ़ा। वह झुके, और दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने उत्तप्त उद्गारों का एक चिह्न उसके चौड़े मस्तक पर अंकित कर दिया। ओष्ठ अपनी इच्छित वस्तु पाकर बेसुध तथा अवश होकर उस माधुरी को पान करने में संलग्न हो गए। नासिका अपनी तप्त निःश्वासों से यह चोरी पकड़ाने के लिये अमीलिया को जगाने लगी। उसके नेत्र सहसा खुल गए। सहम-कर डॉक्टर हुसैनभाई ने अपना मुख हटा लिया। अमीलिया शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। उसके मस्तक पर एक अद्भुत मीठी-मीठी जलन हो रही थी। वह उसे सहलाने लगी। इसी समय उनकी आँखों का दूसरा अश्रु-कण उनकी हज़ार सावधानी से भाग-कर, अपनी स्वामिनी को जागा हुआ देखकर, अपने दर्द की कहानी कहने के लिये, उसके कपोल पर गिर पड़ा। अमीलिया सजग हो

गई, और डॉक्टर हुसैनभाई को पहचानकर कहा—"क्या मुझे त्यागकर जाते हो, क्या इसीलिये बिदा लेने आए हो ?"

उन्होंने कुछ उत्तर न दिया।

अमीलिया उठकर बैठ गई, और मंद स्वर में कहने लगी—"तुम जा रहे हो मुझे बचाने के लिये, दूर भागकर जा रहे हो, किंतु क्या तुम जा सकते हो ? नहीं। तुम कल दिन को भी बिदा माँगने आए थे, परंतु क्या तुम्हें बिदा मिली ? आज फिर विदा होने आए हो, क्या तुम्हें विदा मिलगी ? नहीं। तुम मुझे एक विचित्र स्त्री समझते हो, कभी पागल और कभी उससे भी बदतर। वास्तव में मैं पागल हूँ, अगर नहीं, तो शीघ्र हो जाऊँगी। एक दिन मैंने तुम्हें वचन दिया था कि मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगी, फिर एक दिन इनकार कर दिया। आज दो-ढाई महीने से, भारतेंदु के जाने के दिन से, मैं जब से वालपेराइज़ों में बेहोश हुई थी, आज तक अच्छी नहीं हुई। दिन-पर-दिन कुढ़ती हुई मृत्यु के समीप होती जा रही हूँ। क्या तुम्हें मेरे हृदय का हाल मालूम है, वहाँ कैसा भयंकर युद्ध हो रहा है ?"

कहते-कहते वह ठहर गई, और डॉक्टर हुसैनभाई को कुरसी पर बैठने का संकेत किया।

अमीलिया फिर कहने लगी—"अब मैं बहुत दिन नहीं जीवित रह सकती। मैं देख रही हूँ कि मेरा काल समीप आ रहा है। ऐसी हालत में क्या तुम अब भी मुझसे विवाह करना चाहते हो ? मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई जानती हूँ, और यही ज्ञान तो मेरे लिये काल हो गया है। तुम जानते हो, मैं अपवित्र हूँ, और मैं यह नहीं चाहती कि तुम्हें किसी की जूठी वस्तु समर्पित करूँ......."

डॉक्टर हुसैनभाई के धैर्य का बाँध टूट गया था। उन्होंने आकुल स्वर में कहा—"प्रियतमे, मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हारे प्रेम को चाहता हूँ, तुम्हारे शरीर को नहीं चाहता।"

अमीलिया ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"यदि तुम्हें मेरे शरीर से प्रयोजन नहीं, तो मैं तुमसे विवाह करूँगी। अपने लिये तुम्हारे जीवन का सुख और शांति नष्ट नहीं करूँगी।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसके समीप बैठकर उसके कपोलों को अपने प्रेमोद्गारों से अंकित करने का प्रयत्न किया, किंतु अमीलिया दूर छिटककर उठ खड़ी हुई, और कहा—"नहीं, यही मैं नहीं चाहती। मेरे स्पर्श से तुम्हारे आत्मा की उज्ज्वलता मलीन हो जायगी। यह शरीर तो उसी का हो चुका, जिसने इसे भ्रष्ट किया। मैं कह चुकी हूँ कि मेरा मन और आत्मा तुम्हारे हैं। वासना और लालसा की अग्नि शांत रखकर प्रेम-योग की तपस्या करनी पड़ेगी। बतखों की भाँति जल में रहकर जल से परे रहने के लिये यदि तैयार हो, तो मैं भी तन-प्राण से तुम्हारी होने के लिये तैयार हूँ।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने सावधान होकर उत्तर दिया—"अमीलिया, मेरे प्राणों की अमीलिया, मैं तुम्हारी सब शर्तें स्वीकार करता हूँ। बिना तुम्हारी अनुमति के मैं तुम्हारा शरीर स्पर्श नहीं करूँगा।"

कुछ देर सोचकर अमीलिया ने कहा—"तपस्या से जब यह शरीर शुद्ध हो जायगा, तब मैं स्वतः इसे भी तुम्हें समर्पण कर दूँगी, किंतु अभी नहीं। मानव-समाज की निःस्वार्थ सेवा से इस शरीर की अशुद्धता नष्ट होगी। मेरा जन्म संसार में मानवों की सेवा के लिये हुआ है, और वही मेरे जीवन का कर्तव्य है। तुम डॉक्टर होगे, और मैं नर्स होऊँगी। दोनो एक साथ मिलकर शांति और स्नेह की सृष्टि करेंगे, जो हमारे बच्चों की भाँति होंगे, और उनसे संतप्त आत्माओं को सिंचित कर उनका जीवन सुखमय बनावेंगे। बस, यही मेरे जीवन का आदर्श और ध्येय है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने गंभीर होकर कहा—"प्रियतमे, मैं भी पति

की भाँति तुम्हारे इस पुण्य यज्ञ में सम ाग लूँगा। ठीक है, मैं जन-समाज का डॉक्टर हूँ, और तुम जन-समाज की नर्स।"

उन दोनो की प्रतिज्ञा पर प्रातः-समीरण सन-सन कर हँसने लगा, और उषा-सुंदरी का दिव्य आलोक उन्हें साहस बँधाने लगा।

अमीलिया मेज़ के पास बैठकर पत्र लिखने लगी। डॉक्टर हुसैन-भाई ने कोई प्रश्न न किया। अमीलिया लिखने लगी—

"प्रिय आभा,

आज मैं तुम्हें एक सुसमाचार लिख रही हूँ कि आज ही, कुछ मिनट पहले, मेरा विवाह हो गया है। विवाह किससे हुआ है, यह तो तुम समझ ही गई होगी, उनका नाम लिखने की आवश्यकता नहीं। आशा है, तुम भी शीघ्र ही उस सुखमय लोक में प्रवेश करोगी, जहाँ मैं प्रविष्ट हो गई हूँ। स्त्री के जीवन का पूर्ण विकास तो उसके विवाह के पश्चात् ही आरंभ होता है, क्योंकि मातृत्व-पद पर प्रतिष्ठित होने के लिये वह प्रथम सोपान है।

माधवी तथा तुम्हारे पूर्व-जन्म की मा सकुशल हैं, और तुम्हारी याद बहुत करती हैं। उनके हृदय की कोमलता का वर्णन करने यदि मैं बैठूँ, तो एक छोटी-मोटी किताब बन जायगी। अभी तक हम लोगों ने उससे उसके पूर्व-जन्म का हाल नहीं कहा, क्योंकि उसे कहकर केवल उसके दुखी मन को और अधिक दुखी करना है।

आश्रम के सभी व्यक्ति सकुशल हैं, और तुम्हारी याद करते हैं। पंडितजी का इरादा थोड़े ही दिनों में हवाई जहाज़ से भारत पधारने का है। उन्होंने आश्रम-वासियों के लिये कई हवाई जहाज़ अभी ख़रीदे हैं, और उनके बनाने का कारख़ाना भी खोल दिया है। बाक़ी सब कुशल है, और अब मैं तुम्हारे विवाह का सुख-संवाद

सुनने के लिये उत्कंठित हूँ। भगवान् से प्रार्थना है कि वह शुभ अव-सर बहुत शीघ्र आवे।

तुम्हारी
अमीलिया"

पत्र लिखकर अमीलिया ने कहा—"तुम भी यह सुसमाचार भारतेंदु को लिख दो, और आज ही हवाई डाक से भेज दो। मैं यह सुसमाचार अपने ही दोनो के बीच नहीं रखना चाहती, क्योंकि मुझे भय है, कहीं मेरे विचारों में पुनः पागलपन न सवार हो जाय। और, आओ, हम दोनो चलकर पितृ-तुल्य पंडितजी से भी सब हाल कहकर उनकी अनुमति माँग लें। उनकी आज्ञा मिलने पर हम लोग यथाशीघ्र विवाह कर अपना संबंध चिरस्थायी कर लेंगे।"

अमीलिया बड़े उत्साह से कह रही थी कि उसकी तबियत का हाल पूछने के लिये पंडित मनमोहननाथ वहाँ आ गए। उन्हें देखते ही वह दौड़कर उनके पास चली गई, और नत-जानु होकर कहने लगी—"आपको मैं पिता से भी अधिक पूज्य मानती हूँ। आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। आप आशीर्वाद दें कि हमारा वैवाहिक जीवन सुख तथा शांतिमय हो।"

डॉक्टर हुसैनभाई भी अमीलिया के साथ ही उनके सामने नत-जानु होकर कहने लगे—"मेरे जीवन की तपस्या आज सफल हुई, जो मुझे अमीलिया-जैसी नारी-रत्न प्राप्त हुई। आप हमारे अभि-भावक हैं, हमें आशीर्वाद दीजिए।"

पंडित मनमोहननाथ अवाक् होकर उन दोनो की ओर देखने लगे; उन्हें भ्रम हो गया कि वह स्वप्न देख रहे हैं, या सत्य ही यह आश्चर्य-घटना देख रहे हैं।

अमीलिया ने उनका हाथ चूमते हुए कहा—"पिताजी, हमें आज्ञा दीजिए कि हम दोनो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।"

अब उन्हें ज्ञान हुआ कि यह स्वप्न नहीं, सत्य घटना है। वह तत्क्षण सब समझ गए, और हर्ष से मुस्किराते हुए कहा—"मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम दोनो का कल्याण हो। मेरी सर्वोत्तम मंगल-कामनाएँ तुम्हारे सारे दुःख दूर करें।" फिर डॉक्टर हुसैनभाई से मंद मुस्कान-सहित कहा—"क्या मै अब भी तुम्हारा इस्तीफ़ा मंज़ूर करूँ?"

यह कहकर वह ज़ोर से हँस पड़े। डॉक्टर हुसैनभाई शर्म से कटकर लहू-लुहान हो गए, सूर्य की स्वर्ण-रेखाएँ भी वेग से विहँस उठीं।

## १८

लखनऊ में, शाहनज़फ़ रोड पर, अनूपगढ़ हाउस की शान उस दिन निराली थी। चारो ओर सजावट होकर वह अपनी शान में फूला न समाता था। राजा सूरजबख़्शसिंह के आनंद का वार-पार न था, क्योंकि उसी दिन शाम को वह अपने मन की एकांत कामना को कार्य-रूप में परिणत करनेवाले थे। अनूपकुमारी के भी हर्ष का ओर-छोर न था। वह उस दिन अनूपगढ़ की राजरानी होनेवाली थी। उसके मन की उमंगों ने एक बार फिर उसका गुज़रा हुआ यौवन उसे प्रदान कर दिया था। उसका स्वाभाविक सौंदर्य शृंगार से द्विगुणित होकर देदीप्यमान हो रहा था, जिसे देखकर राजा सूरजबख़्शसिंह फूले न समाते थे। इधर कई महीने से परदा बिलकुल उठा ही दिया गया था, और इधर-उधर फिरने के लिये अनूपकुमारी बिलकुल स्वतंत्र थी।

संध्या होते ही अनूपगढ़-हाउस इंद्र-धनुष के रंगों के विद्युत्-प्रकाश से चमक उठा, जिसकी छाया क्षीण गोमती के जल पर पड़कर दर्शकों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने लगी। कोठी के अहाते में लगे हुए फ़व्वारों में भी विद्युत्-प्रकाश का प्रबंध किया गया था, जो क्षण-क्षण-भर में अपना रंग बदलते थे, जिससे जल की आभा रंग-बिरंगी हो जाती थी। अनूपकुमारी दूसरी मंज़िल के बरामदे से वह अद्भुत दृश्य देखकर प्रसन्न हो रही थी। राजा सूरजबख़्शसिंह भी उसके पास खड़े होकर उसके रूप को, जो रंग-बिरंगी आभा से क्षण-क्षण में रंग बदल रहा था, देखने में संलग्न थे।

कमरे में कुछ शब्द हुआ। राजा सूरजबख़्शसिंह ने पीछे फिर-कर देखा, उनका नौकर खड़ा हुआ था। उनका संकेत पाकर वह सामने आया, और चाँदी की तश्तरी में विज़िटिंग कार्ड सामने कर दिया। उन्होंने उसे पढ़ा, और क्रोध से उसे फेंक दिया।

अनूपकुमारी ने पूछा—"किसका कार्ड है ?"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"हमारे चिर-शत्रु मातादीन का। उस दुष्ट की हिम्मत तो देखो, सिंह की माँद में आया है।"

मातादीन का नाम सुनते ही अनूपकुमारी का मुख उतर गया। किसी भावी आशंका से वह सिहर उठी।

उसने भय से काँपते हुए कहा—"मैं तो समझती थी, विवाह निर्विघ्न बीत जायगा, किंतु देखती हूँ, वह दुष्ट कोई-न-कोई उपद्रव खड़ा करेगा।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने उत्तेजित स्वर में कहा—"इस दुष्ट से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। वह वर्षों मेरा ग़ुलाम होकर रहा है। मेरे हाथ में शक्ति है। मैं एक पुश्तैनी रईस हूँ, वह मेरा अनिष्ट नहीं कर सकता। मैं उससे साक्षात् नहीं करूँगा, अभी उसे कान पकड़वाकर बाहर निकाले देता हूँ।"

अनूपकुमारी के हृदय से आशंका दूर होकर एक विचित्र प्रकार के साहस का संचार हो रहा था, जैसा अंतिम निराशावस्था में उत्पन्न हो जाता है, जब उस भय से दूर भागने के सब मार्ग बंद हो जाते हैं।

उसके मुख की आकृति भयंकर होने लगी। वह वहाँ से अपने ख़ास कमरे में शीघ्रता से चली गई।

राजा सूरजबख़्शसिंह ने सिंह के समान गरजकर कहा—"जाओ, उस बदमाश को कान पकड़कर बाहर निकाल दो। मेरे हुक्म की लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ तामील होनी चाहिए।"

नौकर ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"उनके साथ बड़े कुँवर साहब के ससुर भी हैं।"

यह सुनकर वह किंचित् रुक गए, परंतु फिर तेज़ी के साथ कहा—"उन्हें भी निकाल दो। विना बुलाए आनेवालों का यही उचित सत्कार है।"

इसी समय कमरे के अंदर बाबू मातादीन ने प्रवेश करते हुए कहा—"कमतरीन की गुस्ताख़ी माफ़ हो। हुज़ूर के सामने आने में कमतरीन से बेअदबी ज़रूर हुई, किंतु नमक का ख़याल कर यह गुस्ताख़ी करनी पड़ी। रानी साहबा के राजा किशोरसिंह, कुँवर साहब और उनके ससुर, सब इस जल्से में शरीक होने के लिये तशरीफ़ लाए हैं, और अनूपकुमारी को मुबारकबाद देने के लिये हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर होना चाहते हैं।"

उसका कथन समाप्त होते ही रानी श्यामकुँवरि के साथ राजा किशोरसिंह ने प्रवेश किया, और उनके पीछे-पीछे कुँवर कामेश्वर-प्रसादसिंह ने भी आकर पिता को प्रणाम किया।

राजा सूरजबख़्शसिंह चकित होकर उनकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद सक्रोध बाबू मातादीन से कहा—"इन लोगों को लाकर क्या तुम मुझे डराना चाहते हो। यह तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हिंदू-परिवार में कर्ता की शक्ति असाधारण है, वह किसी एक स्त्री का गुलाम होकर नहीं रह सकता, और न दुनिया की कोई ताक़त उसे विवाह करने से रोक सकती है। मैं लाल साहब और उसकी मा का त्याग करता हूँ, और उनके अधिकार से उन्हें वंचित करता हूँ। नपुंसक मनुष्य मेरा पुत्र नहीं।"

इसी समय सर रामकृष्ण ने प्रवेश किया। उनके आते ही रानी श्यामकुँवरि बग़ल के छोटे कमरे में चली गईं। उन्होंने आते ही कहा—"किंतु लाल साहब न तो उस रोग से पीड़ित हैं, और न

उन्हें उनके अधिकार से च्युत करने की क्षमता आप में है। क़ानून सबके जायज़ अधिकारों की रक्षा करता है, और सरकार अपनी अजेय शक्ति से उसकी पाबंदी करती है।"

राजा सूरजबख़्शसिंह ने गरजकर कहा—"मैं तुम सबका चालान मदाख़लत बेजा में कराऊँगा कि तुम लोग हमारे ऊपर बेजा दबाव डालकर मेरे विवाह में विघ्न डालना चाहते हो। यदि क़ानून आपके दामाद की रक्षा कर सकता है, तो उसी तरह दामाद के बाप की सहायता करेगा। अगर आप होम-मेंबर हैं, तो मैं भी लेजिस्लेटिव एसेंबली का सदस्य हूँ। क़ानून की बारीकियाँ मैं भी ख़ूब समझता हूँ।"

इसी समय अनूपकुमारी ने एक ओर से उस कमरे में प्रवेश करते हुए, बड़े ही गंभीर स्वर में, आदेश दिया—"यह कोठी मेरी है, मैंने इसे ख़रीदा है। मैं आप साहबान को हुक्म देती हूँ कि इसी क्षण इस स्थान को छोड़कर चले जायँ। यदि आप मेरी आज्ञा पालन न करेंगे, तो मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी, और इसमें आपका अपमान भी हो सकता है।"

अनूपकुमारी ने अकस्मात् आकर इस प्रकार आदेश दिया कि सब लोग उसकी ओर मुग्ध होकर देखने लगे। एक बार कमरे में सन्नाटा छा गया। उस निस्तब्धता में उसके गंभीर शब्दों ने उसके भुवन-मोहन सौंदर्य के प्रकाश में मिश्रित होकर उन्हें अवाक् कर दिया।

क्षण-भर पश्चात् बाबू मातादीन ने सामने आकर कहा—"अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी, मुझे बहुत शोक के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारे विवाहित पति पंडित गौरीशंकर वाजपेयी अभी जीवित हैं, जिन्हें तुमने ज़हर देकर हत्या करने का प्रयत्न किया था।"

फिर राजा सूरजबख़्शसिंह ने कहा—"गुस्ताख़ी माफ़ हो, हिंदू-

क़ानून में पति के जीवित रहते स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं। हिंदू-कुलपति भी एक स्त्री से उसके पति की जिंदगी में विवाह नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त इस स्त्री को नर-हत्या करने की कोशिश करने का अभियोग लगकर वारंट गिरफ़्तारी निकल चुका है, जिसे पुलिस किसी समय आकर अपनी तहवाल में लेगी।"

राजा सूरजबख़्शसिंह क्रोध से उबल उठे, उन्होंने भाषण स्वर में कहा—"झूठ है, मैं इस पर न तो विश्वास करता हूँ, और न तुम्हारे-जैसे कुत्तों के भूकने से ख़ौफ़ खा सकता हूँ..... .."

राजा सूरजबख़्शसिंह कहते-कहते रुक गए, और क्षण-भर स्तब्ध होकर पुलिस-सब-इंस्पेक्टर की ओर देखने लगे, जो उसी क्षण चार कांस्टेबिलों और स्वामी गिरिजानंद के साथ उस कमरे में प्रविष्ट हुआ था।

बाबू मातादीन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, हँसती हुई आँखों के साथ, कहा—"अहल्या, क्या इस गेरुए वस्त्र-धारी को पहचानती हो। शायद तुम न पहचानो, इसलिये मैं ही कह दूँ कि यह तुम्हारे चिर-परिचित पंडित गौरीशंकर वाजपेयी हैं, जिन्हें तुमने तारीख़ १६ सितंबर, सन् १९२१ को ज़हर देकर हत्या करने का प्रयत्न किया था, परंतु तुम अपनी कोशिश में कामयाब न हुई।"

अनूपकुमारी भीत दृष्टि से स्वामी गिरिजानंद को देखने लगी।

पुलिस-सब-इंस्पेक्टर ने आगे बढ़ते हुए राजा सूरजबख़्शसिंह से कहा—"आपके घर में अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी नाम की स्त्री है, जिस पर नर-हत्या का अभियोग लगाया गया है, और उसे मैं सम्राट् की तरफ़ से जारी हुए हुक्म से गिरफ़्तार करना चाहता हूँ।"

स्वामी गिरिजानंद ने पुलिस-सब-इंस्पेक्टर से कहा—"मैं सम्राट् की दुहाई देकर ज़ाहिर करता हूँ कि मुझे विष देकर हत्या करने-

वाली मेरी स्त्री अहल्या उर्फ़ अनूपकुमारी सामने खड़ी है, उसे गिर-फ़्तार कीजिए।"

पुलिस-सब-इंस्पेक्टर अनूपकुमारी को गिरफ़्तार करने लिये आगे बढ़ा; किंतु विद्युत्-गति से तड़पकर अनूपकुमारी बाबू मातादीन के पास छिटककर जा खड़ी हुई, और दूसरे क्षण एक तेज़ कटार निकालकर ठीक उनके हृदय में घुसेड़ दी। बाबू मातादीन के कंठ से एक शब्द भी न निकल पाया, और वह पृथ्वी पर गिरने के पहले ही अपने प्रतिशोध की अग्नि में स्वयं भस्म हो गए। अनूपकुमारी पिशाचिनी की तेज़ी से उनके विद्ध हृदय से रक्त-रंजित छुरा निकाल-कर स्वामी गिरिजानंद की ओर तड़पी, मगर पुलिस के जवानों ने उसे पकड़ लिया। सिंहिनी की भाँति उसने दूसरा वार सबसे पहले पकड़नेवाले कांस्टेबिल पर किया, जो गर्दन में वार खाकर धरा-शायी हुआ। दूसरे कांस्टेबिलों ने उसे पकड़कर उस घातक कटार को उसके हाथ से छीन लिया। यह सब क्षण-मात्र में घटित हो गया।

अनूपकुमारी ने पास ही निर्जीव पड़े हुए बाबू मातादीन के शरीर को ठुकराते हुए कहा—"दोज़ख़ी कुत्ते, तू अपनी गति को पहुँच गया, अब मुझे मरने में संतोष है। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि तेरे कलेजे के रक्त से अपनी कटार को स्नान कराऊँगी, वह पूर्ण हो गई।"

यह कहकर वह भीषणता के साथ हँस पड़ी। उसकी पैशाचिक हँसी की प्रतिध्वनि उसके विवाह-मुहूर्त का परिहास करने लगी। बाबू मातादीन के शव की निष्प्रभ, अधखुली आँखें अब भी द्वेष के भाव से परिपूर्ण उसकी ओर देख रही थीं।

---

१६

प्रसन्नता का समुद्र अपने छोटे-से उर में छिपाए हुए मालती ने तेज़ी के साथ आभा के कमरे में प्रवेश किया। आभा अमीलिया का पत्र पढ़ने में सलग्न थी, उसने चौंककर पीछे देखा, और मालती को देखकर प्रसन्न मुख से बोली—"आइए, मैं मुबारकबादी के लिये स्वयं आपकी ख़िदमत में हाज़िर होनेवाली थी; ख़ैर, यह बड़ा अच्छा हुआ कि आप स्वयं पधार गईं। मैं आपको हृदय से बधाई देती हूँ।"

मालती ने हँसते हुए कहा—"दुनिया का क़ायदा है कि प्यासा कुएँ के पास जाता है, न कि कुआँ प्यासे के पास। बधाई मुझे देना है, न कि आपको। आपको धन्यवाद देने के पहले मैं आपसे पूछती हूँ कि आप मुझे किस बात की बधाई देती हैं?"

आभा ने मंद मुस्कान के साथ कहा—"आप मुझे बधाई देने के लिये आई हैं। ऐसा कौन मैंने दिल्ली का क़िला जीत लिया, जो आपको बधाई देने के लिये कष्ट करना पड़ा! अच्छा, आप ही बताइए, आप किस वास्ते बधाई दे रही हैं?"

मालती ने हँसती हुई आँखों से कहा—"बधाई पहले आपने दी है, कारण भी आप ही बताइए।"

आभा ने गंभीरता के साथ कहा—"आपके शत्रु परास्त हुए, और आप अनूपगढ़ की कुँवरानी हुईं।"

मालती ने मुस्किराकर कहा—"अनूपगढ़ की कुँवरानी तो पहले भी थी, और अब भी हूँ, इसके लिये बधाई देने की आवश्यकता नहीं समझती।"

आभा ने संकुचित होकर कहा—"अभी तक आपके ससुर साहब के दिल में कुछ मलाल था, लेकिन वह अब साफ़ हो गया है। इधर अनूपकुमारी की भी सब चालें व्यर्थ गईं, और आज वह हत्या के अपराध में गिरफ़्तार है।"

मालती ने शोक के साथ कहा—"अनूपकुमारी के लिये मुझे बड़ा दुःख है। वह पागल हो गई है। आज अभी उससे मिलने के लिये जेल गई थी। उसकी हालत देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। उसने हममें से किसी का नहीं पहचाना। हमें देखकर कहने लगी—"मेरा राज्य मुझसे छीनने आई हो, मातादीन को तो यम-लोक पहुँचा दिया है, अब तुम्हें भी वहाँ का रास्ता दिखाऊँगी। अनूपगढ़ मेरा है, मेरे पृथ्वीसिंह का है। मैं संसार की महारानी हूँ, एक छोटा अनूपगढ़ क्या, पृथ्वीसिंह को संसार का राज्य दिला-ऊँगी।" उसकी कौन-कौन बात कहूँ। वह तो कभी रोती है, कभी हँसती है, और कभी चीत्कार करती है। उसका पतन देखकर मुझे बड़ा तरस आता है।" कहते-कहते मालती की आँखें छुचछुचा आईं।

आभा ने भी दुःखित होकर कहा—"ईश्वर सुख दिखाकर दुःख कभी न दिखावे, बस, यही प्रार्थना है। रानी होकर भिखारिनी होने का दुःख वही जानता है, जिस पर बीतती है।"

मालती ने कहा—"मैं उसे हृदय से क्षमा करती हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह भी उसे क्षमा करें।"

आभा ने पूछा—"यह तो बताइए, आप किस बात की बधाई दे रही थीं?"

मालती ने मुस्किराते हुए कहा—"आज प्रोफ़ेसर साहब बाबूजी के पास आए थे, और वह तुम्हारे विवाह के विषय में बातें कर रहे थे। आगामी महीने में भारतेंदु बाबू से तुम्हारा विवाह हो

जायगा, इसके लिये तुम्हारे ससुरजी की भी ताकीद आई है, और उन्हें बुलाने के लिये एयर-मेल से पत्र भी भेज दिया है।"

आभा ने अपने हृदय का भाव छिपाते हुए कहा—"यह असंभव बात है। मैं तो तुमसे सब हाल कह चुकी हूँ, फिर भी तुम ऐसा कहती हो।"

मालती ने मुस्किराकर कहा—"यह ठीक है, पर तुम्हारे विवाह की बात पक्की हो गई है। प्रोफ़ेसर साहब ने एक दिन बाबूजी से कहा था कि वह भारतेंदु बाबू से इस विषय में बातचीत कर उनका विचार स्पष्ट रूप से जान ले। यह बात बाबूजी ने अम्मा से कही, और उन्होंने यह भार 'उन्हें' सौंप दिया, क्योंकि वह उनके समवयस्क हैं।"

आभा ने मुस्किराती हुई आँखों से पूछा—"'उन्हें' किनको? साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहतीं?"

मालती ने हँसकर कहा—"यह देखो, ख़ुद तो विवाह करने के लिये जो खोए दे रही हैं, और मुँह से कहती हैं कि मैं भारतेंदु बाबू से विवाह न करूँगी, और उन्हें भी अपना-जैसा कुँवारा ही रक्खूँगी। अब मुझे सारा भेद मालूम हो गया है; तुमने मुझसे बहुत बातें छिपाई हैं। ख़ैर, मौक़ा आने पर समझ लूँगी।"

आभा की अंतरात्मा उत्फुल्ल होकर हर्ष से नाचने लगी। उसने कहा—"मैं भी आपसे डरती नहीं।"

मालती ने उत्तर दिया—"तुम्हें डरने को कहता ही कौन है। भारतेंदु बाबू को पाकर फिर तुम्हारा मुक़ाबला करनेवाला कौन है। अब देर ही कितनी है। भारतेंदु बाबू भी विवाह करने के लिये आकुल हैं। एक दिन मैं भी उनसे मिली थी; वह भी तुम्हारी निठुराई की शिकायत करते थे।"

आभा ने कनखियों से हँसते हुए कहा--"ख़ैरियत इतनी हुई कि वह तुम्हारे सामने रोए नहीं।"

मालती और आभा दोनो हँसने लगीं।

इसी समय बाहर मोटर आने का शब्द सुनाई दिया। मालती उत्सुकता से बाहर जाने लगी। आभा ने उसे पकड़ते हुए कहा—"कुँवर साहब नहीं हैं, इतनी उतावली क्यों होती हो।"

मालती ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"जाने दो, शायद भावी वर अपनी भावी वधू से अपने अपराधों के लिये माफ़ी माँगने आया हो।"

इसी समय कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह के साथ भारतेंदु उस कमरे के सामनेवाले बरामदे में आते हुए दृष्टिगोचर हुए।

मालती ने आभा से कहा—"मैं कहती थी कि भारतेंदु बाबू ही हैं।"

आभा वहाँ से जाने के लिये उद्योग करने लगी।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"बिना बुलाए जो घर पर आता है, उसका सत्कार इसी भाँति किया जाता है। आप क्यों जाती हैं, मैं ही यहाँ बेगाना हूँ, इसलिये मैं ख़ुद चला जाऊँगा, आप तकलीफ़ न करें।"

आभा के पैर आगे न उठे। उसने झिझकते हुए कहा—"मालती से मैं अभी कहती थी कि कुँवर साहब ही तशरीफ़ लाए हैं। आइए, पधारिए, आज पधारकर यह घर पवित्र कर दिया।"

मालती ने कहा—"क्यों झूठ बोलती हो, तुमने तो व्यंग्य में कहा था कि कुँवर साहब नहीं हैं, क्यों उतावली होती हो। अब बातें बनाने लगीं।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने सोफ़े पर भारतेंदु को बैठाते हुए कहा—"आप यहाँ विराजिए, यह आपका घर है। आपके आने की मनाही

नहीं; 'बिना आज्ञा प्रवेश मत करो', यह आज्ञा तो हमारे ही लिये है। आप तो विशेषाधिकार प्राप्त माननीय व्यक्तियों में हैं।"

भारतेंदु ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"वह विशेषाधिकार दिलाने का श्रेय तो आपको या हमारी चतुर सहपाठिका प्रातः-स्मरणीय श्रीमती मालतीदेवी को प्राप्त है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसकर कहा—"इस गौरव के लिये मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। परंतु आपकी सहपाठिका इस आदरणीय पद के योग्य हैं या नहीं, इसका निरूपण तो श्रीमती आभादेवी ही करेंगी।"

आभा ने मालती को दूसरे सोफ़े पर बैठाते हुए कहा—"कुँवर साहब तो ज़बरदस्ती दूसरे के प्राप्य को अपहरण करने में विशेष रूप से चतुर मालूम होते हैं, किंतु उन्हें भी यह जान लेना चाहिए कि जब अगले चुनाव में हमारी प्रिय सखी सफलता प्राप्त कर एसेंबली की माननीय सदस्या होंगी, तब पुरुषों की ऐसी धींगाधींगी को समूल नष्ट करने के लिये कई क़ानून बनवा देंगी, और पुरुषों के अधिकार समूल नष्ट हो जायँगे। स्त्री-जाति की गुलामी करनी पड़ेगी।"

मालती ने तुरंत ही उत्तर दिया—"बेशक, उस वक्त क़ानून के आगे पूर्व-जन्म के प्रेम की दुहाई भी कहीं नहीं सुनी जायगी, और उस सुख-स्वप्न को देखना हमेशा के लिये बंद करना पड़ेगा।"

मालती और कामेश्वरप्रसादसिंह की हास्य-ध्वनि से वह कमरा गूँज उठा, और आभा लज्जित होकर बग़लें झाँकने लगी।

कुँवर कामेश्वरप्रसादसिंह ने हँसी बंद करते हुए कहा—"ऐसी मर्मांतक चुटकी लेना उचित नहीं। अत्यधिक प्रेम में मनुष्य को यह भ्रम हो जाता है कि उसका प्रेम पूर्व-जन्म के प्रेम का विस्तार-मात्र

है। भारतेंदु बाबू का भाग्य देखकर किसी भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती है।"

भारतेंदु ने झेंपे हुए स्वर में कहा—"मैं तो क्या सचमुच इतना भाग्यशाली हूँ? लेकिन मेरा तो ख़याल था कि ईश्वर के यहाँ, जब भाग्य बँट रहा था, तब जल्दी में मैं कोई बर्तन न मिलने से चलनी ही लेकर चल दिया था, और उससे सब भाग्य छनकर बह गया, जिससे मैं भाग्य-हीन हूँ। जब श्रीमती मालतीदेवी स्त्रियों की गुलामी करने का क़ानून बनवाएँगी, तब तो अभी से उसका अभ्यस्त होना चाहिए, वरना उस वक़्त तो बड़ी मुश्किल दरपेश आएगी, और तलाक़ मिलने का प्रबंध किया जायगा।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"जनाब, उस आड़े वक़्त में पूर्व-जन्म का प्रेम ही काम आएगा, बाक़ी इस जन्म के प्रेमवालों की तो यही शोचनीय दशा होगी। मगर आपको तो कोई डर नहीं, भय तो मुझे है।"

यह कहकर वह हँस पड़े। मालती कट गई, और आभा प्रसन्नता से खिल उठी। भारतेंदु ने उस हँसी में योग दिया।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"इन बातों से काम नहीं चलेगा, अब आप यह बताइए, हम लोग मिठाई की कब उम्मीद करें।"

भारतेंदु ने हँसते हुए उत्तर दिया—"जब श्रीमती मालतीदेवी एसेंबली की मेंबर होकर ऐसा क़ानून बनाएँगी।"

मालती ने उत्तर दिया—"अभी तो पूर्व-जन्म के प्रेम की मिठाई खानी है। जब वह समय आएगा, तब मैं ख़ुद खिला दूँगी, आप लोगों की तरह बहाने नहीं बनाऊँगी।"

भारतेंदु ने कहा—"उसके लिये तो तक़ाज़ा आप अपनी सखी से कर सकती हैं, क्योंकि यह बात तो आपके और उनके बीच की है।"

मालती ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हमारी सखी कौन, आभा-देवी कि मिस अमीलिया जैकब्स ?"

आभा सवेग हँस पड़ी, और भारतेंदु लज्जित होकर चुप रहे।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"जनाब, आप तो हैं बड़े भाग्यवान्, दो दो शिकार करना आपके ही नसीब में है, फिर भी शिकायत है कि मैं भाग्य-हीन हूँ! मिस अमीलिया जैकब्स का रहस्य तो आपने छिपा ही रक्खा।"

भारतेंदु उद्विग्न हो उठे। उनका चेहरा लाल हो गया।

इसी समय डॉक्टर नीलकंठ का कंठ-शब्द सुनाई दिया।

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"प्रोफ़ेसर साहब आ गए। अब किसी दूसरे दिन वह क़िस्सा सुनेंगे।"

आभा और मालती दूसरे कमरे में चली गईं, और कुँवर कामेश्वरप्रसाद भारतेंदु के साथ डॉक्टर नीलकंठ के पास चले गए।

उन्हें देखकर उन्होंने कहा—"आज पंडितजी को बुलाने के लिये तार भेज दिया है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"सुबह तो आप बाबूजी से कह रहे थे कि एयर-मेल से पत्र भेजेंगे ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने उत्तर दिया—"पहले यही विचार था, लेकिन सर रामकृष्ण ने तार देने की सलाह दी, क्योंकि दिन बहुत कम हैं। हमने उन्हें हवाई जहाज़ से आने के लिये लिखा है।"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद ने कहा—"तब तो वह अधिक-से-अधिक एक सप्ताह में यहाँ आ जायँगे ?"

डॉक्टर नीलकंठ ने कहा—"आशा तो ऐसी ही है। आज आप लोग यहीं भोजन कीजिएगा। मैं फ़ोन से सर रामकृष्ण को सूचित किए देता हूँ। मैं आपका एक भी बहाना नहीं सुनूँगा।"

यह कहकर वह शीघ्रता से सर रामकृष्ण को फ़ोन करने के

लिये बाहर के कमरे में चले गए। कुँवर कामेश्वरप्रसाद भारतेंदु की ओर देखकर मुस्किराए, और कहा—"कहते हैं, फूल-माला के साथ तुच्छ सूत भी देवताओं के सिर चढ़ जाता है।"

भारतेंदु हँसने लगे, फिर कहा—"क्या गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है?"

कुँवर कामेश्वरप्रसाद हँसने लगे।

---

## २०

आभा और भारतेंदु का विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया। पंडितमनमोहननाथ हवाई जहाज़ से विवाह-तिथि के एक सप्ताह पूर्व पहुँच गए थे, और इतने ही दिनों में उन्होंने सब प्रबंध कर लिया था। यद्यपि विवाह-समारोह में किसी प्रकार की कमी न रक्खी गई थी, फिर भी सजावट सादी थी। लखनऊ के सभी प्रमुख व्यक्ति निमंत्रित थे। डॉक्टर नीलकंठ ने भी उनका सम्मान रखने में कुछ उठा न रक्खा था।

वैदिक मंत्रों से विवाह-सूत्र में आबद्ध होने के बाद नवदंपति पंडित मनमोहननाथ का अशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उनके चरणों को स्पर्श करने के लिये भूमिष्ठ हुए, किंतु बीच में ही रोककर उन्होंने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"संसार में प्रवेश करने के लिये मैं तुम्हें हृदय से बधाई देता हूँ कि तुम दोनो इस कंटकाकीर्ण पथ को सकुशल सफलता के साथ उतीर्ण करो। किंतु इतना याद रखना कि तुम दोनो का जीवन सयुक्त जीवन है। तुम्हारा निजत्व एक दूसरे में निहित है, और फिर भी तुम्हारा कार्य-क्षेत्र न्यारा-न्यारा है। उस पृथकृत्व के बाद पुनः सम्मिश्रण है, जो साम्य-भाव सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।"

नवदंपति ने नत-मस्तक होकर उस आशीर्वाद और आदेश को ग्रहण किया।

डॉक्टर नीलकंठ कन्या-संप्रदान के पश्चात् अपने ख़ास कमरे में जाकर आभा की मा का चित्र देखने में संलग्न थे। उनकी आँखें अश्रु-पूर्ण थीं। वह कह रहे थे—"तुम्हारी आत्मा संसार में फिर अवतीर्ण

हो गई, किंतु अब वह इस शरीर-संबंधित भावों से परे है। एक दिन था, जब मुझे केवल कुछ घंटों के लिये तुम्हारा वह रूप देखने को मिला था, परंतु मेरे अभाग्य से वह भाव एक जन्म के लिये पुनः नष्ट हो गया। आभा तुम्हें प्राणों से प्रिय थी, आज उसे भी अपने हाथ से सदा के लिये खो दिया है। अब मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं, किंतु संतोष इस बात का है कि वह सदैव तुम्हारे पास रहेगी...."

उन्होंने पद-शब्द सुनकर पीछे देखा, और नवदंपति को देखकर अश्रुओं को पोछ डाला। आभा उनके मन की व्यथा जान गई। उसकी भी आँखों से अश्रु उमड़ने लगे। वह दौड़कर अपने पिता के कंठ से चिपक गई। पिता का हृदय हज़ार रोकने पर भी रुदन करने लगा। भारतेंदु के भी नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

आभा ने सिसकते हुए कहा—"पापा,........"

इसके आगे वह न कह सकी।

डॉक्टर नीलकंठ ने सिसकते हुए कहा—"बेटी, आभा........"

इसके आगे वह भी न कह सके।

थोड़ी देर बाद, आवेग शांत होने पर, उन्होंने कहा—"आभा, आज से तेरे ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं ; तू पराई हो गई, लेकिन अभागे पिता को भूल मत जाना।"

कहते-कहते उनके आँसू पुनः प्रवाहित होने लगे।

भारतेंदु ने नत होकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"यह आपका भ्रम है। अधिकार आपका नष्ट नहीं हुआ, वरन् अपनी सेवा के लिये आपने मुझे भी आबद्ध कर लिया। हम लोग पराए न होकर आपके और निकट आ गए हैं।"

डॉक्टर नीलकंठ का हृदय पुत्र-प्रेम से प्लावित हो गया।

उन्होंने भारतेंदु के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—"तुम्हारे इन गुणों के कारण ही मैंने तुम्हें अपना पुत्रस्थानीय बनाया है।"

फिर आभा की मा सावित्री के तैल-चित्र की ओर संकेत करते हुए कहा—"तुम दोनो इस स्वर्गीया देवी को प्रणाम करो, जिसके आशीर्वाद से तुम्हारा कल्याण होगा।"

नवदंपति ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। डॉक्टर नीलकंठ को ऐसा मालूम हुआ कि उस चित्र में आत्मा का प्रवेश हो गया है, और वह प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दे रहा है।

दंपति पुनः उन्हें प्रणाम करने के लिये भूमिष्ठ हुए। उन्हें सप्रेम उठाते हुए उन्होंने कहा—"मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दोनो के जीवन का विकास सुख-समृद्धि और शांति के साथ आरंभ हो। तुम्हारा विकसित जीवन दूसरों के लिये आदर्श हो, और तुम दोनो एक काय-मन-आत्मा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करो।"

इसी समय राधा और गंगा वर-वधू को ढूँढ़ती हुई वहाँ आ गईं। आभा के विवाह की ख़ुशी में गंगा का तारुण्य वापस आ गया था।

राधा ने आकर कहा—"हम लोगों ने घर-भर छान डाला, लेकिन कहीं पता न चला। अंदर मालती वग़ैरह सब बैठी हुई इंतज़ार कर रही हैं। अब अंदर चलिए, आप दोनो की ख़बर ली जायगी।"

डॉक्टर नीलकंठ ने मुस्किराते हुए उन्हें जाने का आदेश दिया। आभा और भारतेंदु को घसीटती हुई राधा अपनी मंडली की ओर ले गईं।

डॉक्टर नीलकंठ ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"अब मैं स्वतंत्र हूँ। मेरे भी जीवन का विकास आरंभ होता है। संसार में संबंध-विच्छेद कर अब ईश्वराराधना में समय व्यतीत करूँगा। जीवन का सत्य विकास उसी समय होगा।"

फिर आभा की मा के चित्र की ओर देखते हुए कहा—"आभा की ओर से मैं आज विमुक्त हुआ। उसके सुखी करने का भार अब तुम वहन करो।"

निर्जीव चित्र मुस्किराने लगा। वह मुग्ध होकर उस शांत तथा स्नेह-प्लावित मुस्किराहट को देखने लगे।

## २१

ल्यूनेसबोका का स्वच्छ जल पवन के साथ आँखमिचौनी खेल रहा था। पवन अपनी अदृश्य उँगलियों से उसे गुदगुदाता और क्षुद्र लहरें हँसते-हँसते लोट-पोट हुई जा रही थीं। पवन की अठखेलियाँ देखकर डॉक्टर हुसैनभाई का मन ईर्ष्या से प्रज्वलित हो गया। उन्होंने उसी आवेश में एक पत्थर उठाकर जल-राशि में फेंक दिया, जिसे उसने अपने उदर में रख लिया और अपनी वेदना कहने के लिया, गोलाकार मंडल-पर-मंडल बनाती हुई तरंगें दौड़कर थोड़ी दूर पर खड़ी अमीलिया के चरणों के समीप जाने लगीं। अमीलिया का चिंता-स्रोत टूट गया, और उनकी फ़रियाद सुनने के लिये वह उन्हें उत्साहित करनेवाली हँसी हँसने लगी, लेकिन मुलज़िम की भाँति डॉक्टर हुसैनभाई, उनके कहने के पहले ही, उसका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करने के लिये, कह उठे—"आज की संध्या बड़ी सुहावनी है। अमीलिया, क्या तुम्हारी इच्छा जल-विहार करने की नहीं होती?"

अमीलिया ने हँसकर उत्तर दिया—"यदि तुम्हारी एकांत कामना है, तो चलने में मुझे कोई उज्र नहीं, प्रकृति-सौंदर्य के साथ जल का संपर्क ऐसा है, जैसा चोली के साथ दामन का। जीवन के इतने वर्षों तक प्रकृति ने ही मेरे साथ अपना प्रेम निबाहा है, उसके संसर्ग का लोभ मैं कभी संवरण कर सकूँगी, नहीं जानती।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने मृदु स्वर में कहा—"मेरी अपेक्षा तो प्रकृति कहीं अधिक भाग्यवती है। यदि तुम्हारा मनोरंजन प्रकृति-निरीक्षण

से होता है, तो उसमें मुझे भी आनंद आएगा। मैंने तो पूर्ण रूप से अपने को तुम्हारी इच्छाओं पर छोड़ दिया है। तुम ज़रा यहाँ ठहरो, मैं मोटर-बोट ले आऊँ।"

यह कहकर वह उत्साह के साथ नाव लेने चले गए। अमीलिया वहाँ खड़े-खड़े अस्त होते हुए सूर्य की सुनहली किरणों की लालिमा देख रही थी।

इसी समय माधवी ने आकर कहा—"ये आपके और डॉक्टर साहब के पत्र हैं, जो अभी-अभी आए हैं।"

अमीलिया उत्सुकता से उन्हें लेकर अपने नाम का पत्र खोलने लगी। माधवी पुनः आश्रम की ओर चली गई।

अमीलिया ने उसे बुलाकर पूछा—"माधवी बहन, घूमने चलोगी?"

माधवी ने हँसकर उत्तर दिया—"आप लोग जाइए। मुझे कई बंधुओं की दवा का इंतज़ाम करना है। बहन, जितना आनंद मुझे बंधुओं की सेवा करने से प्राप्त होता है, उतना किसी अन्य काम से नहीं। मेरे हाथ का मरीज़ जब आरोग्य लाभ कर मुझे आशीर्वाद देता है, उस वक़्त मेरी अंतरात्मा अनिर्वचनीय आनंद से ओत-प्रोत हो जाती है। वास्तव में पिताजी के उपदेश और कृपा से मेरे जीवन का वास्तविक विकास आरंभ हुआ है। मुझे इसी में संतोष है, और इसी में आनंद है।"

माधवी यह कहती हुई, अमीलिया के उत्तर की प्रतीक्षा किए विना, स्वर्गीय आनंद में विभोर, त्वरित पदों से चलकर उस साम्यवादी आश्रम की समता में अदृश्य हो गई।

इसी समय डॉक्टर हुसैनभाई मोटर-बोट लेकर वहाँ आ गए, और अमीलिया को उस पर आने के लिये निमंत्रित किया।

अमीलिया हर्ष से उस नाव पर सवार हो गई। डॉक्टर हुसैनभाई

ने नाव का मुख जल की ओर कर दिया। सशब्द वह नाव ब्यूने-सबोका पर संतरण करने लगी। डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया को प्रसन्न-वदन देखकर विस्मय के साथ पूछा—"आज तुम बड़ी प्रसन्न हो।"

अमीलिया ने उनके नाम का पत्र उन्हें देते हुए कहा—"यह पत्र तुम्हारा है, इसे पढ़ो।"

डॉक्टर हुसैनभाई उस गोधूलि के प्रकाश में पढ़ने लगे। पत्र भारतेंदु का और इस प्रकार था—

"प्रिय डॉक्टर साहब,

आपका कृपा-पत्र तीन सप्ताह पहले मिला था, किंतु आपको बधाई देने में विलंब हुआ, इसकी क्षमा-याचना करता हूँ। हम लोगों को आपके विवाह-समाचार से हार्दिक प्रसन्नता हुई, और हम आपको हृदय से बधाई देते हैं! आशा है, हमारी बधाइयाँ यद्यपि देर से पहुँच रही हैं, फिर भी आप उन्हें स्वीकार कर हमें अपना कृतज्ञ बनाएँगे।

पिताजी तारीख़ ३१—४—को यहाँ सकुशल पहुँच गए थे, और उनके आज्ञानुसार मैं और आभा विवाह-सूत्र में आबद्ध हो गए। मैंने दैव-विधान समझ आज्ञा-पालन किया है, और आशा है, आप लोग अवश्य ही क्षमा प्रदान करेंगे। इस अवसर पर आप लोगों की अनुपस्थिति हम लोगों को बहुत दुःखदायी हुई है।

शेष कुशल है। पिताजी अभी कुछ दिनों तक यहीं रहने का विचार कर रहे हैं, क्योंकि उनके मित्र सर रामकृष्ण और राजा सूरजबख़्शसिंह आदि उन्हें ठहरने के लिये विशेष रूप से अनुरोध कर रहे हैं। जुलाई के प्रथम सप्ताह में राजा सूरजबख़्शसिंह की राजकुमारियों का विवाह होनेवाला है। पिताजी आश्रम की निग-

रानी का पूर्ण भार आप लोगों को सौंप रहे हैं। एक बार पुनः मैं आप लोगों से क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। इति।

स्नेही
भारतेंदु"

पत्र समाप्त कर डॉक्टर हुसैनभाई ने आश्चर्य के साथ कहा— "मैं नहीं समझता कि क्यों वह बार-बार क्षमा माँगते हैं। उनका क्या अपराध है?"

अमीलिया ने हास्य-भरी आँखों से उनकी ओर देखते हुए कहा— "यदि मैं उनका अपराध बता दूँ, तो क्या तुम उन्हें क्षमा कर दोगे?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने गंभीरता से कहा— 'तुम्हारे कहने की आवश्यकता नहीं, मैं उन्हें पहले ही क्षमा कर चुका हूँ। उन्हें क्षमा करके तुमसे प्रेम किया है। मानव-हृदय कमज़ोरियों का समूह-मात्र है। उससे अपराध न होना अवश्य ही असंभव है, और अपराध होना उसके मनुष्य होने का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। प्रियतमे, जब तुमने उन्हें क्षमा कर इतनी मनोवेदना सहन की है, जिसके वह अपराधी हैं, तब मैं उन्हें क्यों नहीं क्षमा करूँगा। मैं उन्हें हृदय से क्षमा करता हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसा अपराध फिर कभी न करें।"

अमीलिया हर्ष से उन्मत्त होकर उनके हाथ पकड़कर अपने प्रेम की गरमी से उत्तप्त करने लगी। मीनकेतन संध्या की लालिमा में अपने को छिपाकर अपने पुष्प-धनुष पर पुष्पों का बाण चढ़ाने लगा।

डॉक्टर हुसैनभाई ने अमीलिया को आवेग के साथ अपने हृदय से लगाते और प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"प्रियतमे!"

अमीलिया ने आज अपने विवाह के बाद पहलेपहल उनके प्रेम-चिह्नों का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"प्रियतम!"।

भगवान् मीनकेतन के परमबंधु चंद्रदेव पूर्व दिशा के वातायन से झाँककर वह प्रेम-सम्मिलन देखकर हँस पड़े। उनकी धवल किरणें विरह में बेसुध लहरों को गुदगुदाकर प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगीं।

अमीलिया ने अपना सिर उनके विशाल वक्षःस्थल में छिपाते हुए कहा—"तुम मुझे अब तक पागल समझ रहे थे?"

डॉक्टर हुसैनभाई ने उसका सिर सूँघते हुए कहा—"नहीं, तुम्हारे उन्नत हृदय की मन-ही-मन प्रशंसा कर रहा था। तुम्हारी-जैसी स्त्री पाकर मेरे मानव-जीवन का विकास शुरू हुआ है।"

अमीलिया ने उनकी आँखों की ओर देखते हुए कहा—"नहीं, सत्य तो यह है कि हमारे और तुम्हारे जीवन का विकास आज से आरंभ होता है।"

डॉक्टर हुसैनभाई ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसे अपने आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लिया।

पूर्वीय क्षितिज से भगवान् चंद्रदेव अपनी किरणों से अमृत बरसाकर उनके जीवन को विकसित करने लगे, और व्यूनेसबोका की छोटी-छोटी लहरें नवदंपति तक पहुँचने में असमर्थ होकर अपना आनंद नाव के तल से टकरा-टकराकर प्रकट करने लगीं। चंद्रमा हँस-हँसकर उन्हें उत्साहित करने लगा।

---